श्री गोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी-ट्रस्ट (इन्दौर)

की सहायता से प्रकाशित।

1982

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाका पञ्चमरत्न

औषध-गुणधर्म-विवेचन।

प्रकाशक

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेड़ा-बोगला (जिला अजमेर)

द्वितीय संस्करण प्रति २५०० } १९४९ ई० { सामान्य कागज ३) विशेष कागज ४॥)

श्री० गोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी-ट्रस्ट
(इन्दौर) की सहायता से प्रकाशित

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

\+ + + +

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥

\+ + + +

दुर्गृहीतं क्षिणोत्येव शास्त्रं शस्त्रमिवाबुधम् ।
सुगृहीतं तदेव ज्ञं शास्त्रं शस्त्रं च रक्षति ॥

\+ + + +

न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ।
स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कणीयं चिकित्सता ॥

\+ + + +

अजातानामनुत्पत्तौ जातानां विनिवृत्तये ।
रोगाणां यो विधिर्दृष्टः सुखार्थी तं समाचरेत् ॥

मुद्रक—
दुर्गादत्त त्रिपाठी,
'सन्मार्ग'प्रेस बनारस ।

निवेदन

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥

समस्त संसार के कल्याणार्थ निर्धन और धनिक, नागरिक और ग्रामीण, विद्वान् और सामान्य बुद्धिवाले, सब कोई सरलतापूर्वक आयुर्वेदसे लाभ उठा सकें, इस बात को लक्ष्य में रखकर प्राचीन महर्षियोंने औषध गुण, परिभाषा और कृति रोगनिदान, प्रतिरोध, प्रतिकार और चिकित्सा आदि विषयों की शिक्षा सरल प्रकारसे दी है। उनके सामने लक्ष्य ही यह था कि सर्वसाधारण को उस सम्पूर्ण विषय का ज्ञान होना चाहिये। उन महर्षियों के विचार सृष्टि में कभी व्यवसायात्मक दृष्टि का प्रवेश नहीं हुआ था। उनमें परोपकार दृष्टि थी। वे चाहते थे कि भावी सर्व सन्तान या जनता उन सब बातों से जानकार हो जाय, जिनकी सहायता से वे अपने शरीर को निरोगी बनाये रख सकें। परन्तु समय तो निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। समयानुसार मनुष्य की विचारधारा, रहन-सहन और यहाँ तक कि जीवनमात्र ही का लक्ष्य भी बदल जाता है। आज के भौतिकवाद और यान्त्रिक युग ने जीवन के प्रत्येक पहलूमें इतना परिवर्तन किया है कि, प्राचीन युग की सभी बातें कल्पना से भी बाहर की वस्तु हो गई हैं। इसका प्रभाव चिकित्सा शास्त्र पर भी होना ही था। फलस्वरूप आज इसे एक व्यवसाय का रूप मिल गया है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि, आयुर्वेद की उत्पत्ति और विकास ही एकदम आज से विपरीत लक्ष्य को सामने रखते हुये सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ है। भारतका मध्यकालीन युग कितना अन्धकारमय रह चुका है यह किसी से छिपा नहीं है। आततायियोंके आक्रमण, विधर्मियों की लूट खसोट और स्वार्थान्धताने ज्ञानके विकास और उन्नतिके सब स्रोत ही एकदम रोक दिये थे। फलतः जो कुछ हमारे पास था उसमें उन्नति करना तो दूर रहा प्रत्युत हम उसे ही भूल बैठे। हमारा दुर्भाग्य है कि, आज मूल ग्रन्थोंमें प्रक्षेप आ मिले हैं जिससे अनेक स्थलों पर कहीं कहीं विचारों में ही भेद प्रतीत होने लग जाता है। अब हमारे पास सत्य, असत्य, वास्तविक-अवास्तविक एवं लुप्त प्राय ज्ञान को खोज निकालने के लिये न आचार्य हैं न दिव्य दृष्टि और न आत्मबल ही। ऐसी विषम परिस्थिति में किस मार्ग का अवलम्बन किया जाय कि आयुर्वेद की उन्नति हो सके? यही प्रश्न है जिसे स्वतन्त्र भारत को हल करना है। विदेशी शिक्षा-दीक्षा से विभूषित एवं यन्त्रों की चकाचौंध से प्रभावित सरकार भले इस प्रश्नको कुछ समयके लिये टाल दे परन्तु इस प्रजातन्त्रके युगमें जिस

किसी-किसी स्थान पर श्री० बापालाल गरबड़ शास्त्रीकृत निघण्टु आदर्श (गुजराती ग्रन्थ) का उपयोग किया गया है। अतः इन ग्रन्थकारोंका अन्तःकरणपूर्वक आभार मानता हूँ।

जिस विषय का "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह अथवा चिकित्सातत्त्वप्रदीप" में पढ़ानेपर अवियोग हो गया है और जो चिकित्सा शास्त्रकी चाबी रूप होनेसे अति महत्त्वका है, उसे इस ग्रन्थमें स्थान दिया गया है। अनेक प्रसंग "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" में देने योग्य हैं इनमेंसे कुछ प्रथमखण्डमें और कुछ द्वितीय खण्डमें लिये भी गये हैं। उनका विवेचन इस ग्रन्थमें नहीं किया गया।

इस ग्रन्थके प्रथम संस्करणको "शरणागत निपाता श्री० रसवैद्य, वैद्यरत्न कविराज प० वंशीधरजी और उनके सुपुत्र पं० मोहनलालजी आयुर्वेदाचार्य" ने निःस्वार्थ भावसे आद्यन्त लक्ष्यपूर्वक देख, संशोधन कर दिया है, एवं प्रार्थना करने पर आपने प्रस्तावना लिख देनेकी भी कृपा की है, एतदर्थ आपके हम आभारी हैं।

इस पुस्तकका प्रथम संस्करण १९४१ ई० में छपा था। उस समय प्रतिलिपि लिखनेवालोंके दुर्लक्ष्यसे "वैज्ञानिक विचारणा" नाम लिखा गया और छप गया था। उस संस्करणकी २५०० प्रति मात्र १ वर्ष में बिक गई थीं। इस पुस्तकमें कतिपय स्थानोंमें विचारोंमें कुछ कठिनता रह गई थी, उसे इस संस्करणमें सरल भाषामें विस्तृत विवेचन करके दूरकी है। इस हेतुसे इस संस्करणमें पहिलेकी अपेक्षा लगभग एक तिहाई लेख बढ़ गया है। यह सब संशोधन परिवर्तन भी यथासमय कर लिया था किन्तु कागज और छपाईके लिये प्रतिकूलतायें तथा आर्थिक कठिनाइयोंके कारण यह द्वितीय संस्करण ८ वर्षके पश्चात् चिकित्सकोंकी सेवामें समर्पित हो रहा है।

हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि, आर्थिक प्रतिकूलताके समय इस पुस्तकके प्रकाशनार्थ श्री गोविंदराम सेकसरिया चेरीटी ट्रस्ट इन्दौर के ट्रस्टियोंने आयुर्वेद सेवामें अभिरुचि प्रकटकर २५००) रु० सहायता दी है, जिससे इस समय हम यह संस्करण समर्पित कर सके हैं। पहिले भी 'गांवोंमें औषधरत्न' प्रथमखण्डके प्रकाशनार्थ २५००) रु० सहायता दी थी। इस सहायताके लिये हम उनका अन्तःकरणपूर्वक आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थके छपानेमें भाषा संशोधन और अन्तिम प्रूफ संशोधन आदि कार्यमें निःस्वार्थ सेवा भावसे प्रेरित होकर श्री० पं० मन्नगोपालजी शर्मा बनारसने पूर्ण सहयोग दिया है, अतः हम उनके आभारी हैं।

यह औषधालय परमात्माका है। दीनजनोंकी सेवाके निमित्त ही स्थापित हुआ है। धर्मार्थ औषधालयको संचालकने आज दिनतक किसीने स्वार्थके लिये उपयोग नहीं किया। इस औषधालयने आजतक ११ ट्रस्टी बनाये हैं और ट्रस्टडीड रजिस्टर्ड करा लिया है। इस औषधालय द्वारा १० वर्षोंसे निरन्तर रोगियोंकी सेवा और आयुर्वेद

साहित्यकी सेवा हो रही है। इस सेवाका लाभ आगे के लिये प्राप्त करना, यह जनताकी सहायता और सद्भाव पर अवलम्बित है।

यह संस्था १९४५ ई० तक सिर्फ चिकित्सालय (Dispensary) द्वारा रोगियोंकी सेवा करती थी। १९४५ ई० के नवम्बर मासमें कई सज्जनोंकी प्रेरणावश एवं दूर दूरसे आनेवाले रोगियोंकी असीम कठिनाइयोंको देखकर आतुरालय (Hospital) बनानेका निश्चय किया। इसके लिये पूज्य स्वामीजी महाराजने अथक परिश्रम करके १०,०००) चन्दा इकट्ठा किया। इसके अतिरिक्त ७०,०००) रु० की सहायता सरकारकी ओरसे मिलनेका अभिवचन मिला था। भवन निर्माण कार्य आरम्भ हो जाने तथा बहुत कुछ काम हो जानेके बाद भी सरकारकी ओरसे मिलनेवाली रकम न मिल सकी। जिससे इस संस्थापर अकस्मात् आर्थिक भार आ गया है। इस भारसे मुक्त होनेके लिये स्वामीजी महाराजका लेखन कार्य बन्द रहना, अति दुःखदायी प्रतीत होता है, किन्तु निरुपायवश ऐसा करना पड़ता है। ७००००) मेंसे १५०००) की सहायता मिल चुकी है। शेष सहायता मिल जानेपर पुनः पहिलेके समान लेखन कार्य चालू किया जा सकेगा, ऐसी आशा है।

इस आतुरालय भवन निर्माणार्थ बहुतसी रकम कर्ज रूपसे बैंकसे और परिचित सज्जनोंसे ली है और कुछ रकम औषधालयकी रुक गई है इस हेतुसे औषध निर्माण और ग्रन्थ प्रकाशन कार्यमें बाधा पहुँच रही है। आर्थिक सुविधा न होनेसे कितने ही संशोधित ग्रन्थ और नूतन ग्रन्थ अप्रकाशित रह गये हैं। ऐसी अवस्थामें उदारचित धनिक १ वर्ष के लिये १०००) व ५००, या २५०-२५०) रुपये की रकम उधार देनेकी कृपा करेंगे, तो भी सरलतापूर्वक साहित्य सेवा हो सकेगी।

कालेडा बोगला
अजमेर
ता० १ ११ ४९

जनता जनार्दनका सेवक
कुंवर जसवंतसिंह
मन्त्री

ग्रन्थ-प्रकाशन और औषध विक्रय

इस संस्था की ओर से ग्रन्थों का प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवाभाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रखा गया है और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्य में कदाचित् किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ-प्रकाशन बन्द हो जाय, तो कोई भी धर्मार्थ संस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी प्रकार का विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध-प्रयोगों में से अभीतक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रखा और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोगविधि गुप्त रखने से उनका इच्छानुसार दस-बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करने में आयुर्वेद-साहित्य तथा देश की हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्ध में हमने अन्य फार्मेसियों का अनुकरण नहीं किया और न भविष्य में करेंगे। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणराय की है। वे यदि इसे निभाना चाहते हैं, तो इसके संरक्षकवर्ग (ट्रस्टियों) के हृदय में चिरस्थिरता और सत्यपालन में दृढ़ता प्रदान करेंगे ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल

व्यवस्थापक

प्रस्तावना

यस्यामौषध-रोग-निर्णयविधौ प्राच्यप्रतीच्याद्रिता—
सन्यस्ताश्च विचारणा सुभिषजा विज्ञानदा दृश्यते ।
आयुर्वेद विकाश्यमान निखिल-ग्रन्थेषु चूडामणी,
सोऽयं द्रव्य विवेचनाऽखिल जगत्कल्याय वो भूयताम् ॥

अनादि आयुर्वेद आर्ष ग्रन्थों में विज्ञान की जो प्रखर छटा सूत्ररूपेण उपलब्ध होती है; वह सर्वथा अपरिवर्त्तनशील अवस्था में आज भी ज्यों की त्यों अपने सिद्धान्तों की प्रचुरतम प्रतिभा से संसार को चकित करती है। हमारे त्रिकाल दर्शी महर्षियों ने अपनी आध्यात्मिक विज्ञान-ज्ञान प्रतिभा से यह आयुर्वेद सिद्धान्त भित्ति स्थिर की है, और प्राचीन तम काल में ही निर्णय कर दिया है कि, अमुक औषध में अमुक-अमुक रस-गुण-वीर्य विपाक-प्रभाव हैं। अमुक रोग इत्थं प्रकारेण अमुक दोष वैषम्य द्वारा प्रकट होता है।

कुछ काल से भौतिक विज्ञान का प्रारम्भ हुआ है। इस नव्य विज्ञान प्रणाली में अस्थिरता और परिवर्त्तनशीलता प्रतीत होती है। इसमें अनेक भेद हैं। इन सब में समय-समय पर परिवर्तन होता रहने की रूप रेखा खिंची है, और खिंचती जा रही है। यह नव्य विज्ञानवाद एक बार किसी एक नूतन औषध के विशिष्ट गुण धर्म का दुंदुभि घोष करता है, दूसरी बार वह उसी औषध को सामुहिक अथवा आंशिक रूप से हानिप्रद सिद्ध करता है। इतना होने पर भी यह विचारशैली विचारवान पुरुषों को सहायक होती है, इस हेतु से हम उसे आदरणीय समझते हैं। जिस तरह सर्प भयंकर होने पर भी उसके विष और मणि का सदुपयोग करने से लाभ ही होता है, उसी तरह चंचल विज्ञान से भी कुछ अंश में सहायता मिलती ही है।

महर्षियों का त्रिकालाबाध्य विज्ञान सिद्धान्त अति गम्भीर है परन्तु सूक्ष्म रूप होने से उसे साधारण बुद्धि प्राप्त नहीं कर सकती। अतएव मृदुल बुद्धि के समक्ष यह अपूर्णता द्योतक है। यह अपूर्णता। आध्यात्मिक ज्ञानशून्य समाज को अखरती है अतः उसे आधुनिक शिक्षा दीक्षा वालों के समक्ष मौन धारण करना पड़ता है।

कहते हर्ष होता है कि, इस अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये ही आनन्दकन्द सच्चिदानन्द रूप श्री कृष्णचन्द्र भगवान् ने अपनी आध्यात्मिक विचारणा तन्त्री की तान श्रीपूज्य स्वामीजी महाराज के अन्तस्तल में जाग्रत की जिससे स्वामीजी महाराज की प्रखर लेखनी ने 'औषध गुणधर्मविवेचन' नामक पुस्तक लिखकर संसार के सामने समर्पित की।

इस 'पुस्तक' में जो विषय वर्णन किया गया है, वह वास्तव में अत्युपयोगी, अत्यावश्यक और सामयिक ज्ञानानुकूल ही है। इस ग्रन्थ में औषध गुणधर्म विवेचन चरक आदि आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल है। आर्ष सिद्धान्तों को अक्षुण्ण और प्रधान रखते हुए आधुनिक एलोपैथी मतानुसार पद-पद पर, उसे सरलतया समझाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। अमुक औषधि शारीरिक अमुक स्थान में प्रवेश कर अमुक रीत्या अमुक अंग-प्रत्यंग पर अमुक गुणधर्म प्रकाशित करती है, इत्यादि विवेचन इस ग्रन्थ में जैसा स्पष्ट रूप से समझाया गया है, वैसा वर्तमान के किसी भी हिन्दी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। संक्षेप में लेखक ने औषध गुणधर्म और चिकित्सा सम्बन्धी तात्त्विक भेद सरलता पूर्वक सुबोध शैली द्वारा समझाने का सफल प्रयत्न किया है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि, यह ग्रन्थ चिकित्सा विज्ञान के रहस्य को न जानने वाले पाठकों के मानस मन्दिर में अवश्यमेव प्रकाशप्रापक सिद्ध होगा। जिन्होंने स्वामीजी महाराज लिखित 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' तथा 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है वे महानुभाव इस 'औषधगुणधर्म विवेचन' को पाकर स्वामी जी की लेखनी और ज्ञान की अपार प्रतिभा सम्पन्नता का पुनः अनुभव करेंगे और इससे लाभान्वित होंगे।

अजमेर
ता० १ ११ ४६ } रसवैद्य वैद्यरत्न
कविराज यशोधर शर्मा आयुर्वेदाचार्य.

औषधियां मिलनेके पते।

१ श्री० कविराज योगेन्द्रनाथ आयुर्वेदालंकार, धन्वन्तरि औषधालय, मदकोशाबाद, पानीपत (करनाल)
२ गाडिया स्टोर्स खेलापुर (अकोला)
३ श्री० शिवराम बापूजी पाटील, आयुर्वेदिक औषधालय, मलकापुर जि० बुलढाना
४ श्री० वैद्य रामशरणलाल सूरी, सूरी फार्मेसी, गंगापुर—जयपुर
५. श्री० शान्तिलाल एन० दवे ११७, खोजा मेमन स्ट्रीट बम्बई २
६ गोपाल स्टोर वर्धा सी० पी०
७ श्री० देवकृष्णजी राठी खामगांव-जोगांव (बुलढाना)
८. श्री० रामगोपालजी मूंदड़ा शहानूरबाजार (अकोला)
९ दत्तात्रिया मर्च अकोला
१० श्रीगणपतराम पूनमचंद पारख धारूर (चिखलदा)

प्रकाशित पुस्तकें

१ रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह प्रथमखण्ड, षष्ठ संस्करण चिकना कागज १८×२९ अठपेजी पृष्ठ संख्या ८००, छपाई सुन्दर, सजिल्दका मूल्य १०) अजिल्दका ७) रु० डाकखर्च ।।।=) व ।।।) पृथक।

यह ग्रन्थ कालेज और पाठशालामें पढ़नेवाले आयुर्वेदके विद्यार्थियों और वैद्योंके लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। ग्रन्थकी रचना सारगर्भित भाषामें की गई है। इस ग्रन्थ में भस्म, रसायन, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव अरिष्ट, पाक, अवलेह, अंजन, मलहम लेप आदिके सैकड़ों अनुभूत प्रयोग दिये गये हैं और गुण वर्णन और उपयोग विधिका वर्णन नव्य विज्ञानके अनुरूप विस्तारसे किया गया है।

२. चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम खण्ड द्वितीय संस्करण। १८×२२ अठपेजी पृष्ठ ८००। मूल्य सजिल्द का ९।।) रु० डाकखर्च ।।।=) पृथक्।

उक्त ग्रन्थोंमें आयुर्वेदिक और डाक्टरी, दोनों प्रकार से रोगोंका निदान दिया है। प्रत्येक रोगकी चिकित्साके प्रारम्भमें चिकित्सोपयोगी सूचनाएँ भली भांति समझाई गई हैं। जिससे साधारण बोधवाला वैद्य भी निर्भय होकर चिकित्सा करके लाभ उठा सकता है।

३ गावों में औषधरत्न प्रथम खण्ड १८×२३ अठपेजी पृष्ठ ३२०। सजिल्दका मूल्य ३) रु० और अजिल्दका २) रु०। इस पुस्तकमें अजवायन, आंवला, आक, आधीझाड़ा, कालामिर्च, कपूर, पीपल, पुनर्नवा आदि सामान्य औषधियां, जो गावोंमें सफलतापूर्वक मिल सकती हैं, उनका गुणधर्म और उपयोग वैज्ञानिक शैलीसे दर्शाया गया है। यह पुस्तक सब ग्रामवासी, मजदूर-गृहस्थ-विद्यार्थी और वैद्योंके लिये अति उपयोगी है।

४ रुग्णपरिचर्या२०×३० सोलहपेजी पृष्ठ सं० ५००। मूल्य ३।।) इस पुस्तकमें भिन्न भिन्न रोगोंसे पीड़ित रोगियोंकी परिचर्या किस तरह की जाये, यह समझाया गया है जिसको डाक्टर और कम्पाउन्डरोंने बहुत पसन्द किया है।

५. संक्षिप्त औषध परिचय २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ संख्या १२०। मूल्य ।।=) इस पुस्तकमें रसतन्त्रसारके भीतर आई हुई भस्म; रसायन आदि औषधियों-का गुणधर्म संक्षेपमें समझाया गया है। जिससे चिकित्सकको इस छोटी-सी पुस्तकसे बहुत सहायता मिल जाती है।

६ नेत्ररोग विज्ञान इस ग्रन्थके लेखक स्व०, डा० जादवजी हंसराज D O M S (London) हैं। जिन्होंने इस ग्रन्थमें अपना ४० वर्षका अनुभव

दर्शाया है । १८×२२ अठपेजी पृष्ठ संख्या ६५० । चित्र संख्या २४२ से अधिक । मूल्य सजिल्दका १५) रु० + डाकखर्च १) रु० । इस ग्रन्थमें आँखोंकी रचना, आँखोंके भिन्न-भिन्न अवयवोंका काम, नेत्ररोग, औषध—द्वारा चिकित्सा तथा शस्त्र चिकित्सा आदि सब बातें विस्तारसे अति सरल भाषामें समझायी गई हैं । संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि किसी भारतीय भाषामें इस प्रकारकी पुस्तक आजतक प्रकाशित नहीं हुई ।

७ सिद्ध परीक्षा पद्धति प्रथम खण्ड १८×२२ अठपेजी पृष्ठ संख्या ६५० मूल्य रु० ८) । इस ग्रन्थमें नाड़ीपरीक्षा तथा कफ, रक्त, मल, मूत्र, लेपन, आदि विविध प्रकारकी परीक्षाएं नूतन शैलीसे सरल भाषामें समझा समझा कर लिखी गई हैं । जो अभीतकके प्रकाशित आयुर्वेदके किसी भी ग्रन्थमें नहीं हैं ।

८ ज्वर चिकित्सा २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ संख्या १६८ इस पुस्तकमें सब प्रकारके बुखारोंके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि सरल भाषामें दिये गये हैं । वैद्य और ग्रामवासी, गृहस्थ सबकेलिये परम उपयोगी है । यह पुस्तक फरवरी ५० ई० के अन्तमें ग्राहकोंको भेज सकेंगे ।

९. गृह चिकित्सा २०×३० सोलह पेजी पृष्ठ संख्या ११६ । मूल्य केवल लागत मात्र ।) लेखक राज्यवैद्य-पंडित दुर्गाप्रसादजी शास्त्री इस पुस्तिकामें आयुर्वेदके अनुभूत प्रयोग जो सर्व सामान्य गृहस्थोंके लिये उपयोगी हैं, उनका दिग्दर्शन कराया गया है ।

॥ ॐ ॥

आतुरालय के लिये भवन निर्माणार्थ

निवेदन

श्रीमन्माननीय महोदय,

यह आपको भलीभांति विदित है कि, कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय तथा चिकित्सालय (Dispensary) द्वारा गत १९ वर्षों से जनता जनार्दन की सेवा सफलता पूर्वक करता आ रहा है। अपने उच्च उद्देश्य और सचाई के कारण इस संस्था की कीर्ति अजमेर-मेरवाड़ा और इसके सन्निकटस्थ रियासतों तक ही सीमित न रहकर हिन्दुस्तान के कोने कोने में प्रसारित हो गई है। इस संस्था के धर्मार्थ विभाग ने अपने विगत जीवन काल में लगभग ३॥ लाख गरीब लोगों की निःस्वार्थ सेवा की है। इसके अतिरिक्त उन रोगियों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने औषधियां मूल्य से लेकर या मगवा कर रोग से मुक्ति प्राप्त की है।

इस संस्था की अनेक विशेषताएं हैं, परन्तु सर्व प्रथम विशेषता यह है कि, यह एक ग्राम में स्थित है। यह प्रत्येक सुबोध व्यक्ति का पता है कि, आज भारत के सामने गांवों की कठिन समस्या उपस्थित है। हिन्दुस्तान की ८० प्रतिशत जन-संख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामवासियों को प्राकृतिक साधन सहज ही उपलब्ध होने पर भी शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार तथा यथोचित आर्थिक साधनों के अभाव से ग्रामों की हालत दयनीय ही नहीं, अपितु चिंताजनक भी है। नगरों में अनेक बड़े बड़े अस्पताल हैं, परन्तु ग्रामीण जनता की आवश्यकता की पूर्ति की इनसे आशा करना नितान्त भूल होगी। ग्रामीण जनता के पास न तो इतना पैसा है और न उतनी बुद्धि या परिचय ही है कि, नगरों के, अस्पतालों से सहायता प्राप्त कर सके।

इस संस्था की दूसरी विशेषता आयुर्वेद की साहित्य सेवा है। इस संस्था ने अपने अल्प जीवन में ८ १० ग्रन्थ प्रकाशित करके जगत् को प्रामाणिक साहित्य भेंट किया है। जो भारत के कोने कोने में पहुँची हैं। ये पुस्तकें आयुर्वेद महारथी, सामान्य वैद्य, विद्यार्थी और सामान्य बोधवाले आयुर्वेदप्रेमी सज्जन, सबके लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस हेतु से विज्ञापन के लिये एक पैसा भी खर्च किये बिना आज इस संस्था का नाम सम्पूर्ण भारत में आदर की दृष्टि से लिया जाता है।

इस संस्था में एक भी प्रयोग को गुप्त रखकर पेटेण्ट नहीं कराया है, क्योंकि ऐसा करना इसके सिद्धान्त के विरुद्ध है। समस्त अनुभवों को आयुर्वेद की सेवा में सादर समर्पित कर दिया गया है।

काफी समय से अनेक स्थानों से चिकित्सार्थ आनेवाले रोगियों की कठिनाइयों को देखकर आतुरालय का अभाव खलता था। इस अभाव की पूर्ति के लिये संस्था के ट्रस्टियों ने आतुरालय बनवाने का निश्चय किया क्योंकि, चिकित्सार्थ दूर दूर से रोगी आते रहते हैं पर रहने के लिये स्थान की असुविधा के कारण उनको अति कष्ट होता है, फलतः इस स्थान पर एक आतुरालय (Hospital) की परमावश्यकता थी। गत अक्तूबर १९४५ में अजमेर मेरवाड़ा के चीफ् कमिश्नर साहब यहाँ पधारे तो उन्होंने भी यहाँ पर एक आतुरालय की आवश्यकता का अनुभव कर आतुरालय भवन बनवा देने का आश्वासन दिया तथा ७-११-४५ को उसका शिलान्यास भी स्वकरकमलों से कर, सरकार (Post war Recon struction Fund) से ७००००) रुपया दिलवाने का वचन दिया। इस बार कुल खर्च लगभग एक लाख का अनुमान होने पर, उसमें से १०००) चन्दा वसूल किया गया और निर्माण सामग्री खरीद की गई एवं चूना आदि का ठेका दे दिया गया, जिसमें उक्त चन्दे की रकम खर्च हो जाने पर ऋण लेना पड़ा। अभी काम अधूरा ही था कि पाकिस्तान का जन्म हो गया, अतः उक्त पोस्ट वार फंडवाली ७००००) की रकम शरणार्थियों में वितरित होने के परिणामस्वरूप इस संस्था पर उस ७००००) के व्यय का भार पड़ गया है। फलतः पुनः चन्दे के लिये घूमना पड़ा, जिसमें से धनिकों से अबतक १५०००) की रकम प्राप्त हो सकी। शेष ५५०००) की आवश्यकता है।

आतुरालय के चंदे की उपाधि आने के पश्चात् आयुर्वेद साहित्य की सेवा अर्थात् नूतन ग्रन्थ निर्माणकार्य लगभग बन्द हो गया है। छापन का समय पीछे और खिसकने में आ रहा है। इस प्रकार पुस्तक प्रकाशन और रसायन शाला के कार्य में बड़ी भारी बाधा उपस्थित हो गई है। मेरी यह हार्दिक इच्छा रही कि, औषधालय के संचालन का आर्थिक भार जनता पर न डाला जाय। अब तक इस संस्था का व्यय प्रकाशित ग्रन्थों तथा औषध बिक्री से ही चलाया गया है और भविष्य में भी औषधालय के संचालन का भार जनता पर नहीं डाला जायगा। केवल आतुरालय भवन के निर्माण प्रसंग में जनता का सहयोग आवश्यक है। यह प्रसंग पूरा होने में जितनी देर होगी उतनी ही हानि आयुर्वेद साहित्य को पहुँचेगी और इस कार्य की पूर्ति के लिये उदार दानी और इस संस्था के हितचिन्तक सज्जनों से नम्र निवेदन है कि, वे इस सत्कार्य को आगे चलाने के लिये जितनी हो सके उतनी अधिक सहायता प्रदान करें और परिचितों को भी प्रेरणा करने की कृपा करें।

जो रकम भेजनी हो वह चेक, ड्राफ्ट, हुंडी, मनीआर्डर या इन्श्योर्ड रजिस्टर लेटर द्वारा भेजने की कृपा करें।

ता० १।५।४९

कालेड़ा-बोगला (अजमेर)

जनता-जनार्दन का सेवक—
(स्वामी) कृष्णानन्द
संस्थापक
कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
कालेड़ा-बोगला (अजमेर)

ग्रन्थ प्रकाशन और औषध विक्रय

इस संस्था की ओरसे ग्रन्थोंका प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवा भाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रक्खा गया है—और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थोंका अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्य में कदाच किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन बन्द हो जाय, तो कोई भी धर्मार्थ संस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी भी प्रकारका विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध प्रयोगों में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्खा, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोग विधि गुप्त रखने से उनका इच्छानुसार दस बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करने में आयुर्वेद साहित्य को और देश को हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्ध में हमने अन्य फार्मेसियोंका अनुकरण नहीं किया और न भविष्य में करेंगे। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणराय की है। वे यदि इसे निभाना चाहते हैं, तो इसके संरक्षक वर्ग (ट्रस्टियों) के हृदय में विशालता और सत्य पालन में दृढ़ता प्रदान करेंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल (व्यवस्थापक)

सिद्ध परीक्षा प्रदीप। (प्रथम खण्ड)

(ले०—राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल)

इस ग्रन्थ में क्रियात्मक रोग-निदानका सविस्तार वर्णन किया है। प्रारम्भ में प्रश्न-परीक्षा और रोगीकी सामान्य दशा तथा आकृति का विस्तृत वर्णन करने के

पश्चात् धरणानुसार परीक्षा लिखी है। ज्ञानेन्द्रियसंस्था, उदर, वमन, मल, आहार, फुफ्फुससंस्था, कफ, रक्तवाहकसंस्था, रक्त, मूत्र और त्वचा आदिकी परीक्षा का विस्तृत वर्णन है। ग्रन्थ Clinical Methods आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। अतः आशा है कि, यह ग्रन्थ आयुर्वेदके विद्यार्थी तथा चिकित्सकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

यह चिकित्सातत्त्वप्रदीप के प्रकरणों में छप रहा है। सप्टेम्बर के अन्त तक छप जानेकी आशा है। साइज १८×२२ अठपेजी, पृष्ठ संख्या ६०० के लगभग है। मू० ६)

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह॥

(संशोधित और परिवर्धित, पंचम संस्करण)

इस ग्रन्थमें भस्म, कूपीपक्व रसायन, खरलीय रसायन पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, पाक अवलेह, घृत, तैल अञ्जन, लेप, मलहम आदि सब प्रकारकी औषधियोंके सैकड़ों बारके अनुभूत प्रयोग दिल खोलकर लिख दिये गये हैं। साथ ही औषधि बनानेकी विधि भी खूब समझाकर लिखी गई, एवं औषधियोंका गुण विवेचन भी विस्तारपूर्वक किया गया है, अन्तमें रोगानुसार औषधि-सूचीमें उपरस भेद और धातादि दोष भेदसे औषध भेद दिखलाये गये हैं। मू० सजिल्द १०) अजिल्द ७)

गाँवों में औषध रत्न—(प्रथम खण्ड)—यह पूज्य स्वामीजी महाराज द्वारा लिखित—गावों में सुलभता से प्राप्त होनेवाली, वनौषधियों का अपूर्व संग्रह है। प्रत्येक औषधि का गुण धर्म विवेचन इस प्रकार किया गया है कि साधारण हिन्दी का ज्ञाता भी उससे पूरा पूरा लाभ उठा सके और रोग नष्ट कर सकने में समर्थ हो सके। अतः इस पुस्तक को 'घर का वैद्य' कहना अत्युक्ति न होगी। मू० सजिल्द का ३) तथा अजिल्द का २) है।

ज्वर विज्ञान—[लेखक—राजवैद्य मोहनलाल अग्रवाल] निस्सहाय ग्रामीण जनता, जिसके पास न इतना समय है न पैसा कि, वह वर्तमान के डाक्टर और वैद्यों से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त कर सके। अतः उनके हितार्थ ही "गावों में औषधरत्न" प्रकाशित किया गया था। अब यह द्वितीय पुस्तिका, जिसमें भेदाभेद सहित ज्वर के सर्वांग पूर्ण वर्णन के साथ साथ ग्रामों में सुलभ चिकित्सा का वर्णन है, तैयार की गई है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

प्राप्ति स्थान। मैनेजर कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेड़ा-बोगला वाया नसीराबाद जि० अजमेर।

बनारस के एवं बनारस में समीप रहनेवाले सज्जन, उक्त पुस्तकें श्रीमदनगोपाल शर्मा C/o सम्मार्गप्रेस, (टाउनहाल के पास) बनारस से भी प्राप्तकर सकते हैं।

अनुक्रमणिका

औषध गुणविवेचन

विषय	पृष्ठाङ्क

चरक-सुश्रुत कथित गण व कषाय

शारीरिक यन्त्र

द्रव्य सूची

शास्त्रोक्त आयुर्वैदिक औषधियों, पुस्तकों

तथा

मुफ्त वैद्यकीय सलाह

पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराजद्वारा आयुर्वेद की सेवा से सम्पूर्ण वैद्य समाज भली भाँति परिचित है। पूज्य स्वामीजी एक आदर्श सन्यासी हैं। आपने सन् १९२० से १९२६ तक जगत् विख्यात भिक्षु अखण्डानन्दजी, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के साथ हिन्दु धर्म, संस्कृति, और समाज की उन्नति के लिये समुन्नत साहित्य भेंट करके जनताकी सेवा की। अब सन १९३० से अजमेर-मेरवाड़ा के अन्तर्गत कालेडा-बोगला ग्राममें आयुर्वेदकी सेवा कर रहे हैं। यह आपकी सेवा परायणता, निःस्वार्थ भाव और आयुर्वेद के साथ प्रेम ही का फल है, कि आज, अपनी सत्यता, साहित्य सेवा, और विशुद्ध औषधियों की उपलब्धीके कारण सर्वत्र इस संस्थाका नाम आदरके साथ लिया जाता है। आपने इस संस्थाद्वारा प्रकाशित होने-वाले साहित्य में अर्वाचीन और प्राचीन मतोंका तुलनात्मक दृष्टिसे सविस्तार विवेचन किया है। एवं अनेक अनुभूत प्रयोगों की बनावट, उपयोग तथा अनुपान आदिको सरल हिन्दी भाषामें लिखा है। सैंकड़ों वर्षोंके अनुभूत प्रयोग बिना किसी छिपावके आयुर्वेदोन्नतिकी भावना से वैद्य समाज के सामने प्रगट कर दिये हैं। इसी कारणसे इस पुस्तक के ६ संस्करण इतने अल्प समयमें ही प्रकाशित हो चुके हैं।

संस्थामें किसी व्यक्ति विशेषका स्वार्थ निहित नहीं है। एवं इसका संचालन प्रान्तके ११ सुविख्यात प्रतिष्ठित सज्जनोंके रजिस्टर्ड ट्रस्ट मण्डल द्वारा सुसम्पादित होता है।

संस्थाकी रसायन शालामें औषधि निर्माणकी पवित्रता और विशुद्धता, पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रत्येक प्रयोग संस्थाद्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंमें वर्णित विधिके अनुसार ही बनाया जाता है।

॥ ॐ ॥

धन्वन्तरये नमः

औषध-गुण-धर्मविवेचन

आयुर्वेद प्रयोजन

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

जिस शास्त्र में हितमय (सदाचार आदि गुणयुक्त) आयु, अहित मय (दुराचार आदि दोषयुक्त) आयु, सुखमय (आरोग्य) आयु, दुःखमय (व्याधियुक्त) आयु, आयु के लिये हितकर और अहितकर द्रव्य (आहार औषध), गुण और कर्म, आयुप्रमाण तथा आयु का लक्षण द्वारा वर्णन हो, उस शास्त्र को 'आयुर्वेद' कहते हैं।

इस तरह आयुर्वेद से आयु (जीवन) सम्बन्धी पूर्ण बोध मिलता है। अतः इसे जीवनविज्ञान (Science of life) ही कहा जायगा। यह शास्त्र अनादि और शाश्वत है। इस आयुर्वेद का प्रयोजन "स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च" अर्थात् मुख्य प्रयोजन स्वस्थ मनुष्यके स्वास्थ्यका संरक्षण और गौण प्रयोजन आतुरोंके उत्पन्न रोगोंको नष्ट कर पुनः स्वास्थ्य की प्राप्ति कराना है।

इस अनन्त पार (सीमारहित) आयुर्वेद को भगवान् आत्रेय ने "हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् ।" इस वचन से निम्नानुसार त्रिसूत्रात्मक (त्रिस्कंधात्मक) कहा है।

१ रोग हेतु (Causes-Etiology)

२ स्वस्थता और रोग के लक्षण चिन्ह (Symptoms & Signs)

३ औषध ज्ञान अर्थात् स्वस्थ रहने के लिये औषध, पथ्य, चिकित्सा आदि (Treatment)

'धारणाद् धातवः ।', 'दूषणस्वभावाद् दोषाः ।' और 'मलिनी-करणान् मलाः' । इस व्युत्पत्तिके अनुसार आयुर्वेदमें वात-पित्त-कफ (त्रिधातु-त्रिदोष) की मीमांसाके आधार पर जीवन विज्ञान लिखा गया है ।

आयुर्वेदके सिद्धान्तानुसार ये त्रिधातु ही संसार और शरीर के धारण करने वाले हैं । इस सम्बन्धमें भगवान् धन्वन्तरिजीने लिखा है कि :—

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥
(सु० सू० अ० २१-८)

विसर्ग (पोषण), आदान (शोषण), विक्षेप (उत्क्षेपण), इन त्रिविध क्रिया द्वारा सोम, सूर्य और वायु जिस तरह जगत्का धारण करते हैं, उसी तरह इन्हीं क्रियाओं द्वारा कफ, पित्त और वात देहको धारण करते हैं ।

ये त्रिधातु सूक्ष्मातिसूक्ष्म और स्थूल भेदसे त्रिविध हैं । ये देहमें सर्वव्यापी होनेसे प्रत्येक अवयवके घटक और जीवित परमाणुओंके अन्दर बाहर व्याप्त हैं । ये वात, पित्त, कफ जीवित देहमें प्रति दिन पञ्चभूतात्मक भोजनके परिपाकसे उत्पन्न होते हैं । अर्थात् सात्म्य भोजनसे धातु रूप और असात्म्य भोजनसे दोष रूप उत्पन्न होते हैं । इनसे रक्त, मांस आदि पोष्य धातुओंका पोषण यथा नियम होता रहता है और इसी हेतुसे इनसे शुक्र और ओज पर्यन्त धातुपोषण क्रम क्रमशः चलता रहता है । वात, पित्त, कफ सर्व शरीरमें व्यापक होते हुए भी, इन तीनों के कार्य पृथक्-पृथक् स्थानसे अधिकतया होते हैं । अतः इन अधिक कार्यवाले अवयवोंको ही उनके मुख्य स्थान कहे हैं ।

इन वात, पित्त, कफके जो स्थूल रूप हैं, वे क्रिया द्वारा प्रत्यक्ष हैं । सूक्ष्म स्वरूप यन्त्र आदि साधनों द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं और सूक्ष्मतम स्वरूप केवल अनुमानगम्य माने गये हैं किन्तु ये सूक्ष्मतम स्वरूप ही विशेष प्रभावोत्पादक हैं ।

इन त्रिधातुओं की साम्यावस्था नष्ट होकर वैषम्य होने पर व्याधि की उत्पत्ति होती है । (रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।) प्रारम्भमें बहुधा सूक्ष्मतम स्वरूपमें धातुवैषम्यकी प्रगति होती है । फिर उससे रस, रक्त आदि स्थूल धातुओंमें जो विकृत अवस्था उत्पन्न होती हैं, वे दोष कहलाते हैं । जब वे रूपान्तरित होकर अधिक हानिकर रूप धारण करते हैं, तब वे मल कहलाते हैं और वे ही विविध रोगसृष्टि का सर्जन करते हैं (दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्) इस तरह आयुर्वेदने त्रिधातु, त्रिदोष और मलमें भेद कहा है ।

इस शरीर में त्रिधातु-त्रिदोष ही स्वास्थ्यका संरक्षण करते हैं, और ये विविध व्यापार होनेमें सहायक होते हैं । यह कार्य इन धातुओंमें रहे हुए विविध गुणों (रूक्ष, शीत, तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध आदि) के हेतुसे होता है । इन गुणोंमें वैषम्य

होने पर ही रोग उत्पन्न होता है। परन्तु यह वैषम्य तीनों दोषों तथा सब गुणोंमें एक साथ नहीं होता। एक या एकाधिक गुणोंमें होता है। इस स्थितिमें होनेवाले गुणोंकी वृद्धि-क्षय (अधिकता या न्यूनता) की प्रतीति होती है। फिर इस दोषवैषम्यको दूर कर धातुसाम्य संस्थापित करनेका औषध द्वारा प्रयत्न किया जाता है। बढ़े हुए द्रव्य के दुष्ट गुणोंका नाश करना, और घटे हुए दोषोंके गुणोंको बढ़ाना—अर्थात् दोषोंके लक्षणोंका उपशम रूप धातुसाम्य स्थापित करने के लिये अविकृत त्रिधातु (जीवनीय शक्ति) की सहायता करना, यह औषधिका मुख्य कार्य है।

शरीर जन्मसे विविध व्यापार सतत होते रहनेसे त्रिधातु-विभागमें ह्रास उत्पन्न और क्षय होते रहते हैं। इस न्यूनताकी पूर्ति अन्न रसादि द्वारा होती है। इससे विदित होता है कि, जिस तरह यह शरीर वात, पित्त, कफ (त्रिधातु) से बना है, उस तरह इस संसारके समस्त पदार्थ भी इन धातुओंसे ही उत्पन्न हुए हैं। एवं सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणात्मक त्रिदोष द्वारा ही सकल प्राणी एवं सृष्टि-क्रमका संचालन होता है। इस संसारके मूलतत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच महाभूत कहे हैं। इन पञ्चभूतात्मक अन्नपान आदि द्रव्योंका देहमें जो रूपान्तर होता है और जो देहका धारण करते हैं, उनका सरलतम समझानेके लिये त्रिदोष कल्पना (लोगोंकी बुद्धिके अनुकूल) करके कफ, पित्त, वात कहा गया है। अतः ये त्रिधातु पञ्चभूतसे पृथक् नहीं हैं।

इन पञ्च महाभूतोंसे (चेतनाधिष्ठित महाभूतोंसे) २ प्रकारके (चेतन-अचेतन) द्रव्योंकी सृष्टि हुई है। इन्द्रिय युक्तको चेतन तथा निरिन्द्रियको अचेतन कहा है। मनुष्यादि प्राणियोंके शरीर और वनस्पति सेन्द्रिय द्रव्य (चेतन) तथा इनसे इतर खनिज-धातु उपधातु आदि निरिन्द्रिय (अचेतन) हैं।

पुनः सम्यग्ज्ञानकी सुविधाके लिये इन द्रव्योंके ३ वर्ग बनाये हैं। १—जङ्गम (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) २—औद्भिद (वनस्पति) ३—पार्थिव (पृथ्वीसे उत्पन्न)।

जङ्गम द्रव्यके ४ प्रकार हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज। जो प्राणी जरायु से आवृत होकर उत्पन्न होते हैं वे जरायुज जैसे—मनुष्य, गौ, बैल आदि, अण्डेमेंसे उत्पन्न होनेवाले अण्डज—पक्षी, सर्प आदि। स्वेदसे उत्पन्न होनेवाले स्वेदज—जूँ आदि और पृथ्वीको भेदकर निकलें वे उद्भिज्ज कहलाते हैं—जैसे बीरबहूटी, मेंढक आदि।

इन जङ्गमद्रव्योंमें अनेक जन्तुओंका मांस, चर्म, मज्जा, पित्त, और मूत्र का उपयोग विविध रोग और चिकित्सामें होता है। इन सबका इतर उल्लेख किया गया है।

औद्भिद द्रव्यके ४ प्रकार हैं। १—वनस्पति (बिना पुष्प फल, गूलर आदि), २—वृक्ष (पुष्प और फलयुक्त) इन वनस्पतियोंको सामान्य ...

दी है। ३—ओषधि (फलके पकनेपर स्वयं सूखकर गिर पड़े जैसे—अपामार्ग तिल, गेहूं आदि), ४—वीरुध (प्रतान जिनमें निकलते हों, लता और गुल्मोंका अन्तर्भाव इसी प्रकार में किया है।) इसका विशेष विचार 'वनौषधसंग्रह' ग्रन्थ में किया है जो सुविधापर छपाया जायगा।

पार्थिव द्रव्योंमें सुवर्ण आदि धातु उपधातु, पारद, विविध पत्थर, लवण गेरू सोमल, हरताल आदि विष, विविध रत्न उपरत्न और शिलाजतु आदि का समावेश होता है।

इनमेंसे कतिपय द्रव्य मानव शरीरके लिये सात्म्य होते हैं, और कतिपय नहीं होते। जो सात्म्य होते हैं, उनसे देहका पोषण होता है। परन्तु उनके भी प्रमाणाधिक्य व्यवहार या प्रकृति, आयु, सत्व, देश, काल, बल, संयोग आदिके भेदसे (विरुद्ध उपयोगसे) इष्टके स्थान पर अनिष्ट परिणाम हो जाता है। अर्थात् मात्रा अधिक होने या प्रकृति-विरुद्ध, ऋतु विरुद्ध, काल विरुद्ध होने इत्यादि कारणोंसे त्रिधातुकी साम्यावस्था भंग होकर विविध व्याधियों की उत्पत्ति होती है। परन्तु इनके नियार गाय परमात्माने संसारके पदार्थोंमें विभिन्न रस-गुणोंका संयोग कराया है, अर्थात् दूसरी ओर निसर्गने समस्त पदार्थोंमें ६ रस और २० गुणोंकी सृष्टि की है। ६ रस और गुण सब औषधियोंमें असम भिन्न-भिन्न जातिमें भिन्न भिन्न रूप से रहते हैं। एवं अनेक औषधियोंमें रसकी समानता होनेपर भी गुणमें विषमता होती है। जैसे सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग आदि औषधियाँ सब चरपरी हैं, किन्तु इन सबमें पृथक्-पृथक् गुण रहते हैं।

इन औषधियोंके गुण और परिणाम समझानेके लिये आचार्योंने सब औषधियोंके ५ वर्ग (पदार्थ-कर्म-समूह) दिखाये हैं। (१) रस, (२) गुण, (३) वीर्य, (४) विपाक, और (५) प्रभाव।

(१) रस।

औषधि जिह्वा पर डालनेसे स्वादद्वारा जिन गुणोंका बोध होता है, उनको

* १ रसनार्थो रस। (चरक)
  २ रसनेन्द्रिय ग्राह्यो योऽर्थः स रसः। (चक्रपाणिदत्त)
  ३ रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्तिगुणत्वावान्तरजातिमत्वं रसत्वम्।

यदि नैयायिकोंकी परिभाषाके अनुसार विचार किया जाय, तो पहिले और दूसरे सूत्रमें कहे हुए लक्षणों का रसाभाव में प्रवेश हो जाने से अतिव्याप्ति दोष और अतीन्द्रिय रसमें प्रवेश न होनेसे अव्याप्ति दोष भी होता है। इस हेतुसे रसका लक्षण शिवदाससेनने पृथक्-रीतिसे अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असम्भव, तीनों दोषोंसे रहित शुद्ध लिखा है।

१ मधुर रस—पृथ्वी, जल।	४ तिक्त रस—वायु, आकाश।
२ अम्ल रस—पृथ्वी, अग्नि।	५. कटु रस—वायु अग्नि।
३ लवण रस—जल, अग्नि।	६ कषाय रस—पृथ्वी, वायु।

इन सबमें दो दो भूत प्रधान और शेष भूत गौण हैं। यथार्थमें सर्व रसोंके भीतर पाँचों भूत रहते हैं। गौण भूत सूक्ष्म भाव से रहने के हेतुसे उसका स्पष्ट अनुभव नहीं होता।

किसी किसी द्रव्यमें अवस्थाभेदसे रसभेदकी प्रतीति होती है। जैसे आम्र प्रथमावस्थामें कषाय रसयुक्त, द्वितीयावस्थामें अम्ल रसयुक्त और तृतीयावस्थामें मधुर रस युक्त बन जाता है। मधुरता आनेमें पहिलेके रसोंका रूपान्तर होता है और कुछ अंश में पहिलेका रस भी शेष रह जाता है। उसका अनुभव पृथक्करण द्वारा हो सकता है। इस प्रकार रसको अव्यक्त रस संज्ञा दी है।

मधुर रस।

मधुर रस (Sweet) कफवर्धक, वात-पित्त नाशक, शीतल और पौष्टिक है। यह रस शरीर और मनमें प्रसन्नता लाता है। संतोष देता है। तृप्ति कराता है। प्राणोंको धारण करता है। मुखके भीतर श्लेष्मा या चिपचिपे रसका आच्छादन करता तथा श्लेष्म धातुकी वृद्धि कराता है। योग्य पचन होनेपर देहको मृदु बनाता है, पुष्ट करता है तथा वीर्य की वृद्धि कराता है।

चरक संहिताकार ने लिखा है कि, मधुर रस शरीर को सात्म्य होनेपर रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओज, इन सबको पुष्ट बनाता है और आयु बढ़ाता है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मनका प्रसादन करता है। बल, वर्ण की वृद्धि कराता है। पित्तप्रकोप, विष, रुद्ध वायु और तृषाका शमन कराता है। त्वचा, केश, कण्ठ (आवाज) को सुन्दर बनाता है। यह रस प्रतिवर्धक जीवन शक्ति वर्धक, तृप्तिकर, बृंहण, देहको दृढ बनानेवाला, क्षीणता नाशक, क्षत संधानक (उर:क्षतको दूर करनेवाला), नासिका, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा, इन सबको सुख देनेवाला, दाह और मूर्छाका शामक, भौंरें और चिऊँटियों को अति प्रिय, स्निग्ध, शीतल और गुरु है।

यदि इसका सेवन अत्यधिक किया जाय, तो स्थूलता, मांसपेशियोंमें मृदुता, आलस्य, अति निद्रा, देहमें भारीपन, भोजन करनेमें अनिच्छा, अग्निमांद्य, मुख और कण्ठमें मांसकी अतिवृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक (विसूचिका भेद), शीतज्वर, आनाह (मलावरोध और उदरवातका अवरोध), मुँहमें मीठापन, वान्ति, संज्ञानाश (बेहोशी), आवाजमें भारीपन, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, कण्ठशोथ, वस्ति, धमनी (वातनाड़ियाँ) और ग्रन्थियों पर श्लेष्माका आच्छादन,

'रस' कहा है। कचित् यह रसज्ञान जिह्वासे नहीं होता क्योंकि, सब द्रव्य द्रवावस्था (Liquid state) को प्राप्त नहीं होते, जो द्रव्य जलमें अद्राव्य (Insoluble) हों उनका जिह्वा स्पर्श होनेपर भी रसप्रतीति नहीं होती। उन औषधियोंके परिणामके आधारसे रसका निश्चय किया जाता है।* जैसे सुवर्ण, रौप्य, लोह, अभ्रक आदि धातु उपधातुओंमें जो रस (शास्त्र-कथित रस) रहते हैं, उनका बोध जिह्वा द्वारा नहीं हो सकता। इन रसोंका ज्ञान मस्तिष्क, हृदय, वात वाहिनियाँ, रक्त, मांस धस्या आदि पर विशेष कार्य होनेसे उपलब्ध होता है।

इस रसके कार्यकी प्रतीति औषध या भोजनका पचन (रूपान्तर वियोजन) होने पर होती है। यह रस सुवर्ण आदि धातुओंमें मिश्र, मिश्री आदिके समान ही रहता है परन्तु उन धातुस्थ रसोंका वियोजन होनेमें अधिक काल लगता है। अतः शीघ्र बोध नहीं हो सकता।

संसारकी समस्त औषधियोंमें रहने वाले रस ६ प्रकारके हैं। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त (कड़ुवा), कटु (चरपरा) और कषाय।+ ये सब रस न्यूनाधिक मात्रामें सम्मिलित रहते हैं। इनमेंसे जो रस जिस द्रव्यमें विशेष परिमाणमें हो, उसका निर्देश किया जाता है। प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि —

> द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोप्येकदोषजः।
> योऽधिकस्तेन निर्देशः क्रियते रसदोषयोः॥

यह संसार पाँच भूतोंमेंसे बना है। इस हेतुसे संसारके किसी भी द्रव्य (औषधि) में केवल एक ही रस हो, ऐसा नहीं है। सब रस मिले हुए ही रहते हैं। एवं कोई भी रोग वात, पित्त, कफमेंसे किसी एक ही दोष से उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं है। जो रस या दोष अधिकांशमें हो, उसका निर्देश किया जाता है। इन षड् रसों में बहुधा निम्नानुसार गुणों की प्रधानता रहती है।

सब द्रव्यपञ्च महाभूतात्मक होनेसे ६ रस भी इन भूतोंके ही गुण या रूपान्तर हैं। भूतों के विविध प्रकारके संमिलनसे रसभेद हो जाता है। इन रसोंमें प्रधानता निम्नानुसार रहती है।

+ आयुर्वेदने रसके ६ प्रकार माने हैं, जो सामान्यतः अनुभवमें आते हैं। आधुनिक इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रियों (Physiologists) ने मधुर अम्ल, लवण और तिक्त, इन चार रसोंको मुख्य माना है। उनके मतानुसार कटु और कषाय गौण रस हैं। मुख्य रसों का असर जिह्वा पर स्थित स्वादाङ्कुर (Tastebuds) और स्वादग्राही नाड़ी तन्तुओंपर होता है। फिर हमें स्वादका बोध होता है। कषाय और कटुरसका प्रभाव स्वादग्राही नाड़ियाके अतिरिक्त संवेदना नाड़ियोंकि (Sensory nerves) के ऊपर भी होता है। इस हेतुसे उनको गौण मानते हैं।

१ मधुर रस—पृथ्वी, जल। ४ तिक्त रस—वायु, आकाश।
२ अम्ल रस—पृथ्वी, अग्नि। ५. कटु रस—वायु अग्नि।
३ लवण रस—जल, अग्नि। ६ कषाय रस—पृथ्वी, वायु।

इन सबमें दो दो भूत प्रधान और शेष भूत गौण हैं। यथार्थमें सर्व रसोंके भीतर पाँचों भूत रहते हैं। गौण भूत सूक्ष्म भाव से रहने के हेतुसे उसका स्पष्ट अनुभव नहीं होता।

किसी किसी द्रव्यमें अवस्थाभेदसे रसभेदकी प्रतीति होती है। जैसे आम्र प्रथमावस्थामें कषाय रसयुक्त, द्वितीयावस्थामें अम्ल रसयुक्त और तृतीयावस्थामें मधुर रस युक्त बन जाता है। मधुरता आनेमें पहिलेके रसोंका रूपान्तर होता है और कुछ अंश में पहिलेका रस भी शेष रह जाता है। उसका अनुभव पृथक्करण द्वारा हो सकता है। इस अदृश्य रसको अव्यक्त रस संज्ञादी है।

मधुर रस।

मधुर रस (Sweet) कफवर्द्धक, वात-पित्त नाशक, शीतल और पौष्टिक है। यह रस शरीर और मनमें प्रसन्नता लाता है। संतोष देता है। तृप्ति कराता है। प्राणोंको धारण करता है। मुखके भीतर श्लेष्मा या चिपचिपे रसका आस्वादन करता तथा श्लेष्म धातुकी वृद्धि कराता है। योग्य पचन होनेपर देहको मृदु बनाता है, पुष्ट करता है तथा वीर्य की वृद्धि कराता है।

चरक संहिताकार ने लिखा है कि मधुर रस शरीर को सात्म्य होनेपर रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओज, इन सबको पुष्ट बनाता है और आयु बढ़ाता है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मनका प्रसादन करता है। बल, वर्ण की वृद्धि कराता है। पित्तप्रकोप, विष, दुष्ट वायु और तृषाका शमन कराता है। त्वचा, केश, कण्ठ (आवाज) को सुन्दर बनाता है। यह रस अंग विवर्द्धक, जीवन शक्ति वर्धक, तृप्तिकर, बृंहण, देहको दृढ़ बनानेवाला, क्षीणता नाशक, व्रण संधानक (उरःक्षतको दूर करनेवाला), नासिका, मुख, कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा, इन सबको सुख देनेवाला, दाह और मूर्च्छाका शामक, भौंरें और चिऊँटियों-का अति प्रिय, स्निग्ध, शीतल और गुरु है।

यदि इसका सेवन अत्यधिक किया जाय, तो स्थूलता, मांसपेशियोंमें मृदुता, आलस्य, अति निद्रा, देहमें भारीपन, भोजन करनेमें अनिच्छा, अग्निमांद्य, मुख और कण्ठके मांसकी अतिवृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक (विषूचिका भेद), शीत-ज्वर, आनाह (मलावरोध और उदरवातका अवरोध), मुँहमें मीठापन, वान्ति, संज्ञानाश (बेहोशी), आवाजमें भारीपन, गलगण्ड, गण्डमाला, श्लीपद, कण्ठशोथ, बस्ति, धमनी (वातनाड़ियाँ) और ग्रन्थियों पर श्लेष्माका आच्छादन,

विविध नेत्ररोग, अभिष्यन्द (मुख, नाक, नेत्र आदि से स्राव होना) आदि कफप्रधान रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

अष्टाङ्गसंग्रहकारने अतियोग जन्य हानिके सम्बन्धमें लिखा है कि :—

> एवंगुणोऽपि स सदाऽत्युपयुज्यमान
> स्थौल्याग्निसाद-गुरुतालसकाति निद्रा।
> श्वास-प्रमेह - गलरोग विसंज्ञताऽस्य-
> माधुर्य खीपन गलार्बुद - गण्डमाला ॥
> छर्द्यर्द मूर्धरुकास - पीनस कृमीन्।
> श्लीपद ज्वरोदर ष्ठीवनानि चावहेत ॥

सर्वदा मधुर रसका अति सेवन करनेपर स्थूलता, अग्निमांद्य, देहमें भारीपन, अलसता, अतिनिद्रा, श्वास, प्रमेह, गलरोग, बेहोशी, मुँहमें मीठापन, नेत्रार्बुद, गलार्बुद, गण्डमाला, वमन, उदर्द (शीतपित्त), शिरोरोग, कास, पीनस, उदरकृमि, श्लीपद, ज्वर, उदररोग, मुँहमें चिपचिपे थूक की वृद्धि आदि विकारों की संप्राप्ति हो जाती है।

इस रसका विपाक मधुर और वीर्य शीत है। पचनमें भारी है, स्निग्ध, शीतल, गुरु, मन्द (शमनकारी) पिच्छिल और स्थिर गुणकी वृद्धि कराता है। पित्त और वातको शमन करनेवाला है किन्तु शीतवीर्य होने से पित्तयुक्त वातके समान केवल वात प्रकोपकर उतना मात्र कायकर नहीं होता किन्तु वात नाड़ियों तथा वात केन्द्र आदि को शान्त और सबल भी बनाता है। इस तरह रस, रक्त, मांस आदि धातुओंको पुष्ट बनाता है तथा मलमूत्रकी प्रवृत्तिमें भी सहायक बनता है।

यह रस बालकोंके लिये अति हितकर है। इस हेतुसे श्रीहरिने बकरी और गौ के दूध की अपेक्षा माताके दूध (स्तन्य) में अधिक शक्कर मिलायी है, जो बच्चोंकी देहकी और बलकी वृद्धि सत्वर कराती है।

अधिक शारीरिक श्रम और मस्तिष्क श्रम करनेवालोंके लिये यह रस अति हितावह है। शारीरिक श्रम अधिक हो और मधुर रस कम मिले तो देह कृश होने लगती है और अकाल में वृद्धावस्थाकी प्राप्ति होती है। मानसिक श्रम अधिक हो और इस रसका सेवन कम हो तो स्मरण शक्तिका ह्रास, बुद्धिमान्द्य, उन्माद आदि की उत्पत्ति होती है। यदि आवश्यक मात्रा में इसका सेवन होता रहे, तो वृद्धावस्थामें भी अधिक निर्बलता नहीं आती।

काल दृष्टिसे विचार किया जाय, तो हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अर्थात् शीत कालमें वायु शीतल होनेसे जठराग्नि प्रबल बनती है। इस हेतुसे मधुर पदार्थ और गुरु अन्नका पचन सरलतासे होता है। यदि इन ऋतुओंमें योग्य आहार नहीं मिलता, तो देह रुक्ष होती है और फिर 'वृद्धि समानैः सर्वेषाम्' इस नियम के अनुरूप शीत काल और रुक्ष देहके कारण वायुका प्रकोप हो जाता है।

वसंत ऋतु कफ प्रकोपकर है। अतः इस ऋतु में मधुर और गुरु भोजन का सेवन कम किया जाता है। आचार्योंने ईख का रस और शहद से बनी हुई शराब का विधिवत् सेवन करने की आज्ञा की है।

ग्रीष्म-ऋतु में मधुररस विशिष्ट भोजन और मधुर शीतल पेय हितकर होता है। इनमें भी ठण्डाई रूपसे शक्कर का सेवन अधिक हितकर है। मिश्रीमें विद्युत् स्वभाव सिद्ध रहती है। अंधेरे में मिश्रीके टुकड़े को तोड़ने पर यह विदित होती है। केवल मिश्री १० २० तोले चबाकर खायी जाय, तो १ २ घण्टे बाद शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है। इस हेतुसे शक्कर मिला हुआ भोजन सम्हाल पूर्वक करना चाहिये। इसके विपरीत ठण्डाई पीने पर १ घण्टेके भीतर पेशाब साफ आ जाता है, शारीरिक उत्ताप कम हो जाता और मनमें प्रसन्नता आ जाती है।

वक्तव्य—जिनके मूत्र यन्त्र में विकृति हो, उनको यह गुण प्रतीत नहीं हो सकेगा। सामान्यतः निरोगी मनुष्य को उक्त गुण का अनुभव होता है।

वर्षाऋतु में वात आदि प्रकोप होने से जठराग्नि दुर्बल हो जाती है। अतः खाने पीने के पदार्थों में शहद प्रधान मधुर रसका सेवन करना चाहिये। एवं अग्नि का रक्षण हो, उस तरह बर्ताव करना चाहिये।

शरत्ऋतु में सामान्यतः पित्त का प्रकोप होता है। मधुर रस पित्तशामक है किन्तु तिक्त रस सहित मधुर रसका सेवन करना चाहिये। कारण, पित्त प्रकुपित होकर आम विष की वृद्धि तथा अग्नि मंद कराता है। इस आम विष को जलाने के लिये तिक्त रस की आवश्यकता है।

देह के भीतर उष्मता पहुँचकर श्लैष्मिक कला फट गई हो और बारम्बार फटती हो या कैशिकायें टूटती रहती हों फिर नासिका, मुख, गुदा आदि से रक्तस्राव होता हो, तो उसे दूर करनेके लिये मधुर रस प्रधान औषधियां दूध, घृत, मक्खन, मुक्ता, प्रवाल, मुलहठी, शतावरी, पिण्ड खजूर, मुनक्का, गूलरके फल, कुष्माण्ड आदि का सेवन कराया जाता है। उर क्षतमें भी मधुर रसका संधान कर्म प्रतीत होता है।

रक्तस्राव, अधिक परिश्रम, प्रबल रोग, स्तन्य दान, मानसिक चिन्ता आदि कारणों से देह क्षीण हुई हो, तब मूल हेतु को दूर करके मधुर रसका विधिवत् सेवन कराया जाय तो शरीर सबल बन जाता है। देह की कान्ति नष्ट हुई हो, वह पुनः प्राप्त होती है। अस्वाभाविक क्रोध आदि बढ़ गया हो, वह शान्त हो जाता है। बालों का वर्ण सुन्दर बन जाता है। स्तन्य की उत्पत्तिमें न्यूनता हुई हो या अस्थिमें निर्बलता आई हो वह प्रवाल, मुक्ता और दुग्धादि मधुर द्रव्य के सेवन से दूर हो जाती है।

अस्थिभंग पतित, अधिक स्त्री-सेवा, अधिक व्याख्यान आदिसे जिनका कण्ठ बैठ गया हो उन सबके लिये मधुर रस प्रधान औषधियाँ—दूध, क्षीर विदारी, मुलहठी शतावरी मुनक्का आदि हितावह हैं। यदि विष सेवनसे मस्तिष्क, नेत्र और छाती

में उष्णता बनी रहती हो तो सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल, दुग्ध, घृत आदि मधुर रस का सेवन कराने पर पित्त शमन हो जाता है। संक्षेप में इस रस का सेवन अधिकारी मनुष्य विधिपूर्वक करता रहे, तो पूर्ण आयु भोगता है और वृद्धावस्थामें भी देहबल बना रहता है।

वक्तव्य—कोई भी वस्तु खाने मात्र से लाभ नहीं पहुँचा सकती। सम्यक् पचन होने पर ही गुण दर्शाती है।

सर्व पदार्थ अधिकारी का ही लाभ पहुँचाते हैं; अनधिकारी को नहीं। जैसे—मधुमेह और नूतन ज्वर में शक्कर रोग की वृद्धि कराती है। आमातिसारमें गोदुग्ध हानि पहुँचाता है। अर्श पीड़ित को कच्चा गोदुग्ध सेवन कराने पर रक्तस्राव होता है। उदर कृमिके रोगीको शक्कर-गुड़का सेवन विषतुल्य होता है। मेदोवृद्धिवालों को मधुर रस सेवन करानेपर स्थूलताकी वृद्धि होती है।

अम्लरस।

खट्टारस (Sour Acid) वातहर, पित्त-कफ-वर्द्धक, उष्ण और पाचक है। इसके सेवनसे दांत आम जाते हैं। मुखमें लालास्रावकी वृद्धि होती है। भोजन करनेमें रुचि बढ़ती है। अम्लता अधिक होने पर रोंगटे खड़े होते हैं। नेत्र और भ्रू का आकुंचन कराता है। छाती और कण्ठमें विदाह कराता है।

चरक संहिताकारने लिखा है कि, यह रस देहको स्थूल बनाता है, जीवन देता है। मनको उत्साहित करता है। इन्द्रियोंको दृढ़ बनाता है। बल बढ़ाता है। वायुका अनुलोम करवाता है। हृदयका तृप्त करता है। खाये हुए अन्नकी अन्त्रमें आगे गति कराता है। भोजनमें लाला (थूक) को मिलाकर तरलमय बना देता है। सूक्ष्म बना देता है। पचन कराता है और प्रसन्नता ला देता है। यह रस ; लघु, उष्ण और स्निग्ध है।

यदि इसका अतियोग किया जाय, तो दंतहर्ष (दांत आम-जाना) और तृषा की उत्पत्ति कराता है। नेत्रोंको बन्द कराता है। रोंगटे खड़े कराता है। श्लेष्माको पतला बनाता है। पित्तकी वृद्धि कराता है। रक्तको दूषित कराता है। मांस-पेशियोंको जलाता है। देहकी (सांधे सांधेको) शिथिल कर देता है। निर्बल, क्षतपीड़ित, कृश और दुर्बल मनुष्योंमें शोथ ला देता है। क्षत (घाव), अभिहत (पत्थर आदिकी चोट), दष्ट (सर्प कुत्ते आदि द्वारा काटे गये), दग्ध (अग्नि, क्षार आदिसे जला हुआ), भग्न (हड्डी टूटना), शून (शोथमय), च्युत (स्थानसे हड्डी उतर जाना), अवमूत्रित (मूत्रविषयुक्त जन्तुओं के मूत्र के स्पर्श से छोटे छोटे छाले होना), परिसर्पित (जिन जन्तुओं के शरीर पर चलनेमात्र से ही विषप्रकोप होता हो, उनके स्पर्शसे पीड़ा होना) मर्दित (मांसपेशियां आदि दबकर शून्य हो जाना), छिन्न (दो या अधिक टुकड़े हो जाना), भिन्न (विदीर्ण होना), विश्लिष्ट (चोट लगने

पर सांधे ढील हो जाना), विद्ध (कांटे, सुई आदि का चुभना), उत्पिष्ट (अङ्ग कुचल जाना) आदि पीड़ित स्थानोंको पका देता है। क्योंकि, यह आग्नेय स्वभाव वाला है। एवं कण्ठ, छाती और हृदयमें जलन कराता है।

अम्ल रस पृथ्वी और अग्निप्रधान है। इस रसका विपाक अम्ल होता है। वीर्य उष्ण है। इस हेतु से पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि कराता है। पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि, ये सब पित्तवृद्धि होने पर होते हैं। देह के भीतर जहाँ जहाँ दाह होता है, वहाँ वहाँ पर दाह को शमन करनेके लिये श्लैष्मिक रस उत्पन्न होता रहता है। परिणाममें कुछ कफ-वृद्धि भी होती है।

अम्ल रसको वात-शामक कहा है किन्तु सब प्रकारके वात रोगोंको दूर नहीं करता। उदरमें आफरा, शूल, वायु भरा रहना आदि विकार हों, उनको यह दूर कर देता है। वातनाड़ियोंके क्षोभ (Inflammation) पक्षवध, सर्वाङ्गवध, आक्षेप आदि रोगों पर इस रस के सेवन से योग्य लाभ नहीं मिलता।

जिन मनुष्यों के रक्त की प्रतिक्रिया क्षारीय हो या उदासीन हो (अम्लीय न हो), उनके लिये अम्ल रस हितकर है। रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल बन जाने पर मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल बनती है। ऐसी अवस्थामें अम्ल पदार्थ खाने पर दन्तहर्ष, सांधों सांधोंका टूटना, नाड़ियोंका खिंचना, अम्ल विपाकयुक्त भोजन करने (चावल खाने) पर १ घण्टे बाद उदरमें भारीपन हो जाना, स्वप्नदोष, निद्रावृद्धि, उत्साहका ह्रास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसे मनुष्य अम्ल रसका सेवन बारम्बार करते रहें, तो सांधों सांधोंमें वेदना, श्वास, कास, आम-ज्वर आदि हो जाते हैं। अत अनधिकारी-को अम्ल रसका सेवन कम करना चाहिये तथा अधिकारीको भी अति सेवन नहीं करना चाहिये।

अम्ल रस पाचक होनेसे पित्त और रक्तकी वृद्धि कराता है। जब पित्त स्वस्थहो उस समय यह लाभ मिलता है। विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त आदि, जिनमें आमाशयस्थ पित्त बढ़ा हुआ रहता है अर्थात् आमाशयिक रस (Gastric juice) में लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) बढ़ जाता है, उनमें अम्ल रसका कार्य वैसा नहीं हो सकता। भोजनके साथ अम्लरसका सेवन करने पर पित्तप्रकोपमें वृद्धि हो जाती है। यदि पित्तप्रकोप की प्रथमावस्था है, भोजनके बाद ही अधिक स्राव होता है (भोजन-के पहिले आमाशयमें पित्त नहीं रहता), तो भोजनके २० ३० मिनट पहिले परिपक्व ताजे नीबूको १० २० तोले जलमें निचोड़, ३ ४ माशे शक्कर मिलाकर पिलाने पर अधिक पित्तस्रावका रोध होता है। प्रातःकालको आमाशयमें खट्टा पित्त संग्रहीत हो गया हो, तब अम्ल रसका सेवन कराया जायगा, तो अधिक हानि पहुँचती है। ऐसी अवस्थामें तो वमन कराकर या आमाशय नालिकासे आमाशयको धोकर साफ कर देना पड़ता है और अम्ल रसका सेवन अति कम कराया जाता है। केवल आंवले

आदि जैसी सौम्य खटाई दी जाती है। अम्ल पित्तके समान रक्त पित्त के किन्हीं प्रकारोंमें भी अम्लरसका संकोच करना पड़ता है। जब आमाशयमें पित्तस्राव कम होता हो, तब लवण रस सहित अम्ल रसका सेवन आशीर्वाद के समान है। (केवल अम्ल रसका सेवन करने पर आमाशय रसस्राव कम हो जाता है) अम्लरस रक्तह्रास पर भी उपकारक है। यह सरलतासे रक्त को बढ़ा देता है। फिर हृदयको भी सबल बना देता है।

सुश्रुत संहिता, अष्टांग संहिता आदि के ग्रन्थकारोंने अम्ल रसको हृद्य कहा है। हृद्यके २ अर्थ हैं। हृदयके लिये हितकारक तथा मनको प्रसन्न करनेवाला। अम्ल रस इन दोनों गुणोंको दर्शाता है। मनको रुचिकर तथा दीपन-पाचन होनेसे रसधातुकी उत्पत्ति अधिक कराता है। रस धातु सबल होनेपर उनसे उत्पन्न रक्त आदि धातु भी सबल बनती हैं। हृदय मांसपेशीसे बना है। ब्यापक मांस धातुको बल मिलने पर हृदय भी दृढ़ बन जाता है। हृदयपर अम्ल रसका विशेष प्रभाव पड़ता है। इस हेतुसे भगवान् आत्रेयने हृद्य कषाय वर्गमें आम्र, अनार, इमली, बेर, बिजौरा, अम्लवेंत बड़े बेर, आंवला, करौंदा, अम्लास, इन १० अम्ल रसप्रधान औषधियोंका ही संग्रह किया है।

अम्ल रस आग्नेय तत्वप्रधान होनेसे इसका मुख्य कार्य अग्निप्रदीपन है। अग्नि प्रदीप्त होनेसे आहारका पचन सम्यक् और अधिक होता है। इसके अतिरिक्त रस, रक्त, मांस, वीर्य आदि सब धातुओंमें अग्नितत्वका कार्य अधिक होता है। जिससे उत्पन्न दोष, विष और आगन्तुक कीटाणुओंका नाश होता रहता है। एवं आमविष या कीटाणुविषजन्य हानिसे देहका संरक्षण होता रहता है।

अम्लरसमें दीपनके अतिरिक्त पाचन गुण भी अवस्थित है। दीपन गुण अग्निको प्रदीप्त करता है, किन्तु दीपन गुणयुक्त द्रव्य आमका पचन नहीं कराता। पाचन गुण युक्त द्रव्य आमका पचन कराता है, यह इन दोनों गुणोंमें प्रभेद है। अम्लरसमें ये दोनों गुण होनेसे अग्नि-प्रदीपनके अतिरिक्त आमाशयके भीतर आम्य पचन कराता कार्य है तथा अन्नगत आहारके पचनमें भी सहायता पहुँचाता है, इस तरह आमको पचानेका सम्यक् प्रकारसे करता है। जिससे ज्वर आदि रोगोंकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध होता है।

अम्ल रसयुक्त पदार्थसे रुचि बढ़ती है। अनेकोंको तो दर्शनमात्रसे ही मुंहमें थूक बहने लग जाता है। इस अम्लरसके मिश्रणयुक्त भोजनमें लालामिश्रण अधिक होता है और अनाज अच्छी तरह चबाया जाता है। यदि अम्ल रसको लवणके साथ मिलाया है, तो आमाशयिकपित्त भी अधिक स्रवित होता है। पश्चात् अन्त्रमें भोजन जानेपर उसीके अनुरूप सब भोजनको नमकीन बनानेके लिये पक्वाशयिकका स्राव भी अधिक होता है। फिर शोषण क्रिया भी अधिक होती है। इस तरह रुचिकर भोजन देहको पुष्ट बनानेमें सहायक बनता है।

सुश्रुत संहिताकारने इसे 'धदि शीत' और अष्टाङ्ग संग्रहकारने 'शीतस्पर्श' लिखा है। इसका शीतस्पर्श जिह्वा, त्वचा और मन द्वारा विदित होता है। गर्मीके दिनोंमें इसी गुणके हेतुसे शर्बत नीम्बू, शर्बत सन्तरा आदिका उपयोग होता है। पंजाबमें मट्ठेको काममें लेते हैं। इनसे थोड़े समयमें पेशाब साफ आ जाता है। फिर उष्णता दूर होकर शीतलता आ जाती है।

आगे आचार्योंने इसे 'पवननिग्रहणो (अनिलनिवर्हणो) ऽनुलोमन' कहा है अर्थात् उदरवातका यह निग्रह करता है तथा मूढ वातका अनुलोमन करता है (आमाशय-वायुकी ऊर्ध्वगति तथा अन्त्रस्थ वायुकी अधोगति करा बाहर निकाल देता है) उदरमें दुष्टवायुकी उत्पत्ति और स्थिति हो तो भोजनकी गति सम्यक् नहीं होती। फिर मलावरोध होता है, उदरमें दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। मलमेंसे प्रवाही रसका शोषण रक्तमें होनेपर रक्तदुष्टि होती है। पश्चात् मस्तिष्कस्थ केन्द्र दूषित होते हैं और अनेक रोगोंकी सृष्टि होती है। अम्ल रस इस हानिकी परंपराको रोक देता है।

चरक संहिताकारने 'भुक्तमपकर्षयति क्लेदयति जरयति, कहा है अर्थात् अम्ल रस आहारको नीचे ले जाता, गलाता है, और पचाता है। अम्ल रसमें पृथ्वी तत्त्वकी भी प्रधानता होनेसे वह आहारको नीचे नीचे ले जाता है, आहारमेंसे सत्वका सम्यक् शोषण कराता है तथा शौच शुद्धिमें भी सहायता पहुँचाता है।

अम्ल रसमें स्वाद अधिक रहा है। इस हेतुसे जिह्वा लोलुप मनुष्य इसका अतियोग करते हैं तथा अनधिकारी मनुष्य जानते हुए भी इस रसके स्वादको छोड़ नहीं सकते। परिणाम में संधिवात, कण्डू, पाण्डु भ्रम (चक्कर आना), शोथ, तिमिर आदि रोगसे पीड़ित हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें अष्टाङ्ग संग्रहकार लिखते हैं —

जनयति शिथिलत्वं सेवितः सोऽति देहे
कफविलयन कण्डू पाण्डुता दृग्विघातान्।
क्षतविहतविसर्प रक्तपित्त पिपासा
स्वयथुमपि कृशाना तैजसत्वाद् भ्रमं च॥

अनेक अनधिकारियोंको अम्ल रसकी अधिकतासे दूसरे ही दिन गात्रोंकी शिथिलता, नाड़ियोंका खिंचाव, रात्रि को स्वप्नदोष, मूत्रका कुछ अंशमें अवरोध व्याकुलता, मुखपर कुछ शोथ और ज्वर आदिकी संप्राप्ति करा देता है। जिनको पहिले सुजाक, फिरंग आदि हुए हों, अथवा अन्य हेतुसे शुक्रविकार हो गया हो, उनको अम्ल रसका दुष्परिणाम सत्वर प्रतीत हो जाता है।

बहुत दिनों तक अम्ल रसका अतियोग होनेपर कफ धातुका विलयन हो जाता है। फिर पित्तधातु प्रकुपित होकर त्वचापर शुष्कता ला देती है और कण्डूकी उत्पत्ति करा देती है। किसीको विसर्प की प्राप्ति भी हो जाती है।

निर्बल मनुष्य यदि महिनों तक अम्ल रसका अतियोग करते रहें तो उनका

रक्त दूषित हो जाता है, उसमेंसे रक्तरंजक पदार्थ कम हो जाता है फिर मुखमण्डल और देह निस्तेज बन जाते हैं। पचनक्रिया सम्यक् कार्य नहीं करती। मलावरोध बना रहता है। मस्तिष्क अस्वस्थ बन जाता है। मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि धातुएँ दूषित हो जाती हैं। मज्जा दूषित होनेपर भी अम्ल रसके सेवनमें निग्रह नहीं होता, तो रक्तके भीतर अस्वाभाविक शोथ केन्द्रयुक्त रक्ताणु और श्वेताणुओंकी उपस्थिति होती है। फिर शोथ बढ़ने लगता है और रोग अधिक दृढ़ बन जाता है।

तक्रको आचार्योंने कषायाम्ल कहा है। तक्र और अन्य अम्ल रस रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल बन जाने और विम्लाधीर्य हो जाने पर अनुकूल नहीं रहते। फिर भी तक्र या अन्य अम्ल रसका आग्रहपूर्वक सेवन कराया जाय, तो रक्तपित्तकी संप्राप्ति हो जाती है।

कुछ वर्षों पहिले एक कन्या इंदौरमें संग्रहणीकी चिकित्सा करा रही थी। उसके आमाशयका पित्त अति तेज था इस हेतुसे उसे तक्र नहीं देना चाहिए। फिर भी चिकित्सकने कुछ भी सुनाई न करते हुए तक्र कल्प कराया। परिणाममें २५ दिनके पश्चात् कन्या अति निर्बल बन गई। रक्तपित्त हो गया। मुँहसे रक्तस्राव होने लगा, चक्कर आने लगे। निद्रा दूर हो गई। रात्रिको थोड़े थोड़े समयमें पेशाबके लिये उठना पड़ता। फिर दुग्धकल्पका प्रारम्भ कराया, तब १५ दिनके बाद दुष्ट लक्षण शमन हुए थे।

जो मनुष्य अम्ल रसमें अधिक प्रीति रखते हैं, उनमेंसे अनेकोंको नेत्रविकार हो जाता है। अथवा हृदयाकार तिमिर रोग होनेका लिखते हैं। तिमिररोग पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे पटलमें क्रमशःगति करता है। चौथे पटलमें जानेपर उसे लिङ्गनाश (काचबिन्दु) कहते हैं। यह रोग अम्ल रस, सूर्यका ताप, अग्नि, धूम्रपान इनका अधिक सेवन करनेवालोंको अधिक होता है। संसार के अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें कांच बिन्दु पीड़ितोंकी संख्या अनेक गुनी अधिक है। इसी हेतुसे अमरिका और यूरोपसे नेत्रविशेषज्ञ अपना अनुभव बढ़ानेके लिये भारतमें आते रहते हैं।

जिन मनुष्योंको व्रण-विद्रधि हुआ हो, वे अम्ल रसके सेवनमें आसक्त होते हैं, तो उसे कठिन और दुष्ट नाड़ी व्रणकी सम्प्राप्ति हो जाती है। अम्ल रस, रक्तको अम्ल बना देनेमें सफल हो जाय, तो शस्त्रके घाव पक जाते हैं। इसी हेतुसे शस्त्र-का घाव लगनेपर अम्लरसका निषेध किया जाता है।

काल दृष्टिसे आचार्योंने कहा है कि, वसन्त ऋतु आनेपर कफ प्रकोपको दूर करनेके लिये वमन क्रिया का आश्रय लेना चाहिये, तथा कफ वृद्धिवालोंको 'गुर्वम्लस्निग्ध मधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत्' अम्लरसका सेवन कफशोधन होने तक छोड़ देना चाहिये।

सामान्यतः ग्रीष्मकालमें अम्ल रसके सेवनमें प्रीति न रखनी चाहिये। इस सम्बन्धमें आचार्योंने कहा है कि, 'लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं घाम वर्जयेत्'। फिर भी वर्तमानमें विलासी लोग गरम गरम चाय, गरम भोजन और खट्टे रसके

सेवनमें कुछ भी संकोच नहीं करते। परिणाममें वे नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होते रहते हैं।

वर्षा ऋतुमें वात और वर्षाके कारण अधिक शीत होनेपर, उसकी शान्तिके लिये खट्टे-नमकीन रसका सेवन करना चाहिये। आचार्योंने लिखा है कि—

व्यक्ताम्ल लवण स्नेहं वातवर्षा कुलेऽहनि।
विशेषशीते भोक्तव्य वर्षास्वनिलप्रशान्तये॥

शरद ऋतुमें स्वाभाविक पित्त प्रकोप होता है। उसे शान्त करनेके लिये पित्तशामक तिक्तद्रव्योंका सेवन हितकर तथा पित्त-कफ-वर्द्धक दधि आदिका सेवन हानिकर माना जाता है।

हेमन्त ऋतुमें जठराग्नि प्रबल होने लगती है। उस समय स्निग्ध, अम्ल, लवण रसका सेवन हितकर होता है। आचार्योंने शिशिर ऋतु में भी हेमन्तनिर्दिष्ट आहार विहारके सेवनकी आज्ञा दी है।

अम्ल रस कफकी तरलताका ह्रास कराता है। इस सम्बन्धका वर्णन आगे कफघ्न गुणके साथ किया जायगा।

लवण रस।

नमकीन रस (Saltish) में जल और अग्नितत्वकी प्रधानता है। यह वातहर कफ-पित्त-वर्द्धक, उष्ण, वार्य, मधुरविपाकी, पाचक, दाहक और अचक्षुष्य है।

भगवान् आत्रेयने लिखा है कि, लवण रस पाचन, क्लेदन (अन्नको गलानेवाला) दीपन; च्यावन (स्राव करनेवाला), छेदन (चिपके हुए हुए कफ आदिको उखाड़ने वाला), भेदन (बद्ध मलादिका भेदन करानेवाला), तीक्ष्ण, सर, (अनुलोमन), विकासी (संधिबन्धनोंको शिथिल करनेवाला), अधःस्रंसी (उदरमें संग्रहीत मल आदिको बिना ही पकाये नीचेकी ओर गिरानेवाला), अवकाशकर (स्थानको रिक्त बनानेवाला), वातहर, स्तम्भित, बद्ध (कठोरमल) और संग्रहीतमलोंका नाशक, शेष सब रसोंका विरोधी (भोजनोंमें नमक अधिक हो जानेपर सब रसोंका स्वाद मारा जाता है), मुखमें लालास्रावको बढ़ानेवाला, कफस्रावी, मार्गशोधक, देहके सब अवयवों को मृदु करनेवाला, भोजनमें रुचि लानेवाला तथा भोजनमें सर्वदा और सर्वथा उपयोगी है। यह अति गुरु और अति स्निग्ध नहीं है। यह उष्ण है।

इन गुणोंसे युक्त होनेपर भी इसका अतियोग होनेपर पित्तको प्रकुपित करता है। रक्ताभिसरण क्रियाको उत्तेजित करता है। तृषा बढ़ाता है। मूर्च्छा (चक्कर) ला देता है। संताप कराता है। हाथ-पैरोंके तलोंकी त्वचा फट जाती है या फूटनी कराता है। मांसपेशियोंको शिथिल बनाता है। कुष्ठ गलने लगता है। सेन्द्रिय विषकी वृद्धि कराता है। शोथकी अति वृद्धि करा उसे फाड़ देता है। दांतोंको गिराता है। पुंसत्वक

नष्ट करता है। इन्द्रियोंको निर्बल बना देता है, जिससे वह अपने कार्य करनेमें असमर्थ हो जाती हैं। झुर्रियाँ पड़ जाना, बालोंका श्वेत हो जाना आदि वृद्धावस्था के चिह्न उत्पन्न कराता है तथा खालित्य (गंजापन) की प्राप्ति कराता है। एवं रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त प्रभृति विकारोंको उत्पन्न कराता है।

महर्षि वाग्भट्टाचार्यने अष्टाङ्गसंग्रहमें लिखा है कि :—

> खलति पलित-तृष्णा-ताप-मूर्छा विसर्प—
> श्वयथु किटिभ-कोठाक्षेप रोधास्रपित्तम्।
> स्तव-विष-मदवृद्धि वातरक्तं करोति—
> क्षपयति बलमोजः सोऽति वा सेवनेन ॥

नमकका अति सेवन करनेपर गंजापन, बालोंका श्वेत हो जाना, तृषावृद्धि, व्याकुलता, मूर्छा, विसर्प, शोथ, किटिभ, कुष्ठ, कोठ (शीतपित्त भेद), आक्षेप, रोध (रक्त मिसरण और हृदयका रोध) रक्तपित्त, स्तववृद्धि, विषप्रकोप, मदवृद्धि (नशा-सा रहना), वातरक्त, बलक्षय और ओजक्षय कराता है।

लवणरसमें विशेषतः लवणका ही उपयोग होता है। लवणको डाक्टरीमें सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) संज्ञा दी है। उसका सांकेतिक अक्षर Nacl है। अल्प मात्रामें यह अग्निप्रदीपक, बलकारक, परिवर्तक (Alterative) है। अधिक मात्रामें वामक विरेचक, कृमिघ्न है। अत्यधिक मात्रामें आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह उत्पादक है। बाह्य स्थानिक प्रयोगोंमें उग्रतासाधक तथा व्रणपाकका रोधक है। परिवर्तक मात्रा १० से ६० ग्रेन। वमन-विरेचनार्थ आधसे २ औंस तक मिलावे जलके साथ। स्नानार्थ १ गेलन जलमें ४—६ औंसके हिसाबसे। इसके अतिरिक्त नमक के जलसे कुल्ले भी कराये जाते हैं।

नमक ३ गुने शीतल जल और १० गुने ग्लिसरीनमें गल जाता है।

लवण, यह सर्वरसोंमें राजा सम है। बिना लवण भोजनमें स्वाद नहीं आ सकता। सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेके लिये लवणकी अत्यावश्यकता है। संसारमें भी दूषित वायुके शोधनका कार्य लवण (लवणप्रधान समुद्र) ही कर रहा है। दुकान या मकानमें नमक खुला रहनेपर वायुका आकर्षण करता रहता है। इसी हेतुसे वर्षा ऋतुमें यह गीला हो जाता है।

लवणका उपयोग संसारमें सर्वत्र हो रहा है। पाश्चात्य देशोंमें जिस तरह सावधानी पूर्वक रखते हैं, उस तरह सम्हाल भारत आदि निर्धन देशोंमें नहीं होती। अपने स्वास्थ्य का संरक्षण करनेवालों को चाहिये कि, बजारसे खरीद किये हुए समुद्र नमक और सांभर नमकको शुद्ध करके उपयोगमें लेवें। समुद्रनमक और सांभरनमक बनानेके समय बहुतसा धूला, रेता और कीड़े उड़कर उसमें मिल जाते हैं। तैयार होनेके पश्चात् उसपर चूहे मूतते रहते हैं; मक्खी आदि बैठती और छिपकली

उसमें गिरती रहती हैं। छोटे छोटे जन्तु उसमें मरते रहते हैं, धूल गिरती रहती है और दूषित वायु आकर्षित होती रहती है। ऐसे नमकको भोजनमें मिलाना, यह अनेक रोगोंको आह्वान करनेके समान है। यथार्थमें नमकको जलमें मिलाकर छान लेवें। फिर कढ़ाईमें उबालकर सुखा देने पर चूनेके समान उज्वल बन जाता है। उसे अमृतबानमें भर लेवें और उसमेंसे उपयोग करते रहें, तो सब दोषोंसे बचाव हो जाता है तथा योग्य गुणकी प्राप्ति हो जाती है।

लवणरसको वातहर कहा है। यह क्रिया उष्ण, गुरु और स्निग्ध गुणके हेतुसे होती है। यह वातहरपना समस्त वात रोगोंमें स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, किन्तु उदरमें उत्पन्न वातपर स्पष्ट प्रतीत होता है। उदरमें अफारा, वेदना, शूल या भारीपन हो, उनको यह दूर करता है। यदि यह शूल कीटाणु जन्य हो तो कीटाणुओंको नष्ट करता है, विषको जलाता है और सपाचित मलको आगे फेंक देता है।

लवण पित्तवर्द्धक है, यह कार्य अग्नि रसकी प्रधानताके हेतुसे होता है। भोजनमें जितना नमक अधिक होगा, उतना ही लाला निस्सरण कम और आमाशयिक रसस्राव अधिक होता है। पुनः आहार रसको आमाशयमेंसे अन्त्रमें जानेपर नमकीन बनानेके लिये आमाशय रसके अनुपातसे यकृत् को पित्तस्राव करना पड़ता है। आमाशय रस और यकृत् इन दोनोंको आयुर्वेदने पित्त कहा गया है। इन दोनोंका स्राव करानेमें नमक हेतु होता है।

इस पित्त वर्द्धक गुण के हेतु से लवण में अग्निप्रदीपक, पाचक, रोचक गुण प्रतीत होते हैं। लवण के साथ अम्लरस का प्रयोग होने पर इसका कार्य प्रबलतर बन जाता है। पाचन गुण के हेतु से आम का सम्यक् पचन होता है। कीटाणु और विष नष्ट होते हैं तथा उदर में दुर्गन्ध की उत्पत्ति नहीं होती। रोचक गुण होने से जिह्वा और मुख की शुद्धि होती है। लालास्राव अधिक होता है, इससे भोजन में संतोष मिलता है और देहबल की वृद्धि होती है।

लवण रस के सेवन से कुछ स्निग्ध गुण की प्राप्ति होती है। यह स्नेहन कार्य सर्व पदार्थों में सम्मिलित हो जाने के हेतु से प्रतीत होता है। भोजन स्नेह प्रधान (घृत-तैल युक्त) हो, तो उसकी स्निग्धता को लवण चारों ओर सत्वर फैला देता है। फिर उस हेतु से त्वचा में तेजी आ जाती है।

लवण रस में अग्नि के साथ जलतत्व की भी प्रधानता है। इस हेतु से लवण को कफवर्द्धक भी माना है। लवण में गुरु और स्निग्ध गुण होने से तथा विपाक मधुर होने से कफधातु की वृद्धि होती है। सामान्यतः पित्त की तीक्ष्णता उत्पन्न होने पर उस स्थान में तीक्ष्णता के शमनार्थ कफधातु (पतला कफ द्रव) उत्पन्न होती है। जो देह को मोटा बनाती है। लवण, कफ-मल की वृद्धि तो केवल

प्रदाहावस्था में ही क्वचित् परम्परागत कराता है। सामान्यतः यह सपरीव कफ-मल को नष्ट करने का कार्य कर देता है।

मानव देह के भीतर लवण अन्य धातुओं की अपेक्षा रक्त में रहता है। रक्त के भीतर रक्ताणु, श्वेताणु, रक्तचक्रिकाएँ और रक्तरस ये ४ विभाग हैं। इन में रक्तरस के (Blood plasma) के भीतर नमक रहता है। मनुष्य जो वनस्पति आहार का सेवन करता है, उस आहार में स्वाभाविक ही नमक वर्तमान है। वह नमक पोटास युक्त है। इस आहार में से रस बन कर फिर रक्त में प्रवेश करता है, तब इसके साथ पोटास युक्त नमक भी रहता है। रक्तरस के भीतर जो नमक है वह सोडा-युक्त है। इन दोनों नमकों का संयोग होने पर रासायनिक विश्लेषण होता है। पोटास क्लोराइड और सोडा कार्बोनेट या फोस्फेट निर्मित होता है, जो शारीरिक रचना में अनावश्यक माना गया है। जिससे उसे (कार्बोनेट या फोस्फेट का) अपरिवर्तित रूप में ही देह से बाहर निकाल दिया जाता है। इस सम्मिलन या युद्ध में नमक (सोडा क्लोराइड) का ह्रास होता है। जिससे भोजन में इसकी आवश्यकता रहती है।

भोजन में जो नमक लिया जाता है, उसके विशेषांश का त्याग, पोटास क्लोराइड के रूपमें मूत्र द्वारा होता और उसका कुछ अंश मल और स्वेद द्वारा बाहर निकलता रहता है। कितनेक रोग—फुफ्फुसप्रदाह और कर्कोटोट के नूतन सन्तुष्म। कोइद्धि होने पर वृक्कप्रदाह हो, तो मूत्र द्वारा नमक का बाहर निकालना नहीं हो सकता या अति कम होता है। ऐसी अवस्था में नमक का सेवन होता रहेगा तो रक्त के भीतर लवण का अत्यधिक संग्रह हो जायगा। फिर अनेक रोगों का निर्माण होगा।

नमक उष्ण वीर्य होने से स्वेद की वृद्धि करता है। इसी हेतु से आचार्यों ने स्नेहन के साथ स्वेदन गुण भी दर्शाया है। इस स्वेदन क्रिया द्वारा देहगत विष बाहर निकलता रहता है। यदि स्वेद का अवरोध हो जाय तो विष वृद्धि होने लगती है। अधिक नमक का सेवन होने पर स्वेद ग्रन्थियाँ शीघ्र पीड़ित हो जाती हैं। फिर सूजन बढ़ने लगती है।

यदि लवण का सेवन न किया जाय, तो आहार में मिला हुआ विष देह में रह जाने से रक्त के भीतर लवण का अभाव हो जायगा, उस से विष का असर देह और मस्तिष्क पर होने के पश्चात् विविध रोगों की उत्पत्ति हो कर पचन क्रिया मन्द हो जायगी मांस पेशियों की शक्ति का ह्रास हो जायगा, मस्तिष्क शक्ति भी शिथिल हो जायगी और बाहर से प्रविष्ट कीटाणुओं का नष्ट करने का कार्य योग्य रूपसे नहीं हो सकेगा।

अत्यधिक रक्तस्राव, एवं विषूचिका के हेतुसे रक्त में से रक्तरस की क्षति हो जाना क्लोरोफार्म का प्रयोग, शस्त्र चिकित्साजनित बेहोशी, शतिपात प्रबल दोष त्यागी

ज्वर में नाड़ी अति क्षीण और शरीर शीतल हो जाना आदि अवस्थाओं में लवणजल का अन्त सेचन (Infusion) कराया जाता है। यह अन्त सेचन गुदा मार्ग से और त्वचा के नीचे से होता है। इसकी विधि रुग्णपरिचर्या के भीतर ६ ठवें प्रकरण उपचार पद्धति के २५ और २७ वे भाग में दर्शायी है।

डाक्टर घोष ने मेटेरिया मेडिका में दर्शाया है कि, विषूचिका की चिकित्सा में लवणजल के अन्त सेचन से बहुत अच्छा परिणाम होता है। इस के लिये निम्न लिखित मिश्रण को विशेष लाभप्रद माना है।

लवण (सोडियम क्लोराइड)	१२० ग्रेन
पोटास क्लोराइड	६ ग्रेन
केल्शियम क्लोराइड	४ ग्रेन
विशुद्ध वाष्प जल	१ पिण्ट

इस मिश्रण के भीतर सोडा बाई कार्ब ४० ग्रेन और द्राक्षशर्करा (ग्लुकोज) २४ ग्रेन मिला लेना विशेष हितावह है। यह मिश्रण लगभग १ पिण्ट तक दिया जाता है॥

मस्तिष्क शोथ और करोटि के भीतर दबाव वृद्धि होने पर शिरा द्वारा लवण जल का सेचन किया जाता है। मस्तिष्कगत अर्बुदजन्य दबाव वृद्धि, वृक्कसन्यास (रक्त में मूत्रविष वृद्धि और मस्तिष्कावरण प्रदाह के तात्कालिक लक्षणों की उपस्थिति होने पर सामयिक शान्ति पहुंचाने के लिये अन्त सेचन किया जाता है (२० से ३० प्रतिशत द्रावण में से ३० मिली मीटर अर्थात् लगभग १ औंस) परन्तु मस्तिष्क चोट, मस्तिष्क दबाव के प्रबल लक्षणसमूह की उत्पत्ति के पश्चात् और कितनेक प्रकार के सिर दर्द में इसका समर्थन कम हुआ है।

अति रक्तस्राव, रक्त में से रसद्रव का ह्रास आदि से उत्पन्न पछोया या शक्तिपात, कतिपय सेन्द्रिय विषप्रकोपमय स्थिति, कार्बन मोनोक्साइड गेसजन्य विषाक्त अपूर्ण पोषण और क्लान्ति पीड़ितों को शिरा या गुदा द्वारा लवणजल का अन्त सेचन किया जाता है। ९ प्रतिशत अर्थात् १ औंस विशुद्ध जल में १८ ग्रेन नमक।

यदि रक्त सबल होगा, तो मांस, मेद आदि धातुएँ भी सबल बनेंगी। रक्त में से लवण का ह्रास होगा, तो मांस पेशियां शुष्क और कठोर बन जायंगी। उनको वृद्धि में प्रतिबन्ध होगा। वायु का आक्षेप होता रहगा और फिर विक्रिया भी होने लगगी।

यदि लवण का सेवन अत्यधिक होगा, तो रक्त में लवण की मात्रा बढ़ जायगी। फिर तृषा बढ़ेगी। जिससे जलपान अधिक करना पड़ेगा। वृक्कों को अधिक श्रम पहुँचेगा। पश्चात् शनैः शनैः वृक्कप्रदाह, कामला, शोथ, रक्तपित्त, धमनीक्षेपकाठिन्य आदि रोग उपस्थित हो जायंगे।

लवण उष्ण वीर्य होने से देह में अत्यधिक मात्रा हो जाने पर मज्जा, शुक्र, और ओज, जो शीत गुणमूयिष्ठ हैं, उनको बहुत हानि पहुँचती है। मज्जा कम होने पर नेत्र की दृष्टि भी मन्द हो जाती है। हानि होते हुए भी नमक का ह्रास नहीं होगा तो त्वचा, मांस लसिकावाहिनियों, लसिका ग्रन्थियों में कोथ होगा। फिर वातरक्त और कुष्ठरोग की प्राप्ति हो जायगी।

त्वचा पर घाव में कीटाणु प्रवेश हो जाने से वहां पर गलनावस्था उत्पन्न हुई हो या घावरी गलनक्षम (Septic) हो तो उसे लवण-धावन से धोया जाता है। नमक ४ भाग, सोडा साइट्रस १ भाग और जल १२० भाग मिलाया जाता है। डाक्टरी में इसे राइट् का धावन (Wright's solution) संज्ञा दी है। उसका उपयोग नाडीव्रण, विद्रधि और गुदाप्रदेश को धोने के लिये किया जाता है।

विषप्रकोप, आमाशय में आमवृद्धि रौप्यक्षार (Silver Nitrate) के सेवन से उत्पन्न विष, जलौका आमाशय में चली जाना या नासिका से ऊपर चढ़ जाना आदि विकारों में लवणजल का पान कराकर वमन करायी जाती है।

यदि अन्त्र में सूत्र जैसे कृमि (Thread worms) हो गये हों, तो गुदा मार्ग से लवणजल चढ़ाया जाता है। परन्तु ४ औंस से ज्यादा नमक नहीं लेना चाहिये, इससे उपस्थित कृमिओं को नष्ट करना और उनकी भावी उत्पत्ति को रोकना, इन दोनों कार्यों की सिद्धि होती है।

यदि लवणजल का अन्त्ताक्षेपन अधिक होगा तो कृत्रिम मधुमेह Glycosuria), मन्द ज्वर और क्वचित् लसिकामेह (Albuminuria) की प्राप्ति हो जाती है। कभी कभी फुफ्फुसशोथ और हृदय का अत्यधिक प्रसारण होकर मृत्यु भी हो जाती है।

कण्ठमाला, गलगण्ड, कफप्रकोप, कफमय कोई श्वासरोग आदि रोगों में लवणजल से स्नान तथा समुद्र तट पर निवास कराना हितावह माना जाता है।

पूयमय अभिष्यन्द रोग में नेत्रों को धोने के लिये नमक जल का उपयोग किया जाता है।

कालदृष्टि से आचार्यों ने लिखा है कि, ग्रीष्मऋतु में नमक का सेवन कम से कम करना चाहिये। इस तरह शरद् ऋतु में भी जब कि गर्मी अधिक पड़ती है तो उस समय भी नमक कम कर देना चाहिये।

यदि रक्त दबाव वृद्धि या धमनिकोषकाठिन्य नया रोग हो तो रक्तदाब कम करने के लिये कुछ समय के लिये नमक का त्याग करना पड़ता है।

तिक्त रस ।

कडुया रस (Bitter) वायु और आकाश-तत्व-प्रधान होने से वातवर्द्धक, पित्तनाशक, कफनाशक और अग्निप्रदीपक है। इस रसका विपाक कटु और वीर्य शीतल है।

चरकसंहिता में लिखा है कि, कडुये रस के सेवन की मनुष्यों की स्वाभाविक रुचि नहीं होती किन्तु यह अरुचिका नाशक है। यह विषहर, कृमिनाशक, मूर्च्छा, दाह, कण्डू, कुष्ठ और तृषा को शमन करनेवाला, त्वचा और मांस को दृढ़ बनानेवाला, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, स्तन्यशोधक, लेखन, क्लेद (गीलापन), मेद, वसा, मज्जा लसिका, पूय, स्वेद, मूत्र, मल, पित्त और कफ, इन सब का सुखानेवाला, रुक्ष, शीतल और लघु है।

इस का अतियोग होने पर तीक्ष्ण के हेतु से तथा खर और विशद (क्लेद शोषक) स्वभाव होने से रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, इन सातों धातुओं को सुखाता है। स्रोतों को खुरदुरा बना देता है, बल का हरण करता, देह को कृश बनाता, ग्लानि, बेहोशी, भ्रम (चक्कर) ला देता, मुंह को सुखा देता है एवं इनके अतिरिक्त इतर वातविकारों (मन्यास्तम्भ, आक्षेप, अर्दित आदि) को उत्पन्न कर देता है।

अष्टाङ्ग संग्रहकार ने लिखा है कि —

धातुबल क्षय-मूर्च्छा-ग्लानि-भ्रम-वातरोग-परुषत्वम्।
खर-विशद-रौक्ष्य-भावे सोऽतिसमासेवितः कुर्यात् ॥

तिक्त रस का अधिक सेवन करने पर धातुक्षय, बलक्षय, मूर्च्छा, ग्लानि, भ्रम (चक्कर आना), वातरोग, कठोरता, खुरदुरापन, विशद (क्लेदशोषण, रुक्षता आदि उत्पन्न करता है। तिक्तरसप्रधान औषधि का सेवन करने पर जिह्वा की वातनाडी के तन्तुओं में क्षणिक बधिरता आ जाती है) जिससे उस समय ग्रहण की हुई अन्य वस्तु का स्वाद विदित नहीं होता। मुंह में बेस्वादुपन रहता हो और वह चिपचिपा रहता हो, तो यह दोष तिक्त रस के सेवन से साफ हो जाता है। फिर भोजन में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

चरक संहिताकार ने तिक्त रस का गुण सब से पहिले विषघ्न कहा है अर्थात् यह आमविष, सेन्द्रिय विष, नाना प्रकार के कीटाणुजन्य विष, पित्तप्रकोपज विष; इन सब को दूर करता है। ज्वर की उत्पत्ति विशेषतः आमविष और कीटाणु जन्य विष (पित्त प्रकोप) से होती है। कडुवा रस आम, कीटाणु और विष को नष्ट कर ज्वर को दूर कर देता है। इसी हेतु से आचार्यों ने इसे ज्वरघ्न कहा है। शरद् ऋतु में ज्वर पित्त प्रकोप से होता है या विषम ज्वर के कीटाणुओं के विषप्रकोपसे होता है। कडुये रसमें पित्तशामक और विषनाशक, दोनों गुण अवस्थित हैं,

इतहमुसे जिम्बर और विषमज्वरमें सरलतापूर्वक कार्य करता है। कफ ज्वर में भी गिलाय, कुटकी, चिरायता, सप्तपर्ण आदि का प्रयोग हितकारक है।

दूसरा गुण कृमिघ्न दर्शाया है। सूक्ष्म कीटाणुओं को भी आयुर्वेद ने कृमि माना है। रक्त और त्वचा के भीतर विविध रोगों के कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, फिर कण्डु, कुष्ठ, दाह, व्रण, विद्रधि तथा नाना प्रकार के त्वचारोग उत्पन्न कराते हैं। वे इस रस के सेवन से नष्ट हो जाते हैं। फिर त्वचा, रक्त और मांस को सबल बना देता है। एवं यह शीतवीर्य होने से रक्त का प्रसादन भी कर देता है।

यह रस शीतवीर्य और पित्तशामक होने से तृषा और दाह का शमन करता है। शारीरिक उष्णता का ह्रास करता है।

क्लेद शोषक गुण होने से व्रणों में रहे हुए क्लेद को सुखाता है। एवं रुक्ष और लघु गुण होने से मेद, मज्जा और शुक्र का शोषण करता है। शुक्र में पतलापन और उष्णता हो तो वह शीतल और गाढ़ा बन जाता है। यदि इस रस का अतियोग किया जाय तो शुक्र की मात्रा भी कम हो जाती है। इस रस के रुक्ष गुण का प्रभाव मल पर भी पड़ता है। मल में से स्निग्धता और द्रवता का ह्रास होता है। मल गांठदार बन जाता है। जिससे मलावरोध होता है। मलावरोध होने पर रक्त के भीतर दूषित रस का आकर्षण होता है, इसलिये मलावरोध न होने के लिये सम्हालना चाहिये।

देह में पित्त, आम या कफ विकृत होने पर स्तन्य (दूध) में भी विकृति आ जाती है। स्तन्य दूषित रहे तो सन्तान के स्वास्थ्य पर खराब असर पहुँचता है। अतः स्तन्य शोधनार्थ माता को तुरन्त तिक्त-रस प्रधान गिलोय सप्तपर्ण, नीम की अन्तरछाल, चिरायता, कुटकी आदि का सेवन कराना चाहिये।

इस रस का मर्यादा में सेवन करने पर वातनाड़ियों पर पोषक परिणाम होता है। वातनाड़ियों का प्रदाह दूर होता है। वातनाड़ियाँ और मस्तिष्कस्थ केन्द्र सबल बन जाते हैं। विचारशक्ति और स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है।

तिक्त रस वातवर्द्धक होने से कडुवे शाक, भाजी आदि का सेवन शीतकाल में कम से कम करना चाहिये। वर्षाऋतु में वायु का स्वाभाविक प्रकोप होता है। अतः इस ऋतु में तिक्त रस का सेवन कम करना चाहिये। शरद् ऋतु में पित्त प्रकोप होता है अतः कडुवे रस का सेवन हितकर माना गया है।

कटु रस

चरपरा रस (Sharp Acrid Pungent) वायु और अग्नि की प्रधानता युक्त है। यह वातवर्द्धक, पित्तवर्द्धक, कफनाशक, उष्ण वीर्य, कटुविपाक, रुक्ष, लघु, तीक्ष्ण है।

चरक संहिताकार लिखते हैं कि, कटु रस रसस्राव कराकर मुख को साफ करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है। खाये हुए अन्न का विदाह करता है। नासिका से कफस्राव कराता है। आंखों में जल ला देता है। इन्द्रियों को उत्तेजित करता है। अलसक, शोथ, स्थूलता, कफप्रधान शीतपित्त, अभिष्यन्द (आंखों में रस भरा रहना) स्नेह, (चिकनापन) स्वेद, क्लेद (चिपचिपा रस) तथा मलों को नष्ट करता है। भोजन को रुचिकर बना देता है। कण्डू का नाश करता है। व्रणों को बैठा देता है। कृमियों का नाश करता है, मांस को सुखाता है। जमे हुए रक्त को तोड़ देता है। प्रतिबन्ध को दूर करता है, (जकड़े हुए सांधों को मुक्त करता है)। मार्गों को साफ कर देता है। श्लेष्मा को दूर करता है। यह लघु, उष्ण और शुष्क है।

इस रस का अत्यधिक उपयोग किया जाय, तो कटुविपाक के प्रभाव से पुंसत्व नष्ट हो जाता है (यह शुक्र को पतला बना देता है) रस (कटु) वीर्य (उष्ण) के प्रभाव से मोह (चित्तनाश), ग्लानि, अवसाद, कृशता, मूर्च्छा, देह का टेढ़ापन, भ्रम (चक्कर), कण्ठदाह, देह में जलन, बलह्रास तथा तृषा वृद्धि करता है। वायु और अग्नि के बाहुल्य से भ्रम, मद, (दपदप), दवथु (दाह), कम्प, तोद (सुई चुभाने के समान दर्द), भेद (हाथ पैर टूटना) आदि वात प्रकोपज लक्षण चरण, बाहु, पीठ (हलचल), पार्श्व और पीठ आदि प्रदेशों में उत्पन्न करता है।

अष्टाङ्ग संग्रहकार ने लिखा है कि —

कुरुतेऽतिनिषेवित स तृष्णा-मद-मूर्च्छा-वमि-मोह-देहसादान्।
बल-शुक्र-गलोपशोष-कम्प-भ्रम-ताप-ग्लपनाति कर्शनानि ॥
कर-चरण-पार्श्व-पृष्ठ-प्रभृतिष्वनिलस्य कोपयतितीव्रम्।
सकोच-तोद भेदैर्वाय्यंचग्नि-गुणाधिकत्वेन ॥

चरपरे रस का अधिक सेवन करने पर तृषावृद्धि, मद, मूर्च्छा, वान्ति, मोह, अवसाद (शिथिलता), बलह्रास, शुक्रक्षय, कण्ठकाशोष, कम्प, भ्रम, दाह, ग्लानि, अतिकृशता, हाथ और पैरों के तल, पार्श्व, पृष्ठभाग आदि में वायु और अग्नि का तीव्र प्रकोप होकर संकोच (खिंचाव), तोद (सुई चुभाने समान वेदना), भेद (फूटनी) आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

इस रस में अग्नि की प्रधानता होने से लाला आमाशय रस, यकृत्पित्त, अन्त्ररस आदि का स्राव अधिक होता है। मुख से लेकर गुदा तक रही हुई श्लैष्मिक कला में दाहक असर पहुँचता है। इस का विशेष कार्य दीपन पाचन है। यह आम को पचाता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है। कीटाणुओं का नष्ट करता है। विषूचिका, अपचन आदि के उत्पादक कीटाणुओं का यह नाश कर देता है।

यह यकृत्पित्त का स्राव अधिक कराता है। जिससे मल में पीला रंग आ जाता है। यदि यकृत्पित्त का स्राव कम हो तो मल सफेद, दुर्गन्धयुक्त आम-मिश्रित

और कभी कभी सूक्ष्म कृमियुक्त बन जाता है। कटु रस इस निबलता को दूर कर देता है। यदि यकृत्पित्त का स्राव अत्यधिक कराया जाय, तो मल पतला गरम और लाल-पीला हो जाता है। पक्वाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ उत्पन्न होता है। मूत्र थोड़ी मात्रा में और जलनसह लाल उतरता है।

यह रस सामान्यतः रुचिकर है। इस के साथ अम्ल रस का संयोग हो, तो अधिक रुचिकर बन जाता है। इस के सेवन से मुह का चिपचिपापन दूर होता है। लालास्राव अधिक होता है। इस हेतु से भोजन को चबा कर मुलायम करने में बड़ी सुविधा मिल जाती है। अन्न जितना अधिक चबाया जाता है, उतना ही श्रम आमाशय को कम करना पड़ता है। मुँह में चबाने के लिये श्रीहरि ने दाँत दिया है। यह साधन आमाशय के पास न होने से आमाशय को अति मंथन क्रिया करनी पड़ती है। फिर भी कितनाक अंश नहीं टूट सकेता, उसे आगे फेंक देता है। वो अन्त्र घुमा घुमा कर मल के साथ बाहर निकाल देता है।

अम्ल रस और लवण रस जिस तरह भोजन के अणु अणु में प्रवेश कर जाता है। उस तरह कटु रस भी भोजन में सर्वत्र फैल जाता है। जिससे भोजन के सत्व भाग के शोषण के साथ इसका भी शोषण हो ही जाता है। रक्त, मांस आदि धातुओं में यह पहुंच जाता है। रक्त में पहुँचने से जल या लसिका का अधिक शोषण होता है। रक्त में रही हुई स्निग्धता का कुछ अंश में नाश होता है। फिर जल जाता है। कितनेक प्रकार के उद्भिज कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। मांस को कुछ अंश में सुखाता है। एवं मेद, मज्जा, वीर्य आदि को उष्ण और पतला बनाता है। इस रस का सेवन मर्यादा में किया जाय और स्नेह (घृत, तैल, मक्खन, दूध, दही) का सेवन साथ में किया जाय, तो मांस आदि धातुओं का रक्षण हो जाता है और वे सबल भी बन जाते हैं।

कटु रस दीपन, पाचन, आम, कफ और विष का नाशक होने से अलसक (आमाशय में भोजन पका पका दूषित हो जाना), कण्ठरोध (कफ से गले में रुकावट), अग्निका, अपचन, उदर्द (कीटाणु से उत्पन्न शीतपित्त), मेदोवृद्धि स्रोतावरोध, व्रणशोथ, इन सब पर प्रयुक्त होता है।

इस का दीर्घकाल तक अति सेवन होता रहे और घृतादि का योग्य सेवन न हो तो धातुनाडियां प्रदाह-पीड़ित होती हैं। फिर मांस पेशियों का आकुंचन होता है। पेशी आक्षेप (बांयटे आना), देह के किसी भी भाग में कम्प होना, कमर जकड़ जाना, सन्धियों में टूटने के समान पीड़ा होना, कण्ठ रह जाना, स्वेदस्राव अधिक होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कटु रस में लाल और पीली मिर्च का उपयोग अधिक होता है। लाल मी

अपेक्षा पीली मिर्च अति ग्राहक है। नैपाल, बरार, सी० पी० आदि भागों में पीली मिर्च का उपयोग होता है।

डाक्टरी मतानुसार मिर्च धमनियों में रक्ताभिसरण का उत्तेजना देनेवाली और अग्नि प्रदीपक है। खाने पर श्लैष्मिक कला में उग्रता पहुँचाती है। बाहर त्वचा पर या नासिका, ओष्ठ, नेत्रादि की श्लैष्मिक कला पर लगाने पर उग्रता पहुँचाती है और लाली ला देती है। स्वल्प मात्रा में सेवन करने पर मुख में लाला स्राव कराती है। अधिक मात्रा में सेवन करने पर हृदय को उत्तेजित करती है। हृदय के स्पन्दन संख्या में वृद्धि करती है। नाड़ी के ठोके भी बढ़ जाते हैं। इससे अधिक मात्रा में आमाशय, अन्त्र आदि में उग्रता आ जाती है। यकृत् प्रदेश में वेदना और बेचैनी का अनुभव होता है। अत्यधिक मात्रा ली जाय तो वृक्कों में उग्रता और प्रदाह उत्पन्न होती है। फिर मूत्रकृच्छ्र होता है। मूत्र का वर्ण लाल हो जाता है। इसके अतिरिक्त जननेन्द्रिय में भी उत्तेजना उपस्थित होती है।

शीतकाल में स्वाभाविक अग्नि प्रदीप्त होती है, उस समय मधुर रस का सेवन अधिक लाभदायक होता है। कटु रस का सेवन कम हो तो मधुर रस बलवृद्धि का कार्य अधिक कर सकता है। इसलिये आचार्यों ने कटु तिक्त-कषाय भोजन का निषेध किया है।

वसंत ऋतु में कफ प्रकोप होता है। कफ को बाहर निकालनेवाला आहार हितावह माना जाता है। इस हेतु से कटु रस का सेवन हो सकता है। ग्रीष्मऋतु में स्वाभाविक स्वेद अधिक आता है। व्याकुलता और दाह होती हैं। ऐसी अवस्था में कटु रस का सेवन हानिकर होता है। इस हेतु से लवण, अम्ल, कटु रस का निषेध किया है।

वर्षा ऋतु में स्वाभाविक वात प्रकोप होता है। कटु रस में पित्त वृद्धि के साथ वात वृद्धि कराने का भी गुण है। इस हेतु से अग्नि का संरक्षण हो, इस तरह सम्हालते हुए कटु रस का सेवन करना चाहिये।

शरद् ऋतु में पित्त प्रकोप हो जाता है। थोड़ी-सी भूल होने पर शीतज्वर (मलेरिया) का आक्रमण हो जाता है। उस समय पित्त शमनार्थ तिक्त रस का सेवन हितावह है। कटु रस के सेवन से पित्त वृद्धि होती है अतः वह इष्ट नहीं है।

प्राचीन आचार्यों ने कटु रस का सेवन अधिक रूप से करने की आज्ञा नहीं दी। कटु रस में एक प्रकार का विशेष स्वाद होता है, जिससे सामान्य जनता उसे छोड़ नहीं सकती, यदि आचार्य अनुमति प्रदान करते, तो जनता जिह्वा (रसनेन्द्रिय) पर बिलकुल संयम ही नहीं रखती।

कफ प्रकृतिवालों को मिर्च या अन्य कटु रस जितना सहन होता है, उतना पित्त प्रकृति और वात प्रकृतिवालों से नहीं होता। पित्त प्रकृतिवालों के लिये वा

मिर्च की मात्रा थोड़ी सी भी बढ़ जायगी तो अपना असर पहुँचाये बिना नहीं रहेगी। अतः जिन को शरीर के स्वास्थ्य के रक्षण और दीर्घायु भोगने की आकांक्षा है, उनको चाहिये कि, कटु रस का अतियोग न होने दें।

कटु रस का उपयोग जिस तरह पञ्चेन्द्रिय संस्था पर होता है, उसी तरह त्वचा पर बाह्य उपयोग भी होता है। संनिपात में शीतल स्वेद आने पर अभ्रकभस्म, सोंठ, राल आदि की मालिश करायी जाती है। व्रणों को पाक जल्दी कराने के लिये पुल्टिस के साथ कटु द्रव्य मिला दिये जाते हैं। स्थान विशेष में उष्णता पहुँचाने के लिये प्रयोग किया जाता है। वान्ति का शमन न होने पर हृदयाधरिक प्रदेश में राई का लास्टर लगाया जाता है। स्थान विशेष में वातप्रकोपज पीड़ा मिटाने के लिये मालिश या लेप का प्रयोग किया जाता है।

कषायरस

कसैला रस (Astringent) वायु और पृथ्वी तत्वप्रधान है। यह कफ नाशक, पित्तशामक और वातवर्द्धक है। इस में मुख्य गुण ग्राही है। यह जिह्वा में विशदता, स्तम्भता और जड़ता लाता है। कण्ठ को जकड़ता है। हृदय में भी खिंचाव करता है। विपाक कटु और वीर्य शीतल है।

चरक संहिता में लिखा है कि, कषाय रस संशमन, ग्राही सन्धानकर, पीड़िन (आकुंचनकारी), रोपण शोषण, स्तम्भन श्लेष्मा, पित्त और रक्त को शमन करनेवाला, शरीर के क्लेद का शोषण करनेवाला, रूक्ष, शीतल और गुरु है।

इसका अत्यधिक सेवन होने पर मुख में शोष, हृदय में पीड़ा, उदर में आध्मान, वाणी का अवरोध, स्रोतों व मार्गों का रोध (या आकुंचन), त्वचा पर श्यामता, पुंसत्व का नाश विष्टम्भ (अफारा) गुड़गुड़ाहट होकर पचन कराना, वायु, मूत्र और मल का अवरोध, कृशता, उदासीनता, तृषावृद्धि तथा विविध स्रावों का रोध आदि विकार उत्पन्न करता है। यह खर, विशद और रूक्ष गुणयुक्त होने से पक्षवध, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, अपतानक, अर्दित आदि वात व्याधियों की उत्पत्ति करता है।

अष्टांग संग्रहकार ने लिखा है कि:—

अत्यभ्यस्तस्तु सोऽपि शुक्रोपरोधं तृष्णाध्मान-स्तम्भ-विष्टम्भ-कार्श्यम्।
स्रोतोरोधं वातविण्मूत्रसङ्गं पक्षाघाताक्षेपकादींश्च कुर्यात्॥

कषाय रस का अति योग होने पर शुक्रनाश, तृषा, आध्मान, स्तम्भ (मार्गो को रोक देना), उदर में गुड़गुड़ाहट, कृशता, स्रोतों का संकोच, उदरवायु, मूत्र और मल का अवरोध, पक्षाघात, आक्षेप आदि विकार उत्पन्न करता है।

भोजन में मधुर, लवण, अम्ल और कटु रस का जितना उपयोग होता है, उतना तिक्त रस और कषाय रस का नहीं। तिक्त रस में करेला, मेथी आदि बहुत थोड़े पदार्थ हैं। तिक्त अनुरसवाले तिल, स्थलगारल, पालनूली, मन्र (सजीन)

आदि पदार्थ भी कम हैं। कषाय रस मुख्य हो, ऐसे पदार्थ का भोजन प्रायः नहीं होता। अनुरस कषाययुक्त हल्के प्रकार के चावल, कुल्थी, यव, मूंग, राजमाष, तिल आदि अन्न, हरिण, शशा, गवाह (गेंडा), पारावत, कपोत, गोधा (गोह), रोहितक आदि मत्स्य, कुलिङ्ग आदि प्राणियों के मांस, चांगेरी, कर्कशिका, करीर, क्षुद्रक आदि शाक, बालआम्र, बालबिल्व, द्राक्षा, दाडिम, केला, पनस, लवली (हरफरी), पालेवा आदि फल तथा मधु भोजन रूप से प्रयुक्त होते हैं। इनमें कषाय रस अति कम होने से मंद असर दर्शाता है। कषायरसयुक्त औषधियों में हरड़, बहेड़ा आंवला इनका प्रयोग भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम में अति निर्भयतापूर्वक होता है।

हरड़ में कसैला रस है और विरेचन गुण भी है। पहिले विरेचन गुण की समाप्ति होती है अर्थात् मल को अन्त्र से बाहर फेंक देती है। फिर कसैले रस के ग्राही गुण की क्रिया होती है अर्थात् शिथिल अन्त्र को आकुंचित कर देती है। जिससे ये अपनी जवाबदेही का अच्छी तरह पालन कर सकें।

कषाय रस में ग्राही, शोषण और आकुंचन करने का विशेष गुण है। इन गुणों के हेतु से वह अन्त्र, रक्तवाहिनियों और स्रोतों का संकोच करता है। उस में रहे हुए द्रव या क्लेद का शोषण करता है। फिर मल या अन्य द्रव्य को आगे जाने से रोक भी देता है। अन्त्रगत आहार रस (मल) में से द्रव और स्निग्धता का शोषण कर लेता है तथा मल की गति और मूत्र की गति को रोक देता है। यदि दूषित आम उदर में होने पर, भूल से कषाय रस का उपयोग किया जाय तो आमविष प्रकुपित होकर आमज्वर आदि की प्राप्ति कर देता है।

इसमें द्रव का और क्लेद का शोषण करना गुण है। इस हेतु से इस रस का उपयोग प्रदर पर किया जाता है। बाहर से माजूफल या यांत्रिक एसिड आदि के जल का पिचकारी रूप से उपयोग किया जाता है। एवं कितनेक कषायरसप्रधान औषधियों का सेवन भी कराया जाता है।

रक्तस्राव होता हो, तब रक्तरोधनार्थ कषाय रस का उपयोग होता है। फुफ्फुस में से रक्तस्राव, रक्तवमन, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रज स्राव अधिक होनाआदि, इन सब विकारों में कसैली औषधियों का कार्य सफल होता है।

अपचन (आमाशयप्रसेक) में क्लेद को दूर कर पचन क्रिया सुधारनेके लिए तथा अतिसार (अन्त्रप्रदाह) में प्रदाह को दूर कर अन्त्र के भीतर ग्राही असर पहुँचानेके लिये कषायरसप्रधान हरड़, आम की गुठली, नागरमोथा अम्बष्ठा (पाठा) मूंग का यूष आदि प्रयुक्त हैं।

कफकास, राजयक्ष्मा, श्वास आदि रोग में जब कफ दूषित हो जाता है, तब उसे बाहर निकालने और उत्पत्ति को रोकने के लिये खदिर, बहेड़ा, आदि औषधियों का प्रयोग उपकारक माना जाता है।

मसूड़े जब शिथिल हो जाते हैं, तब उनको दृढ़ बनाने के लिये मा कत्थ, हरड़ आदि कषायरसप्रधान औषधियों का मंजन बना कर उपयोग में लाता है। जो क्लेद का शोषण भी करता है।

व्रणों का आकुंचन करने तथा व्रणों के क्लेद को सुखा कर शुद्ध क लिये कषायरसप्रधान औषधियों का लेप हितकारक माना जाता है। कषायर द्रव्यों का त्वचा पर स्थानिक असर भी होता है। इस हेतु से व्रण के अतिरिक्त स्थानों पर भी लेप रूप में उपयोग किया जाता है।

षड्रस

उक्त रसों के सम्यक् योग और अतियोग से ऊपर लिखे गुण-दोषों की होती है। इसलिये जिस गुण की आवश्यकता हो उसके अनुरूप रसप्रधान प का सेवन करना चाहिये, तथा जिस रस के अति सेवन से रोगोत्पत्ति हुई हो, उ परित्याग कर उसके विरोधी रस का उपयोग करना चाहिये।

उपर्युक्त ६ रसों में अग्नि और वायु तत्त्वप्रधान रस प्रायः ऊर्ध्वगामी (ऊपर की ओर गति करने वाले) होते हैं। जल और पृथ्वीतत्त्वप्रधान रस प्रायः अधो (नीचे की ओर गति करने वाले) होते हैं। परन्तु अग्नि, वायु, जल और इन तत्त्वों के मिश्रित हो जाने से रसों की न्यूनाधिकता के अनुसार औषध ऊर्ध्व अधोगति युक्त हो जाती है।

इन रसों के गुणों की न्यूनाधिकता (शरीर पर होने वाला प्रभाव) समझ में आने के लिये पुनः इसी बात को संक्षेप में लिखता हूँ।

१ मधुर रस—वात-पित्त-नाशक और कफ-वर्द्धक है।
२. अम्ल रस—वात-नाशक और पित्त-कफ-वर्द्धक है।
३ लवण रस—वात-नाशक और पित्त-कफ-वर्द्धक है।
४ तिक्त रस—वात-वर्द्धक और कफ-पित्त-नाशक है।
५, कटु रस—वात-पित्त-वर्द्धक और कफ-नाशक है।
६ कषाय रस—वात-वर्द्धक और कफ-पित्त-नाशक है।

उपर्युक्त स्वभाव को दूसरी रीति से कहें, तो—

१ वातवर्द्धक—कटु, तिक्त, कषाय रस।
२. वातशामक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
३ पित्तवर्द्धक—कटु, अम्ल, लवण रस,
४ पित्तनाशक—मधुर, तिक्त, कषाय रस।
५ कफवर्द्धक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
६ कफशामक—कटु, तिक्त, कषाय रस।

जो रस वातवर्द्धक है, उस रस का प्रतियोग होने पर वातप्रकोप होता है। ऐसे समय पर वातशामक रस के उपचार से लाभ हो जाता है।

वात की उत्पत्ति वायु से, पित्त की उत्पत्ति अग्नि से तथा कफ की उत्पत्ति जल से होती है। अतः जो रस जिस भूत की अधिकता से उत्पन्न होता है, वह स्वाभाविक ही उस भूत से उत्पन्न दोष को बढ़ाता है तथा विपरीत भूत से उत्पन्न दोष को शान्त करता है। उदाहरणार्थ वायु में शैत्य, रौक्ष्य, लाघव, वैशद्य और वैष्टम्भ्य गुण हैं, उस के समान योनि और समान गुणवाला कषाय रस है। (यद्यपि चरक संहिता में कषाय को गुरु कहा है, तथापि वह लघुपाकी होने से और वातधातु में भी लघुता होने से दोनों को तुल्यता दर्शायी है) अतः कषाय रस का सेवन करने पर अपने शैत्य से वायु के शैत्य को, रौक्ष्य से रौक्ष्य को, लाघव से लाघव को, वैशद्य से वैशद्य को और वैष्टम्भ्य से विष्टम्भता को बढ़ाता है, अर्थात् कषाय रस सब प्रकार से वातवर्द्धक है।

पित्त में औष्ण्य, तैक्ष्ण्य, रौक्ष्य, लाघव और वैशद्य गुण अवस्थित हैं। उस के समान योनि और समान गुणवाला कटु रस है। वह अपनी उष्णता से पित्त की उष्णता को, तीक्ष्णता से तीक्ष्णता को, रूक्षता से रूक्षता को और विशदता से विशदता को बढ़ाता है। इस तरह कटु रस सर्वभाव से पित्तवर्द्धक है।

कफ में माधुर्य, स्नेह, गौरव, शैत्य और पैच्छिल्य गुण रहते हैं। उस के समान योनि मधुर रस है। वह अपनी मधुरता से कफ की मधुरता को, स्निग्धता से स्नेह को, गुरुता से गौरव को, शीतलता से शैत्य को तथा पिच्छिलता से पैच्छिल्य को बढ़ाता है अर्थात् मधुर रस सर्वभाव से कफवर्द्धक है।

कफ से विषम योनि कटु रस है। क्योंकि कफवर्द्धक मधुर रस जल की अधिकता से और कटु रस अग्नि से उत्पन्न होता है। दोनों परस्पर विपरीत गुणवाले हैं। इस हेतु से वह कटुता (चरपरेपन) से मधुरता को, रूक्षता से स्नेह को, लघुता से गुरुत्व को, उष्णता से शीतलता को तथा विशदता से पिच्छिलता को दबा देता है। इस तरह अन्य रस भी अपने विपरीत रस को दबा देते हैं। परिणाम में उस के अनुरूप मूल धातु, वात, पित्त और कफ में वृद्धि ह्रास हो जाता है।

कभी कभी उक्त नियम के अपवाद स्वरूप उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे अम्ल वस्तु पित्तकर होती है किन्तु अनार और आंवले नहीं। मधुर रस कफकर होता है किन्तु शहद, पुराने शाली-षष्ठिक चावल, जौ और गेहूँ (एवं मूंग, मिश्री और जांगल प्राणियों के मांस आदि) नहीं। कडुआ रस प्राय वातवर्द्धक और अवृष्य होते हैं, किन्तु बेंत के अग्रभाग, गिलोय, पटोलपत्र (कडुवे परवलके पान), कुचिला आदि नहीं। चरपरा रस प्राय वातवर्द्धक और अवृष्य होता है किन्तु लहसुन पिप्पली और सोंठ नहीं। लवण रस अचक्षुष्य होते हैं किन्तु सेंधा नमक नहीं।

यदि वातहर पदार्थ में रूक्ष, लघु और शीतल गुण मिश्रित होगा, तो वह वात को शमन नहीं कर सकेगा। पित्तशामक पदार्थ में तीक्ष्ण, उष्ण और लघु गुण मिला होगा, तो वह पित्तशमन नहीं कर सकेगा। कफशामक पदार्थ में स्निग्ध, भारी और शीतल गुण होगा, तो वह कफ को दूर नहीं कर सकेगा।

मधुर, तिक्त और कषाय रस प्राय शीतवीर्य तथा कटु, अम्ल और लवण रस प्राय उष्णवीर्य हैं किन्तु कितनीक औषधियां विरुद्ध स्वभाव वाली भी हैं। जैसे—बिल्वादि बृहद् पंचमूल चरपरा और कषैला होने पर भी किञ्चित् उष्ण है। सैंधा नमक खारा होने पर भी उष्ण नहीं है। अनार और आंवला खट्टे होने पर भी उष्ण नहीं हैं। आक, अगर, और गिलोय कडुवे होने पर भी किञ्चित् उष्ण हैं। कुचिला कडुवा होने पर भी अति उष्ण है तथा हरड़ कषैली होने पर भी किञ्चित् उष्ण है।

खट्टे रसवाली औषधि कोई ग्राही और कोई भेदन करानेवाली होती है। जैसे कैथ (कपित्थ) ग्राही और आंवला मल का भेदन कराने वाला है।

कषैला रस प्राय स्तम्भन करता है परन्तु कभी कभी इस नियम का भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे—हरड़ कषैली होने पर भी मल का भेदन करती है।

ऊपर लिखे नियमानुसार कितनेक अपवाद भी दृष्टिगत होते हैं। अतः केवल रस पर से ही सब औषधियोंके गुणोंका निश्चय नहीं हो सकता। गुण और प्रभावको समझनेके लिये विशेष शास्त्राभ्यास और अनुभवकी आवश्यकता रहती है।

इनके अतिरिक्त अनेक रसोंवाले द्रव्यामें तथा अनेक दोषयुक्त रोगोंमें प्रत्येक रस और दोष का जो भिन्न भिन्न प्रभाव कहा गया है, उन सबका विचार करके उस औषधि या रोगके प्रभावका निश्चय करना चाहिये। किन्तु यह नियम जिन औषधि में रस सम्मिलन और जिन रोगके भीतर दोषोंका सम्मिलन प्रकृति सम-समवेत हो, उनको लागू होता है। विकृति विषम समवाय वालोंको नहीं।

जो रस अथवा दोषोंका प्रकृति अनुगुण समवाय होता है, उसे प्रकृति सम समवाय कहते हैं। जिनका प्रकृति अननुगुण समवाय होता है, उसे विकृतिविषम समवाय कहते हैं। जैसे तन्तु कपड़ेका समवाय कारण है (इसे वैशेषिक मतमें उपादान कारण कहा है), यह कपड़ा एक ही प्रकार के तन्तुओंसे बुना हुआ हो, तो उसके साथ पट की प्रकृति सम-समवाय और सब रसोंका प्रकृति सम समवेत कहा जायगा। यदि उसमें दूसरे प्रकारके तन्तु मुक्त मिलाये हों, तो उसे विकृति विषम समवाय कहेंगे। इस तरह समान प्रभाव वाले द्रव्योंका समूह हो, इस प्रकृति सम-समवेत और विषम (अस्वाभाविक) प्रभाव वालेको विकृति विषम समवेत कहा है। रोगोंमें भी जो एक कारण है, उनमें कारण या लक्षणोंका प्रकृति-सम-समवाय होता है; किन्तु इसके विपरीत सन्निपात में विकृति विषम समवाय प्रतीत होता है। जैसे "दाहो ... युत शीतम्" आदि लक्षण।

विकृति विषम-समवायमें प्रभावका ज्ञान करना कठिन होता है। विभिन्न प्रभाव वालाके सम्मिलनसे पृथक् प्रभाव उत्पन्न होता है। जैसे हल्दी और चूनेके संयोगसे लाल रंगकी उत्पत्ति होती है। यह लाल रंग हल्दी या चूना, इन दोनोंमेंसे किसीके भीतर नहीं है, यह लाल रंग संयोगजन्य उत्पन्न हुआ है। हींग और कपूर तथा अजय वन पुष्प और कपूरके संमिलनसे द्रवता उत्पन्न होती है। कितनेक वातवर्द्धक शाक लहसुन या हींगाके छौंकसे पित्तवर्द्धक बन जाते हैं।

प्रकृति सम-समवायमें आंशिक ज्ञान पर्याप्त है, क्योंकि, कारण गुण अनुसार कार्य गुण होते हैं तथा कर्म भी सजातीय परपराका अनुसरण करते हैं। अतः उतनेसे ही उसके समुदायका ज्ञान हो जाता है, किन्तु विकृति विषम-समवायमें आंशिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। समुदायके प्रभावके ज्ञानकी आवश्यकता है। जैसे—मधुर आम्रातक (अंबाडा) के रसमें प्रकृतिका सम-समवाय होनेसे मधुर रसके गुणके समान वह वात पित्त शामक है, किन्तु वाताक (चुद्र टमाटर जैसे फल) में विकृति विषम-समवाय है अत वह कटुतिक्त होनेपर भी वात-कारक नहीं है। चरक संहिताकारने "वातघ्नं दीपन चैव वार्ताकं कटुतिक्तकम्" इस वचनसे वातहर कहा है।

पारद-गंधकके संमिलनसे कज्जली बनने पर काला रंग आ जाता है, उसका अग्नि-संस्कार करने पर रसवर्णका रससिंदूर बन जाता है। क्रिया भेदसे इन दोनोंके गुण प्रभावमें विभिन्नता हो जाती है।

सामान्यत घी-शहद समभाग मिलानेका निषेध है (हृल्लास उत्पन्न करता है), किन्तु यह विषम प्रभावयुक्त औषधि सूर्यावर्तमें दाष महिमा और संयोगमहिमाके हेतुसे लाभप्रद होती है। इस तरह आमलकी रसायनमें भी आंवले, घी और शहदको सम भाग मिलाया जाता है, जो रसायन गुण दर्शाता है।

विकृति विषम समवाय असंख्य हो जाते हैं। द्रव्योंमें रसभेद, वीर्यभेद, क्रिया भेद आदि कारणोंसे तथा रोगोंमें व्याधिबल, देहगत स्थानभेद, दोष सूक्ष्म भेद, कारण भेद, मात्रा भेद प्रकृति भेद, आहार विहार भेद आदि कारणोंसे नाना प्रकारके भेद हो जाते हैं। जबतक उनके समुदायकी प्रामाणिक शक्तिका बोध न हो, तबतक इन विषम समवेताका निश्चय नहीं हो सकेगा।

परस्पर रस विरोध

१ मधुर और अम्लरस, दोनोंके वीर्यमें विपरीतता है।

२ मधुर और लवण रस एवं मधुर और कटु रस, परस्पर विरोधी हैं।

३ मधुर और तिक्त रस, दोनोंके रस और विपाकमें विरोध है।

४ मधुर और कषाय तथा अम्ल और कटुरस, इनके रस और विपाकमें विरोध है।

५. अम्ल और तिक्त तथा अम्ल और कषाय, इन सबके रस, वीर्य और विपाकमें विरोध है।

६ लवण और कटु तथा लवण और कषाय, इन सबके रस, वीर्य और विपाकमें परस्पर विरोध है।

७ कटु और तिक्त रसके रस और वीर्यमें विरोध है।

८ कटु और कषाय रस तथा तिक्त और कषाय रस, इनके रसमें विरोध है।

इनमेंसे रस, वीर्य, विपाक, इन तीनोंमें जो विरुद्ध (Antagonists) हों, उन रसोंवाले भोजनका सेवन एक समयमें नहीं करना चाहिये। इसका विशेष विचार भगवान् धन्वन्तरिजीने नीचे लिखे अनुसार किया है।

हिताहितीय द्रव्य—स्वस्थ मनुष्योंके लिये समस्त द्रव्य स्वभावसे अथवा संयोगसे सर्वदा हितकर, अहितकर या हिताहितकर होते हैं। जल, दूध, घृत, भात, गेहूँ मूंग आदि मनुष्यमात्रके लिये हितकारी होते हैं किन्तु ये ही अनेक रोगोंमें हानिकर हो जाते हैं। जलानेके लिये प्रवृत्त हुआ अग्नि, फफोला उठानेमें प्रवृत्त क्षार, तथा मारनेमें प्रवृत्त हुआ विष सर्वदा अहितकर है, किन्तु ये ही अवस्था विशेषमें लाभदायक होते हैं। कतिपय हितकर पदार्थ भी संयोगसे विषके तुल्य हो जाते हैं। इस तरह कई पदार्थ प्रकृति भेदसे एकको पथ्य और दूसरेको अपथ्य हो जाते हैं। अत प्रकृति, ऋतु, स्वभाव और संयोगका विचार कर द्रव्यका उपयोग करना चाहिये।

हितवर्ग—रक्तशाली, सब प्रकारके चावल, नीवार, कोदों, कूट्ट, सामक, गेहूं, जौ, चना, मूंग, मोठ, मसूर, अरहर, मटर आदि धान्य विशेष हिरण, कबूतर, लावा, तित्तर, वनमुर्गा, आदिका मांस, बथुआ, जीवन्ती, चौलाई, पालक, सोया, चौपतिया, तोरई, परवल आदि शाक, गोघृत, शहद, सेंधानमक, अनार, आंवले आदि फल, ब्रह्मचर्य, निर्वात स्थानमें शयन, निवाये जलसे स्नान, रात्रिमें निद्रा और व्यायाम आदि आहार-विहार स्वस्थावस्थामें सबके लिये हितकर हैं।

स्वभावसे अहितसम पदार्थ—वर्षा ऋतुमें नदीका जल, सड़ा मांस, रोगी पशुका मांस, विषसे मरे हुए पशुओंका मांस, भेड़का दूध, कसुमका तैल, कच्चे पके फल, पकी मोटी मूली, बासी उतरे हुए शाक और फल-फूल, गुड़की राब, गोमांस, कपोत मांस, बासी भोजन, ये सब बहुधा स्वस्थ प्रकृतिको भी हानि पहुँचाते हैं।

दुग्धविरोधी पदार्थ—खट्टीरस, (तरोई आदि), छत्राक, करीर, आंवलेके अतिरिक्त नीबू आदि खट्टे फल, नमक, कुलथी, विल्वपाक (बिल्वकुटी), दही, तैल, मछली, गिलोय, सूखे साग, गाद, मुद्गर, बकरी और भेड़का मांस, शराब, जामुन, मूली, इनमेंसे किसीके साथ दूधका मेल नहीं है। इन पदार्थोंमेंसे किसीके साथ खाया हुआ दूध हानिकर हो जाता है।

दुग्धके मित्र—मिश्री, शहद, घी, मक्खन, अदरख, पीपल, मुनक्का, सोंठ, कालीमिर्च, अदरख, हरड़ और सेंधानमक, ये सब दूधके मित्र हैं। अम्लपदार्थमें आंवला मधुर पदार्थोंमें मिश्री, शाक वर्गमें परवल, चरपरे पदार्थोंमें अदरख, कसैले पदार्थोंमें जौ और नमकमें सैंधानमकका उपयोग दूधके साथ किया जाता है।

दहीविरोधी पदार्थ—कोई भी प्रकारके गरम पदार्थ, कोमल कटहल, दूध, तैल, केला, आसव अरिष्ट, मृग-मांस, ताडफल, ये सब दहीके विरोधी हैं। दहीके साथ इनका संयोग होनेपर विकार हो जाता है। इसी तरह रात्रिको भी दही नहीं खाना चाहिये। शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें दहीसे पित्त-प्रकोप होता है, तथा रक्तविकार पित्त-प्रकोप और कफज व्याधिवालोंको भी दही हानिकर होता है।

तक्रविरोधी पदार्थ—घृत केले मातके खील, दूध, सत्तू, इन सबके साथ मट्ठेका विरोध है। इसी तरह क्षतपीडित, क्षीण मनुष्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्त-पित्त विकारवालोंको मट्ठा नहीं खाना चाहिये। एवं उष्णकाल (शरद और ग्रीष्मऋतु) में भी मट्ठेका सेवन नहीं करना चाहिये।

शहदविरोधी पदार्थ—शहदके साथ उष्ण पदार्थ या गरम जल नहीं मिलाना चाहिये। शहद और घी समभाग नहीं मिलाना चाहिये। इसी तरह शहद, घी, मद्य और जल इनमेंसे दो, तीन या चारोंका समभाग संयोग करना हानिकर है। शहदको गर्म करनेका भी शास्त्रकारोंने निषेध किया है। शहदके साथ सुअरके मांस और मूलीका भी विरोध है।

अफीमविरोधी पदार्थ—हींग, तैल या तैलमें बने हुए पदार्थ।

कटहलविरोधी पदार्थ—कटहलके खानेपर नागरबेलका पान नहीं खाना चाहिये। दूध, दही, उड़दकी दाल, शहद और घीके साथ कटहलका विरोध है। कटहल पचन हो जानेके पहिले या पीछे दूधका सेवन करनेसे परिणाममें हानि होती है।

खिचड़ीविरोधी पदार्थ—दूध और खीर।

गुड़विरोधी पदार्थ—मकोय, मछली, सुअरका मांस, और दूध।

मांसविरोधी पदार्थ—विरूढ धान्य (जलमें भिगोकर अंकुर निकले मूंगादि) चरबी, शहद, दूध गुड़ और उड़द।

कुलथीविरोधी पदार्थ—बगुलेका मांस और मद्य।

मकोयविरोधी पदार्थ—पीपल और मिर्च।

नाड़ीशाकविरोधी पदार्थ—मुर्गेका मांस और दही।

पित्तविरोधी पदार्थ—मांस।

खीरविरोधी पदार्थ—शराब और कृशरा (तिल चावलकी खिचड़ी)।

मछलीविरोधी पदार्थ—ईख, गुड़, शक्कर और गुड़ वाले पदार्थ। इसी

तरह श्याम, जामुन, मेष का मांस, सुअर मांस, और गर्मांसका भी विरोध है। मछलीका सबसे अधिक विरोध दूधके साथ है।

केलाविरोधी पदार्थ—तालफल, दूध, दही और मट्ठा।

परस्परविरोधी पदार्थ—जलवासी प्राणियोंका मांस, उड़द, शहद, दूध, अंकुर निकले मूंग आदि धान्य, मूली, और गुड़, ये प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेके विरोधी हैं। इसी तरह अनेक प्रकारके मांसको एक साथ पकानेसे विष सम घातक हो जाते हैं।

ऐसे ही कतिपय विपरीत पदार्थ रोग, देश, काल या प्रकृति भेदसे हितकर हो जाते हैं। जैसे अग्नितप्त शहदको विष समान माना है। फिर भी अनन्तवात (मस्तिष्कगत वातरोग) में अग्निपर पकाये हुए शहदके मालपुए खिलानेसे रोगकी निवृत्ति हो जाती है।

कर्मविरुद्ध पदार्थ—कबूतरके मांसको सरसोंके तैलमें नहीं भूनना चाहिये। चातक, मोर, लावा, तीतर, गोह, इनको एरण्डी तैलमें न पकावें, और न एरण्डकी लकड़ीसे ही पकावें।

काँसेके बर्तनमें १० दिनतक घी रखनेसे दूषित हो जाता है।

शहद गरम पदार्थोंके साथ या उष्णऋतुमें न खावें।

मछली या अदरख जिस पात्रमें पकाया हो, उसमें मकायको न पकावें।

तिलके कल्कके साथ पकाया हुआ पोईका शाक न खावें।

सुअरकी चर्बीमें भूना हुआ बगुलेका मांस, नारियलकी गिरीके साथ न खावें।

छोटे गिद्धको लोह शलाकासे अग्निपर भूनकर न खावें।

मानविरुद्ध पदार्थ—शहद और जल या शहद और घी सममाग मिलाकर सेवन न करें। दो प्रकारके स्नेहों (घी, तैल, चर्बी या मज्जा) को, स्नेह और शहदको या जल और स्नेहको सममाग मिलाकर सेवन न करें।

परस्परविरोधी औषध द्रव्य—उत्क्लेशक कफघ्न और कफशामक औषध। उदाहरणार्थ कटेली या वचा मिश्रित औषधि श्वासनलिका आदिमें श्लैष्मिक कलापर उत्क्लेशना पहुँचा और कास लाकर कफको बाहर निकालती है। इसके विपरीत मिलोपमादि (घृत-शहद-मिश्रित), प्रवाल पिष्टी, मुक्ता आदि क्षोभनाश (कासवेग) का शमन करके कफोत्पत्तिको रोकती है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

स्वेदक और स्वेदावरोधक औषध। स्वेद लाने वाले—पारा, नौसादर, कपूर, खसखस आदि, स्वेदावरोधक वसंत भस्म, धतूरा, सूखी सुंठी आदि, इन दोनों विरुद्ध प्रकारकी औषधियोंका संमिश्रण नहीं करना चाहिये।

कनीनिका प्रसारक और कनीनिका आकुंचक औषधि। प्रसारक-द्रव्य सूची बूटीसत्व तथा आकुंचक द्रव्य फायसोस्टिग्मीन सत्व इन दोनोंको मिलाकर नेत्रमें नहीं डालना चाहिये।

इसी तरह अन्य विरुद्ध धर्मवाली औषधियोंको भी नहीं मिलाना चाहिये। और इसी प्रकार अति शुष्क और अति स्निग्ध, अति उष्ण और शीतल (चाय और आइस्क्रीम आदि) का उपयोग भी एक ही समयमें नहीं करना चाहिये।

तरुण और बलवान तथा व्यायाम करने वाले मनुष्य को तो विरुद्ध भोजन भी प्रायः विशेष बाधा नहीं पहुँचा सकता। परन्तु सामान्य व्यक्तिको चाहिये कि, नियम भंग न करें।

विरुद्ध पदार्थकी मात्रा थोड़ी होनेपर बहुधा हानि नहीं पहुँचा सकती। फिर भी कदाचित् किसी विरुद्ध पदार्थके खानेसे कोई विकार हो जाय, तो वमन, विरेचन या शमन पदार्थका सेवन कर प्रकृतिको सत्वर स्वस्थ बना लेना चाहिये।

विरुद्ध संयोग वाले या स्वाभाविक दोषयुक्त एवं प्रकृतिविरुद्ध पदार्थोंके दोषोंसे बचनेके लिये दोषशामक औषधियोंके ज्ञानकी परमावश्यकता है, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य भोजनके समय सावधानता रख सके और भूल हो जानेपर यद्व जस्ट दोषको दूर कर सके। जैसे केला गुरु है, किन्तु उसका उपयोग घी, मिश्री और इलायचीको सम्मिलित करके किया जाय, तो उसकी गुरुता दूर हो जाती है। एवं केलेका अजीर्ण भी इलायचीके सेवनसे शीघ्र ही मिट जाता है। सामान्यतः मिठाई या फल आदिमें जिससे अजीर्ण हुआ हो, उसको जला, राख कर शहदके साथ सेवन करनेसे भी अजीर्णकी निवृत्ति हो जाती है।

जैसे केलाके लिये घी,मिश्री और इलायची दोषशामक औषधि है वैसे अनेक वस्तुओंके लिये पृथक्-पृथक् दोषशामक औषधिया कही गई हैं उनमेंसे कुछ नीचे औषधियोंकी सूची दी जाती है। इसके अनुरूप अन्यान्य दोषशामक औषधियोंकी योजना देशकालानुसार आवश्यकतापर कर लेनी चाहिये।

कारख रूप औ०	दोषशामक औ०	कारख रूप औ०	दोषशामक औ०
अखरोट	अनारदाने	आम	सोंठ, नमक सिकंजबीन
अगर	कपूर, गुलाबका फूल	आम पक्के	दूध
अदरख	कपूर, शहद	आमाहल्दी	नारंगी
अनन्नास	सौंफ, मिश्री	आलूबुखारा	रूमीमस्तगी
अफीम	केशर, दालचीनी, हींग	अंजीर	बादाम
अम्लवेत	लौंग, कालीमिर्च	इन्द्रजव	धनिया
अलसी	धनियाँ, सिकंजबीन	इमली	कौड़ी भस्म, धनकसा, नमक।
अरंड ककड़ी (पपीता)	शक्कर	इलायची	गुलाब के फूल
असगन्ध	कतिरा गोंद	कनेर	घी, मिश्री मिला दूध, शहद
आक	घृत		

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
कपूर	एलुआ, केशर, कस्तूरी
करौंदा	नमक
कसाव	दही
कटहरके पक्के फल	नारियल, अनारदाने, पेठा।
कचूर	धनिया, अगर, श्वेत चन्दन।
कांदा (प्याज)	नमक और सिरका
काच	दही, गोपीचन्दन, घी, बड़ी दूधी
किनाईन	दूध, च्यवनप्राश-अवलेह, सुवर्ण माक्षिक भस्म, सितोपलादि चूर्ण।
कुचिला	वमन कराना, घी, मिश्री मिला दूध।
कुटकी	घी, शहद-पीपल, जावित्री।
खत्ता	घी, मिश्री और इला खट्टी छाछ और नमक।
कौंच	दही, घी
कैथ	नामकी निबौलियाँ
केरोसीनतेल	बबूलका गोंद, बिही दाना
खसर (सुराप)	सोंठ, नागरमोथा, दूध-मिश्री, दही घी
खिरनी	नीम की निबौलियाँ
गुड़	नारियल धोका लेप, मक्खन, दही, चिरायता गिलोय
गूलर के फल	सोंठ का क्वाथ
गुंजा (चिरमी)	धनिया, दूध
घी	नीबू, कोकम, अनार, नमक, गरम जल, कांजी, निवाया माण्ड, काली मिर्च।
चना	दही, घी, गुलकंद
चावल	त्रिकटु, दूध-शक्कर, नमक।
चिरौंजी	हरड़
चूना	घी, बादामका तेल मक्खन।
जसद भस्म (अशुद्ध)	हरड़ और मिश्री मिला दूध, कत्था
जायफल	धनिया, [illegible], शहद।
जाम (अमरूद)	नमक, सौंफ, अदरक का मुरब्बा।
जामुन	नमक
[illegible]	घी
जमालगोटा	घी, कत्था, मिश्री मिला दही, वमन कराना, गन्ना शर्बत पिलाना।
ज्वार	दही, घी, गुलकन्द
छाछ	नमक, निवाया माण्ड।
तमाखू	दूध, गुलकन्द
ताम्रभस्मकी उष्मता	मोतीपिष्टी, शुक्ति-भस्म, धानका धोवन, मिश्री मिला धनियेका हिम।

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
ताँबे का जहर	घी, विरेचन देना, नीबूका शर्बत ।
थूहर का दूध	घी, मक्खन, दही, शहद ।
द्राक्षा	गुलकन्द ।
दही	जीरा-नमक, शक्कर, सोंठ
दूध	शक्कर
धतूरा	घी, दही, मिश्री मिला दूध
नारंगी	मिश्री, नमक
नारियल	शक्कर, गुड़ नमक
नीबू	नमक
नीलाथोथा	कत्था, शर्बत नीबू, शर्बत अनार, मिश्री मिला दूध, तिल तैल, धानके लावा का जल।
पारद	शुद्ध गन्धक, चौलाई की भाजी, धमासाका क्वाथ दूध, घी, हरड़ ।
वच	सौंफ, सिकंजबीन, घी ।
वत्सनाग	घी, दूध, हृदयपौष्टिक औषधि ।
बाजरा	घी, शक्कर
बादाम	शक्कर
ब्राह्मी	चन्दन सफेद गुलाब जल ।
बेर	गुलकन्द
बैंगन	घी
दूषित वंगभस्म	मेढ़ाशृङ्गी का चूर्ण और मिश्री दूध के साथ

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
भाँग, गाँजा	तेज कॉफी, दही, घी, निद्रा, शराब ।
भिलावा	नारियलकी गिरी, चिरौंजी, बादाम ।
मैनफल	शहदमिश्रित दूध
मुरदासंग	घी, बादामका तैल, वमन, अनारदानाका रस
मंडूर भस्म (दूषित)	कसीसा, शहद, अरंडी का तैल
मद्य	मक्खन-मिश्री, मुनक्का, मट्ठा, फिटकरीका जल, मीठा अनार ।
मिर्च	घी नीबूका रस, मट्ठा
रसकपूर	गन्धक, गायका दूध, चौलाई की जड़, घी, सोहागेका फूला
अशुद्ध रौप्य	मिश्री-शहद
लहसुन	दही, घी, मट्ठा
लोहभस्म (दोषवाली)	अगस्तपत्रके रसके साथ भावित, अमलतासकी फलीका गूदा
शतावरी	शहद पीपल
सीसा भस्म (अशुद्ध)	सुवर्णका वर्क, हरड़-मिश्री ।
शिलाजीत	घी, दूध, लस्सी ।
सिंदूर	शर्बत-नीबू, चिरमीके पत्ते, मुलहठी ।
सिंघाड़ा	सोंठ और नागरमोथा ।
सुवर्णभस्म (अशुद्ध)	हरड़ और मिश्री दूध के साथ ।

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०	कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
सोमल	घी, दूध मिश्री, मलाई, कत्था, सोहागेका फूला।	कलदिया विष	घी पीकर वमन कर
सोपारी	दूध, मिश्री, गुड़	हरत	घी, शहद
हल्दी	बिजौरेका रस, नीबूका रस।	हींग	जीरा, अनारदान
		हीरा	घी पिलाकर वमन करावें, कतीरा गोंद, धनपत्ता क्वाथ।

—•—

(२) गुण।

उपर्युक्त ६ रस के न्यूनाधिक अंश के संयोग से नाना प्रकार के गुणों की उत्पत्ति होती है। इन गुणों के प्राचीन आचार्यों ने निम्नानुसार २० विभाग किये हैं:—गुरु, मन्द, शीतल, स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म और विशद; तथा इनके क्रमशः विरोधी लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, सर, स्थूल और पिच्छिल। इन २० गुणोंमेंसे वात धातुमें रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म और चल, ये ६ गुण पित्त धातुमें सस्नेह (किञ्चित् स्निग्ध), तीक्ष्ण (शीघ्रकारी), उष्ण, लघु, विस्र (आम गन्धयुक्त), सर (व्याप्तिशील) और द्रव, ये ७ गुण कफ धातुमें स्निग्ध, शीत, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, स्थिर (व्याप्तिशील) ये ७ गुण अवस्थित हैं।

> गुरु मन्द हिमस्निग्धश्लक्ष्ण सान्द्र मृदु स्थिराः।
> गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥
> तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः।
> पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम्॥
> स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः।

उपर्युक्त गुणयुक्त औषधियोंके फलमें कालभेदसे विविधता हो जाती है। सत्वर फलदर्शक, पाककालमें परिणामदर्शक और कालान्तरमें प्रभावदर्शक। अथवा गुण, विपाक और वीर्य प्रभावसे परिणाममें भेद दर्शाया है। जैसा कि भगवान् धन्वन्तरिजीने निम्न वचनसे बतलाया गया है।

> सद्द्रव्यमात्मना किञ्चित् किञ्चिद्वीर्येण सेवितम्।
> किञ्चिद्रसविपाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति वा॥
> (सु० सू० अ० ४० १८)

कितनेही द्रव्य अपने आत्मभाव (प्राकृतिक गुण) से कई वीर्यभावसे, कई रस गुणसम तथा कितनेही विपाकके अनुरूप वायका घटाते हैं या कम करते हैं।

सब द्रव्य केवल रस अनुसार या गुण अनुसार फल नहीं दर्शा सकते। क्योंकि द्रव्यका सेवन करने पर उसके साथ, लाला, आमाशय रस, यकृत्पित्त, अग्न्याशयका रस, अन्त्ररस, आदि विशेषतः मिल जाते हैं, जिससे गुणमें बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। अनेक औषधियोंके वीर्यका शोषण रक्तमें होनेके पश्चात् उसके साथ अनेक अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंके रसका संमिलन होजाता है। जिससे वे कुछ कालके पश्चात् फल दर्शाती हैं। इस तरह केवल बाह्य प्रयोगों द्वारा औषधियोंके फलका निर्णय नहीं हो सकता।

अन्य रीतिसे भिन्न-भिन्न गुणोंके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ रूपविभाग होते हैं। कौन-कौनसे रस वाले पदार्थमें किस-किस रीतिसे उत्तम, मध्यम आदि विभाग होते हैं। यह चरक संहितामें नीचे लिखे अनुसार दिखाया है।

१ गुरु—बृंहणकारी। अवसादजनक, उपलेपकारी (मलवर्द्धक), बल तृप्ति और पुष्टिकर। यह वातहर, देहको पुष्ट बनानेवाला, कफकर और चिरपाकी है।

२ मन्द—शामक। शिथिलताकारक या मंदतासे कार्य करनेवाला।

३ हिम—स्तम्भनकारी। उष्णतासे पीड़ितोंको सुखदायी, स्तम्भन और शीतल, मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाहका नाशक।

४ स्निग्ध—क्लेदनकारी। स्नेह और मृदुता लानेवाला, बलवर्द्धक, वर्णप्रद। वातहर, श्लेष्मकर, वृष्य, देहको चिकना बनानेवाला।

५. श्लक्ष्ण—स्नेहरहित, कठिन होते हुए भी चिकना (चिकण)। व्रणरोपण, तैजस।

६ सान्द्र—देहको स्थूल और पुष्ट बनानेवाला। प्रसादन शक्ति वाला।

७ मृदु—कोमलता लानेवाला। दाह, पाक और स्रावका नाशक। आकाश और जलकी प्रधानतावाला।

८ स्थिर—धारण करनेकी शक्तिवाला। वात और मलका स्तम्भक।

९. सूक्ष्म—सूक्ष्म सूक्ष्म स्रोतोंमें प्रवेश करनेकी शक्तिवाला। स्रोतोंको खोलनेवाला।

१० विशद—क्लेदशोषक। क्षालन करनेवाला। व्रणरोपण। पार्थिव और वायव्य।

११ लघु—लङ्घनकारी। गुरुसे विपरीत अर्थात् उत्तेजना, मलक्षय, निर्मलता और कृशता लानेवाला तथा व्रणरोपण। यह परम पथ्य, कफघ्न और शीघ्र पचनेवाला है।

१२. तीक्ष्ण—शोधक। दाहजनक, पाक और स्राव करानेवाला। यह पित्तकर लेखन, कृशता लानेवाला, कफघ्न और वातहर है।

१३ उष्ण—(स्वेदकारी) शीतगुणसे विपरीत अर्थात् गरम। शरीरको कष्ट

देनेवाला, रस, रक्त आदिकी प्रवृत्ति करनेवाला, मूर्छा, तृषा, स्वेद और दाहको उत्पन्न करनेवाला । पाचन ।

१४ रूक्ष—स्निग्धसे विपरीत । शोषणकारी । रूक्षता और कठिनता लानेवाला । बल और वर्णका ह्रास करानेवाला । इसमें यह गुण वातकर और परम कफहर है ।

१५. खर—खर (कर्कश) स्पर्शयुक्त । लेखनकारी । वायुगुणकी प्रधानतावाला ।

१६ द्रव—देहको आर्द्र (तर) बनानेवाला । प्रवाही, सर्वत्र व्याप्त होनेकी शक्तिवाला ।

१७ कठिन—द्रव्यको दृढ़ बनानेकी शक्तिवाला ।

१८ सर—अनुलोमन । प्रेरक शक्तिवाला । वायु और मलकी प्रवृत्ति करानेवाला ।

१९. स्थूल—देहमें स्थूलता लानेवाला । स्रोतावरोधक ।

२० पिच्छिल—लेपनकारी । जीवनप्रद, बल्य, अस्थि-सन्धानक, कफकर और गुरु । लेसदार (चिपचिपा) । आप्य ।

इनके अतिरिक्त आयुर्वेद साहित्यमें प्रचलित पारिभाषिक

गुणदर्शक शब्द ।

१ दीपन—जठराग्निप्रदीपक ।

२. पाचन—आमपाचक ।

३ संशमन—न्यूनाधिक वात, पित्त, कफको प्रकुपित न करते हुए स्थापित करनेवाला द्रव्य ।

४ अनुलोमन—अपक्व मलको पकाकर और मार्गमें उत्पन्न मलिन बन्ध हटाकर देहमेंसे अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

५. स्रंसन—कोठमें चिपके हुए पकाने योग्य अपक्व मल, कफ, पित्त आदिको अपक्वावस्थामें ही नीचे गति करानेवाला ।

६ भेदन—पतले, गाढ़े और पिण्डित (गांठ जैसे बंधे हुए) मलको तोड़कर नीचे गिरानेवाला ।

७ विरेचन—पक्व और अपक्व मल को प्रवाही बनाकर फेंकनेवाला ।

८. संशोधन—देहमें संगृहीत मलको उनके स्थानोंसे खींचकर ऊर्ध्व या अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

९. ग्राही—दीपन, पाचन, और द्रवशोषक ।

१० स्तम्भन—रूक्ष, शीतल, कषाय और पाक में लघुगुणयुक्त, वातवर्द्धक और रोकनेवाला, अथवा बाहर निःसरणशील, उत्तेजक मल आदि की गति का रोधक ।

वक्तव्य—ग्राही औषधि आग्नेय गुणयुक्त होने से जलीय अंश का शोषण करती है। फिर मलको धारण करती है। स्तम्भन औषधि वातप्रधान और शीतल गुणयुक्त होनेसे वात की वृद्धि करके मल आदि को रोक देती है।

११ छेदन—चिपके हुए कफ आदिको बलपूर्वक उखाडकर निकालनेवाला।

१२. लेखन—धातु और मलको सुखाकर बाहर निकालनेवाला।

१३ प्रमाथी—१ स्रोतोंके भीतर संगृहीत विकार को दूर करनेवाला। २ सूक्ष्म, तीक्ष्ण और व्यापक गुणयुक्त। ३ सूक्ष्म और तीक्ष्ण गुण के हेतु से स्रोतों में प्रवेश कर चिपके हुए दोषोंको उखाडकर पृथक् करनेवाला।

१४ अभिष्यन्दि—रसवाहिनियों का अवरोधक और देह में भारीपन लानेवाला।

१५ आशु—जलमें गिरी हुए तैलकी बूंदके सदृश देहमें सत्वर फैलानेवाला।

१६ व्यवायी—पहिले देहमें व्याप्त होकर फिर पचन होनेवाला। शराब, भाँग, अफीम आदि।

१७ विकाशी—अपक्वावस्थामें ही देहमें व्याप्त होकर धातु को शिथिल बनानेवाला ओजशोषक। सुपारी, कोदों आदि।

१८. विष—व्यवायी, विकासी, कफनाशक, मादक, आग्नेय गुणविशिष्ट, प्राण नाशक और योगवाही।

१९. मादक—(मदकारि)—बुद्धि का लोप करानेवाला। तमोगुणप्रधान द्रव्य।

२० विदाही—जिस द्रव्यके सेवनसे खट्टी खट्टी डकार आने लगे, तृषा उत्पन्न हो, हृदयमें दाह हो तथा भोजनका परिपाक देर से और दुःख पूर्वक हो।

२१ दारण—पक्वव्रण को खोलनेवाला।

२२. पीडन—व्रण आदिका पाक (पचन) करानेवाला।

२३ विम्लापन—लेप या अभ्यङ्ग करने पर अपक्व व्रणशोथको फैलानेवाला या अंगुली आदिसे मर्दन करनेपर शोथको दूर करनेवाला द्रव्य।

२४ निर्वापण—पकते हुए व्रणकी दाह पीडा आदि का शामक।

२५. उत्सादन—शुष्क, अल्प मांसवाले तथा गहरे व्रणमें मांसकी वृद्धि करके ऊँचा लानेवाला द्रव्य।

२६ अवसादन—उभरे हुए कोमल मांसमय व्रणको बैठाकर सम अवस्थामें लानेवाला द्रव्य।

२७ रोमशातन—बालों पर लगानेसे उनको निकाल देनेवाला द्रव्य।

२८ संधान—कटे हुए अवयवोंका संयोजन करनेवाली औषधि।

२९. स्वेदन—स्वेद लाकर स्तब्धता, गुरुता, और शीत का नाशक। स्निग्ध

या रुक्ष, द्रव या कठिन, किसी भी द्रव्य में उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, प्रसरणशील, सूक्ष्म और गुरुपाक, ये गुण हों, उससे प्राय स्वेदन कार्य हो सकता है।

३० स्नेहोपग—स्नेहद्रव्योंकी स्नेहन क्रियामें सहायक।

३१ स्वेदोपग—स्वेदन क्रियामें सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३२ वमनोपग—वामक द्रव्यों की सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३३ शिरोविरेचनोपग—मस्तिष्क में जमे हुए दोषों को गिरानेवाला द्रव्य।

वक्तव्य—स्नेहोपग, स्वेदोपग, वमनोपग, विरेचनोपग (इस तरह आस्थापनोपग, अनुवासनोपग) गणों में जो द्रव्य हैं वे प्रधानतया स्नेहन, स्वेदन आदि कार्य नहीं करते; वे केवल स्नेहन आदि द्रव्योंकी शक्ति बढ़ानेका कार्य करते हैं। किन्तु शिरोविरेचनोपग गणके द्रव्य शिरोविरेचन में प्रधानकार्य करते हैं, वे सहायक मात्र ही द्रव्य नहीं है।

३४ पुरीषविरजनीय—मलके दोषको दूरकर स्वाभाविक रंग लानेवाली औषधि।

३५ शोणितस्थापन—१ रक्तके दोषको हटाकर रक्तको प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ रक्तके अतिस्रावको स्तम्भन करनेवाली औषधि। इसके ४ विभाग हैं। संधान, स्कंदन, पाचन और दहन।

३६ वेदनास्थापन—१ उत्पन्न हुई वेदनाको नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ वेदनाओं (वेग) के निग्रह होने पर उत्पन्न विकृति को हटाकर पुन वेदना उत्पादक औषधि।

३७ प्रजास्थापन—संतान विनाशक दोषको दूर कर सन्तानकी स्थापना करनेवाला द्रव्य।

३८ वयःस्थापन—युवावस्थाकी प्राप्ति करानेवाली औषध, इसे रसायन भी कहते हैं।

३९ संज्ञास्थापन—बेहोशी होने पर चेतना लानेवाला द्रव्य।

४० संज्ञाहर—मस्तिष्क और सुषुम्णा कांड में स्थित नाड़ी नसों पर असर पहुँचाकर बेहोश बनानेवाला द्रव्य। इसे स्वापजनन भी कहते हैं।

४१ क्षेत्रीकरण वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्मसे विशुद्धकी हुई देह, जो रसायनके योग्य बनाई हो, वह।

४२ रसायन—१ वृद्धावस्था और व्याधियोंके आक्रमण से देहकी रक्षा करनेवाला। २ स्वस्थ मनुष्यके लिये ओजस्कर और श्रेष्ठ गुणकी प्राप्ति करानेवाला (दीर्घायुकी प्राप्ति करानेवाला) ३ जराव्याधिका नाशक।

४३ वाजीकरण—शुक्र शक्तिकी वृद्धि करनेवाला। सुश्रुतसंहितामें इसके ३ प्रकार बताये हैं। शुक्रजनन, शुक्रप्रवर्तक तथा शुक्रजनक प्रवर्तक।

४४ शुक्रल—(शुक्रजनक) वीर्यवर्धक।

४५. शुक्रप्रवर्त्तक—शुक्रको उत्तेजित करनेवाला।

इस सम्बन्धमें श्री शार्ङ्गधराचार्यने विशेष रूप से लिखा है कि—

> प्रवर्त्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम्।
> जातीफलं स्तम्भकं च शोषणी च हरीतकी ॥

स्त्री वीर्यका प्रवर्त्तक। बड़ी कटेलीके फल वीर्य विरेचक। जायफल वीर्यस्तम्भक। हरड वीर्यशोषक-वीर्यको क्षीण करानेवाली। मतान्तर में चतुर्थपाद—'कालिङ्ग क्षयकारो च' अर्थात् तरबूज वीर्यका क्षयकारक है।

४६ जीवनीय—१ जीवनके लिये हितकर, २ सौम्य धातुकी वृद्धि करने वाली, ३ देहको सुदृढ़ अथवा निरोग बनानेवाली औषधि।

४७ क्षुन्निग्रह—भोजन न करने पर भी श्लेष्म विकारसे तृप्तिके समान भास होता हो, उसे दूर करनेवाला।

४८ ग्लपन—अवृष्य, सुरत समागमकी शक्तिका ह्रास करानेवाला।

४९. योगवाही—१ पच्यमान अवस्थामें संसर्गी वस्तुके गुणको ग्रहण करने-वाला। २ अपना गुण परित्याग किये बिना अपनेमें रहे हुए गुणोंमें जो गुण सयोगी औषध सदृश हो, उसके द्वारा संयोगी औषधकी शक्तिको पूर्ण करनेवाला।

वक्तव्य—अष्टांग-हृदयके टीकाकार अरुणदत्तने योगवाहीकी निम्न लिखित ३ व्याख्याओंको अशुद्ध बतलाया है।

"१ इतर द्रव्यके साथ मिलने पर अपने स्वभावका परित्याग कर संयुक्त द्रव्यके स्वभावका अनुकरण करनेवाला। २ इतर द्रव्यके साथ मिलनेपर उसकी शक्तिमें वृद्धि करनेवाला। ३ अन्य गुण-युक्त द्रव्यके साथ संयुक्त होकर उस सदृश गुणानुयायी बर्ताव करते हुये उसके अविरोधी अपना कार्य भी कुछ अंशमें करनेवाला।

५० तर्पण—१ तृप्तिकारक और रस आदिका वर्द्धक। २ दृष्टिप्रसादन क्रियाको नेत्रतर्पण कहा है।

५१ मार्गविशोधन—मलमूत्रका अवरोध होनेपर उन मार्गोंका शोधन करना।

५२. पुंसत्वोपघाति—शुक्रनाशक।

५३ बृंहण—देहको मोटा बनानेवाली औषधि। यह औषधि बहुधा गुरुपाकी शीतवीर्य, मृदु, स्निग्ध, घन, स्थूल, पिच्छिल, मंद, स्थिर श्लक्ष्ण गुणयुक्त होती है।

५४ लघन—देहमें लघुता लानेवाली औषधि। यह औषधि प्राय लघुपाकी, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, विशद, रूक्ष, खर, सर और कठिन गुणयुक्त होती है।

५५. हृद्य—हृदयके लिये हितकर। हृदयप्रीतिक।

५६ उत्तेजक—देहमें उत्तेजना (तेजी) लानेवाली औषधि।

५७ शामक—अवसादक, शैथिल्यकर।

५८ क्षमतासाधक—त्वचापर दाह उत्पन्नकर तथा रक्त सञ्चालनमें उत्तेजना लाकर वेदनाको दूर करनेवाली औषधि।

५९. प्रत्युमतासाधक—जिन उग्रतासाधक औषधियोंकी क्रिया प्रतिफलित हो अर्थात् एक स्थानपर प्रयोजित औषधिका परिणाम इतर सम्बन्धवाले स्थानपर प्रकाशित हो, ऐसी औषधि।

६० रक्तप्रसादन रक्तमें उत्पन्न विकृतिको दूरकर पवित्र बनानेवाली औषधि।

६१ मेधाकर—संज्ञावाही नाड़ियों और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारणाशक्तिकी वृद्धि करानेवाली औषधियां।

६२. रुजाप्रोपघ्न—स्थानिक व्यथाके कारण रुजदोष या निर्बलताको दूर करनेवाली औषधि।

६३ रजोनिःसारक—त्रासजनक शूल, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुनः स्वाभाविक नियमानुसार स्थापन करनेवाली औषधि।

६४ कीटाणुनाशक—रक्त, त्वचा, श्लैष्मिककला, लसीकाग्रन्थियों आदिमें उत्पन्न या बाहरसे प्रविष्ट सूक्ष्म कीटाणु और उनसे उत्पन्न विषको नष्ट करनेवाली औषधि।

६५ फेनीभवन—किसी भी वस्तुके मूल द्रव्योंकी रासायनिक या प्राकृतिक रचना विकृति होना, खमीर बनना। विकृतिकर पदार्थके प्रभावसे भिन्न भिन्न परमाणुओंका विगलन।

गुण	उत्तम गुणयुक्त रस	मध्यम गुणयुक्त रस	कनिष्ठ गुणयुक्त रस
रूक्ष	कसैला	चरपरा	कडुआ
उष्ण	खारा	खट्टा	चरपरा
स्निग्ध	मधुर	”	खारा
शीतल	”	कसैला	कडुआ
गुरु	”	”	खारा
लघु	कडुआ	चरपरा	खट्टा

जैसे उपर्युक्त कोष्ठकमें प्रारम्भमें रूक्ष गुण है, वह कसैले पदार्थोंमें उत्तम प्रकारका, चरपरे पदार्थोंमें मध्यम प्रकारका, और कडुवे पदार्थोंमें कनिष्ठ प्रकारका दिखाया है। वैसे ही अन्य गुणोंके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारको भी समझ लेवें।

रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद, खर इन गुणोंसे वातवृद्धि और इनसे विपरीत गुणोंसे वात-शमन होता है।

स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कटु (चरपरा), इन गुणों वाली औषधियोंसे पित्त बढ़ता है और इनसे विपरीत गुणयुक्त औषधियोंसे पित्त शमन होता है।

गुरु शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर, पिच्छिल, ये गुण कफकारक और इनसे विपरीत गुण कफनाशक हैं।

वात, पित्त, कफ, इन धातुओंके गुणोंमेंसे कितने ही गुण परस्पर विपरीत हैं। परमात्माने इन विपरीत गुणोंको मर्यादामें रखकर इनसे शरीर-संधारण और शरीर पोषण रूप कार्य लिया है। परन्तु जब प्रमाद या भूलके हेतुसे विषमताकी प्राप्ति होती है तब सूक्ष्मतर त्रिधातु या उनमें रही हुई रोग निरोधक शक्ति साम्यता स्थापित करनेके लिये विविध व्यापार करने लगती है। उस समय पर औषध आदि द्वारा रोग निरोधक शक्तिको सहायता दी जाय, तो शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

यदि वातके रूक्ष गुण की वृद्धि होने पर कफ में स्निग्ध गुण बढ़ाया जाय, तो वातप्रकोप शमन हो जाता है। पित्तके तीक्ष्ण गुण की वृद्धि होने पर इसके विरोधी कफ के गुरु, मंद आदि गुणोंकी वृद्धि कराई जाय, तो तीक्ष्णत्वका ह्रास हो जाता है। इसी तरह अन्य गुणोंकी वृद्धि होने पर उनके प्रतिकूल गुणकी वृद्धि कराई जाती है।

उपर्युक्त २० गुण-विभागके अतिरिक्त रोगशमन या देहमें होनेवाले विविध गुण प्राप्तिकी दृष्टिसे औषधियोंके अनेक गुण विभाग-वर्गीकरण (Classification) किये हैं। इनमेंसे यहाँ १०० विभाग वर्ग (groups) लिखे हैं।

आयुर्वेद और एलोपैथीने औषधियोंके गुणोंके अनुरूप नाना-विभाग किये हैं। इनमें से अनेकोंकी परिभाषा उभय शास्त्रमें समान है। इन विभागोंका डाक्टरी शैली अनुसार विवेचन भी उपादेय है। यह आयुर्वेदज्ञ विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी प्रतीत हुआ है। अत इनकी विचारणा इस ग्रन्थमें वैज्ञानिक शैलीसे शास्त्रानुकूल युक्तिपूर्वककी गई है।

डाक्टरी मतानुसार गुणविभाग।

(१) सार्वदेहिक-Systematic अर्थात् जिनका फल शारीरिक आशयोंकी क्रिया पर हो।

(२) परंपरा सार्वदेहिक-Nonsystematic अर्थात् जिनका फल अवयवों के भीतर रहे हुये अपर पदार्थ (कृमि, मल आदि) पर प्रकाशित हो।

(१) सार्वदेहिक फलदर्शक।

(अ) व्यापक (General) फलदर्शक-रक्ताभिसरण संस्था, वातसंस्था, रस संस्था आदि सब पर परिणाम कारक।

(आ) स्थानिक (Local) स्थानविशेष या यन्त्रविशेष पर परिणामी।

१ अ व्यापक फलदर्शक।

इस श्रेणीकी औषधियाँ शारीरिक क्रिया पर उत्तेजना, अवसादन या परिवर्तन द्वारा कार्य करती हैं। अतः इनके क्रियानुरूप निम्नलिखित तीन विभाग होते हैं।

A उत्तेजक—शामक Stimulants.

B अवसादक—Sedatives.

C परिवर्तक—शोधन—Alteratives.

A. उत्तेजक औषध।

सब उत्तेजक औषधियोंकी क्रियाका अन्वेषण करने पर विदित होता है कि इनमें कतिपय औषधियोंकी क्रिया शनैः शनैः क्रमशः प्रकाशित होती है और कुछ काल तक स्थिर रहती है। एवं कितनोंही औषधियोंकी क्रिया तीव्र वेगसे सहसा प्रकाशित होकर अल्प समयमें ही पर्यवसित हो जाती है। इस हेतुसे उत्तेजक औषधियोंमें स्थायी (Permanent) और प्रसारणशील किन्तु अस्थायी (Diffusible) ऐसे दो विभाग हो जाते हैं।

स्थायी उत्तेजक औषधिया—इनमें कतिपय औषधियाँ द्वारा शारीरिक आकुञ्चन शक्तिकी वृद्धि होती है, इनका संकोचकारी—ग्राही (Astringents) संज्ञा दी है। कतिपय औषधियाँ जीवनीय क्रिया को उत्तेजित और सबल बनाती हैं, इनका बलदायक-पौष्टिक (Tonic) संज्ञा दी है।

अस्थायी उत्तेजक—इस प्रकार में उत्ताप, विद्युत (Electricity) प्रभृति की क्रिया समग्र शरीरमें प्रकाशित होती है। इनको व्यापक (General) उत्तेजक संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त इस विभागकी कतिपय औषधियोंकी क्रिया रक्तसंचालन यन्त्र अथवा वातवहा नाडीमण्डलका उत्तेजित करती है। अतः इनमें तीन विभाग होते हैं। १ धामनिक उत्तेजक—Arterial stimulants २ मस्तिष्क उत्तेजक—Cerebral stimulants; ३ सुषुम्णा उत्तेजक—Spinal stimulants।

(१ धामनिक उत्तेजक औषध द्वारा रक्ताभिसरण क्रियाका वेग, हृत्स्पन्दन और धमनी स्पंदन, इन सबमें वृद्धि होती है और तज्जनित शारीरिक उष्णता भी बढ़ जाती है।

(२) मस्तिष्क उत्तेजकमें निम्नानुसार दो उपविभाग हैं—

(अ) वातनाड़ी उत्तेजक (Nervous stimulants)—अर्थात् कितनीही औषधियोंकी क्रिया समग्र वातवहा नाड़ियोंको समान रूपसे उत्तेजना देती है और किसी विशेष वातनाडी मूलपर आक्रमण नहीं करती। यह वात नाड़ियोंके विषमताका दमन कर आक्षेप निवारण करती है। इस हेतुसे इस श्रेणीकी औषधियोंको वाताक्षेपघ्न या आक्षेपनिवारक (Antispasmodics) संज्ञा दी है।

(आ) मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral stimulants)—कितनीक औषधियोंकी क्रिया विशेषांशमें बृहद् मस्तिष्कके ऊपर प्रकाशित होती है। यदि इसकी क्रिया अधिक होती है, तो मस्तिष्कक्रिया विकृत होकर बेहोशी ला देती है। अत: ऐसी औषधियोंको स्वापजनक (Narcotics) संज्ञा दी है।

(इ) सुषुम्णा उत्तेजक (Spinal stimulants)—कितनी ही औषधियोंका प्रभाव सुषुम्णाकी प्रत्यावर्तन क्रिया (Reflex) पर पड़ता है, उनको सुषुम्णा उत्तेजक संज्ञा दी है।

B अवसादक औषध।

इन औषधियोंकी क्रिया जीवनीय शक्तिको अवसन्न करती है।

१ व्यापक अवसादक (General Sedatives)—इस श्रेणीकी औषधियोंकी क्रिया समस्त शरीर पर प्रकाशित होती है। जैसे—जल, शैत्य, दोहन आदि।

२. धामनिक अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ हृदय और सब धमनियोंके स्पन्दनका ह्रास कराती है रक्ताभिसरण गतिमन्द और शारीरिक उष्णता न्यून कराती हैं। इस विभागमें कितनीक शीतल औषधियोंको शैत्यकारकतृषाशामक (Refrigerants) संज्ञा दी है।

३ वातनाड़ी अवसादक (Nervous Sedatives)—इस भेदोंकी औषधियाँ वातवहा नाड़ियोंकी क्रियाका ह्रास कराती हैं। परन्तु मस्तिष्कस्थ केन्द्र पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डालतीं। अत ये औषधियाँ परम्परा धामनिक अवसादकके समान फल प्राप्त कराती हैं।

४ मस्तिष्क अवसादक (Cerebral Sedatives)—इस भेदोंकी औषधियोंकी क्रिया विशेषत: मस्तिष्क पर प्रकाशित होती है। इस हेतुसे अधिक मात्रा लेने पर बेहोशी आजाती है। अतः इस प्रकारकी औषधियोंको अवसादक स्वापजनक (Sedative Narcotics) संज्ञा दी है।

५. सुषुम्णा अवसादक (Spinal Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ सुषुम्णाकी प्रत्यावर्तन क्रियाको अवसन्न करती हैं।

C परिवर्त्तक औषध।

इस प्रकार की औषधियाँ समस्त शरीरमें शनैः शनैः परिवर्तन कराती हैं। इन औषधियोंका फल जल्दी नहीं मिलता। कुछ काल तक सेवन करने पर इनके चया अपचय (Metabo lism) क्रियामें सुधार होता है, फिर देहपूर्व स्थितिको प्राप्त करती है अर्थात् स्वास्थ्यकी प्राप्ति कराती हैं। इसका विवेचन आगे रक्तशोधक और रसायन गुण वाली औषधियोंमें किया जायगा।

१ आ स्थानिक फलप्रदर्शक औषध ।

इस प्रकारके औषध देहके किसी विशेष स्थान या विशेष यन्त्र पर प्रभाव दर्शाती हैं । इनमें मुख्य ३ विभाग हैं ।

(A) संशोधक—अर्थात् देहका शोधनकर शारीरिक क्रियाएं चैतन्य उत्पादक औषधियाँ । इनमें अनेक उप विभाग हैं ।

१ वमनकारक—एमेटिक्स—Emetics
२ विरेचक—कैथार्टिक्स—Cathartics.
३ मूत्रल—डाइयूरेटिक्स—Diuretics
४ स्वेदल—डायाफोरेटिक्स—Diaphoretics
५ शिरोविरेचक—एरिन्स—Errhines
६ कफनिःसारक—एक्सपक्टोरेन्ट्स—Expectorants.
७ पित्तनिःसारक—कोलागोग्स—Cholagogues
८ रजोनिःसारक—एमेनागोग्स—Emmenagogues
९ गर्भाशय आकुंचक—एक्बालिक्स—Ecbolics
१० लालानिःसारक—स्यालागोग्स—Sialogogues

(B) क्षोभउत्पादक—Irritants

१ त्वक् प्रदाहक—रुबफेसियन्ट्स—Rubefacients
२ स्फोटजनक—एपिस्पेस्टिक्स—Epispastics
३ पूयोत्पादक—पस्च्युलन्ट्स—Pustulants
४ तीव्रदाहक—एस्कारोटिक्स—Escharotics

(C) प्राकृतिक नियमानुसार कार्यकारी

स्निग्धकारक—डेमलसेन्ट्स—Demulcents
२ मार्दवकारक—एमोलियेन्ट्स—Emollients
३ तरलकारक-द्रवोत्पादक—डाइल्युएन्ट्स—Diluents
४ संरक्षक आच्छादक—प्रोटेक्टिव्स् Protectives

(२) परम्परा सार्वदैहिक फलप्रदर्शक ।

अ अम्लतानाशक—एन्ट एसिड्स—Antacid
आ क्षारनाशक एन्टाइअल्कलिज—Ant-alkales
इ परान्नजीवी कीटाणु नाशक—पेरासिटिसाइड्स—Parasiticides

अर्थात् शारीरिक मल धारण करने वाले रोग, अथवा शारीरिक धातुओं मे पुष्ट होने वाले, कृमि कीटाणु आदिका नाश करने वाली औषधियाँ । इनमें ३ उपविभाग हैं ।

A उदर-कृमिघ्न—एन्थेलमिन्टिक्स—Anthelmintics.

B सेन्द्रिय विषघ्न एन्टिज़ाइमोटिक्स—Antizymotics

अर्थात् दूषित आम और उससे उत्पन्न विषको नष्ट करने वाली औषधियाँ। इनका विवेचन आगे किया जायगा।

(१) वातदोषघ्न।

शरीरके भीतर व्यापक वातवाहिनियोंमें उत्पन्न वातप्रकोपको शमन करनेवाली औषधियाँ। इस विषयमें चरकसंहितामें लिखा है कि—

रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतः सम्प्रशाम्यति॥

वायुमें रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर, ये गुण मुख्य हैं। इन गुणोंसे विपरीत गुण—स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, मृदु, पिच्छिल और श्लक्ष्ण, इन गुणों और कर्मों द्वारा उपचार करने पर वायु शमन हो जाता है।

यद्यपि वायु शीतल या उष्ण स्पर्शवाला नहीं है तथापि शीत लगने या शीतल द्रव्यका सेवन करने पर वायुकी वृद्धि होती है तथा उष्ण उपचारसे शान्ति होती है। इस हेतुसे चिकित्सा शास्त्रमें वायुको शीतल माना गया है।

वायुके आधार पर आरोग्य अवलम्बित है। वायुकी विकृतिसे विविध रोग उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्धमें चरकसंहितामें लिखा है कि—

सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः।
तेनैव रोगा जायन्ते तेन चैवोपरुध्यते॥

देहमें सब प्रकारकी चेष्टा वातधातु द्वारा होती है। यह सब प्राणियोंका प्राण है। जब यह विकृत होता है, तब रोग उत्पन्न होते हैं और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है।

यदि वायुमें विकृति होती है, तो जितना जल्दी हो सके उतना तुरन्त उपचार करना चाहिये। देर होने पर रोग दृढ़ बन जाता है।

वात संशमन वर्ग—सुश्रुत संहितामें देवदारु, कूठ, हल्दी, वरना, मेषशृंगी (काकड़ासिंगी), खरैंटी, अतिबला (कंघी), आर्तगल (कटसरैया-पियाबांसा), कौंच बीज, शल्लकी (सालमेद), कुबेराक्षी (पाटला), नीरतरु, कटसरैया, छोटी अरनी, गिलोय, एरण्ड, पाषाणभेद, श्वेतार्क, आक, शतावरी, पुनर्नवा, वसुक (मंदार), वशिर (अपमार्ग), धतूरा, भारंगी, वनकपास, वृश्चिकाली (मेषशृंगीभेद या बिछुआ बूटी), पतंग, बेर, जौ, बड़े बेर, कुलथी आदि तथा विदारीगंधादि गण और दशमूल, ये सब वातसंशमनकारी औषधियाँ कही हैं।

विदारीगन्धादि गण—विदारीगंध (शालपर्णी), विदारीकंद, महमेदी, गोखरू, गाम्भार, पृश्नपर्णी, शतावरी, सारिवा श्वेत, सारिवा श्याम, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी छोटी कटेली, बड़ी कटेली पुनर्नवा, एरंड, हंसराज, वृश्चिकाली (मेषशृंगी भेद), कौंच, ये २० औषधियां। यह गण पित्त वातशामक है शोथ, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कासको नष्ट करता है।

इनके अतिरिक्त वातहर औषधियां—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, पुखराज, माणिक्य, कोमल शिलाजीत, दशमूल, ब्राह्मी, रास्ना, गूगल, जटामांसी, भिलावा, सोंगन, एरंड तैल, लहसुन, वच, नागकेशर, बादाम, पिस्ते, चोपचीनी, कायफल, खुरासानी अजवायन, गोरखमुण्डी, शंखाहूली, घी, उड़द, नारियल, मालकांगनी, कुहारा, दालचीनी, प्रसारणी, उशक, विदारी, कुचिला, सर्षप-तैल, नीलगिरी-तैल, इत्यादि।

आचार्य चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि ;—

स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम्।
कफे ऽनुपान रूक्षोष्णं क्षये मांसरसः पयः॥

वातप्रकोपमें स्निग्ध उष्ण, पित्तप्रकोपमें मधुरशीतल, कफमें कटु उष्ण तथा क्षयरोगमें मांसरस और दूध हितकारक हैं।

डाक्टरी पाश्चात्य नाडीपौष्टिक (Nervine tonic) औषधियां कही हैं; उनका समावेश इस वातदोषघ्न विभागमें हो सकता है। इनमें वातवाहिनियोंपर प्रभावोत्पादक, मस्तिष्क और सुषुम्ना पर उत्तेजक (Stimulant) शामक (Sedative), मादक, वेदनानिवारक, चेतनाहर और आक्षेपनिवारक आदि विभाग हैं। इन सबका अंतर्भाव इस आयुर्वेदीय वातशामक विभागमें हो जाता है। इन सबका विवेचन आगे पृथक पृथक् विभागोंमें यथा स्थान किया जायगा।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे वात धातुके स्थान भेदसे ५ विभाग, अविकृत वात धातुके कार्य, वात विकृत देह, वातके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, वातशामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ के प्रथम खण्डके उपोद्घातमें पृष्ठ २५ से ३१ के भीतर किया है।

वातप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, अम्ल, लवण रस, गेहूं, जौ, चावल, उड़द, दूध, घी, तैल, मांसरस, दही, मधुर फल, परवल, कालीमिरच, मद्य, पुराना गुड़, परवल, बैंगन, सहिजनेकी फली, मकोय, काकमाची ([illegible]), पानमेथी, खुरासानी अजवायन, सोंठ, कालामिरच, जीरा, सौंफ, अरंडी तैल, गोखरू, मुनक्का, लहसुन, हींग, मुनक्का, किशमिश, अंगूर, आंवला, [illegible], मीठे आम, अनार, बादाम, पिस्ते, अखरोट, बादाम, चिलगोजा, खुबानी, चिरोंजी, नीबू, फालसा, बेर, दशमूल, तैलमर्दन, निवाने उष्ण स्नान, आम, मौसम्बी, गन्ना,

चबाना आदि आहार विहार पथ्य हैं और ये ही (आहार-विहार) वातप्रकोप होनेपर शमन करनेके लिये भी हितावह हैं।

वातप्रकोपक आहार-विहार—मलवानसे लड़ना, अतिव्यायाम, अति मैथुन, अति अध्ययन, अग्नि और सूर्यके तापका अधिक सेवन, उछलना, कूदना, अति दौड़ना, देहको अति कष्ट पहुँचाना, जख्म होना, चोट लगना, लंघन, अत्यन्त तैरना, रात्रिको जागरण, अति बोझा उठाना, हाथी, घोड़ा, रथपर या पैदल अति प्रवास करना, अति वमन, अति विरेचन, अधिक रुधिर निकालना, चरपरे, कसैले और कड़ुवे रसवाले पदार्थ ज्यादा खाना, शुष्क, लघु और शीतवीर्य गुणवाले पदार्थका अति सेवन, शुष्क शाक, सूखामांस, चीना, कोदों और शामक आदि कुधान्य, मूंग, मसूर, अरहर, काला मटर, सफेद मटर, निष्पाव (सेम), लाख, चोला, चना, बाजरा, ज्वार, मोठ, उपवास, स्वल्प भोजन, विरुद्ध भोजन (जैसे दूध और मूली एक साथ खाना), अध्यशन (भोजन पर भोजन), अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छींक, डकार, और अश्रुपात आदि वेगोंको रोकना, वातफल, कच्चा कन्दल, गँवार फली इत्यादिके सेवनसे वायु प्रकुपित होता है।

इसी प्रकार भैंसका दूध, मक्ई, मैदा उड़दके आटेका पदार्थ, कुलथी, कन्दूरी, आलू, रतालु, शकरकन्द, फूलगोभी, पानगोभी, वारह, लौकी, ककड़ी, खरबूज, मूँगफली, केला, अमरूद, सीताफल, रामफल, ये सब वातवृद्धिकर पदार्थ हैं।

वायु शीतकालमें बादल आनेपर, वर्षा होनेपर और ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें विशेषतः कुपित होता है। एवं सूर्योदयसे पहिले और सायंकालसे पहिले भी वातका प्रकोप हो जाता है।

सुवर्ण—शीतल, वृष्य, बल्य, गुरु, रसायन, मधुर, तिक्त, (कटु था), कसैला, पाक कालमें मधुर, पिच्छिल, शुद्धिकर, बृंहण, नेत्रको हितकर, मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ानेवाला, हृदयपौष्टिक, आयुवर्धक, कान्तिप्रद, वाणीको विशुद्ध और स्थिरताकारक, दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद, त्रिदोष ज्वर और शोषको दूर करनेवाला है। इसके गुणोंका विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' नामक ग्रन्थ के भस्म प्रकरणमें किया गया है।

रौप्य—शीतल, कषाय, अम्ल, मधुर विपाकी, सर, स्निग्ध, लेखन, वात पित्तघ्न और रसायन।

पुष्पराग अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन।

माणिक्य—मधुर, स्निग्ध, वात पित्तघ्न और रसायन।

सोमल—रूक्ष, उष्ण, पथ्य, वर्ण्यकर और पुष्टिकारक। ज्वर, वमन, श्वास, कास, प्रदर और वात रोगोंका नाशक है।

विदारीगधादि गण—विदारीगंध (शालपर्णी), विदारीकंद, सहदेवी, गंगेरन, गाखरू, पृश्नपर्णी, शतावरी, सारिवा श्वेत, सारिवा श्याम, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी छोटी कटेली, बड़ी कटेली पुनर्नवा, एरंड, हंसपदी वृश्चिकाली (मेषशृंगी मेद), कौंच, ये २० औषधियां। यह गण पित्त-वातशामक है, शोष, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कासको नष्ट करता है।

इनके अतिरिक्त वातहर औषधियां—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, पुष्पराग, माणिक्य, कोमल शिलाजीत, दशमूल, ब्राह्मी, रास्ना, गूगल, जटामांसी, मिलावा, अजमोद, एरंड तैल, लहसुन, वच, वत्सनाग, बादाम, पिस्ते, पीपलामूल कायफल, खुरासानी, अजवायन, गोरखमुण्डी, धत्तूरा, घी, उड़द, नारियल, मालकांगनी, रुद्राक्ष, दालें, प्रसारणी, ठवरुड, विषारा, कुचिला, तार्पिन-तैल, नीलगिरी-तैल, इत्यादि।

आचार्य चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि—

स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम्।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसः पयः॥

वातप्रकोपमें स्निग्ध-उष्ण, पित्तप्रकोपमें मधुरशीतल, कफमें रूक्ष-उष्ण तथा क्षयरोगमें मांसरस और दूध हितकारक हैं।

डाक्टरी मतवाला नाड़ीपौष्टिक (Nervine tonic) औषधियां कही हैं उनका समावेश इस वातदोषघ्न विभागमें हो सकता है। इनमें वातवाहिनियोंपर प्रभावोत्पादक, मस्तिष्क और सुषुम्णा पर उत्तेजक (Stimulant) शामक (Sedative), मादक, वेदनानिवारक, चेतनाहर और आक्षेपनिवारक आदि विभाग हैं। इन सबका अंतर्भाव इस आयुर्वेदीय वातदोषघ्न विभागमें हो जाता है। इन सबका विवेचन आगे पृथक् पृथक् विभागोंमें यथा स्थान किया जायगा।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे वात धातुके स्थान भेदसे ५ विभाग, अविकृत वात धातुके कार्य, वात विकृत हेतु, वातके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, वातशामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ के प्रथम खण्डके उपोद्घातमें पृष्ठ २५ से ३१ के भीतर किया है।

वातप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, अम्ल, लवण रस, गेहूं, जौ, चावल, उड़द, दूध, घी, तैल, मांसरस, दही, मधुर पदार्थ, पक्वान्न, मक्खन, मद्य, पुराना गुड़, परवल, बैंगन, सुहिजनेकी फली, नाख, कोकम (वृक्षाम्ल), पोदीना, सूखा धनियां, अदरख, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल मेथी, लौंग, अरण्डीका तैल, सोया, अजवायन, लहसुन, हींग, मुनक्का किशमिश, अंगूर, आंवला, कच्चानारियल, मीठे आम, अनार, बादाम, पिस्ते, अखरोट, काजू, चिलगोजे, खुरमानी, चिरौंजी, खीर, काला जीरा, ताम्बूल, तैलमर्दन, निवाये जलसे स्नान, आमोद, क्रीड़ा, गाना,

मजाना आदि आहार-विहार पथ्य हैं और ये ही (आहार-विहार) वातप्रकोप होनेपर शमन करनेके लिये भी हितावह हैं।

वातप्रकोपक आहार-विहार—बलवानसे लड़ना, अतिव्यायाम, अति मैथुन, अति अध्ययन, अग्नि और सूर्यके तापका अधिक सेवन, उछलना, कूदना, अति दौड़ना, देहको अति कष्ट पहुँचाना, जख्म होना, चोट लगना, लंघन, अत्यन्त तैरना, रात्रिको जागरण, अति बोझा उठाना, हाथी, घोड़ा, रथपर या पैदल अति प्रवास करना, अति वमन, अति विरेचन, अधिक रुधिर निकालना, चरपरे, कषैले और कड़ुवे रसवाले पदार्थ ज्यादा खाना, शुष्क, लघु और शीतवीर्य गुणवाले पदार्थका अति सेवन, शुष्क शाक, सूखामांस, चीना, कोदों और शामक आदि कुधान्य, मूंग, मसूर, अरहर, काला मटर, सफेद मटर, निष्पाव (शेम), लाल, चोला, चना, बाजरा, ज्वार, मोठ, उपवास, स्वल्प भोजन, विरुद्ध भोजन (जैसे दूध और मूली एक साथ खाना), अध्यशन (भोजन पर भोजन), अधोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छींक, डकार, और अश्रुपात आदि वेगोंको रोकना, ताड़फल, कच्चा कच्चाल, गँवार फली इत्यादिके सेवनसे वायु प्रकुपित होता है।

इसी प्रकार भैंसका दूध, मकई, मैदा उड़दके आटेका पदार्थ, कुलथी, कन्दूरी, आलू, रतालु, शकरकन्द, फूलगोभी, पानगोभी, तोरई, लौकी, ककड़ी, खरबूज, मूँगफली, केला, अमरूद, सीताफल, रामफल, ये सब वातवृद्धिकर पदार्थ हैं।

वायु शीतकालमें बादल आनेपर, वर्षा होनेपर और ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें विशेषतः कुपित होता है। एवं सूर्योदयसे पहिले और सायंकालसे पहिले भी वातका प्रकोप हो जाता है।

सुवर्ण—शीतल, वृष्य, बल्य, गुरु, रसायन, मधुर, तिक्त, (कड़ुवा), कषैला, पाक कालमें मधुर, पिच्छिल, शुद्धिकर, बृंहण, नेत्रको हितकर, मेधा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ानेवाला, हृदयपौष्टिक, आयु-वर्द्धक, कान्तिप्रद, वाणीको विशुद्ध और स्थिरताकारक, दोनों प्रकारके विष, क्षय, उन्माद, त्रिदोष ज्वर और शोषको दूर करनेवाला है। इसके गुणोंका विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' नामक ग्रन्थ के भस्म प्रकरणमें किया गया है।

रौप्य—शीतल, कषाय, अम्ल, मधुर-विपाकी, सर, स्निग्ध, लेखन, वात पित्तजित और रसायन।

पुष्पराग—अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन।

माणिक्य—मधुर, स्निग्ध, वात-पित्तघ्न और रसायन।

सोमल—रूक्ष, उष्ण, बल्य, भयंकर और पुष्टिकारक। ज्वर, वमन, श्वास, कास, प्रदर और वात रोगोंका नाशक है।

शिलाजीत—इसमें सब प्रकारके रोगोंके नाश करनेके विविध गुण अवस्थित हैं। इसमें वात रोगोंके नाशके लिये रास्ना, दशमूल, बला, पुनर्नवा, एरंड, सोंठ, मुलहठी, आदिके क्वाथकी भावना देनी चाहिये।

काष्ठादि औषधियोंमें रास्ना, गुग्गुल, लहसुन, एरंड तैल, कुचिला, बच्छनाग दशमूल आदिमें वातनाशक गुण अधिक होता है। बलामें वात-पित्तशामक गुण है। मालकांगनीमें वात-कफनाशक गुण अधिक है।

एरंडको संस्कृत भाषामें वातारि कहा दी गई है। आमदोषसहित वातविकार एरण्ड तैल और होनेपर एरंड तैलप्रधान औषधि सत्वर लाभ पहुँचाती है। अनुपान रूपमें अदरखका रस या दशमूल-क्वाथ देना चाहिये।

बच्छनाग—कटु, तिक्त, कषाय, अति मधुर, मादक, उष्ण, वात-कफनाशक, रसायन और बल्य है। ज्वर, कण्ठविकार, त्रिदोष, आदिको नाश करता है। पाश्चात्य विचारवालोंने भी इसे ज्वरके लिये उपयोगी माना है।

लहसुन—कृमि-कुष्ठ, किलास, वातरोग और गुल्म आदिके नाशक, स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, कटु और गुरु है। यह हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, कब्ज, कास, शोफ, अर्श, श्वास और कफ रोगका नाश करता है। राजयक्ष्मा और रक्तभार वृद्धिमें अति हितकारक है डाक्टरीमें भी लहसुनके तैल और अर्कका उपयोग होता है।

कुचिला—कटु, तिक्त, लघु और उष्ण है। यह कुष्ठ, रक्तविकार, विष प्रकोप, कण्डू, कफ, वातरोग, व्रण, अर्श, ज्वर आदिका नाश करता है। डाक्टरी मतानुसार कुचिला वातवाहिनियोंको उत्तेजना देता है। अतः पक्षाघातमें विशेष लाभदायक है। शीशा धातुके विषसे उत्पन्न पक्षाघातमें तो अत्यधिक हितकारक है। अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपस्मार, कम्पवात, आधाशीशी, वीर्यस्राव आदिमें लाभ पहुँचाता है। इनके अतिरिक्त इसमें दीपन-पाचक (आमाशयपौष्टिक) और ग्राही करण गुण भी है।

खुरासानी अजवायन—का निघण्टुरत्नाकरमें कटु, रूक्ष पाचक, ग्राही, उष्ण, मादक, गुरु और वातकारक कहा है। मदनपालनिघण्टु और भावप्रकाशमें भी वातनाशक नहीं माना। परन्तु डाक्टरीमें इसे अवसादक स्नायु, वाताक्षेपघ्न, पसीनेका तथा कनीनिका प्रसारक माना है। मानसिक उत्तेजना, उन्माद, हृदय-वेग वृद्धि, निर्बलता, अपतन्त्रक आदिमें उपयोगी है। मूत्रेन्द्रिय स्थानपर अवसादक गुण पहुँचाता है। अतः मूत्राशयप्रदाह (Cystitis) में अति लाभदायक है।

यह औषधि, निद्राप्रद गुण होनेसे, ५ रत्ती मात्रामें हिस्टीरिया रोगिणीको दी जाती है। अधिक मात्रा देनेपर विषप्रकोप होता है।

गोरखमुण्डी—को धन्वन्तरी निघण्टुमें कटु, तिक्त, वातरक्त, आम, अरुचि, अपस्मार, गण्डमाला और श्लीपद रोगोंकी नाशक कहा है। राजनिघण्टुमें कफ-पित्तनाशक माना है भावप्रकाशकारने अपस्मार, प्लीहा, मेद और गुदाके रोगोंको नाश करनेवाली कहा है और आमवातपर सोंठ और मुण्डीके कल्कका उपयोग करनेको भी लिखा है। इस तरह नाना प्रकारके मतभेद हैं।

डाक्टरी मतानुसार गोरखमुण्डी रक्तशोधक है। अत यह उपदंशविकार, चर्म रोग और आमवातका नाश करती है। इसमें स्निग्ध गुण होनेसे मूत्रप्रसेकप्रदाह (Urethritis) और बहुमूत्र या पेशाब करनेकी इच्छा बनी रहना (Frequent Micturition) में हितकारक है। एवं अर्श और ग्रन्थिशोथपर लेप करनेमें उपयोगी मानी है।

भिलावा—कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर और कृमिनाशक है। गुल्म, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ और वात-कफप्रधान रोगोंका नाश करता है। इनके अतिरिक्त श्वास, आनाह, कम्प, शूल अफारा, शोथ, अरुचि, अग्निमान्द्य, गुल्म कुष्ठ, चित्र और व्रण आदि रोगोंमें हितकारक है। चरक संहितामें इसे मेधा और अग्निको बढ़ानेवाला और सम्पूर्ण प्रकारके कफ रोगोंका नाशक कहा है।

वच—तिक्त, कटु उष्ण और तृष्ण है। कफ, कफकास, आमवृद्धि, ग्रन्थि शोथ, वात, ज्वर, अतिसार, अपस्मार आदिको नाश करता है। वमनकारक है। अग्नि, मति, मेधा और आयुको बढ़ाता है और मल-मूत्रका शोधन करवाता है।

वचके संस्कृतमें वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्थी, तीक्ष्णा, गोलोमी, शतपर्विका, लोमशा, हैमवती, जटिला, मङ्गल्या, विजया, उमा, रक्षोघ्नी, वच्या, क्षुद्रपत्री, गालिनी, भद्रा आदि अनेक नाम दिये हैं। इसका उपयोग सब प्राचीन ग्रन्थकारोंने अत्यधिक किया है।

चरक संहिताकारने ज्वर, अर्श, अतिसार, ग्रहणी, गुल्म, तृषा, क्षय, कास, हिक्का, श्वास, उदररोग, उदावर्त, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, वातव्याधि, विषप्रकोप योनिरोग ऊरुस्तंभ, अश्मरी, हृद्रोग, पीनस, मुखरोग, वमन, विरेचन, नस्य, अंजन, प्रसवार्थ नस्य, विषशमनार्थ अगद, घृत, अंजन आदि प्रयोगोंमें वचका उपयोग किया है। इस तरह सुश्रुत संहिताकारने भी अनेक रूपमें उपयोग किया है। वचका उल्लेख वातसंशमन वर्गमें किया गया है, और इसे ऊर्ध्वदोषहर कहा है।

नव्यमतमें सिन्कोना छाल (Cinchona bark) का प्रयोग सविराम ज्वरों, (Intermittant fevers) में जब निष्फल हो जाता है, तब वचको उसके साथ मिला कर प्रयोगमें लेते हैं। एवं बालकोंके पेचिश और कासरोगमें प्रत्यक्ष रूपसे भी यह उत्तम औषधि सिद्ध हुई है। प्रतिश्यायमें वचका चूर्ण ५-५ रत्ती मिलाये दूधके साथ दिनमें दो बार सेवन करानेसे त्रासदायक कण्ठप्रदाहकी निवृत्ति हो

जाती है। बालकोंके शूलको नष्ट करनेके लिये १॥ रत्ती मात्रा दी जाती है। जमालगोटाका विषमय असर शमन करनेके लिये बचके कावसेका चूर्ण ५ से १० रत्ती जैलके साथ दिया जाता है। यह जमालगोटेके विषपर महौषधि है।

इसका उपयोग उत्तेजक चेतनाप्रद औषध रूपसे आधसे १ रत्ती तक और वमनार्थ १० से २० रत्ती तक किया जाता है। शिर पर लगानेसे शिरदर्द निवृत्त होता है। प्रतिश्याय, प्रतिश्यायज कास और इन्फ्लुएन्जामें इसका लेप नासिका पर किया जाता है।

गूगल—के गुण भगवान् धन्वन्तरिजीने लघु, सुगन्धयुक्त, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, कटु, कटुपाकी, सर, हृद्य, स्निग्ध, पिच्छिल आदि कहे हैं। नये गूगलको बृंहण और वृष्य तथा पुरानेको अपकर्षक माना है। यह तीक्ष्ण उष्ण होनेसे कफ-वातघ्न, सर होनेसे मल और पित्तनाशक सुगन्धयुक्त होनेसे उदरकी दुर्गन्धनाशक और सूक्ष्म होनेसे अग्निप्रदीपक है।

इनके अतिरिक्त धन्वन्तरि निघण्टुकारने वर्ण्य स्वर्य, विशद और भेदक गुण कहा है। औषधि पुरानी होनेपर अति लेखन होती है। इस आवृत्तिमें भग्नसन्धानकारक, वृष्य तथा मेद, व्रण, मेह, शोथ और मूत्रविकारनाशक गुण भी हैं। राजनिघण्टुकारने इसे कृमि, अर्श और प्लीहानाशक एवं मेधावर्द्धक कहा है। इस तरह गूगलके अनेक गुण अनुभवमें आये हैं।

प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग सर्वाङ्गवात, गृध्रसी, क्रोष्टुकशीर्ष, आमवात, उदर, ऊरुस्तम्भ, शोथ, व्रणपाक, श्वास, क्षय, विद्रधि, भगन्दर, गण्डमाला, अम्लपित्त, प्रमेह और मूत्ररोग आदि पर किया है।

रास्ना और गूगलप्रधानऔषधि या गूगलप्रधानऔषधिका रास्नाके क्वाथके साथ सेवन करानेसे नूतन वातरोगमें सत्वर लाभ पहुँचता है।

गूगलका प्रयोग विशेषतः नूतन वातविकारोंमें अधिक होता है। यह आमविषको जलाकर वातको शमन कर देता है। जीर्ण रोगोंपर कुचिला हितकारक है।

गूगलका बाह्य प्रयोग ज्वर, मांसगत आमविकार (Muscular Rheumatism) और शूल स्थानपर होता है। एवं अस्थिभग्न, व्रणशोथ, दद्रु और मधुशोथपर भी किया जाता है।

दशमूलको सुश्रुत संहितामें वर्णसहर, त्रिदोषघ्न, आमपाचक और सब ज्वरहर कहा है। इस दशमूलकी गणना अष्टाङ्ग हृदयकारने मद्य द्राक्षासवके भीतर वातघ्न रूपसे की है। भावप्रकाशकारने त्रिदोष, श्वास, कास, शिरदर्द, तन्द्रा, शोथ, ज्वर, आनाह, पार्श्वपीड़ा और अरुचिका नाशक कहा है।

दशमूलका उपयोग 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के क्वाथ प्रकरणमें वातश्लेष्म ज्वर, सन्निपातके वातप्रधान उपद्रव, हृदयविकार, हृदयावरोध कण्ठावरोध,

तन्द्रा, वात, कफ, श्वास, पार्श्वपीड़ा, प्रसूताके मुखशोष, शीत, भ्रम, स्वेद, कास, श्वास आदि उपद्रव, गृध्रसी, आमवृद्धि, अपस्मार, वातज मूत्राघात, सिस्टेरिक आदि रोगों पर किया है।

वक्तव्य—वातविकारके साथ यदि पित्तप्रकोपके लक्षण-मुखपाक, गरम गरम पतले दस्त होना, स्वेदवृद्धि, व्याकुलता, निद्रानाश आदि हों, तो दशमूलका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

बला—को धन्वन्तरि निघण्टुकारने स्निग्ध, शीतल, मधुर, वृष्य और बल्य माना है। यह त्रिदोषघ्न है। रक्त, पित्त, और क्षयको नष्ट करती है, तथा बल और ओजको बढ़ाती है। राजवल्लभकारने इसे ग्राही और वात-पित्तजित कहा है। जब वात और पित्त प्रकोपहो तब बलाका सेवन अति लाभदायक प्रतीत हुआ है।

वंगसेनने इसका उपयोग विविध वातविकार, उन्माद और उरोग्रह पर किया है। भावप्रकाशकारने अर्दित रोगमें बलाक्षीरका प्रयोग किया है। चक्रदत्तने इसके योग, अश्वबालुक, अन्त्रवृद्धि और प्रदर रोग पर लिखे हैं। इनके अतिरिक्त यह औषध वृद्धत्रयीमें रक्तपित्त, रक्तार्श, कफक्षिप, मदात्ययज तृषा, क्षयशोधन, वातरक्त, स्वरभेद, राजयक्ष्मा रोगोंमें प्रयोजित हुआ है। एवं रसायन रूपसे इसका प्रयोग लिखा है। वर्तमानमें प्रमेह और वीर्यको उष्णताके शमनार्थ भी सेवन करानेका रिवाज है।

हालो (चन्द्रशूर)—वातविकार, वातशूल और गुल्मनाशक है, इसमें उष्ण, तिक्त, बल्य, स्तन्यपुष्टिकर और त्वचादोषहर गुण भी हैं। नव्य मतवालोंने इसे पौष्टिक, रक्तशोधक (दीपक), स्निग्ध और उत्तेजक माना है।

काली खाँसीमें इसका शीतकषाय गोंद मिलाकर देते हैं। आमवातजन्य शूल और प्रदाहजन्य वेदनाके निवारणार्थ इसका बाह्य लेप किया जाता है। जिन स्थानों पर राई बाह्य उपयोगमें ली जाती है वहाँ पर इस औषधिका भी लेप होता है। निबल स्त्रियोंको और प्रदर रोगिणियोंको इस औषधिका मुरब्बा बनाकर दिया जाता है।

मालकांगनी—रूक्ष, किञ्चित् कटु, तिक्त, सर, वात-कफनाशक, अति उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, बुद्धिवर्द्धक और स्मृतिप्रद है। प्राचीन आचार्योंने इसका शिरोविरेचनमें भी उपयोग किया है।

मालकांगनी बुद्धिवर्द्धक और वातहर होनेसे अनेक मनुष्य इसके बीजका सेवन करते हैं और क्रमशः ५० तक बढ़ाते हैं। फिर संख्या घटाते हैं। इसका तैल उत्तेजक है इसमें प्रस्वेद और पेशाब बढ़ानेका गुण है। इस हेतुसे यह तैल उदररोग और शोथरोगमें लाभदायक है।

कितनेक चिकित्सक इसका उन्माद और अपस्मार रोगमें उपयोग करते हैं। मिलाके पालिश किये चावलोंसे उत्पन्न व्याधि बेरीबेरी (Beri Beri) में मालकां

गन्धीका तेल मद्रास के चिकित्सक उपयोग करते हैं। उनके मतमें यह बेरीबरी रोगकी सफल औषधि है।

देवदारु—लघु, तिक्त, स्निग्ध, उष्ण, कटुपाकी, श्लेष्म-वातजित है। ज्वर, कास, आमदोष, विबन्ध, हिक्का, तन्द्रा, शोथ, आध्मान, प्रमेह, पीनस, कण्डु, कृमि, कुष्ठ आदिका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका अनेक रोगों पर उपयोग किया है। इस देवदारुमें से टार्पिन तैल निकलता है। इसमें भी देवदारुके गुणकी प्रतीति होती है।

नव्य विचारधाराने देवदारुको उदरवातघ्न, स्वेदल और मूत्रल माना है। वे इसका ज्वर, अफारा (Flatulence), शोथ, जलोदर, विविध मूत्ररोग और अश्मरीमें उपयोग करते हैं। यह सुजाक, उपदंश, आमवात और त्वचा रोगमें लाभदायक है। इसका कुष्ठ रोगोंमें भी उपयोग होता है।

वृद्धदारु (समुद्रशोष)—कटु, तिक्त, उष्ण और कफ-वातजित है। यह शोथ, कृमि, प्रमेह, वातरक्त, उदररोग, आमवृद्धि, कास आदिको दूर करता है। इसका विविध प्रकारके वातरोगों पर प्राचीन आचार्योंने उपयोग किया है। इसका प्रयोग रक्तप्रसादन रूपसे उपदंशज व्याधियोंमें किया जाता है।

जटामासी—तिक्त, कषाय, स्वादु शीतल, मेधावर्धक, कान्तिवर्धक, बलप्रद है। यह वातरोग, रक्तदोष, शोफ, ज्वर, दाह, विसर्प, कुष्ठ आदिका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग, श्वास, कास, विषमकोषमें धूम्रवर्तिके भीतर भी किया है।

नव्य विचारानुसार जटामांसी पौष्टिक, वातवहा नाडियोंके लिये उत्तेजक और आक्षेपघ्न है। हिस्टेरिया अपस्मार सन्निपात और आक्षेपक वातमें लाभदायक है।

लोबान—वातहर, कफनाशक वर्णप्रसादक कण्डु और कुष्ठनाशक है। डाक्टरी मतमें इसे उत्तेजक माना है। यह दीर्घकालमें श्वासनलिकाके भीतर रहे हुए कफको बाहर निकालनेके लिये और प्रतिश्याय शमनार्थ प्रयोजित होता है। आशुकारी वातरोगके शमनार्थ और मूत्रल गुणकी प्राप्ति (मूत्रयन्त्रको उत्तेजना देने) के लिये व्यवहृत होता है। लोबान सेवनसे मूत्रमें रहे हुए क्षारकी मात्रा कम होजाती है। काली खाँसी, कण्ठनलीप्रदाह, कण्ठरोहिणी रक्त-ज्वर और धुलिकाके आक्षेपमें भी यह उपकारक है।

इसका तैल ५.७ बूँद नित्यप्रति दिनमें दो समय सेवन कराते रहने से तीव्र राजसी धातुमें अच्छा लाभ होता है। कपालपर लगानेसे सिर दर्द शमन होता है। एवं मूत्रेन्द्रियपर लगानेसे शिथिलता नष्ट होकर उत्तेजना की प्राप्ति होती है।

लोबान और गुड़ सममात्र मिला शरावमें भर सम्पुट करें फिर भस्म कर एक एक रत्ती घण्टे-घण्टेपर मुखमें डालते रहनेसे मुखपाक शमन हो जाता है।

(७) वाताक्षेपघ्न।

एण्टिस्पाज्मोडिक्स और एण्टस्पेस्टिक्स एण्ड एण्टिकन्वलसिव्स।

Antispasmodics or Antispastics and Anticonvulsives

वायु प्रकोपजनित आक्षेप और सकोच नाशक औषधियाँ। हींग, कस्तूरी, जटामांसी, एरंडतैल, कपूर गाँजाकी कली पत्रास्ल, तमाखू, कुटकी, देवनल, चिकामाली, हुलहुल अडूसा, राहिराका तैल अजवायनका तैल तगर नीलगिरितैल, सोहागा, धतूरा, अफीम, इतर वातहर तैल तथा कितनेक सुगन्धयुक्त पदार्थ आदि। इन औषधियोंसे आक्षेपका दमन होता है, अर्थात् ऐच्छिक और अनैच्छिक मांसपेशियों का अनुचित आकुञ्चन दूर होता है। जब अन्त्रस्थ मांसपेशियाँ इस विकार से आक्रमित हो जाती हैं, तब उदर वातघ्न औषधियाँ मिलाई जाती हैं।

उपप्रकार—

१ तीव्र सावाङ्गिक आक्षेपशामक—अपतन्त्रक। (हिस्टीरिया) में उपयोगी—हींग, कस्तूरी, जटामांसी आदि।

२ सार्वाङ्गिक अवसादक—वच्छनाग, तमाखू, पद्मकाष्ठ, कुटकी, देवनल आदि।

३ बालकोंके स्वरयन्त्र आक्षेप और धनुवात पर—सोमल, ब्राह्मी, कूठ, सोहागा, पीप्पलयष्ठ, प्याज आदि।

४ बालकोंकी नृत्यवात (Choria) पर—सोमल, गाँजा, यशदक्षार, ताम्र प्रधान औषधियाँ आदि।

५ तमकश्वासज आक्षेप (Bronchial Antispasmodics) पर सोम, सूचीबूटी, धतूरा, खोरासानी अजवायन आदि।

६ अन्त्रस्थ वातवाहिनीपौष्टिक—अपान वायुको निकाल कर उदरशूलको शमन करनेवाली औषधियाँ। इसका वर्णन उदर वातघ्नमें किया जायगा।

७ धमनियोंके आक्षेपमें अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म, यवक्षार और कलमी शोरा आदि।

हींग—का उपयोग हिस्टीरिया की सब अवस्थाओं में होता है। यह उदराध्मान, उदरशूल हृत्स्पन्दन, बालकोंके दांत आनेके समय मुख आक्षेप,, काली खाँसी, उदर कृमि आदि रोगोंमें उपकारक है।

कस्तूरी—उत्तेजक, वातहर, आक्षेपघ्न, स्वेदजनक, मूत्रल और कामोद्दीपक अधिक मात्रामें कुछ स्वापजनक।

सोहागा—कटु, उष्ण, स्निग्ध, कफघ्न, स्थावर आदि विषनाशक, कासहर, श्वासशामक, ज्वरनाशक, वात-कफनाशक, आमपाचक और अग्निवर्धक। डाक्टरीमें

इसे गलन-विकारनिवारक (Antiseptics), और संक्रमणापह (कीटाणुनाशक—Disinfectants) माना है सोहागेमें विशेषता यह है कि यह बाह्य प्रयोग करने पर उग्रता नहीं लाता। इसका उपयोग विविध चर्म रोगोंमें किया जाता है। मुखके भीतर छाला होने पर इसका स्थानिक प्रयोग होता है।

धतूरा—वातहर होनेसे अपस्मार, उन्माद, कम्प, आक्षेप आदि वातप्रधान रोगोंमें हितकारक है। श्वास, कास और फुफ्फुस-कोषविस्फारण (Emphysema) रोगमें श्लेष्माको बाहर निकालनेके लिये इसका धूम्रपान कराया जाता है। वातशूल आदि रोगोंमें इसका आभ्यन्तरिक और बाह्य-प्रयोग किया जाता है। विविध चक्षु रोगोंमें कनीनिका प्रसारणार्थ और वेदनानिवारणार्थ इसका लेप नेत्रके चारों ओर किया जाता है। विषम ज्वर, उदररोग और कृमिरोगमें भी यह लाभदायक है।

डाक्टरी मतानुसार दो प्रकार

(१) वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलताके हेतुसे वातनाड़ियोंकी क्रियामें वैषम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर हींग, कस्तूरी, एरंड तैल, जटामांसी आदिका उपयोग किया जाता है। इसको विशुद्ध या विशेष (Specific) आक्षेपनिवारक संज्ञा दी है।

जसदघटित औषधियां, रौप्यघटित औषधियां, लोह भस्म, नौसादर, ताम्रघटित औषधियां आदि बलकारक (Tonic), आक्षेपनिवारक कहलाती हैं।

अफीम, सूचीबूटी (Belladonna), धतूरा आदि मस्तिष्क उत्तेजक औषधियोंको वापज्ञ्लक (Narcotic) आक्षेप निवारक कहते हैं।

(२) वातवहा नाड़ियोंकी उग्रताके हेतुसे वातवहा नाड़ियोंकी क्रियामें वैषम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर वातवहानाडी अवसादक और मस्तिष्क अवसादक औषधियाँ—वत्सनाभ, क्लोरोफार्म, हाइड्रोस्यानिक-एसिड आदिका व्यवहारमें लाया जाता है।

बहुधा आक्षेप-निवारक सब औषधियाँ पहिले वातवहा नाड़ियां और मस्तिष्क पर अवसादक असर पहुँचा कर आक्षेपका निवारण करती हैं। इनके अतिरिक्त रक्तमोक्षण, शीतलता और अवसादक औषधियां भी आक्षेपकी निवृत्ति करती हैं। प्रदाहजन्य आक्षेपमें इनका विशेष उपयोग होता है।

(३) उदरवातघ्न

कार्मिनेटिव्स Carminatives उदर (आमाशय और आन्त्र) में उत्पन्न वातका शमन करनेवाली औषधियाँ—हींगिया, ताम्र, शंख, कौड़ी, गंधक, नमक, सज्जीखार, अजवायन, अदरख, चित्रकमूल, कुचिला, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, मेथी, लौंग, चरपड़ी, वायविडंग, सोया, हींग, कस्तूरी, इलायची, शीतल मिर्च, कस्तूरी, तगर, सरसों, जीरा, अजमोद, लहसुन आदि।

इस प्रकारकी औषधियांसे आमाशय और अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया (Peristalsis) में वृद्धि होती है तथा आमाशयके उभय ओरकी मांसपेशियोंका अवरोध दूर हो जाता है। फलतः वायुका निर्गमन सरलतापूर्वक हो जाता है। इनके अतिरिक्त कुचिला, पीपल, पीपलामूल आदि चरपरी औषधियांसे आमाशयकी गति सबल बनती है।

सोमल और ताम्र—उग्र हैं। इनसे पाचक रसकी वृद्धि होती है और उदर-वातका शमन होता है। इन दोनोंके गुणोंका विस्तार "रसतन्त्रसार" के भस्म प्रकरणमें किया है।

मुक्ता, प्रवाल, शंख, शुक्ति, वराटिका, ये सब आमाशय रसकी उग्रताको शमन कर उदरस्थित दाह और वायुको दूर करते हैं। विशेष गुण वर्णन "रसतन्त्रसार" में लिखा है।

चित्रकमूलका—उपयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें अत्यधिक किया है। चरक संहितामें लेखनी, भेदनीय, दीपनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शूलप्रशमन आदि दशेमानिमें इसका उल्लेख किया है। प्रसूताको इसका चूर्ण जल्दी प्रसवार्थ सुंघाया जाता है। वमनोपग और कटुस्कन्धमें भी इसकी गणना की है। सुश्रुत-संहिताकारने आरग्वधादि, वरुणादि, मुष्ककादि, पिप्पल्यादि, मुस्तादि, आमलक्यादि और वीरतर्वादि गणमें चित्रककी योजना की है।

चित्रकमूल दीपन, पाचन, गुदशोफहर, कटु, लघु और विपाकमें कटु है। श्वास, वातोदर, अर्श, ग्रहणी, कृमि, कण्डू आदि रोगोंका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग अतिसार, अर्श, उदररोग, ग्रहणी, मेदोरोग, पाण्डु, शोथ, गुल्म, कुष्ठ, श्वित्र, श्लीपद, प्रणशोथ, सिकतामेह, कृमिरोग आदिके प्रयोगोंमें किया है। वाग्भट्टाचार्यने इसका प्रयोग रसायन रूपसे भी लिखा है।

नव्य चिकित्सक व्रण-विद्रधिको पककर फोड़नेके लिए इसके मूलका लेप करते हैं। चित्रकमूल स्वल्पमात्रामें उत्तेजक है और अधिक मात्रामें दाहक और स्फोटजनक असर उत्पन्न कराती है। इसमें स्वेदल गुण होनेसे नूतन ज्वरोंमें लाभदायक है।

गन्धक—स्वेदल, रसशोषक, कफनिःसारक पित्तनाशारक, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, विरेचक, दाहशामक है। आमाशयकी श्लैष्मिक कला पर किसी भी प्रकारका असर नहीं पहुंचाती। आंतोंमें पहुँचने पर अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कला और दीवारमें उत्तेजना लाकर विरेचन कराती है तथा अन्त्रकी पुरःसरण क्रियामें वृद्धि कराती है।

गन्धकका विशेष उपयोग कब्ज, अतिसार, अर्श, रक्तविकार, कंडू आदि त्वचा रोग, ज्वर, उदरवात, दाह, अपचन, विसूचिका, उपदंश, जीर्ण-वातविकार,

पीड़ा वायुजनित विषविकार, पारद विष आदि रोगोंमें किया गया है। आयुर्वेद और एलोपैथी दोनों शास्त्रोंमें इसका उपयोग विशेष रूपसे होता है।

गन्धका तैल बनाकर कर्णपाकमें और त्वचारोगोंमें मालिश आदिके लिये उपयोग में लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त डाक्टरोंमें सुगन्धित द्रव्य (Aromatics) विभागमें कितनीही औषधियाँ हैं। इसमें *उदरवातनाशक गुण रहता है।* इनके सेवनसे पचन-शक्ति सबल होती है अपान वायु सरता है डकार आने लगती है तथो उदरशूल शमन हो जाता है। ये सब रूक्षस्वाद और सद्गन्ध युक्त हैं। सबके स्वाद और सुगन्धका हेतु इनमें रहा हुआ उड्डयनशील तैल (Volatile oil) है। इन सबके तैलमें विभिन्नता है।

सौंफ, सोया, सन्तरेकी छाल, खट्टे नीबूकी छाल, छोटी इलायची, केशर, लौंग, दालचीनी, धनिया, जीरा, शीतल मिर्च, बिजौरेकी छाल, पीपरमेण्ट (Mentha Piperita), पोदीना, जायफल, काली मिर्च, पोस्त, अजवायन, सोंठ, अनीसून (सौंफ भेद), ताजी चाय, रोहिषघास, यूकेलिप्टस आदिके तैलमें उदर वातहर गुण हैं।

इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे उदरमें उष्णताका भास होता है धमनीकी गति द्रुत होती है और समस्त शरीर उष्ण हो जाता है। आमाशयकी श्लैष्मिक कला उत्तेजित होनेसे पाचक रस विशेष परिमाणमें निकलता है इस हेतुसे पचन शक्तिमें वृद्धि हो जाती है। अतः इन औषधियोंकी गणना आमाशय पौष्टिक औषधियों में की है। आमाशय अथवा आन्त्रमें वायु उत्पन्न होने पर ये वायुको नष्ट करती हैं। अतः इनको उदरवातघ्न भी कहते हैं। यदि इन औषधियोंका सेवन अधिक मात्रामें किया जाय, तो आमाशयमें प्रदाह उत्पन्न हो जाता है।

यदि इन औषधियोंका बाह्य उपचार किया जाय, तो स्थानिक उष्णता उत्पन्न करती है। एवं अधिक काल तक रखने पर प्रदाह उपस्थित होता है। ये औषधियाँ वातवाहा नाड़ियों पर विशेष प्रभाव नहीं दर्शातीं।

इन औषधियों के प्रयोगके हेतु —

१ अपचन आमाशयकी निर्बलताके हेतुसे वेदना आक्षेप या मरोड़ और आमाशय या अन्त्रमें वायुकी उत्पत्तिको दूर करनेके लिये।

२ दुर्गन्धियुक्त और बेस्वादु औषधिके गन्ध और स्वादका परिवर्तन करानेके लिये।

३ विरेचक औषधिके साथ उग्रताका शमन करानेके लिये। इसे मिलाने पर उदरमें वेदना नहीं होती।

४ आमाशयपौष्टिक औषधियोंके साथ मिलानेसे आग्नेय गुणकी वृद्धि होती है और यह आमाशयसे सहन हो जाती है।

५. भोजनके साथ मिलानेसे भोजनका पचन सत्वर होता है। इसलिये इसका भोजनके साथ व्यवहार हो सकता है।

सूचना—मात्रा अधिक होने पर विविध रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है। यथा—आमाशयका चिरकारी प्रदाह, बारम्बार उत्तेजनायुक्त आमाशयकी निर्बलता, देहके अधिक पोषणसे रक्ताधिक्य और इस हेतुसे वातरक्तकी उत्पत्ति मूत्रमें क्षार (यूरिक एसिड Uric Acid) आना और अश्मरी आदि रोग हो जाते हैं।

इन औषधियोंके तैलका बाह्य प्रयोग करने पर चर्ममें उत्तेजना होती है फिर त्वचा लाल हो जाती है। क्वचित् स्थानिक स्फोटकी भी उत्पत्ति होती है। उदरमें सेवन करने पर आमाशय और अन्त्र उत्क्षिप्त होते हैं। फिर रक्तवेगकी वृद्धि होती है। लाला, आमाशय रस, और आन्त्रिक रस ये सब अधिक निकलते हैं। इस हेतु से अन्ननलिकामें उत्तेजना आ जाती है।

योग्य मात्रामें ये अग्निप्रदीपक और वातहर हैं। अधिक मात्रामें आमाशय और अन्त्रमें उत्तेजना लाते हैं। आमाशयमें क्षोभ होने पर प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातवहा नाडियोंमें उत्तेजना आती है।

इस प्रकारके तैल त्वचा द्वारा शोषित होते हैं, और त्वचा द्वारा ही बाहर भी निकलते हैं। इसी हेतुसे ये चर्मपर उग्रता उत्पादन करते हैं। इसके अतिरिक्त श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कला द्वारा निश्वासके साथ बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कला उत्तेजित होती है। फिर स्रावण, रक्तवेग और सब मांसपेशियोंकी निष्कासन शक्ति बढ़ जाती है एवं उग्रताके हेतुसे प्रतिफलित रूपमें कासकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे ये औषधियाँ कफनिःसारक रूपसे कार्य करती हैं।

ये तैल प्रचुर परिमाणमें वृक्क द्वारा मूत्रके साथ बाहर निकलते हैं। इस हेतुसे मूत्रग्रन्थियाँ उत्तेजित होकर क्षोभ पीडित हो जाती हैं। किन्तु ये तैल अधिकांश स्थलमें मूत्रल रूपसे कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त ये मूत्राशय और जननेन्द्रियकी श्लैष्मिक कला पर उत्तेजना लाते हैं। क्वचित यह उत्तेजना इतनी अधिक होती है, कि श्लैष्मिक कला प्रदाहग्रस्त हो जाती है।

इन तैलोंमें किसी-किसीकी क्रिया सब प्रकारसे प्रबल रूपमें प्रकाशित होती है और किसी-किसीकी क्रिया किसी-किसी आशय या यन्त्रपर अधिकतर प्रतीत होती है। ये सब शारीर विधानपर जिस तरह कार्य करते हैं तदनुसार उनका व्यवहार किया जाता है। अत इनके निम्नानुसार विभाग किये हैं।

(१) त्वचा पर प्रधानत कार्य करनेवाले—टार्पिन तैल, नीलगिरी (यूकेलिप्टस) तैल, राई और सरसोंका तैल, रोजमरीका तैल, कापूर तैल आदि। ये सब त्वचा पर उत्तेजना लाते हैं।

(२) आमाशय और अन्नपर कार्यकारी उदरवातहर—लौंग, पीपल, पिपरमेंट, आयरस्ल दालचीनी, सोंठ, लाल मिर्च काली मिर्च इलायची, सौंफ, सोया, नीलगिरि कपूर, लवेण्डर, धनिया, जीरा आदिके तैल। ये सब पचनेन्द्रिय संस्थामें उत्तेजना लानेके लिये प्रयोगमें लिये जाते हैं।

(३) आमाशयपर कार्यकारी और प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातविधानमें उत्तेजना लाने वाले—जटामांसी, हींग, बोल (Myrrh) और गालबेनम गोंद (Galbanum) आदि। इनका मिश्रण उड़ने वाले तैल में होनेपर या इनका तैल बनाने पर ये प्रतिफलित रूपसे हृदय और समस्त वातविधानपर असर पहुँचाते हैं।

(४) श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलापर कार्यकारी लहसुन और प्याजका तैल फरवुल तैल (Fir Wool Oil), लोबानका तैल आदि। ये सब उत्तेजना लाते हैं।

(५) वृक्क मूत्रमार्ग और जननेन्द्रियपर कार्यकारी—शीतल मिर्च, गंधाबिरोजा चन्दन, जुनिपर आदिके तैल। ये सब उत्तेजक हैं।

(६) स्त्रियोंके जननेन्द्रियपर कार्यकारी—कस्तूरी, हींग, जीरा, शीतल मिर्च, कपूर आदि। ये सब उत्तेजना लाते हैं।

(४) वातशूलघ्न

एन्टिनर्विन्स और एन्टिन्यूरलजिक्स।

(Antinervins or Antineuralgics)।

वात कुपित होनेसे या वातवाहिनियोंकी विकृति होनेसे उत्पन्न शूलको शमन करनेवाली औषधियाँ—ताम्रभस्म, लोहभस्म घटित औषधियाँ, कासीस भस्म, शंखभस्म, रौप्यभस्म, गन्धक, सोमल, पारदघटित औषधियाँ, शिलाजीत, अरनी, आकड़ा, अरंडी, करंज, कायफल, गुंजा, प्याज, लहसुन, दशमूल निर्गुण्डी, वच्छनाग, कालीमिर्च, लौंग, सोंठ, जीरा, अफीम, कपूर, पीपल अजवायन, अजमोद, कूठ, पुष्करमूल, पीपलामूल, चित्रकमूल गाय मक्खन, चोपचीनी और पौष्टिक पदार्थ आदि।

उदरमें शूल होनेपर—ताम्रघटित औषधियाँ और हींग, अजवायन आदि।

आमाशयमें पित्त वृद्धि जन्यशूल, पर—शंखभस्म, वराटिका भस्म।

पाण्डुताजन्य शूलमें—लोहभस्म, मण्डूर, अभ्रक भस्म आदि।

पारद, शीशा और ताम्रविषज शूलमें—गन्धक। वातप्रधान या वात-पित्तप्रधान उदरशूल यदि रांग अथवा शीशाजनित हो, तो—फिटकरी, नागभस्म हितकर होती है।

सन्धि स्थानोंके वातज शूलमें — लहशुन, एरंड तैल आदि औषधियाँ।

निर्बलताजन्य शूलमें—अभ्रक भस्म और रस सिंदूर आदि पौष्टिक औषधियाँ।

विषमज्वरजन्य शूलमें — सोमल, हरताल और ज्वरघ्न औषधियाँ।

उपदंशविषज शूलमें—सोमल, हरताल, चोपचीनी, पारद भस्म रसकपूर आदि।

मस्तिष्क शूल और नेत्र शूलमें—रौप्य भस्म, कस्तूरी जरी, सिन्चिन आदि।

हिस्टीरियाजनित शूलमें—गाँजा, खुरासानी अजवायन, हींग आदि।

आमवातिक शूलमें—लहशुन, पलुआ, तार्पिन तैल, कपूर आदि।

बस्तिशूलमें—जवाखार, शिलाजीत आदि।

गर्भाशय शूलमें—अशोक, कासीस आदि।

हृदय और फुफ्फुसके शूलमें—शृङ्ग भस्म, (मृग या बाराहसिंगेके सींगकी भस्म) उपकारक है।

तीव्र पीड़ा दमनार्थ—अफीम आदि।

रौप्य भस्मका उपयोग मस्तिष्ककी शक्तिका क्षय होकर उत्पन्न शिरःशूल, अपस्मार, उन्माद, भूतोन्माद, रक्तवाहिनीमें वातप्रकोपज शूल, रक्तार्शमें शूल वात या वात पित्तज नेत्रशूल और वातवाहिनियोंमें विकृति होकर इतर स्थानमें चलनेवाले शूल, सब पर होता है। विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार' में किया गया है।

कासीस भस्मका प्रयोग आमाविक व्याधियाँ, गर्भाशय शूल, आन्त्रोंमें सेन्द्रिय विषज शूल आदिमें होता है और यह रक्तवर्द्धक भी है।

शृङ्ग भस्मका उपयोग पार्श्वशूल, हृच्छूल, कफकास, न्यूमोनिया, प्रतिश्याय, क्षयज्वर, काली खांसी, दन्तशूल, व्रणक्षण आदिमें होता है।

कर्पूरमें तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, ईषत् शीत, कफनाशक, कण्ठदोषघ्न, मेधाकर, पाचन, कृमिनाशक, वातविकार, चक्षुष्य, लेखनशामक, विषघ्न, गरद, तृषा, मुखदोष, मेद और दुर्गन्धको नाश करना आदि गुण हैं।

नव्यमतानुसार कपूर हृदयकी गति, श्वासोच्छ्वास और रक्ताभिसरण क्रियाको उत्तेजित करता है। कपूरमें कामोत्तेजक गुण भी है। दीर्घकाल तक सेवन करने पर अवसादक असर पहुँचाता है। इसके सेवनसे गर्भाशय उत्तेजित होता है और रज स्राव बढ़ जाता है। कपूरमें वेदनाहर गुण होनेसे बाहर लेप लगाने पर त्वचाको लाल बनाता है। एवं शोथकी निवृत्ति करता है।

कपूर सेवन करने पर त्वचा, मूत्रपिण्ड और श्वासनलिका द्वारा प्रस्वेद मूत्र और कफ बनकर बाहर आ जाता है। कभी-कभी कपूर वृक्कस्थान और मूत्राशयमें मदाहकी उत्पत्ति कराकर मूत्रकृच्छ्र भी करता है। अधिक मात्रामें सेवन करने पर अन्त्रप्रदाह और विषलक्षण प्रकाशित होते हैं। फिर हृदयमें अवसाद, शारीरिक

उष्णतामें न्यूनता, हाथ-पैरमें शीतलता, बहाशी और आक्षेप आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

कर्पूर दन्तशूल, प्रतिश्याय, नासाशोथ, मस्तिगत कृमि, आमवातिक शूल, मूत्रमार, व्रण आदि रोगोंमें बाह्य प्रयोगरूप से प्रयोजित होता है। डाक्टरीमें कर्पूरको मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, आक्षेप निवारक, वेदनाहर, स्वेदजनक और कर्मेन्द्रियकी उग्रता नाशक लिखा है। कर्पूरका बाह्य प्रयोग प्रत्युग्रतासाधक रूपसे भी होता है। सेवन करने पर धमनियों में स्पन्दनकी वृद्धि होती है। नाड़ियाँ प्रसरित होती हैं। देहमें स्फूर्ति आती है। यह मात्रा भेदसे कभी उत्तेजक होता है, और कभी उग्रता-शामक बनता है। अत्यधिक मात्रामें सेवन करने पर वमन न हो जाय, तो स्वापजनक असर दर्शाता है। मस्तिष्कमें भारीपन, चक्कर, ज्ञानेन्द्रियोंमें विकृति, प्रलाप, आक्षेप, अचेतना, सुषुप्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह अवस्था कई घण्टों तक रहती है।

ज्वर, निर्बलता, अस्थिरता, निद्रानाश, मृदुप्रलाप, आक्षेप आदि उपद्रव होने पर मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य या प्रदाह न हो, तो कर्पूरका सेवन करानेसे मात्रया नाड़ियाँ उत्तेजित होकर उपकार दर्शाती हैं। इस तरह विषूचिका रोगमें इसका उपकार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त अनेक रोगोंमें बाह्य प्रयोग रूपसे कर्पूर प्रयोजित होता है।

अफीम—त्रिदोषघ्न, वृष्य, बल्य और मोहजनक है। भावप्रकाशकारके मतानुसार शोषक, ग्राही, श्लेष्मघ्न, वातकर और पित्तकर है। फिर भी भावप्रकाशमें अतिसार, संग्रहणी आदिकी चिकित्सामें अफीमकी योजना नहीं की है अतः प्राचीन ग्रन्थकारोंने इसको उपयोगमें नहीं लिया है।

नव्यमतानुसार अफीम—मस्तिष्क उत्तेजक, मोहजनक, स्वापजनन, वेदना निवारक, आक्षेपघ्न, स्वापहारक, स्तम्भक, स्वेदजनक और कासघ्न है। अल्प मात्रा सेवन करने पर प्रारम्भमें उत्तेजना आती है। फिर मोहजनक और अवसादक अवस्थाकी प्राप्ति होती है। प्रकृति भेदसे इसका फल भेद हो जाता है। किसीको उत्तेजना अधिक होती है और किसी को मोहकता की प्राप्ति अधिक होती है। अफीम की क्रिया प्रधानतः मस्तिष्क और वातनाड़ियोंके सुषुम्नाकेन्द्र पर होती है। अफीमके सेवन से कनीनिका आकुंचित होती है।

अफीमका उपयोग वेदनाशमन, आक्षेपनिवारण, निद्राप्राप्ति और स्तम्भन क्रिया (मलस्तम्भन, मौमस्तम्भन)के रूपसे होता है। एवं विविध अविराम ज्वर, सूतिका उन्माद, शिराओंमें रक्तसंग्रह होकर मन्द शिरदर्द, मदात्यय, निद्रानाश, विविध कास, काली खाँसी, तमकश्वास, श्वास-कृच्छ्रता, प्रतिश्याय, अन्त्रावरणप्रदाह (Peritonitis), अन्त्रप्रदाह, आमाशयप्रदाह, अतिसार, प्रवाहिका, अन्त्रशूल,

आमाशयस्थ फर्कस्फोट, विसूचिका, अन्त्रान्त्रप्रवेश (Intussusception) दुर्निवार कास्थप्रद्दता, इन्फ्लुएन्जा, शोणधातुजनित आक्षेप, शुष्कदाह, आमाशयस्थ वातवहा नाडियोंकी उग्रताजनित वमन और हिक्का, पित्ताशयस्थ अश्मरी, मूत्राशयमें अश्मरी, मूत्राशयप्रदाह मूत्रप्रसेक नलिकाके आक्षेपज मूत्रावरोध, अभिघातज गर्भस्राव या गर्भपात, गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव, इतर प्रकारके रक्तस्राव, मांसपेशीशूल, वातशूल, पार्श्वशूल, मधुमेहके मूत्रमें शर्करादि इत्यादि रोगोंमें प्रयोजित होती है तथा शूल आदि व्याधियोंमें स्थानिक बाह्य प्रयोग रूपसे उपयोगमें ली जाती है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा एलोपेथिमें अफीमका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें और विविध प्रकारसे किया गया है।

(५) पित्तशोघ्न

पित्तके प्रकोपको दूरकर सम अवस्थामें लानेवाली औषधियां। इस सम्बन्धमें चरक संहितामें लिखा है कि.—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणै पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति॥

पित्तमें किञ्चित् स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर और कटु, ये मुख्य गुण अवस्थित हैं। इन गुणोंसे विपरीत स्निग्ध, शीतल, मृदु, सान्द्र, कषाय, तिक्त या मधुर, इन गुणों और कर्मों द्वारा पित्तका शमन होता है।

पित्त स्वभावसे कटु है और विदग्ध होनेपर अम्ल, कटु बन जाता है, ऐसा सुश्रुत संहितामें कहा गया है।

पित्तमें सर गुण भी कहा है। उस के विरुद्ध स्थिर गुण है किन्तु उसका उपयोग नहीं होता। क्योंकि, शमन क्रियाके लिये उसकी आवश्यकता नहीं है। स्तम्भन औषधिका प्रयोग पित्तशमनार्थ नहीं होता। आचार्योंने विरेचनसे बढ़कर पित्तशामक अन्य औषधि नहीं कही।

सुश्रुताचार्यने इस सम्बन्धमें कहा है कि—

पयोदकानामुदकेऽपनीते
चरस्थिराणां भवति प्रणाशः।
पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां
पित्तात्मकानां भवति प्रणाशः॥

पित्त प्रकार—

१ पाचक—आमाशय और पक्वाशयके बीचमें। अन्न पाचक।
२ रंजक—यकृत्प्लीहामें। रसको रञ्जित करता है।
३ साधक—हृदय (मस्तिष्क) में। बुद्धिकी पोषक अग्नि।

४ आलोचक—नेत्रमें। रूप ग्रहण करनेवाला अग्नि।

५. भ्राजक—त्वचामें। अभ्यंग आदिकी छाया को प्रकाशक।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे पित्त धातुके स्थान भेदसे ५ विभाग, अविकृत पित्तके कार्य, पित्तविकृति हेतु, पित्तके क्षय-वृद्धि प्रकोपके लक्षण, पित्तशामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ २५ से ३२ तक में किया है।

धातुओंकी गति दो प्रकारकी होती हैं। प्राकृत (Physiological) और वैकृत (रोगसंप्राप्तिकर Pathological) इन धातुओंके पोषणका आधार पित्त है। पित्त अग्निमय है, जो नाना प्रकारके आहार सत्त्वोंको पकाकर धातुओंके लिये आवश्यक सत्त्व प्रदान करता है। यदि यह विकृत हो जाय, तो धातुओंको पोषण नहीं मिलता। फिर बहुतसे विकारोंकी उत्पत्ति हो जाती है। यह भाव सुश्रुताचार्यने निम्न श्लोकमें दर्शाया है।

> पित्तादेवोष्मणः पक्तिर्नराणामुपजायते।
> तच्च पित्तं प्रकुपितं विकारान्कुरुते बहून्॥

देहकी रस रक्त आदि सब धातुओंमें रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes) सतत होता रहता है। यह सब कार्य पित्त (धातुओंके भीतर अवस्थित पित्त) द्वारा होता रहता है। इन सब पित्तोंको पाचक पित्तका आश्रय मिलता है। पाचक पित्त विकृत होने पर ये क्रियायें सम्यक् प्रकारसे सिद्ध नहीं होतीं। फिर अनेक रोगोंकी सृष्टि होती है।

पित्तप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, कड़ुआ और कसैला रस, शीतल जलसे स्नान, शीतल जलपान, शीतलवायु सेवन, ग्रीष्मऋतुमें रात्रिको चाँदनीमें बैठना, मोती या पुष्पकी माला धारण करना, शय्यापर कमल, गुलाब, मोतिया, मल्लिका, चमेली आदिके पुष्प बिछाना, चन्दनका लेप, खसके पंखेकी वायु, गेहूं, जौ, भात, चने, मूंग, मसूर, मिश्री, शक्कर, जौका सत्तू, चनेका सत्तू, घी, दूध, सैंधानमक, परवल, करेले, काशीफल, गूलर, आलू, गोभी, चौलाई, पोई, पालक, बथुआ, चोपतिया, *अगस्तके फूल*, *कच्ची ककड़ी*, *खीरा*, *धनिया*, *कोहड़ा*, आंवला, नीबू, पक्का कैथ, अंगूर, मुनक्का, किसमिस, सेव, अंजीर, फालसा, पक्के केले, संतरा (नारंगी), मीठा नीबू, सिंघाड़े, कमलगट्टे, खीरेके बीज, खिरनी, नारियलका जल, खजूर, ताड़फल, सब प्रकारके शीतल फल-फूल आदि, जलाशयमें स्नान, प्रातः सायं घूमना, गाड़ी-घोड़ाकी सवारी करना इत्यादि आहार विहार पथ्य हैं और पित्त प्रकोप होनेपर शमनार्थ भी उपयोग में आते हैं।

पित्तप्रकोपक आहार विहार—क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, जले हुए पदार्थ खाना, अधिक मैथुन, दौड़ना, अधिक घोड़ेकी सवारी, चरपरे, खट्टे, नमकीन, तीक्ष्ण, उष्ण लघु और विदाही गुणवाले पदार्थ, तिल तैल, खली, उड़द,

कुलथी, सरसों, अलसी, ताजे शाक, गोह, मछली, बकरे और मेढका मांस, खट्टा दही, खट्टा मट्ठा, कूर्चिका (दही या छाछके साथ औटाये हुए दूधको मिलाना) मस्तु (दहीका जल), काँजी, सिरका, ताड़ीका रस (ताड़ी), शराब, खट्टे फल, दहीकी मलाई, सूर्यका ताप, सरसोंका तैल, तैलमें तले हुये पदार्थ, नया गुड़, हींग, मेथी, कच्ची इमली, ताजीमूँगफली, शरदऋतुका नया अन्न, सेम, चाय, काफी, तम्बाकू, गाँजा, चरस, ज्यादा नमक, कच्चा कालसा, पुराना खरबूज, पुराना नारियल आदि आहार विहारके सेवनसे पित्त प्रकुपित होता है।

इसी प्रकार उष्ण पदार्थसे तथा उष्णऋतु, शरदऋतु, मध्याह्नकाल, अर्धरात्रि और भोजन पचनेके समय बहुधा पित्त प्रकोप होता है। क्षुधा-तृषाके वेगको रोकनेसे भी पित्त प्रकुपित हो जाता है।

सूचना—यदि लवण द्रावक, फाशीरा द्रावक आदि अम्ल पदार्थ या अम्ल फलोंके रसका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामें किया जाय, तो आमाशयमेंसे अम्ल रसका उत्पत्ति कम होती है फिर क्षाररस बढ़ जाता है, इसके विपरीत क्षारप्रधान द्रव्यका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामें होनेपर क्षार रसकी उत्पत्ति कम होती है परिणाममें अम्ल रसकी वृद्धि होती है, अर्थात् क्षारोंके सेवनसे आमाशयरस पाचक रसका स्राव बढ़ जाता है परन्तु लालाग्रन्थिरसमें ह्रास होता है। इसके विपरीत अम्लरसके सेवनसे लालास्राव बढ़ जाता है किन्तु आमाशय रसका स्राव न्यून हो जाता है। अत इस नियमको लक्ष्यमें रखकर औषधिकी योजना करनी चाहिये।

पित्त संशमन वर्ग—पित्तकी तीक्ष्णता और वृद्धिको न्यून करनेवाली औषधियाँ-चन्दन, कुचन्द (लाल चन्दन), नेत्रबाला खस, मजीठ, पयस्या (क्षीरका-कोली), विदारीकन्द, शतावरी, गोंदनी, शैवाल (काई), कल्हार (श्वेत कमल), कुमुद, उत्पल (नीलकमल), केला, कदली (कमलगट्टे), दूब, मुर्वा आदि, काकोल्यादि गण, न्यग्रोधादि गण तथा तृण पचमूल, ये सब पित्तशामक औषधियाँ हैं।

काकोल्यादि गण—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पद्माख, प्रपौण्डरिक, (पुंडेरीक), ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवंती, मुलहठी, ये १८ औषधियाँ कही हैं। यह गण पित्त, रक्त और वायुको विकृतिका नाशक तथा जीवनीय बृंहण, वृष्य, स्तन्यवर्द्धक और कफवर्द्धक है।

न्यग्रोधादि गण—बड़, गूलर, पीपल, पिलखन, महुवा, आमड़ा, अर्जुन, आम, आमभेद (कोशाम्र), चोरक पत्र (लालका वृक्ष), दोनों प्रकारका जामुन, चिरौंजी, मुलहठी, रोहिणी (कायफल), वंजुल (बेंत) कदम्ब, बेर, तेंदू, शल्लकी (शालभेद), लोध, पठानी लोध, भिलावा, पलाश, पारस पीपल, ये २५ वृक्ष

करते हैं। यह गण प्रयोगमें हितकारी, संग्राही, भग्नसंधानकारी, रक्तपित्तशामक, दाह नाशक, मेदोहर और योनि दोषको हरनेवाला है।

पञ्च तृणमूल—कुश, काश, नरसल, दर्भ और इक्षु, इनके मूल-तृषा, दाह, रक्त और मूत्रविकार तथा मूत्रावरोधके नाशक हैं। विशेषतः इनका प्रयोग दूधके साथ किया जाता है।

इनके अतिरिक्त सुवर्ण, रौप्य, वंग, मोती, प्रवाल, वैडूर्य, अकीक, कस्तूरी, सुवर्णमाक्षिक, सफेद चंदन, रक्तचन्दन, चिरायता, पित्तपापड़ा, धनिया, मंजिष्ठ, मिश्रीदाना, पावल, कड़ु पटोल, वनगोभी, गोखरू, कूष्माण्ड, फालसा, मीठे अनार अंगूर, मोसम्बी, सन्तरा, नीबू इत्यादि पित्त शमन करते हैं।

आयुर्वेदमें आमाशयिक रस (Gastric juice) और यकृतमेंसे निकलने वाला रस (Bile) दोनोंको 'पित्त' संज्ञा दी है। आमाशयिक रस अम्ल और उग्र है। पित्ताशयसे निकलने वाला पित्त नमकीन है।

पाचक पित्त (आमाशयिक रस) पर कार्यकारी —

(१) आमाशय क्षीण होने पर (अजीर्ण और अग्निमान्द्यमें) भोजनके प्रारम्भमें तरल पदार्थका सेवन नहीं करना चाहिये। कठिन (शुष्क) पदार्थका सेवन करनेपर आमाशय-रसस्राव अधिक होता है।

(२) भोजनके पहिले सोडा आदि क्षारको जलमें मिलाकर सेवन करनेपर आमाशयिक रस अधिक स्रवता है।

(३) नमकीन और स्वादिष्ट भोजनका मुँहमें उत्तम रूपसे चर्वण होनेपर मुँहमेंसे लालास्राव अधिक होता है। फिर आमाशयमें उत्तेजना आकर आमाशयरस अधिक निकलता है; और अच्छी तरह चबाये हुए भोजनका परिपाक भी सत्वर हो जाता है।

(४) भोजनके साथ जलमिश्रित थोड़ी शराब लेनेसे आमाशय उत्तेजित होकर रस विसर्जन अधिक होता है जब यकृतके पित्त स्रावका ह्रास हो गया हो, तब पित्त स्रावप्रवर्तक औषधियाँ सेवन कराई जाती हैं। इसका वर्णन आगे नं० ८ में करेंगे।

डाक्टरी मतानुसार अम्लतानाशक (Antacids) यकृदवसादक (Hepatic Sedatives) और पित्तविरेचक औषधियोंसे पित्तशमन हो जाता है। अम्लतानाशक औषधियोंसे आमाशय, अन्त्र, मूत्राशयकी अम्लताका ह्रास होता है। इस प्रकारकी औषधियोंमें दो विभाग हैं। साक्षात् और दूरवर्ती फलदायक।

साक्षात् फलदायक—भोजनके पहिले शीतल जलपान, नौसादर, सज्जीखार, मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख, मिश्री मिश्रित चूनेका जल चाकमिट्टी आदि औषधियोंकी प्रत्यक्ष क्रिया आमाशयकी अम्लता पर प्रतीत होती है।

दूरवर्ती फलदायक—जवाखार, शिलाजीत, मौक्तिक, प्रवाल, वराटिका आदि। इस प्रकारकी औषधियोंसे पेशाबकी अम्लताका नाश होता है, और परम्परागत पचन-संस्था पर लाभ पहुंचता है। प्रवाल, मौक्तिक आदि कतिपय औषधियोंमें उभय प्रकारके गुण अर्थात् साक्षात् और दूरवर्ती गुण भी हैं। इन औषधियोंके गुणका विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' में किया गया है।

आमाशयिक पित्तशामक—अम्लतानाशक (Antacids or Alkalies) जिन क्षारोंका अम्लद्रावके साथ मिलाने पर रासायनिक सम्मिलन द्वारा अम्लताका नाश हो और दोनोंके संयोगसे एक नूतन पदार्थकी उत्पत्ति हो, ऐसे पदार्थको डाक्टरीमें लवण संज्ञा दी है। क्षार और अम्लके तारतम्यके हेतुसे लवणके तीन प्रकार होते हैं।

१ क्षाराधिक लवण—आल्कलाइन सॉल्ट (Alkaline Salt)।
२ अम्लाधिक लवण—एसिड सॉल्ट (Acid Salt)।
३ समक्षाराम्ल लवण—न्युट्रल सॉल्ट (Neutral Salt)।

क्षारके अतिरिक्त ऑक्सिजनसंयुक्त धातुओंका अम्लद्राव से सहयोग होने पर लवण प्रस्तुत होता है। यथा कासीस (Sulphate of Iron) का निर्माण गन्धकाम्ल और ऑक्सिजन घटित लोहेके मिश्रणसे होता है। एवं गन्धक द्रावक और ऑक्सिजन घटित ताम्रके मिश्रणसे नीलाथोथा (Sulphate of Copper) की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त विविध वनौषधिसत्व और अम्लके सहयोगसे भी विविध लवणोंकी उत्पत्ति होती है। यथा क्विनाइन और गंधकाम्ल मिलाकर क्विनाइन सल्फास, अफीमसत्व (Morphine) के साथ सिरका (Acid Acetic) मिलानेपर सिरका प्रधान अहिफेन लवण (Acetate of Morphine) और गन्धकका तेजाब मिलानेपर गन्धकाम्लप्रधान अहिफेन लवण (Sulphate of Morphine) तैयार होता है। इस तरह डाक्टरीमें अनेक लवणोंकी रचना की है।

क्षारका द्वितीय लक्षण यह है, कि वनौषधिजन्य पीतवर्णको रक्त बना देता है। जैसे हल्दीके चूर्णके साथ सज्जीखारका जल मिलानेसे लोहितवर्णकी प्राप्ति होती है।

नीलाथोथा, कासीस आदि अनेक उपधातुओंका डाक्टरीमें लवण वर्गमें अन्तर्भाव किया है।

क्षार सेवनसे वसायुक्त पदार्थ सत्वर द्रवीभूत होता है। इस हेतुसे सशोधन और मेदोवृद्धिमें क्षारका उपयोग होता है। क्षारमिश्रित जलका उपयोग कुल्ले करनेके लिए भी किया जाता है। कुल्ले करनेसे मुखमें रही हुई अम्लताका शमन होता है। तथा मसूड़ेके पासमें दाढ़ोंकी उग्रताके हेतुसे टंकशूल चलती हो, तो वह शमन हो जाती है। आमाशयमें अम्लरसका परिमाण अधिक संचित होनेपर अम्लनाशार्थ क्षारका सेवन किया जाता है।

यदि भोजनके एक या आध घण्टे पहिले क्षार उपयोगमें लिया जायगा, तो आमाशयमें भोजनके साथ अम्ल रसका स्राव अधिक हो जायगा। इस हेतुसे जब आमाशयरस स्राव कम होता हो, पेटमें भारीपना हो जाता हो, तब भोजनके साथ या भोजनके आध घण्टे पहिले क्षारका सेवन हितकारक होता है

इसके विपरीत भोजनके साथ अम्लरस स्राव अधिक होता हो, तब भोजनके आध घण्टे पहिले थोड़े जल (१० २० तोले) में एक पके नींबूका रस निचोड़ ३ ४ मा० शक्कर मिलाकर पिला देनेसे अम्लरसकी उत्पत्ति कम होती है।

तेजाब, धातव-लवण (नीलाथोथा, कासीस आदि) या उपक्षार द्वारा विपाक असर पहुँचने या पित्त प्रकोप होनेपर विषशमनार्थ क्षार व्यवहृत होता है। तेजाबमें क्षार मिल जानेसे समक्षाराम्लता प्राप्त होती है। धातव-लवण अद्रवणीय ऑक्साइड (Oxide) रूपसे अव स्थ हो जाता है। एवं उपक्षारका तेजाब नष्ट होकर वह अपक्षारत्व द्रवणीय बन जाता है।

आमाशयमेंसे अर्धपक्व द्रव्य अन्त्रमें आता है, वह अम्लगुणयुक्त होता है। इस अम्लताके हेतुसे आन्त्रिक क्रिया उत्तेजित होती है, किन्तु भोजनके १ २ घण्टे बाद क्षार प्रयोग द्वारा इस अम्लताको नष्ट किया जाय, तो अन्त्र स्राव योग्य नहीं होता। फिर परिपाक विकार या अजीर्णकी उत्पत्ति होती है। अत आमाशयमें अधिक अम्लता हो, तब ही क्षारका उपयोग करना चाहिये।

क्षार सेवनसे रक्त तन्तु (Fibrin) द्रवीभूत होते हैं, इस हेतुसे आमवातमें हृदयके भीतर संग्रहीत रक्ततन्तुओंके निवारणार्थ क्षार प्रयोजित होता है। यदि नमकका गात्रद्रव कांटा, व्रण, श्लैष्मिक कला, मांसपेशी या वातवहा नाड़ी आदि पर लगाया जाय, तो अति उग्रता उत्पन्न होती है। नमकका भोजनमें अधिक उपयोग किया जाय, तो आमाशयमें उग्रता उत्पन्न होती है। जलमें मिलाकर पान किया जाय; तो वमन होती है। नमक शरीरमें सत्वर शोषित होता है और सत्वर ही शरीरमेंसे बाहर निकल जाता है। अधिक नमक सेवन करनेपर पिपासा भी अधिक लगती है। अत्यधिक सेवन करनेपर क्वचित् प्रलाप भी हो जाता है।

सूचना—(१) क्षार सेवन करनेपर आमाशयकी अम्लता नाश होती है परन्तु अम्लनाशका सच्चा प्रतिकार नहीं होता। इससे केवल तात्कालिक अम्लता दूर हो जाती है। इस हेतुसे अम्लता वृद्धि होनेपर होनेवाली वेदना तुरन्त निवृत्त हो जाती है। परन्तु अम्लवृद्धिका मूल कारण रह जानेसे कुछ समयके पश्चात् पुन पूर्ववत् अम्लता उपस्थित होती है। अत क्षार द्वारा अम्लरोग (अम्लपित्त आदि) आदिके प्रतिकार करनेकी चेष्टा निष्फल होती है।

(२) बारम्बार क्षारका सेवन करनेपर भयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। कारण, अधिक परिमाणमें क्षार सेवन करनेपर क्षारके नाशके लिये आमाशयको

तुरन्त अधिक पाचक रस निकालना पड़ता है। इस तरह बार बार प्रयोग करते रहनेसे आमाशयकी शक्तिमें पुन पुन उत्तेजना आते रहनेसे अन्तमें क्षीणता आ जाती है। फिर पाचक रस यथेष्ठ परिमाणमें निर्गत नहीं होता। इस हेतुसे भयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। (ऐसी अवस्था क्षयकाम्ल द्रव उपकारक है)।

(३) आमाशयको अम्लतानाशार्थ क्षारप्रयोग करना हो, तो भोजन कर लेने पर तुरत व्यवस्था नहीं करनी चाहिये। कारण, इससे पाचक रसकी अम्लता नष्ट होकर परिपाक क्रियामें व्याघात पहुँचता है। अतः भोजनके १४ घण्टे बाद (अन्त्रमें आहाररस चले जाने पर) प्रयोग करना चाहिये। अन्त्रमें अम्लता रहनेपर देरसे द्रवणीय मेगनेशिया, चूना, वराटिका भस्म आदिका उपयोग करना चाहिये। कारण, ऐसा होनेपर औषध, रोगस्थान पर्यन्त जाकर कार्य कर सके।

(४) आमाशयमें यदि अम्लता वायु रूपसे हो, तो उसके निवारणार्थ शंखवटी, नौसादर आदि औषधिका प्रयोग करना चाहिये। यदि अम्लरोगके साथ आध्मान हो, तो हींगप्रधान औषधि (शिवाक्षार पाचन) देनी चाहिये।

(५) जब विसूचिका आदि रोगोंमें रक्तमेंसे जलीय अंश अधिक निकल जाय, तब रक्तमें स्वाभाविक क्षार कम हो जाता है। ऐसे समय पर क्षार उपकारक है। क्षारका कम मात्रामें अधिक जलके साथ मिलाकर देना चाहिये।

जिस तरह तैलके साथ क्षार मिश्रित होनेपर साबुन बन जाता है, उसी तरह आमाशय आदिमें रहा हुआ तैल प्रधान द्रव्य क्षार सेवनसे पचन होता है अत मेदोवृद्धिमें क्षार सेवन (गोमूत्र, गोमूत्र क्षार, अपामार्गक्षार, शिलाजीत आदि) लाभदायक होते हैं। पर जब पित्त और आग्नेय रसकी मात्रा कम हो, तब क्षारका उपयोग किया जाता है।

क्वचित् ज्वर आदि रोगोंमें तृषा बढ़ जाती है। उसे आयुर्वेदमें पित्त प्रकोपका लक्षण माना है। ऐसे समय पर मुंहमें अम्ल मधुर द्रव्य आलूबुखारा आदि रखने या अम्ल द्रव्यका जलके साथ सेवन करानेपर मुखके भीतर लाला निःसरणमें वृद्धि होती है। फिर तालु आर्द्र होता और तृषा शमन होती है। किन्तु तेज अम्लका उपयोग किया जायगा, तो दाँतोंको हानि पहुँचेगी।

यकृद्‌वसादक (Anticholagogues)—मौक्तिक, शुक्ति, वराटिका तथा अफीम, पारद घटित औषधि (केलोमल), मेगनेशिया, एरंड तैल आदि औषधियाँ यकृत्‌के पित्तस्रावका ह्रास करती हैं। इनमेंसे मौक्तिक आदिका पित्त शामकमें अंतर्भाव किया जाता है किन्तु अफीम आदिका प्रयोग इस अभिप्रायसे नहीं किया जाता।

पित्तनिःसारक (Cholagogues)—पारदघटित औषधियाँ, रेवन्दचीनी, निशोथ, एलवा आदि औषधियोंका सेवन करने पर पित्तका अन्त्रमें पुन शोषण

होकर रक्तमें मिश्रित होनेके पहिले ही, वे उसे शरीरसे बाहर निकाल देती हैं। ये औषधियाँ यकृतका पुरःसरणगति और आन्तरिक रसस्रावमें वृद्धि कर विष-निःसारक क्रिया करती हैं। इसी हेतुसे विषका नाश होनेसे परम्परागत शमन गुण प्रतीत होता है।

पित्तपापड़ा— शीतल, तिक्त, पित्तश्लेष्महर है तथा ज्वर, रक्तदोष, दाह, अरुचि ग्लानि, मद, भ्रम आदिको नाश करता है। यह मूत्रल और सारक गुण भी दर्शाता है। एवं रक्तकी उष्णताका ह्रास करता है। प्राचीन आचार्योंने रक्तपित्त पित्तज्वर, सर्व प्रकारके ज्वर, अतिसार मदात्यय, छर्दि आदि रोगोंमें इसका उपयोग किया है। इन्फ्लुएञ्जामें भी इस औषधिके क्वाथसे उत्तम लाभ पहुँचता है। नव्यमत वाले इसके पत्तोंके स्वरसका अभिष्यन्द (तीक्ष्ण नेत्रप्रदाह— (Ophthalmia) रोगमें उपयोग करते हैं।

श्वेत चन्दन—शीतल, दाह-पित्तशामक, वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषनाशक, ज्वरहर और तिक्त है। वमन, मोह, तृषा, कुष्ठ, तिमिर, कास, रक्तप्रकोप आदिका शमन करता है। चन्दनके तैलमें ग्राही, कफघ्न, मूत्रल और उत्तेजक गुण हैं। इसका प्रयोग वंशलोचनके साथ पूयमेहजनित तीव्र मूत्रदाहमें किया जाता है।

नव्यामतानुसार चन्दनके चूर्ण और क्वाथके सेवनसे किञ्चित् उत्तेजना और परम्परागत रक्तसंचालन यन्त्र पर अवसादकता पहुँचती है। इसके सेवनसे हृदयक्रिया मन्द होती और क्वचित् वमन होती है। विषमज्वरमें यह प्रस्वेद लाकर उष्णताका ह्रास करता है।

गिलोय—तिक्त, कटु और कषाय रसयुक्त है। इनमें तिक्तरस प्रधान है। विपाक मधुर और वीर्य मन्द उष्ण है। यह संशमन गुण तीनों दोषोंपर दर्शाती है। रक्तके भीतर विष या कीटाणुविषजन्य उष्णता बढ़ी हो, तो उसे दूर करती है।

गिलोय रसप्रधान औषधि है (वीर्य—Activeprinciple प्रधान नहीं) इस हेतुसे इसका उपयोग आर्द्रावस्थामें करनेका विधान किया है। नूतन ज्वर, जीर्ण ज्वर, आमाशय और यकृत्‌की निर्बलता, रक्तमें विषप्रकोप और वातविषपर हितकारक है। अन्त्रमें कुछ ग्राही असर दर्शाती है। यह रसरक्त आदि सर्व धातुओंके लिये बल्य होनेसे धातुओंके भीतर लीन हुए विषोंको दूर करनेमें उत्तम कार्य करती है। इसका विशेष विचार आगे 'संशमन' विषयमें वर्णन किया जायगा।

(६) पित्तशामक और सारक

कुटकी, आँवला, इमली, गोखरू, अंजीर, इन्द्रायन, चंदलोद, मिश्री, पुनर्नवा, अमलतासकी फलीका गूदा, द्राक्षा, मुलहठी, फालसा, (कोकम), आमचूर आदि।

जो पित्तविरेचक औषधियां हैं, उनमें पित्तशामक और सारक गुण अवस्थित है। इनका वर्णन आगे विरेचन नं० १७ में किया जायगा। कुछ वर्णन पहिले "पित्त शामक" नं० ५ में आ गया है।

आमलकी (आंवला)—यह दिव्य रसायन है। इसमें कषाय, अम्ल और मधुर रस हैं। यह शीतल और लघु है। दाह, पित्त, वमन, प्रमेह, शोफ, कफ पित्त, रक्तप्रकोप श्रम, विबन्ध, आध्मान आदिको नष्ट करता है। इसमें अम्ल रस होनेसे वातशमन, मधुर रस होनेसे पित्तशमन और रूक्ष-कषाय रस होनेसे कफ का नाश होता है। इस तरह यह त्रिदोषजित है।

प्राचीन ग्रन्थोंमें आंवलेका उपयोग ज्वर, अर्श, प्रदर, रक्तपित्त, हिक्का, तिमिर, रक्ताभिष्यन्द, मूत्रविकार, प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, पाण्डु, उदावर्त, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, शीतपित्त, नासिकासे रक्तस्राव स्वरभंग, नेत्र रोग, सोम, पित्तशोफ, शिरशूल, योनिदाह, कास, निर्बलता, स्मृतिनाश आदि व्याधियोंमें रसायन रूपसे किया है।

पित्तशमनार्थ आंवलेका चूर्ण १ १ तोला या इसका हिम बना कर दिया जाता है। जिससे विरेचन होकर दूषित पित्त निकल जाता है। फिर पित्तप्रकोप का लक्षण दूर हो जाता है।

नव्य विचारवाले इसका उपयोग अतिसार और पेचिशमें ग्राही रूपसे करते हैं। थूकमें रक्त आना (Hemopthysis), रक्तवमन (Hematemesis) और रक्तातिसार आदि रोगोंमें यह लाभदायक है। इसके चूर्णको शर्कराके साथ सेवन करनेसे क्षुधा प्रदीप्त होती है। इस चूर्णमें शीतल, मातहर, संकोचक और रक्ताधिक गुण रहता है। मूत्राशयकी उग्रता और मूत्रस्तम्भ होने पर इसका स्थानिक प्रयोग (लेप रूप से उपयोग) किया जाता है। रक्तस्राव अधिक होने पर गर्भाशय को इसके क्वाथ या फाँट से धोया जाता है, रक्तपित्त (Scurvy) में यह सत्वर उपकार दर्शाता है।

(७) पित्तशामक और ग्राही।

जहरमोहरा खताई, केहरवापिष्टी कैथ (कपित्थ), अनार, कुड़ेकी छाल, बेलगिरी, दारुहल्दी, रसोंजन, सिंघारा जामुन सेब, गंगेरनके फल, कमल, कमल बीज, पटोलपत्र पित्तपापड़ा आदि।

अनार—जो मधुर स्वाद वाला है, वह पित्तशामक और हितकर माना गया है तथा जो खट्टा है उसे चरक संहिताकारने वात पित्त प्रकोपक कहा है। सुश्रुत संहितामें मीठे अनारको त्रिदोषघ्न और खट्टेको वात-कफनाशक कहा है। अनार ग्राही, दीपन लघु शीतल रुचिकर, कासघ्न हृद्य और श्रमनाशक है। वृक्षके मूलकी छाल-में कृमिघ्न गुण होनेसे उदरवेष्टा-कृमि कद् दाना कृमि (Tape worms) के

नाशमें यह उत्तम और निर्विघ्न औषधि है। इसका उपयोग क्वाथरूपसे किया जाता है। इसके अतिरिक्त मूलकी छालमें ईषत् संकोचक गुण होनेसे प्रदर आदि रोगोंमें इसके क्वाथका पिचकारी रूप से उपयोग किया जाता है।

कुटजत्वक्—(कुड़े की छाल) कटु, तिक्त उष्ण, रूक्ष, दीपन, कषाय, लघु, पित्तनाशक, ग्राही, और कफनाशक है। यह अतिसार, राजयक्ष्मा रोगीके अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त, प्रमेह, शुक्राश्मरी, विस्फोटक, कुष्ठ आदि रोगोंमें लाभदायक है। नव्यमतानुसार भी इसमें स्तम्भ, कृमिघ्न, रक्तस्तम्भक और ग्राही गुण माने गये हैं। पेचिशमें यह अच्छा काम देती है। बालकोंको पेचिशमें भी इस औषधिका निर्भयतापूर्वक उपयोग हो सकता है।

कपित्थके पक्के फलमें मधुराम्ल, कषाय, तिक्त, शीतल, वृष्य, गुरु, संग्राही, पित्तघ्न, वातनाशक और श्वासनाशक गुण हैं। कच्चा फल कफनाशक, ग्राही, वातकर, कण्ठघ्न, विषघ्न और कण्ठदोषहर है।

नव्यमतानुसार कैथके कोमल पत्ते पाचक, आध्मानहर और अश्मरीनाशक हैं। अजीर्ण, ग्रहणी, अतिसार, मूत्रमें शर्करा या रक्त आना, इत्यादि रोगों पर दिये जाते हैं। कच्चा कैथ ग्राही होनेसे बेलफलके समान अतिसार और ग्रहणी रोगमें प्रयोजित होता है। पक्का फल तृप्तिकर, पाचक, पौष्टिक और रक्तपित्तनाशक (स्कर्वीनाशक Antiscorbutic) है। इसका शर्बत लालास्राव और कण्ठपाकके शमनार्थ तथा मसूढ़ोंको सबल बनाने के लिये उपयोगी है। इसका गोंद शहदके साथ अतिसार, पेचिश और ग्रहणी रोगमें दिया जाता है। इसके मूलका चूर्ण या स्वरस श्वास रोगीके लिये हितकर माना गया है।

बिल्व (बेलफल)—में धन्वन्तरि निघण्टुकारने अम्ल, स्निग्ध, संग्राहि, दीपन, कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण और वातश्लेष्महर गुण कहे हैं। फल पक जाने पर मधुर, गुरु, विदाही, विष्टम्भकारक और दोषप्र बनता है। परन्तु राजनिघण्टुकार ने मधुर, हृद्य, कषाय, पित्तशामक, गुरु, रूक्ष, ज्वरनाशक, ग्राही, रुचिकर और दीपन लिखा है। भावप्रकाशकारने भी इसे वातश्लेष्महर और पित्तशामक कहा है। चरक संहितामें पके बेलको दुर्जर, दोषवर्धक दुर्गन्धमय मल बातकारक कहा है। कच्चा स्निग्ध, उष्ण तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक और कफ वातजित है। बेलके ये गुण प्रत्यक्ष अनुभवमें आते हैं।

नव्य विचारवाले बेलको पौष्टिक और पिचकारी, दोनों प्रकारके पेचिशमें उपयोगी मानते हैं। कच्चे फलोंको भून, फिर शक्कर मिलाकर खिलानेसे पेचिश दूर हो जाती है।

बेलफलमें मृदु विरेचक संकोचक और शोषक गुण उत्तम प्रकारका होनेसे आमातिसारमें निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। कच्चे फलमें संकोचक और दीपन पाचन गुण है, और पक फलमें मृदुविरेचक गुण अवस्थित है।

बीजपूरक (बिजौरा) लघु उष्ण, दीपन और हृद्य है। श्वास, कास अरुचि तृषा आदिको नष्ट करता और कण्ठका शोधन करता है। इसका रस अति मधुर और हृद्य है। वीर्य, पित्त तथा वातका हरता है। वर्णकर, रुचिकर, रक्त, मांस और मलको बढ़ानेवाला तथा शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मन्दाग्नि, कफ-वात वृद्धि अपचो श्वास, कास आदि रोगोंमें उपयोगी है। इसके केसरमें दीपन लघु, ग्राही गुल्म नाशक और अर्शोघ्न गुण हैं। इस तरह इस वृक्षके सब अंगोंका औषधि रूपसे उपयोग किया जाता है।

प्राचीन आचार्योंने गुल्म, आनाह, पित्तविकार, रक्तपित्त, कर्णशूल, पित्तज्वरमें पिपासा, पित्तज शिरोरोग शूल (पार्श्व हृदय और बस्ति प्रदेशमें), वमन, हिक्का मूत्र में शर्करा (रेत) जाना, दाँतोंमें कृमि, वातज विसर्प सगर्भाकी अरुचि इत्यादि रोगोंमें बिजौराको उपयोगमें लिया है।

नव्यमतानुसार रक्तपित्त (Scurvy), अजीर्ण, वातज गुल्म (आमाशयमें गैस भर जाना (Flatulance) ज्वर रोगमें तृषा और अतिसार आदिमें अति हितकर है। बिजौरेमें रक्तके भीतर अम्ल प्रतियोगी तत्त्व (Alkalies) की वृद्धि करानेका गुण होनेसे आमवात, गृध्रसी कटिशूल और इतर वातरोगोंमें विशेष लाभ पहुँचाता है। लू लगनेसे उत्पन्न त्वचाकी शुष्कता और कण्डू रोगमें इसके रसकी मालिश की जाती है। एवं यह रस प्रसवके पश्चात् होने वाले रक्तस्रावको भी बन्द करता है। इसके तैलकी मालिश करनेसे आमवातज शूलका सत्वर शमन होता है।

(८) पित्तनिःसारक।

पित्तस्राव वर्द्धक—यकृदुत्तेजक—कोलेगोगस-कोलेरेटिक्स।

Hepatic Stimulants Cholagogues-Choleretics

यकृत् को उत्तेजित करके अधिक पित्तस्राव कराने वाली औषधियाँ—ताम्र भस्म पारदमिश्रित औषधियाँ, नौसादर, मल्लभस्म कोकम आमचूर, पलाश सर्जीक्षार यवक्षार, मिर्च, सनाय, निसोत, रेवन्दचीनी आदि। इस प्रकार की औषधियोंके सेवन से यकृतकी क्रिया बढ़ती है और पित्तस्राव अधिक परिमाणमें होता है। आमाशय में आहार होने पर यकृत्स्वाभाविक ही उत्तेजित होजाता है अतः इन औषधियोंका सेवन भोजनके पश्चात् करनेसे पित्तस्रावमें सहज वृद्धि हो जाती है।

डाक्टरीमें पोटासियम लवणका पित्तनिःसारक कहा है। अधिक प्रथिनमय आहार पित्तस्रावकी वृद्धि कराता है क्योंकि नहीं, तथा मद्य और स्वापजनक द्रव्य (Narcotics) पित्तस्राव को नष्ट कर देते हैं।

डाक्टरीमें पित्तविरेचन (Cholagogue purgatives) द्रव्य हैं उनको अधिक पित्तस्रावी नहीं माना किन्तु ये पित्तमेंसे मलत्यागकी वृद्धि कराते हैं और पित्तका पुनः शोषण होनेमें प्रतिबन्ध करते हैं। इनके अतिरिक्त प्रसन्नता (आनन्द)

और भयवृत्ति होने पर पित्ताशयमेंसे पित्तस्राव अधिक होता है। क्रोध होनेपर पित्तस्राव स्तम्भित होता है। यदि क्रोधावेशमें भोजन किया जायगा, तो उसका पचन योग्य नहीं होगा।

उपर्युक्त औषधियोंमेंसे कतिपय एलुआ रेवन्दचीनी, निशोथ आदि अन्त्रको पुरःसरण क्रिया और आन्त्रिक रस निःसरणकी वृद्धि करा पित्तको बाहर फेंकनेमें सहायता भी पहुँचाता है। अतः इन औषधियोंमें यकृत् और अन्त्र दोनोंको उत्तेजना देनेका गुण अवस्थित है।

नरसार (नौसादर)—अति उग्र, तीक्ष्ण, सारक और नेत्रोंको हितावह है। गुल्म, उदररोग, विष्टम्भ, शूल, शोथ, मांसाजीर्ण, त्रिदोष, यकृत् विकार, प्लीहा विकृति, ज्वर, शिरःशूल, अर्बुद, स्तनरोग, रक्तपित्त, कास, अस्थिभंग, योनिरोग आदिमें हितकारक है।

नव्यमतानुसार यह दीपन, शोधक, स्रावक क्रियावर्द्धक (पित्तनिःसारक, कफनिःसारक), प्रस्वेदकारक, मूत्रल और रजोनिःसारक है। स्थानिक प्रयोग करने पर यह उत्ताप-बाधक शैत्यकारक और शोधक है। विविध ज्वरमें शीतलता लानेके लिए प्रयोजित होता है। प्रदाहका ह्रास करानेके लिये स्थानिक प्रयोग रूपसे उपयोग में लिया जाता है। स्वरयन्त्रप्रदाहज स्वरभंग होने पर इसका धूम्रपान कराया जाता है। शीत लगकर स्वरभंग होने पर नौसादरको जलमें मिलाकर उसकी बाष्पका सेवन श्वास द्वारा कराया जाता है। भोजनके अभावसे या अधिक परिश्रमसे मांसपेशियोंमें शूल (Myoneuralgia), विविध वातवाहिनियोंकी विकृतिजन्य कामला, यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गर्भाशयको क्रिया क्षीण होकर रजोलोप, चिरकारी मासरक्त, रक्तोत्कास, रक्तवमन इन सबमें हितकारक है। स्तन प्रदाह और योनिकण्डूमें इसके जलका प्रयोग, धोनेके लिये किया जाता है। नेत्रका श्वेतपटल मलिन होने पर इसके बूँद डाले जाते हैं। यदि नौसादरकी अपेक्षा नौसादरके पुष्पको काममें लिया जाय, तो यह सत्वर फल दर्शाता है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा डाक्टरीमें नौसादरके अधिकतर प्रयोग बताये हैं और यह अत्यधिक परिमाणमें व्यवहृत होता है।

यकृत् के कार्य - यकृत् शरीरके भीतर अत्यधिक परिमाणमें बड़ी ग्रन्थि है। यह सार्वाङ्गिक चयापचयकी क्रियामें महत्वका भाग लेता है। इसकी क्रियामें कुछ भी विशृंखलता होनेपर सब चयापचय क्रियामें विकृति हो जाती है, फिर विविध लक्षण उत्पन्न होते हैं। यकृतके मुख्य कार्य निम्नानुसार ७ हैं।

(१) पित्त का निर्माण—इसमें कुछ अंश ग्राह्य (Secretory) और कुछ मलरूप त्याज्य (Excretory) होता है। जो अनुपयोगी रक्तरञ्जकमेंसे बनता है वह विकृत स्राव है और इस स्रावकार्यमें कुछ प्रतिबन्ध होनेपर पित्तरक्त (Bil

rubin) के त्याग में रुकावट आकर कामला की संप्राप्ति हो जाती है। ये रञ्जक द्रव्य पचनसंस्था में कुछ भी भाग नहीं लेता। किन्तु आहार रसके साथ अन्त्रके भीतरी मार्गमें मिश्रित हो जाता है। फिर उद्‌भिद् कीटाणुओंके उद्याग से नष्ट हो जाता है।

विविध पित्ताम्ल (Bile acids) प्राकृतस्राव हैं, जो वसाके शोपणमें सहायता पहुँचाते हैं। ये अम्ल या इनके विनाशसे उत्पन्न द्रव्य अन्त्रके भीतरसे कुछ अंशमें शोषित हो जाते हैं और यकृत् द्वारा पुनः मलरूप निकाल दिये जाते हैं। ये यकृत् के भीतर प्राकृत स्रावकारी घटकोंको उत्तेजित करते हैं और स्वाभाविक पित्त निःसारक क्रिया कराते हैं।

(२) लोहद्रव्यका चयापचय—यकृत अवयवोंके लोहद्रव्यकी रक्षा और रक्तरंजनकी रचनामें मुख्य भाग लेता है। यह पाण्डुविरोधी प्रतिनिधिका संग्रह करता है। उस प्रतिनिधिकी उत्पत्ति आमाशयिक स्रावमें रहे हुए मयस्थत् विशेष द्रव्य (Intrinsic factor) और प्रथिनमय आहारमें अवस्थित पाण्डुनाशक द्रव्य (Extrinsic factor), इन दोनोंके संयोगसे होती है जो मज्जाके भीतर जीवकेन्द्रमय बृहद् रक्ताणुओं (Megaloblasts) मेंसे सामान्यरुदके जीवकेन्द्रमय रक्ताणु (Normoblasts) और जालदार रक्ताणु (Reticulocytes) बनाने का मुख्य कार्य करता है। एवं यह रक्ततन्तुजन (Fibrinogen) की रचनाद्वारा रक्त के सामान्य जमावमें भी सहायता पहुँचता है।

(३) कर्बोदकके चयापचयका नियमन—प्रतिहारिणी शिरासंस्थामेंसे अधिक शर्कराको निकाल लेता है और अधिक हो उसका मधुजन (Glycogen) के रुपमें संग्रह करता है जो सामान्यतः ०.१२ प्रतिशत मात्रामें रक्तके भीतर शर्कराके केन्द्रीकरणका पोषण करता है। इस क्रियामें अग्न्याशय अधिवृक्कके भीतरके घनक ग्रैवेयक ग्रन्थि और पोषणिका ग्रन्थिके विशेष रासायनिक स्राव सहायता पहुँचाते हैं।

(४) प्रथिन के चयापचय का नियमन— अमिनो अम्ल (Amino-acids) जो प्रथिनोंके मुख्य अन्तिम विपाक रूप हैं, उनके चयापचयमें यकृत् सहायता पहुँचता है। उनका शोषण विशेषतः अन्त्रमें होता है।

(५) द्रव्योंका निर्विषकरण—यह क्रिया चयापचय के कालमें उत्पन्न या अन्त्रमें शोषित विषके प्रभावसे देहका रक्षण करती है। अनेक पदार्थ पित्तमें मलरूप से निकाल दिये जाते हैं, जो उन द्रव्योंकी व्यवस्थाको परिष्कृत करते हैं किन्तु यकृत् का महत्वपूर्ण कार्य तो अनेक औषधोंको निर्विष करना है। यह निर्विषकरण इनके निर्दोष मिश्रणका रूप धारण करने तक भेदन या निष्क्रिय मिश्रणकी रचना अथवा शनै शनै मलरूपमें निकल जाने के लिये अवयवके भीतर संपत्ति संग्रह होकर इनका

है। इस क्रिया द्वारा अमोनिया मूत्रीयारूपमें परिवर्तित होता है। जो स्वाभाविक अम्लके लवणोंको निष्क्रिय मिश्रण रूपसे नष्ट कर देता है। रंग रहित फ्लोरस जैसे यूरोफ्लोरलिक अम्ल बनकर ग्लायकुरोनिक अम्लके साथ संमिश्रित होता है सल्फोनमाइड यथा-रहितवायु (एसिटीलाइन) रूपमें रूपान्तरित होता है। फिर भारी भारी धातु जो विशेष नहीं हो सकती या किसी निर्दोष मिश्रणके रूपमें रूपांतरित नहीं हो सकती, उसको रक्तसे मुक्त और यकृत्में संग्रहीत की जाती है फिर धीरे धीरे उनका मल रूपसे त्याग किया जाता है।

(६) वसाके चयापचयका नियमन—अन्त्रमेंसे वसाका शोषण पित्तकी उपस्थितिसे होता है। इस वसा का रूपान्तर यकृत्के भीतर लेसिथिन (Lecithin) रूपसे होता है, जो तन्तुओंके पास भेज दिया जाता है। कितनीही अवस्थाओंमें वसा यकृत्के भीतर रहती और बढ़ती जाती है। उदाहरण-स्वरूप उपवास, मधुमेह, फोस्फरस और सोमलका विष प्रकोप तथा कोलिन (Choline) द्वारा विरोध होनेपर।

(७) मूत्रीयाके चयापचयका नियमन्—यह मनुष्योंके लिये विशेष महत्त्वका नहीं है।

इनके अतिरिक्त विचरंगका नाश और हेपेरिन (Heparin) की उत्पत्ति आदि कतिपय कार्य भी यकृत्में होते हैं।

यकृत्मेंसे जो पित्तस्राव होता है, उस क्रियाको अनेक औषधियाँ उत्तेजित करती हैं। तथा अनेक उत्तेजनाका ह्रास करती हैं। उत्तेजना देने वाली औषधियासे पित्तस्रावमें वृद्धि और अवसादक औषधियोंसे पित्तस्रावका ह्रास होता है। इनमें उत्तेजक औषधियोंमें दो प्रकार हैं—साक्षात् पित्तनिःसारक और परम्परागत निःसारक।

साक्षात् पित्तनिःसारक (Direct Cholagogues)—ताम्रभस्म, पीलुसार, नौसादर, पलुआ, कलमीशोरेका तेजाब (Acid Nitric), रेवन्दचीनी आदि। इन औषधियों द्वारा पित्तस्राव क्रिया उत्तेजित होती है।

परम्परागत पित्तनिःसारक (Indirect Cholagogues)—इस प्रकार की औषधियोंसे संचित पित्तका परिमाण नहीं बढ़ता। ये ग्रहणीके निम्नांश और शेषान्त्रक (Ileum) के मध्यमें रहे हुए लघु अन्त्रके मध्य भाग (Jejunum) में उत्तेजना पहुँचाते हैं। तथा अन्त्रमेंसे पुनः शोषण करानेके लिए पित्तको नीचे गमन कराते हैं। इस श्रेणीमें पारद-घटित औषधियाँ, सब विरेचन औषधियाँ और वमनकारक औषधियाँ, इन सबका समावेश होता है। इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे मलमें पित्त अधिक प्रतीत होती है।

पित्तनिःसारक औषधि सब विरेचक होकर कार्य करती हैं। कारण, पित्तसे अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया उत्तेजित होती है। अतः इस श्रेणीकी औषधियाँ यकृत्की विविध व्याधियाँ—यकृत्विकारज अजीर्ण (Hepatic Dyspepsia), कामला,

पित्ताश्म, अश्मरी आदिमें विशेष उपयोगी होती हैं। इन रोगोंमें साक्षात् और परम्परा काय करने वाली, दोनों प्रकारकी औषधियोंकी योजना की जाती है।

यकृत्के विकार जनित अजीर्ण रोगमें औषधि प्रयोगके अतिरिक्त पथ्य और व्यायामकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। पथ्य और व्यायामसे पित्ताशय और पित्तनलिका मेंसे पित्त निर्गमन होनेमें सहायता मिल जाती है।

पित्ताश्मरीमें ताम्रभस्म, निशोथ, जैतूनका तैल आदि औषधियोंका व्यवहार होता है। तीव्र वेदनामें आवश्यकता पर अफीम आदि मादक औषधि दी जाती हैं। परन्तु अफीम पित्तस्रावका ह्रास कराती है।

यकृत्की मधुरक क्रिया वृद्धि होने पर सोडियम सल्फ (सोडा बाई कार्ब), कलमी शोरा और नमकके तेजाबका मिश्रण (Acid Nitro Hydrochloric) आदि उत्तेजक औषधियाँ दी जाती हैं। एवं निर्माण क्रियाका ह्रास या उसे स्थगित करानेके लिए सोमलघटित औषधियाँ, नागभस्म, फॉस्फरस आदि भी दिये जाते हैं। इस प्रकारकी औषधियोंको मधुरक दमनकारी (Glycogenic Depressants) कहा है। यदि मधुमेहमें मूत्रके साथ शर्करा अधिक जाती हो, तो उसका ह्रास कराने के लिये अफीम प्रधान औषधि दी जाती है।

पित्तनिःसारक औषधियोंसे पित्त अधिक निकलने पर मलमें पित्त अधिक प्रतीत होता है। परन्तु मलके देखने मात्रसे अधिक पित्तस्राव हुआ है ऐसा निर्णय नहीं हो सकेगा। कारण, कभी पित्ताशयमें संचित पित्त एक साथ अन्त्रमें चला जाता है कभी ग्रहणीमें जो पित्त आता है वह स्वाभाविक क्रिया द्वारा अन्त्रमें शोषित होने के पहिले किसी कारणवश सत्वर नीचे चला जाता है, इन दो हेतुओंको लक्ष्यमें रखकर निर्णय करना चाहिये।

(९) कफ दोषघ्न

कफ धातुके प्रकोपको दूर कर सम अवस्थामें लाने वाली औषधियाँ, चरक संहितामें लिखा है कि —

> गुरु-शीत-मृदु-स्निग्ध-मधुर-स्थिर पिच्छिलाः ।
> श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणाः ॥

कफके मुख्य गुण गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर पिच्छिल हैं इन गुणोंसे विपरीत गुणों (लघु, उष्ण, तीक्ष्ण रूक्ष, कटु आदि रस, सर और विशद) द्वारा यह शान्त होता है।

कफ धातु सम अवस्थामें होने पर बल और विकृत होने पर मल कहलाता है। प्राकृत कफको ओज रूप और विकृत कफको रोग रूप निम्न श्लोकमें चरकसंहिताकारने दर्शाया है।

प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते ।
स चैवौजः स्मृतः काये स च पाप्मोपदिश्यते ॥

श्लेष्मसशमन वर्ग—कालेयक (पीत चन्दन), अगर, तिलपर्णी (हुलहुल), मूर्वा, हल्दी, शतशिव (कपूर), सोया, सरला (निसोथ), रास्ना, अपामार्ग (कटेली) उत्कीर्या (करंज) हिंगोट, चमेली, काकादनी (कंघारी), कशिहारी, हस्तिकर्ण (पलाश) मुंजातक (अमावर्गे तालफल), खस, कटु, तिक्त, कषाय गुण वाली औषधियाँ, वल्लीपञ्चमूल, कण्टक पञ्चमूल, पिप्पल्यादिगण, बृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, वचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वधादिगण, ये सब श्लेष्मसशमन कारी हैं ।

वल्लीपञ्चमूल—विदारीकन्द, अनन्तमूल, हल्दी, गिलोय और मेढासिंगी, ये सब रक्तपित्त वातज, पित्तज और कफज, ये तीनो प्रकारके शोथ सब प्रकारके प्रमेह और शुक्रदोषको दूर करता है ।

कण्टक पञ्चमूल—करौंदा, गोखरू, काला कटसरैया, शतावरी, और गृधनखी (कंघारी) इनमें वल्लीपञ्चमूलके समान गुण है ।

पिप्पल्यादिगण—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, मिर्च, गजपीपल, रेणुकाबीज, इलायची, अजवायन, इन्द्रजो, पाठा, जीरा, सरसों, बकायनका फल हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, वच, वायविडंग और कुटकी । इस गणका यथा विधि व्यवहार करनेसे कफ, जुकाम, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल नष्ट होते हैं । यह आम परिपाचक और अग्निदीपक है ।

बृहत्यादिगण—बड़ी कटेली, छोटी कटेली, इन्द्रजो, पाठा और मुलहठी । यह पित्त, वायु, कफ, अरुचि, वमन (मतान्तरमें हृद्दाह) और मूत्रकृच्छ्रको शमन करता तथा पचन करता है ।

मुष्ककादिगण—मोर्वा, पलाश, धाय के फूल, चित्रकमूल, मैनफल, सीसम, मेढ़ेंड और त्रिफला । यह मेद रोग, शुक्र दोष, प्रमेह, पाण्डु, शर्करा और अश्मरीका नाशक है ।

सुरसादिगण—तुलसी, रामतुलसी (छोटे पत्ते वाली तुलसी) वनतुलसी (मरवा), आजनशा, रोहिषतृण, सुगन्धतृण सुमुख (नगद बायची) बड़ी मायची, कसौंदी, नकछिकनी, मरपुष्पाह (नकछिकनी भेद), वायविडंग, कायफल, मुरसी (सफेद निगुण्डी), सम्हालू (काली निर्गुण्डी , गोरखमुण्डी, मूसाकानी, भारंगी, काकजंघा मकोय और विषमुष्टि (यवायन) । यह गण कफ, कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास और कासका नाशक और व्रणशोधक है ।

इनके अतिरिक्त अभ्रक भस्म, शृङ्ग भस्म, वैकान्त भस्म, शिलाजीत, ताम्र भस्म, मल्ल भस्म, ताल भस्म, मनःशिला, बहेडा, सोंठ, पीपरमेंट, मधु आदि कफ नाशक हैं ।

मुष्कक (मोखा) कटु, तिक्त, ग्राही और कफवातघ्न है। विष, मेद, गुल्म कण्डू, बस्तिपीड़ा, कृमि और शुक्रका नाश करता है। प्राचीन कालमें इस वृक्षकी लकड़ी जलाकर क्षार बनाया जाता था। इस हेतुसे संस्कृतमें इसे "क्षार श्रेष्ठ" संज्ञा, भी दी है। प्रमेह और वातरक्तकी औषधि (पत्रलवण) में इसका प्रयोग किया है।

कुष्ठ (कूठ) कटु, उष्ण और तिक्त है यह कफ वात, और रक्तविकार, त्रिदोष, विष, विसर्प, दद्रु, खर्जू (खुजली), कण्डू और कुष्ठरोगका नाश करता है। कूठ काश्मीर और हिमालयके पहाड़ोंमें अधिक होता है। इसमें एक प्रकारकी सुगन्ध होती है। प्राचीन आचार्योंने इस औषधिका अनेक रोगोंपर प्रयोग किया है।

नव्यमतानुसार कुष्ठ उत्तेजक होनेसे आक्षेपक व्याधियों—कफ, श्वास, विषूचिका आदिमें और अपचनमें लाभ पहुँचाता है। दीपन होनेसे जीर्ण त्वचा विकार और आमवातमें उपयोगी है। हाथ-पैरके प्रदाह, मेदोवृद्धिजन्य उदर-स्फीति मूत्रभार और शिरदर्द आदिमें शीतोपचार रूपसे इसका लेप गुलाबजलमें घिसकर किया जाता है। इस तरह व्रणोंकि मलहममें भी यह रोपण रूपसे लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेद में स्थान भेद से वात, पित्त, कफ, तीनों के ५-५ भेद किये हैं। इन भेदों में अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेष्मक, ये पाँचों प्रकारके कफ अविकृत धातु रूप होने पर इनका कार्य एवं कफविकृति हेतु, कफके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, कफशामक उपाय इत्यादि बातोंका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ २५ से ३२ तक में किया गया है।

जो कफ मुख और नासिकासे बाहर निकलता रहता है, वह विकृत-दूषित श्लेष्मा है। प्रकृतिके लिये हानिकर है। इस हेतुसे आभ्यन्तरिक शक्ति उसे जलाती और बाहर निकालती रहती है। डाक्टरीमें इस दूषित कफके निम्नानुसार अनेक विभाग किये हैं—

केवल कफ, रक्तमिश्रित कफ पूयमिश्रित कफ केवल रक्तमय कफ, रक्तरस, मिश्रित कफ, केवल पूयमय कफ, सौत्रिक तन्तुमय कफ ये सब विकृति अनुसार उत्पन्न होकर बाहर निकलते रहते हैं।

फुफ्फुस संन्यास, हृदयके द्विपत्र कपाट का अवरोध, श्वासनलिकाविस्तार और वायुकोषविस्तार आदि रोगोंमें केवल रक्त गिरता है, तथा रक्तपित्त, पित्त ज्वर, श्वासनलिकाप्रदाह और धमनी-विस्तारमें बहुधा कास आकर न्यूनाधिक रस गिरता है।

कफप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—कड़ुवा, चरपरा और कसैला रस, क्षार परिश्रम, व्यायाम, मार्गगमन, कुश्ती, हाथी-घोड़ेपर सवारी, समुद्रतटकी वायु, रात्रिका जागरण, जल-क्रीड़ा, सूर्यके तापका सेवन, अग्नि सेवन, पुराने चावल, चना, मूँग, कुलथी, जौका सत्तू, चनेका सत्तू, जुआर, बाजरा, सरसोंका तैल, शुष्क भोजन, सेंधा नमक, हल्दी, लालमिर्च, पोदीना, गरम मसाला, बैंगन, मटर, ककोड़ा, करेला,

चौलाई, लाशिका (अमोनिया), अदरख, सोंठ, सूखा धनिया, कपीर, पीलू, वायविडंग, सुपारी, जायफल, जावित्री, कंकोल, लौंग, कपूर, जीरा, कालाजीरा, कालीमिर्च, पीपल, शहद, लहसुन, प्याज, राई, मेथी, केतकीका फूल, अगस्तके फूल, कच्चे बेलफल, कंदूरी, सुहिजना, ताम्बूल, मूली और गरमजल आदि आहार-विहार पथ्य हैं, तथा कफका प्रकोप होने पर उसे दूर करनेमें भी सहायक हैं।

कफ प्रकोपक आहार विहार—दिनमें सोना, शारीरिक श्रम न करना, बैठे रहना, आलस्य करना, मधुर, खट्टे, नमकीन, शीतल, स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल (चिकने रेसादार और गुरु), अभिष्यन्दी (रसवहनाडियोंके मार्गोंको रोकनेवाले दही आदि), शालि चावल, जौ, उड़द, नया चावल, जंगली धान्य, उड़द, नये उड़द, गेहूँ, तिल, मैदाके पदार्थ, लोबेके पदार्थ, दही, ज्यादा दूध, खिचड़ी, खीर, ईखके पदार्थ, अनूप देशके पशु और जलचरोंका मांस, चरबी, कमलकी नाल, कसेरू सिंघाड़े, बादाम पिस्ता आदि मधुरफल, जामुन, पकके केले, खट्टे आम, खट्टे बेर, करौंदा, वल्लीफल, (बेलोंमें होनेवाले फल), अधिक भोजन, भोजन पर भोजन, तुरन्त की ब्यायी हुई गाय और भैंसका दूध, चन्दन आदि शीतललेप, शीतल जलसे स्नान और नारियलका जल इत्यादि आहार-विहारसे कफ प्रकुपित होता है।

इसी प्रकार बहुधा शीतल पदार्थका सेवन, शीतसमय, वसन्तऋतु, सूर्योदय, संध्यासमय और भोजनके प्रारम्भमें कफ कुपित होता है।

आशुकारी फुफ्फुसप्रदाहका प्रारम्भ होनेपर कफमें कुछ अंशमें रक्त निकलता है। फुफ्फुसस्थ कर्कस्फोट (Cancer) में रक्तमिश्रित, चिपचिपा कफ गिरता है।

न्यूमोनियामें पूय हो जाने पर कफ पीला या हरा हो जाता है।

श्लैष्मिक कफमें वायुके बुदबुदे होते हैं; और पूयमय कफमें वायु नहीं रहती। पूयमय कफ जलमें डालने पर डूब जाता है।

कभी-कभी कफ केवल रक्तस्वरूप निकलता है। केवल रक्तस्राव होनेपर वह झाग सदृश प्रतीत होता है।

स्वरयंत्र और श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलाके प्रदाहमें तथा कण्ठरोहिणीमें सौत्रिक तन्तुमिश्रित कफ निकलता है।

राजयक्ष्मामें बतारी सदृश गोल बँधा हुआ कफ आता है। कदाचित् वायु ग्रन्थियोंके कोषोंमें से भी इसी प्रकारकी कफकी छोटी छोटी गोलियाँ निकलती रहती हैं।

इनके अतिरिक्त स्वरयंत्रके चिरकारी प्रदाहमें कफके साथ तरुण अस्थिके टुकड़े निकलते रहते हैं। एवं कभी-कभी कुत्ता आदिके कृमि (Hydatid) जनित पदार्थ भी देखनेमें आते हैं। इन सबका विशेष विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें श्वासयन्त्र व्याधियोंमें किया गया है।

(१०) कफघ्न ।

कफनिःसारक छेदन एक्सपेक्टोरन्ट्स्-एपोफ्लेग मेटिक्स ।
(Expectorants-Apophlegmatics), ।

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ।
छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥

श्वासनलिका और फुफ्फुस कोष आदिमें चिपके हुए दूषित कफको यत्नपूर्वक उखाड़कर निकाल देनेवाली औषधियां क्षार, कालीमिर्च, शिलाजतु ताम्रघटित औषधियां, शिला नमक, सोहागा, यवाक्षार, अपामार्गका क्षार, नौसादर, सज्जीखार, अडूसा, भरनी, आकड़ेका मूल, सोपारीके फूल, बहेड़ा, हल्दी, आमाहल्दी, काकड़ासिंगी, कायफल, मुलहठी, भिलावा, तुलसी, देवदारु, कटेली, वच, निर्गुण्डी, खानबोल, शहद, बनफ्शा, लोबानके फूल, कुंदरु, कुचिला, तार्पिन तैल, गन्धक, लौंग, पीपल, प्याज, लहशुन, वच, कपूर, मिश्री आदि ।

उत्तेजक कफस्रावी औषधियाँ—ये सब उत्तेजनाकी वृद्धि करा कफको पतला करती हैं । चिपचिपापन कम होनेसे खांसने पर कफ सरलतासे बाहर आ जाता है । अभ्रक भस्म, शृंगभस्म, वासा, गजशिरोवा, जंगली प्याज, शिलारस, रसवन्ती, हिंगु, नौसादर, फंद्रस गोंद, (Dorema Ammoniacum) कपूर, लोहबान, कण्टकारी, पुष्करमूल, तार्पिन तैल, आदि ।

इनके अतिरिक्त स्वल्प मात्रामें वामक औषधियां, उष्ण आर्द्र वायुका श्वसन, ऊनी वस्त्रधारण, फुफ्फुसोपर निवाये तैलकी मालिश, पुल्टिस, सेक आदि क्रिया, ये सब कफको बाहर निकालनेमें सहायक हैं ।

ताम्रघटित औषधियां (कफ कुठार आदि) कफको निकाल देनेमें अच्छा काम देते हैं । एवं वेदनाशामक और आक्षेपहर गुण भी दर्शाती हैं ।

जब कफका परिमाण कम हो, तब कुचिला, नौसादर, पीपल, आदि औषधियां देनेसे श्वासयन्त्रकी वातवाहिनियोंके अन्त भागकी क्रिया उत्तेजित होकर कफ निकालनेमें सहायता पहुँचाती है ।

कफनिःसारक औषधियाँ श्वासनलिकामें रसस्राव बढ़ाती और दूषित श्लेष्मा को बाहर निकालनेमें सहायता देती हैं । इस क्रियाकी वृद्धि करने और वायुमार्गका संरक्षण करने के लिये नैसर्गिक यन्त्रिणाओं (Mechanisms) को समझनेकी आवश्यकता है । ये संचालक (Motor) और स्राव करानेवाली (Secretory) हैं । संचालक यन्त्रिणा सूक्ष्म प्रवर्धन (Cilia) ये—१ श्लैष्मिक कलामें अवस्थित स्पन्दन-क्षम गति, २ कास की कफ निःसारक प्रतिफलित क्रिया, ३ छोटी श्वास नलिकाओंकी मांसपेशियोंकी पुरःसरणवत् गति, इन तीनों को धारण करती है ।

स्राव करानेवाली ग्रन्थियां श्वासनलिकाकी सतह का आर्द्र रखती और क्षोभ करने वाले पदार्थको द्रवीभूत बनाती हैं, जो श्लैष्मिककला बहुसंख्यक ग्रन्थियों द्वारा पूरा करती है। ये दोनों (संचालन और स्राव) क्रिया प्राणदा (Vagus) और स्वतन्त्र (Sympathetic) नाडियों द्वारा नियमित होती रहती हैं। प्राणदानाडियों- के केन्द्रगामी तन्तु (Afferent Fibres) श्लैष्मिक कलामेंसे प्रभावको वहन करते हैं, जब बहिर्गमी (Efferent) तन्तु मांसपेशियां और स्रावकारी ग्रन्थियोंको शक्ति प्रदान करते हैं। मांसपेशियोंको स्वतन्त्र नाडियोंके बहिर्गामी तन्तु भी प्रभावित करते रहते हैं।। ये दोनों प्रकारके तन्तुओंका असर कल्पित कासकेन्द्र (Hypothetical Cough Centre), जो श्वसन और वमन केन्द्रसे सम्बन्धवाली है, पर अभिमुखी होता है,

कासहरगण का वर्गीकरण —

१ प्रतिफलित कफ निःसारक (Reflex expectorants)

२ केन्द्रीय कफ निःसारक (Central expectorants),

३ स्रावकारी नाडीतन्तुओं के सिरे की उत्तेजना द्वारा कार्यकारी।

४ श्वासनलिकाकी ग्रंथियोंकी उत्तेजना द्वारा कार्यकारी

१ प्रतिफलित कफ निःसारक—कफ निःसारक वर्ग की अत्यधिक औषधियां इस वर्ग में आजाती हैं। ये प्राणदा नाडियों के अन्तिम संवेदक भाग पर उत्तेजना पहुँचाती हैं। इस भागमें टार्टर इमेटिक (सुरमें से बना हुआ श्वेत दानेदार चूर्ण), कपूर, नौसादर, जंगली प्याज, क्षार, अफीम क्षार (Apomorphine), वचा आदि असर पहुँचाते हैं।

इस प्रकारकी उत्तेजना, जो श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्राणदानाडियोंके संवेदक अन्तिम सिरे पर होती है, वह भी श्वासनलिकाके स्रावकी वृद्धि करती है। इस प्रकारके उड़नशील तैल, तैली गोंद आदि द्रव्य हैं, जो श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामेंसे कफ स्राव करानेमें मृदु क्षोभ कराते हैं।

२. केन्द्रिय कफ निःसारक—इस वर्गके द्रव्योंसे केन्द्रस्थान उत्तेजित होकर स्रावको बढ़ा देता है। इस वर्गमें अफीमक्षार मुख्य औषधि है। टार्टर इमेटिक और वचा भी केन्द्रस्थानपर असर पहुँचाता है। श्वासनलिकासे स्राव करानेवाला केन्द्रस्थान सुषुम्नास्थ वमनकेन्द्र के साथ सम्बन्धवाला है। इस हेतुसे वामक औषधियां स्वल्प मात्रामें कफ निःसारक गुण दर्शाती हैं।

३ स्रावकारी नाड़ी तन्तुओंके सिरेपर उत्तेजना द्वारा कार्यकारी—इस प्रकारकी औषधियां परिसरात्मक नाडियां के अन्तिमभागपर असर पहुँचाती हैं। पाइलो- कार्पिन (Pilocarpine) की पत्ती और क्षार इस वर्गकी औषधि हैं।

४ श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोंको उत्तेजित करके कार्य करनेवाली—आयोडाइड कफस्राव करानेमें स्रावकारी घटकोंपर क्रिया करके श्वासनलिकाके कफका स्राव बढ़ा देता है। पहिले यह माना जाता था कि —

अस्यन्त कफनिः सरण और श्वासनलिका की ग्रन्थियों के स्राव को बढ़ाने देने वाले द्रव्योंमें नौसादर मिश्रित लवण और क्षार विशेष औषधि हैं।

कफनि सारक औषधियों के नियमन का आधार रोगी की स्थितिके सच्चे गुणधर्म, कासप्रकार, श्लेष्माका स्वभाव, रोग की अवस्थाओं (Stages) से सम्बन्ध और कार्योत्पादक रोगका परीक्षात्मक विशेष लक्षण इन पर रहा है।

औषध गुण धर्म विज्ञान दृष्टि से वर्गीकरण—

१ उत्तेजक कफः निःसारक Stimulant expectorants.

२ अवसादक कफःनिःसारक Sedative expectorants

३ आक्षेपहर कफःनिःसारक Antispasmodic expectorants.

१ उत्तेजक कफःनिःसारक—इस प्रकार की औषधियां श्वासनलिका की श्लैष्मिक कला द्वारा निःसरण कराती हैं। ये मृदु क्षोभ कराती और श्वासनलिकामें स्राव की वृद्धि कराती हैं। यह मृदु क्षोभ कार्य करनेमें सहायक होता है। इस वर्ग में मुख्यत उड्डयनशील तैल और सुगन्धमय द्रव्य हैं। उड्डयनशील तैल, तार्पिन, कपूर, लोहबान क्रियासोट और ग्वायाकोल आदि हैं।

इस वर्ग की औषधियों में से कितनी ही मस्तिष्क गत केन्द्र स्थान को उत्तेजित करती हैं, वे श्वासोच्छ्वासक्रियाको सबल बनाती हैं। इस हेतु से कफयुक्त कास, फुफ्फुसनलिकाप्रदाह, यक्ष्मा, अफीम का विषप्रकोप आदि में श्वासावरोधके निवारणार्थ व्यवहृत होती हैं। ये औषधियां तार्पिन तैल, लोहबान, नौसादर आदि हैं।

२. अवसादक कफः निःसारक—इस वर्ग में कफ वृद्धि का ह्रास कराने वाली या कास के वेग को शमन करने वाली विशेष औषधियां चुनी हुई हैं। इस वर्ग की औषधियां सार्वाङ्गिक रक्त संचालन का अवसादन करती हैं या श्वासकेन्द्रकी उग्रता का शमन कराती हैं या केन्द्राभिमुखी (Afferent) उत्तेजना का ह्रास कराती हैं। इसमें निम्नलिखित ३ प्रकार होते हैं।

अ हृल्लासकर कफनिःसारक—(Nauseant expectorants) आशुकारी प्रदाह या क्षोभको शमन कराने के साथ श्वासनलिका में सरलक कफ का स्राव कराने वाली औषधियां, जो श्लैष्मिक कला पर साक्षात् क्षोभ नहीं लाती (पहिले प्रतिफलित कफनिःसारकमें दर्शायी हैं) इस वर्ग को प्रदाहहर कफनिःसारक (Antiphlogistic expectorants) संज्ञा भी दी है। इस वर्गमें टर्टर इमेटिक, अफीमक्षार तथा वचा आदि वामक औषधियां हैं। इनके अतिरिक्त स्निग्धकारक औषधियोंमें गोंद, ग्लिसरीन, लेसवा, मुलहठी आदि हैं।

आ लावणिक कफनिःसारक—(Saline expectorants) लेसदार मोटे कफ को द्रवीभूत करके निकालने वाली औषधियाँ—इस वर्गमें पोटास आयोडाइड, नोसादर, लवण, क्षार, सोडा, पोटास आदि हैं।

इ शुल्क कफनिःसारक—(Sedative expectorants) यह कास वृद्धि की प्रतिफलित क्रियाको नियन्त्रणकारी हैं। इस उपवर्ग में विशेषतः सूखी भूरी, धतूरा, अफीम और अनेक क्षार हैं। ये स्राव का ह्रास कराते हैं। इस हेतुसे जब अत्यधिक स्राव होता हो, तब इन औषधियों का उपयोग नहीं होता।

वक्तव्य—इन अफीम आदि औषधियों में कफ शोषक (Anti expectorants) गुण रहा है। इस गुणके लिये ये बहुधा व्यवहृत नहीं होती। क्योंकि राजयक्ष्मा में शान्त निद्रा लाने के लिये प्रयोजित होती है। इसका वर्णन कफनिःसारक के आगे किया जायगा।

जब अत्यन्त त्रासदायक शुष्क कास उपस्थित होती है, कफ नहीं गिरता, अति त्रास होता है, तब स्निग्धकारक औषधियाँ दी जाती हैं इनके अतिरिक्त प्रवालभस्म, मुक्तापिष्टी, वंशलोचन, अमृतासत्व, सितोपलादि (घृत-मधुसह), लेहलाली, कत्था, मुलहठी सत्व, मधुक छालका क्वाथ आदि सौम्य शामक औषधियाँ भी दी जाती हैं। ये सब निर्भयतापूर्वक उपयोगमें ली जाती हैं।

श्वासोच्छ्वासक आतनाकी मुखकी क्रियाको अवसादन करने वाली औषधियाँ प्रतिफलित कासके उपशमनार्थ भी प्रयोजित होती हैं। फुफ्फुस, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, फुफ्फुसावरण, बृहद् श्वासनलिका, स्वरयन्त्र, नासिका, प्रसनिका और अन्न-नलिकामें से किसीको उग्रता की प्राप्ति होने पर कास प्रारम्भ होती है। इस कासमें बहुधा कफ नहीं निकलता। ऐसे समय पर अवसादक कफनि सारक औषधियोंके अतिरिक्त मुखमें रख कर चूसने वाली शामक औषधि भी दी जाती हैं।

३ आक्षेपहर कफनिःसारक—यद्यपि इस उपवर्ग की औषधियाँ सच्ची कफनि सारक क्रिया नहीं करती। ये कफका स्राव नहीं बढ़ाती और न चिपचिपेपनको कम कराती है। ये श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलाको आक्षेप कर कफको बाहर निकालनेमें सहायता देती हैं। ये श्वासनलिकाके निरवरोधप्रवाह और तमक श्वासमें अधिक उपयोगी हैं। सूखी भूरी, धतूरा, लोबेलिया, सोरा, सोम (Ephedrine), एफिड्रिन आदि।

कफशोषक (एण्टिएक्सपेक्टोरन्ट्स Anti-expectorants) इस प्रकारकी औषधियों द्वारा श्लेष्माके जलीय अंशका परिमाण कम होता है। इस हेतुसे श्वासनलीमें स्रावित रस शुष्क हो जाता है। सब प्रकार के तमाखू, अफीम, अनारदाने और अम्ल रस प्रधान औषधियाँ इत्यादि।

क्षार सेवन करने पर कफ अपेक्षा कृत तरल हो जाता है और कफके परिमाणकी वृद्धि होती है। परन्तु अम्ल रस प्रधान औषधियोंके सेवनसे कफको

तरलताका ह्रास होता है। इस हेतुसे कफको बाहर निकालनेमें अधिक कष्ट होता है। एवं कासके वेगकी भी वृद्धि होती है

अम्ल रस—अम्ल रस या क्षारकाका सेवन करने पर कर्णमूलिका ग्रन्थियों (Parotid glands) मेंसे लालास्रावकी वृद्धि होती है। एवं हन्वधरिया ग्रन्थियों (Submaxillary glands) मेंसे भी लाला रस निकलता है। इस हेतुसे ज्वर रोगमें पिपासा शमनार्थ अम्ल पदार्थ (आलुबुखारा आदि) प्रयोजित होते हैं। इन पदार्थों से मुँह और तालु आदिमें लाला रससे आर्द्रता रहती है।

यदि किसी प्रकारके खट्टे रसको क्षारके साथ मिला दिया जाय, तो उसका क्षारत्व गुण नष्ट होजाता है। एवं उन दोनोंके संयोगसे लवणोत्पत्ति होती है।

अम्ल रस दाँत पर लगाने पर दन्तहर्ष हो जाता है। अधिक अम्लता दाँतोंको लगती रहने पर दाँत क्षय ग्रस्त हो जाते हैं।

तेजाब – शास्त्रीमें तेजाबके दो प्रकार हैं उद्भिज (वनौषधिजन्य) और पार्थिव (खनिज)। इनमें खनिज तेजाब (गन्धक, नमक, नीलाथोथा, फास्फरस आदिका तेजाब) उद्भिज तेजाबोंकी अपेक्षा अधिक उग्र है।

खनिज तेजाब क्षारनाशक, शीतल, संकोचक और बलकारक हैं। ये अधिक दिनों तक सेवन करते रहनेसे पचन क्रियाका ह्रास कराते और शरीरको दुर्बल बनाते हैं।

उद्भिज तेजाब (जम्भीर, नीबू इमली, द्राक्षाम्ल, टैंक, खोमान आदिका) कम उग्र हैं। ये ते।व शीतलता लानेके लिये प्रयोजित होते हैं।

ये रक्तपित्त (Scurvy) रोगमें विशेष लाभदायक हैं। इस हेतुसे इन उद्भिज तेजाबोंको रक्तपित्तघ्न (Antiscorbutic) संज्ञा दी है।

तेजाबका सेवन करने पर लाला रस और आन्त्रिक रस उत्तेजित होते हैं तथा पित्ताशयमेंसे पित्तस्राव अधिक होता है। सामान्यतः जिन ग्रन्थियोंका रस क्षारगुण विशिष्ट है, वे सभी तेजाबके सेवनसे उत्तेजित होती हैं।

यदि अम्ल रस या तेजाबका सेवन भोजनके पहिले किया जायगा, तो आमाशयिक रसस्राव कम मात्रामें होता है। यदि आमाशयिक रसमें अम्लता और उग्रताकी वृद्धि हो गई हो, तो भोजन के पहिले तेजाबके सेवनसे लाभ होता है।

दीर्घ काल तक तेजाबका सेवन करते रहनेसे आमाशयिक रसस्राव कम हो जाता है। एवं आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें प्रतिश्यायावस्था उपस्थित होती है। इसलिये अधिक काल तक सेवन करना हो, तो इसे बीच-बीच में कुछ दिनोंके लिये बन्द करते रहना चाहिये।

तेजाबका सेवन अधिक मात्रामें करने पर आमाशय और अन्त्रमें प्रबल दाह, ज्वाला, अतिसार, वमन अतिशय निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर मूर्च्छा या बेहोशी होकर मृत्यु हो जाती है।

मूत्रमें क्षारकी वृद्धि होनेपर उसके संशोधनार्थ कडुवी औषधियोंके साथ तेजाबका सेवन कराया जाता है।

चिरकारी यकृत् आदिमें शोरा नमकका तेजाब सेवन करनेसे वह दोषघ्न और पित्तनिःसारक गुण दर्शाता है। इस तरह मोतीझरा आदि स्निग्धकोष ज्वरोंमें तेजाबसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

तेजाबको जिस स्थान पर प्रयोजित किया है, उस स्थानके घटकोंका भेदन करके फैलता है। फिर घटकोंमेंसे जलीय अंशका शोषण कर उनको नष्ट कर देता है। इस तरह स्थानिक क्रिया द्वारा जो विधान ध्वंस प्राप्त होता है, उसके चारों ओर प्रदाहकी उत्पत्ति होती है और दग्ध स्थान पृथक् हो जाता है। यदि तेजाबके स्थान पर क्षीण द्रवका प्रयोग किया जाय, तो उसके बल अनुसार त्वचामें उष्णता उत्पन्न होती है, और समीपकी रक्त प्रणालियाँ आकुञ्चित हो जाती हैं।

स्थानिक-कफस्रावी (Topical exlentorants) कतिपय कफनिःसारक औषधियोंका धूम्रपान कराया जाता है या उनकी धूम अथवा वाष्प श्वास द्वारा ग्रहण कराई जाती है, ऐसी सब औषधियों को स्थानिक कफनिःसारक औषधि कहते हैं। इनमें दो विभाग हैं—उत्तेजक और शामक, मनःशिला, कोलटार (Tar), लोबानका पुष्प आदि उत्तेजक हैं। एवं धतूरा तथा उष्णजलकी वाष्प आदि शामक हैं; इस श्रेणीकी औषधियों द्वारा कासकी उग्रता का ह्रास होता है जिससे कफ सरलता पूर्वक बाहर निकल जाता है।

तार्पिन तैल की वाष्प (वायुमिश्रित) श्वास मार्गसे ग्रहण करने पर श्लेष्मा निःसरण क्रिया सरलतापूर्वक होती है। अतः कासरोगमें कफ अत्यधिक बढ़ जाने पर यह क्रिया उपकारक मानी गई है।

सूचना—विरेचक और मूत्रल औषधियों द्वारा कफनिःसरणमें व्याघात पहुँचता है। एवं अफीम और शीतलताका सेवन भी कफस्राव करानेमें प्रतिबन्ध करता है। वमनकारक औषधि और उष्ण जल कफनिःसरण क्रिया उत्तम प्रकारसे कराते हैं।

जीर्ण कास रोगोंमें श्वास प्रणालिकाओंकी श्लैष्मिक कलामें रक्तसंचय होता रहता है। फुफ्फुसोंमें रक्तसंचालन क्रिया मन्द हो, और शिराओंमें रक्तकी गति स्थगित हो, तो हृदयपौष्टिक औषधियाँ—रससिन्दूर, लोहभस्म आदिको कास औषधियोंके साथ मिला देनेसे हृदय उत्तेजित होता है जिससे फुफ्फुसस्थ विकृति रक्तसंचालन क्रिया प्रवृत्तिस्थ बनती है और कफ भी सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। इस तरह हृदयकी क्रिया द्वारा परम्परया लाभ पहुँच जाता है।

कर्पूर—उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वातनाशक और कफनिःसारक है। कपूरमें बाहर गुणके साथ गहन विषनाशक (Antiseptics) गुण भी है। अतः

यह अतिसार और विसूचिकामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त श्वास यन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेंसे प्रसेकम रसस्राव (Catarrh of the Respiratory) होने पर कपूर का धूम विशेष उपकार दर्शाता है। वृद्ध मनुष्य आदिका चिरकारी कास होने पर कफघ्न औषधिके साथ कपूर मिला दिया जाता है। स्थानिक वातरोगमें कपूरको तैलमें मिलाकर मालिश की जाती है। दाँतोंमें कृमि होने पर कपूर अर्कका फोहा रखा जाता है।

जननेन्द्रियके समीप म्युची होने पर कपूर और रसदग्धार मिश्रित मलहम लगाया जाता है। हिस्टीरिया, नष्टार्तव, कष्टार्तव और इतर आक्षेपयुक्त रोगोंमें कपूर विशेष लाभदायक है। स्त्रियोंके स्तनका दूध सुखानेमें कपूर महौषधि मानी गई है।

न्युमोनिया रोगमें कपूरको चार गुने जैतूनके तैलमें गलाकर २० बूँद मात्रा का इन्जेक्शन करनेसे हृदयको उत्तेजना मिलती है।

सामान्य मंदज्वरमें दुग्धके भीतर आठवाँ हिस्सा कपूरको गलाकर १ १ ड्राम मात्रा ३ ३ घण्टे पर देते रहनेसे उत्तेजना पहुँचकर ज्वरकी निवृत्ति हो जाती है। सामान्यतः कपूरकी मात्रा १ से ३ रत्ती तक है।

कंटकारी (कटेली) कफनिःसारक, मूत्रल, तिक्त, बल्य और वातहर है। श्वास, कास, वक्षमें वेदना आदि कफनिःसरणार्थ व्यवहृत होती है। मूत्रमें स्वल्पता, अश्मरी और कोष्ठबद्धतामें हितकारक है। विविध स्फोटकों पर इसके बीजोंका लेप करनेसे सत्वर पाक होकर पूयोत्पत्ति हो जाती है। मक्खनमें मिलाकर फलोंका धुआँ देनेसे दाँतोंके कृमि मरकर गिर जाते हैं। इसका तैल बनाकर चर्मरोगोंमें मालिश की जाती है।

अडूसा कफनिःसारक, आक्षेपघ्न और रक्तपित्तनाशक है। इस हेतुसे काली खाँसी, उरःक्षत, यक्ष्मा, ज्वरसहित कास और आक्षेपयुक्त तमक-श्वास आदिमें लाभदायक है। एवं रक्तपित्तके लिये तो यह अत्युत्तम औषधि ही है।

धतूरा अवसादक कफनिःसारक, मादक और वेदनाहर है। संज्ञावाही और चेष्टावाहि नाड़ियों पर अधिक प्रभाव नहीं पहुँचता। परन्तु इडापिंगला नाड़ी पथ (Sympathetic Nerve System) पर अच्छा गुण पहुँचता है। अधिक मात्रामें सेवन करने पर हृदय-कार्य अनियमित हो जाता है। एवं रोगी भयंकर प्रलाप करने लगता।

धतूराके रसका अंजन करनेपर कनीनिका विस्तृत होती है।।

यकृत शूल, स्वरयंत्रमें कफसंग्रह, नृत्यवात (Chorea), गद्गद् वाक आदि विकारोंमें धतूरा आक्षेपनिवारक रूपसे व्यवहृत होता है।

रजःकृच्छ्र, खसी आदि विविध वातरोगोंमें यह लाभदायक है। कामोन्माद और अपघातकी इच्छाके लक्षणयुक्त सूतिका के उन्माद रोगमें यह फलप्रद औषधि है। तमकश्वासका दौरा होनेपर इसका धूम्रपान कराया जाता है। धतूराका

ऊपर जो दोष शब्द कहा गया है वह वातादि दोष तथा उनसे उत्पन्न व्याधि, इन दोनोंके वाचक हैं। वात आदि विकृतिके लिये संशमनका अर्थ ऊपर बतलाया गया है। व्याधि पक्षमें उत्पन्न व्याधिको शान्त करना और अनुत्पन्न व्याधिकी उत्पत्तिको रोक देना, ऐसा अर्थ लेना चाहिये।

अष्टाङ्ग हृदयकारने इसके ७ भेद किये हैं। पाचन, दीपन, जलत्याग, अन्नत्याग, व्यायाम, सूर्यका ताप और वायु। पाचन और दीपनका विचार आगे पृथक् गुणधर्म रूपसे किया जायगा। जल-अन्नत्याग अर्थात् उपवास, व्यायाम आदिके युक्तिपूर्वक सेवनसे भी प्रवृद्ध दोषोंका शमन हो जाता है।

सुश्रुत संहिता और अष्टाङ्ग संग्रहकारने संशमनके वातसंशमन, पित्तसंशमन और कफसंशमन, ऐसे ३ विभाग किये हैं। उसके अनुरूप प्रसिद्ध वातआदि धातुओंके गुण, धातुक्षय लक्षण, धातुप्रकोप-लक्षण तथा शामक उपाय, ये सब चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्डके पृष्ठ २५ से ३२ तक लिखे हैं। इनके अतिरिक्त रस, रक्त आदि धातुओंके वृद्धि-क्षय और उनके मानस लक्षण भी दर्शाये हैं।

सुश्रुत संहितामें संशमन द्रव्योंको आकाशगुणभूयिष्ठ कहा है; किन्तु रसवैशेषिक सूत्रके भाष्यकारने इनको वायु, जल और पृथ्वी, प्रधान कहा है।

शामक औषधियाँ—गिलोय, पाटल, स्योनाक-छाल, आंवला शिलाजीत आदि।

गुडूची (गिलोय) का उपयोग प्राचीन ग्रन्थकारोंने अत्यधिक किया है। इसकी महिमा भी बहुत कुछ गाई हुई है। इसका संक्षिप्त वर्णन पित्तसंशमनमें किया है। गिलोय लघु (मतान्तरमें गुरु), तिक्त, कषाय, उष्ण वीर्य और स्वादुपाकी है। त्रिदोषज विकार (वातज, पित्तज, कफज), रक्तार्श, कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, पाण्डु, भ्रम, दाह, तृषा, श्वास, कास, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, कृमि, वमन और हृद्रोग आदिको दूर करती है। इसमें संग्राही, बल्य, अग्निप्रदीपक और रसायन गुण भी अवस्थित हैं।

प्राचीन आचार्योंने गिलोयको जीर्णज्वर, पित्तज वमन स्तन्य-विकृति, पित्त-प्रधान वातरक्त, रक्तपित्त, कुष्ठ, पाण्डु हलीमक, कामला, प्लीहोदर, हृदयगत दाह, प्रमेह और वातप्रधान रक्तप्रदर आदि रोगोंमें प्रयोजित किया है। एवं रसायन रूपसे भी इसका उपयोग किया जाता है।

नव्यमतानुसार गिलोय, कलम्बा (Columba) की प्रतिनिधि औषधि है। गिलोय पाचक, तिक्त, पौष्टिक, दोषघ्न वाजीकरण, नियत ज्वरप्रतिरोधक (Anti-periodic) और स्निग्ध है। यह प्लीहावृद्धिनाशक और ज्वरघ्न होनेसे जीर्ण ज्वर और उससे उत्पन्न निर्बलता दूर करनेमें अति हितकर औषधि है, दोषघ्न गुण होनेसे आम वात, उपदंश की द्वितीयावस्था, कुष्ठ, रक्तविकार और कामला रोगमें उपयोगमें आती

है। मूत्रल और स्निग्ध गुणयुक्त होनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय प्रदाहजन्य बहुमूत्र (बूँद बूँद पेशाब आना) में अति हितकर मानी गई है। एवं विविध प्रमेह रोगोंमें इसके स्वरसका उपयोग करने से लाभ पहुँच जाता है।

गिलोयमेंसे निकाला हुआ सत्व, पित्त प्रधान मंदाग्नि, पित्तातिसार, दाह, भ्रम, तृषा, वमन, निर्बलता, धातुक्षय और मूत्ररोग आदिमें अच्छा गुणकारी है।

(१३) पुरीष वर्णकारक

पुरीष विरजनीय अर्थात् मलका स्वाभाविक वर्ण लाने वाली औषधियाँ—जामुन की छाल, कौंच, मुलहठी, मोचरस, श्रीवेष्टक (गन्धाबिरोजा), दग्ध मृत्तिका, विदारीकन्द, नीलोफर, भूसारहित तिल, ये १० मलको स्वाभाविक वर्णकारक बनाती हैं।

जब यकृतका पित्तस्राव कम होनेसे मल सफेद हो जाता है, तब पित्तस्राव वर्द्धक औषधियोंका सेवन करानेसे मलका वर्ण पीला हो जाता है। इसका विवेचन पहिले पित्तस्राव वर्द्धक औषधियोंमें किया जा चुका है।

यकृत् निबल हो जाने पर या पित्ताशय या पित्तनलिकाके पित्तस्रावमें प्रतिबन्ध होने पर अन्त्रमें पित्त नहीं आता, जिससे मलका वर्ण सफेद हो जाता है, अत उसमें दुर्गन्ध आने लगती है और छोटे छोटे कृमियों की उत्पत्ति भी हो जाती है। ऐसे समय पर पित्त विरोधी भोजन—घृत, शक्कर आदि का सेवन जितनाहो सके उतना कम कर देना चाहिए और पित्तस्राववर्द्धक द्रव्य ताम्र भस्म, पारद, अतीस, चित्रक मूल, नौसादर आदि का सेवन करना चाहिये।

(१४) सारक—अनुलोमन

> अनुलोमनो वातमलप्रवर्तनः। (डल्हणाचार्य)
> कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत्।
> तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ (शारंगधर संहिता)

जो द्रव्य वायु और मलका प्रवर्तन करे, उसे अनुलोमन, सर और सारक कहते हैं।

जो द्रव्य मलों और दोषों को पकाकर तथा उनके विबंधों (वायु और मल मूत्रकी अप्रवृत्ति) का भेदन कर अधोमार्ग द्वारा बाहर निकालता है, उसे अनुलोमन कहते हैं। जैसे हरड़।

इस प्रकारकी औषधियां अन्त्रकी पुरःसरण क्रियाको बढ़ाती और मृदु उत्तेजना देती हैं। इनको डाक्टरीमें मृदु विरेचन (Laxatives or Aperients) संज्ञा दी है। इसका विवेचन आगे 'विरेचन' प्रकरण में किया जायगा।

अनुलोमन औषधियाँ—गुलाब के फूल, आंवला, हरड़, मांगरा, कासदेव, गंधक, चंदलोई, उतरण, मुलहटी, नुर्दासंग, झरना, मायमाण, घृत, मक्खन, पीलुए, मुनक्का, एलुआ, विविध क्षार, यव, मायमिश्र, अंजीर, बादाम, आलूबुखारा, इमली आदि, मधुराम्ल फल, बिल्वफल पलाश बीज, शहद, गुड़ आदि।

(१५) स्रंसन

पक्तव्य यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः॥

जो द्रव्य कोष्ठके भीतर चिपके हुए पच्यमान मल आदिको बिना पकाये ही बाहर निकाल देते हैं, उन्हें स्रंसन कहते हैं। उदाहरणार्थ अमलतासकी फलीका गूदा।

चरक संहिताकारने तथा टीकाकार योगीन्द्रनाथजीने विरेचन द्रव्यके लिये ही स्रंसन शब्दका प्रयोग किया है।

इस प्रकारकी औषधियाँमें बहुतसी पिच्छिल गुण युक्त हैं वे अन्त्रमें अधिक उत्तेजना नहीं पहुँचातीं। जिससे इन औषधियोंका उपयोग ज्वर-ज्वरमें मल शुद्धिके लिये निर्भयतापूर्वक होता है। क्योंकि लिये ही ये व्यवहृत होती हैं। डाक्टरी मतानुसार इनको स्निग्ध या सौम्य विरेचन (Lubricant laxatives or Simple Purgatives) कह सकते हैं।

औषधियाँ—अमलतास, पेराफिन, एरंड-तैल, सनाय, गोकर्णी (कोमल), गुलकन्द, आंवलेका मुरब्बा और एलुआ आदि।

अमलतास इसकी फलीके गमका उपयोग औषध रूपसे होता है। यह पित्तशामक और सारक है और यह कफ और पके आम को भी मलके साथ फेंक देता है। इस हेतु से ज्वरमें मलावरोध होने पर इसका प्रयोग होता है। आमपाचक गुण न होनेसे आम-ज्वरमें इसे नहीं देना चाहिये। यह आन्त्र के भीतर दाह नहीं करता। एवं बलहानि भी नहीं करता है। अत यह अति सौम्य विरेचन है।

इसका शोधन कार्य, रसधातु और मांसधातु (यकृत् आदि) के भीतर भी होता है। इस लिये यह यकृत् दोष मुक्त होता है।

कण्ठशुद्धि, रक्तपित्त, शूल, उदावर्त्त, गीला-कुष्ठ, त्वचा-विकार, आमवात, हृदयशूल आदिमें पित्तशमन, रक्तप्रसादन, कफशमन, आमनाश और कीटाणु नियमे नष्ट करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

(१६) भेदन।

मलादिकमबद्धं च बद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्वाऽधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा॥

जो द्रव्य अबद्ध-अबाही मल और दोषों, दोषोंके द्वारा जमे हुए या गांठदार बने हुए मलोंका भेदन कर अधोमार्गसे बाहर निकालता है, उसे भेदन कहते हैं, जैसे कुटकी।

स्रंसन और सारक औषधियोंकी अपेक्षा भेदनकी क्रिया अधिक प्रबल होती है। इस वर्गकी औषधियां अन्त्रमें क्षोभ कराती हैं। अनेक औषधियां श्लैष्मिक स्राव कराती हैं और कई यकृत्पित्तका स्राव भी अधिकतर कराती हैं। परिणाममें रस, रक्त आदिमेंसे अधिक जलांश अन्त्रके भीतर मिश्रित हो जाने पर भेदन क्रिया होती है।

कुटकी—स्वादमें तिक्त, विपाक में कटु, शीतल, वीर्य एवं रूक्ष और लघु है। यह आंवला और अमलतासकी अपेक्षा विशेष बलवान विरेचक है। यकृत्के पित्त और अ-बद्ध मलको सत्वर फेंक देती है। साथमें यकृत्, स्तन्य और रक्तका शोधन भी करती है, दूषित कफको निकालकर कफ वायुको शुद्ध करती है, उष्णता, दाह और स्वेदका नाश करती है एवं तिक्तरस और कटु विपाकके कारणसे अग्निको प्रदीप्त करती है। रक्तपर इसकी क्रिया होनेसे परम्परागत मूत्रको भी लाभ पहुँचता है तथा मूत्र शुद्धि हो तो उसकी निवृत्ति हो जाती है।

यह ज्वर (पित्तज्वर, कफज्वर विषमज्वर), कफप्रकोपसह श्वास, मस्तिष्कविकार, त्वचारोग, गौण कुष्ठ, शोथ, पार्श्वशोथ और पित्तप्रकोपज विविध विकारोंको शमन करनेके लिये व्यवहृत होती है।

भेदनीय गण—चरक संहितामें निसोत, आक, एरण्ड के बीज, अग्निमुखी (कलिहारी), चित्रा (दन्तीमूल) चित्रकमूल, करंज, शंखिनी (यवतिक्ता), कुटकी और सत्यानाशी ये १० औषधियाँ कही हैं।

श्यामादि गण—श्यामा (काली निसोथ) महाश्यामा (विधारा), सफेद निसोथ, दन्तीमूल, शङ्खिनी (यवतिक्ता), तिल्वक (लोधभेद), कपिला, बकायन, सुपारी, पुत्रश्रेणी (मूषाकानी), इन्द्रायण, अमलतास, करंजुवा, कण्टकरंजा, गिलोय, सातला, थूहर, छगलान्त्री (विधारामेद), सुधा (थूहर), सुवर्णक्षीरी (चोक) इन १९ औषधियोंको सुश्रुत संहितमें श्यामादि गण कहा गया है। यह गण गुल्म, विषदोष, अनाह उदर रोग और उदावर्तका नाशक और विशेषतः मलभेदक है।

इनके अतिरिक्त कुटकी, सत्यानाशी, रेवन्दचीनी, ककुंभी-कुम्भी, कटेलीकी जड़ आक छाल, एरण्ड आदिमें भेदन गुण अवस्थित है।

चरक संहितामें पियाकद्, चिर्भेटी (काकड़ा-भूर), खरबूजा, अम्लवेतस् आदिको भी भेदन गुण-युक्त कहा गया है।

भेदनका डाक्टरी विवेचन विरेचन प्रकरणमें देखें।

(१७) विरेचन

केथर्टिक्स-पर्गेटिव्स एपेरिएण्ट्स इवाक्युएण्ट्स ।
Cathartics-Purgatives Aperients-Evacuants ;

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥

जो द्रव्य पक्व और अपक्व मल, आम आदिको द्रवीभूत करके अधोमार्गसे बाहर निकाल देता है, वह रेचन या विरेचन कहलाता है, जैसे निशोथ।

चरक संहितामें लिखा है कि जो द्रव्य दोषोंको हराकर ऊर्ध्व भाग (मुख) से निकालता है। उसे वमन और जो अधो भाग (गुदा) से निकालता है उसे विरेचन तथा उभय भागसे निकालने वालेको भी विरेचन (शोधन Evacuants) संज्ञा दी है। ये सब द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी, विकाशी आदि गुणयुक्त होनेसे अपने वीर्यसे हृदय (मस्तिष्क स्थित केन्द्रस्थान) को प्राप्त होकर धमनी (धमनाडियों) का अनुसरण करके फिर स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंमेंसे देहमें स्थित संपूर्ण दोष संघात (मलसमूह)को आग्नेय गुणके हेतुसे पिघलाती और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे भेदन करती हैं। तब यह मल छिन्न-भिन्न और पतला होकर इधर उधर फिरता है।

पहिले स्नेहन द्रव्यसे देहको स्निग्ध कर लिया जाता है जिससे मल, चिकने पात्रमें शहदके समान कहीं भी इधर उधर न चिपककर या रुककर सूक्ष्म मार्गोंमें संचार करनेवाला होनेसे आमाशयमें आ जाता है (जिन द्रव्योंमें वमन करानेका गुण है, यह कथन उनके लिये ही है), पश्चात् उक्त द्रव्य उदान वायुसे प्रेरित होकर अपने अग्निवाय्वात्मक वीर्यसे (वमन द्रव्योंमें अग्नि-वायुकी प्रधानता होनेसे) दोषको ऊपरको ओर उछाल कर मुँहसे निकाल देता है। इसके अतिरिक्त जिन द्रव्योंमें सलिल पृथिव्यात्मक वीर्य है, उनमें अधो भाग प्रभावी गुण है अतः वे मलको नीचेकी ओर प्रवृत्ति करते हैं, फिर अपान वायु द्वारा प्रेरित होने पर पच्यमान दोषोंको नीचेकी ओरसे बाहर निकाल देते हैं। जिन द्रव्योंमें दोनों प्रकारके वीर्य अवस्थित हैं, व दोनों ओर गति करके मुख और गुदा मार्गसे मलोंको बाहर निकालते हैं।

सुश्रुत संहिताकार भी कहते हैं कि, विरेचन द्रव्य स्थिर, गुरु, पृथिवी और जल गुण भूयिष्ठ होनेसे पच्यमान मलोंका अधो मार्गसे बाहर निकाल देते तथा वमन (वमन कारक) द्रव्य, वायु अग्निकी प्रधानतावाले होनेसे अपक्व दोषोंको ऊर्ध्व भागमें ले आकर मुखसे बाहर निकाल देते हैं।

चरक संहिता कथित विरेचन औषधियाँ—सफेद और काली निशोथ, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), दन्ती, नीलनी (काला दाना), अमलतास (आरग्वध

भूहरभेद), वच, कपीला, इन्द्रायन, क्षीरिणी (दूधी या चोक) उदकीर्यका (पूतकरंज), पीलू, अमलताश, मुनक्का, द्रवन्ती, (दन्तीभेद), नीचुल (समुदर फल), ये औषधियां पक्वाशयमें दोष होनेपर विरेचनार्थ दी जाती हैं।

चरक संहिता विमान स्थानमें कहे हुए विरेचन द्रव्य—काली निशोथ, रक्त-मूलवाली निशोथ, चतुरंगुल (अमलतास), तिल्वक (लोध विशेष), महावृक्ष, (सेहुंड), सप्तला (सातला , शंखिनी काकमेष या श्वेत अपराजिता), दन्ती (जमालगोटा), द्रवन्ती (बड़ी दन्ती), इनके दूध, मूल, छाल, पान, फूल और फलका उपयोग योगके अनुसार करना चाहिये। इनका ही केवल प्रयोग करें या निम्नानुसार द्रव्य संयोग कर लेवें। यदि द्रव्य मिलाना हो, तो निम्न कषाय आदि द्वारा निम्नलिखित विधानसे तैयार करके व्यवहृत करना चाहिये।

अश्वगन्धा (जंगली तुलसी), अश्वगन्धा (असगन्ध), मेंढासिंगी, क्षीरिणी (दूधी), नीलनी (कालादाना), क्लीतक (मुलहठी), इनमेंसे जो मिले उनके कषायोंके साथ या प्रकीर्या (पूतिकरंज), उदकीर्य (करंज), मसूरविदला, श्यामलता (काली सारिवा) कपीला, वायविडंग, गवाक्षी (इन्द्रायन), इनके कषायों के साथ या—

पीलू, पियाल (चिरौंजी), मुनक्का, गंभारीफल, फालसा, बेर, अनार, आंवले, हरड़, बहेड़ा, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, विदारीगंध, (शालपर्णी या लघु-पञ्चमूल अथवा दशमूल) इनके कषायोंके साथ या—

सीधु, सुरा, सौवीर, तुषोदक मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु मधूलक (महुआ मतान्तरमें मधूदक-शहदका जल), कांजी, कुवल (बड़े बेर), बेर, खजूर, छोटे बेरोंके बेर, इनसे तैयार किये हुए सीधुओं (गुड़की शराब) के साथ या दही, दहीका जल, अद जलवाला मट्ठा, इनके साथ उपयोग करें।

गौ, भैंस, बकरी, भेड़, इनके दूध या मूत्रोंसे संस्कार (भावना या पाक क्रिया) करके गोली, चूर्ण, आसव, लेह, स्नेह (घृत), कषाय, मांसरस, यूप, काम्बिक (अम्ल यूप , यवागू, क्षीर (या दूध) रूपमें या मोदक, अन्य भक्ष्य पदार्थ और विविध प्रयोग तैयार करके विरेचन देने योग्य अधिकारी को विरेचन देवें।

विरेचनोपग—चरक संहिता कथित विरेचन क्रिया में सहायक औषधियाँ मुनक्का, गंभारी फालसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला बड़े बेर, बेर और झड़बेर हैं।

चरक संहिता में ५० महाकषाय बतलाये हैं, उनमें भेदनीय कषाय कहा है, किन्तु उसका शाङ्गधराचार्य कथित अनुलोमन, स्रंसन और विरेचन भेद नहीं किया। इसी तरह सुश्रुत संहिता और अष्टाङ्ग हृदय में भी उक्त विभागों को पृथक पृथक नहीं बताया गया। केवल बलभेद से तीक्ष्ण मध्यम और मृदु प्रयोग करने का विधान किया है।

सुश्रुत संहिता में चरक संहिता लिखित औषधियों के अतिरिक्त निम्न लिखित औषधियाँ भी कही हैं। छगलान्त्री (वृद्धदारु), सुवर्णक्षीरी (सत्यानाशी या रेवन्दचीनी), चित्रक, किंणिही (कटभी), कुशा, कांस, तिल्वक (लोध), कम्पिल्लक, पारुषा, सुपारी, एरण्ड, श्राक और मालकांगनी।

सुश्रुत संहिताकारने लिखा है कि, उक्त औषधियों में से निसोत, दंती, अरुण सातला, कालमेघ, मेंढासिंगी, इन्द्रायण, वृद्धदारुक, सेहुँड, सुवर्णक्षीरी, चित्रक, किंणिही, कुश और काश इनकी मूल लेवें। तिल्वक, कम्पिल्लक, पारुषा, इनकी छाल लेवें। कपीला फूलों के रजरूपसे उपयोग में लिया जाता है। सुपारी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलिनी (काला दाना), अमलतास, एरण्ड इनका फल लेवें। पूतिकरंज और आरग्वध के पत्र लेवें। आरग्वध की पत्ती लेनेका ही रिवाज है। पूतिकरंज की छाल को चरक संहिता में प्रधान माना है। महावृक्ष (थूहर), सप्तपर्ण (सतौना), मालकांगनी (ज्योतिष्मती), इनका दूध विरेचनार्थ लेना चाहिये।

कोशातकी (तरोई) सप्तला (सातला), शंखिनी, देवदाली, कारवेल्लक (करेला), इनका स्वरस वमन-विरेचन कराता है।

उक्त मूल, छाल आदि में उत्तम विरेचन द्रव्य भगवान् धन्वन्तरिने निम्नानुसार दर्शाये हैं।

> अरुणाभं त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठं मूल विरेचनं।
> प्रधानं तिल्वकस्त्वक्षु फलेष्वपि हरीतकी॥
> तैलेष्वेरण्डजं तैलं स्वरसे कारवेल्लिका।
> सुधापयः पयःसुक्तमिति प्राधान्यसंग्रहः॥

मूल विरेचनों में ईषत् रक्ताभ निसोत छालों में तिल्वक, फलों में हरड़, तैलों में एरण्ड तैल, स्वरस में करेले का रस तथा दूधों में सेहुँडका दूध, ये सब प्रधान विरेचन माने जाते हैं।

बालक और छोटी आयु (१२ वर्ष तक) वालों को अमलतास की गूदी का जुलाब देवें। अमलतास की फलीको पहिले ७ दिन धूपमें बालुकामें दबा देवें। शुष्क हो जाने पर उसकी मज्जा निकाल लेवें तत्पश्चात् उसे जलमें मिलाकर क्वाथ करें या दूधमें उबाल लेवें या तैलमें भिगोकर कोल्हूमें पिलवा कर तैल निकलवा लेवें फिर उसका उपयोग करें। अथवा कुश और त्रिफलाका एरण्ड तैलके साथ मिला, पकाकर निथारा जल पिला देवें।

अथवा बालक, वृद्ध, क्षीण और सुकुमारोंको तीन गुने त्रिफला क्वाथके साथ एरण्ड तैल देवें। ऊपर दूध और मांसरस पिलावें। विशेषतः एरण्ड तैल दूध के साथ देनेका रिवाज है।

प्रबल रोगोंमें और सबल व्यक्तियोंको सेहुँड आदिका दूध देवें। यह तीक्ष्ण विरेचन है। यदि अनधिकारीको दिया जायगा या क्रियामें भूल होगी, तो विषप्रभाव दर्शायगा।

विरेचन फल—चरक संहिताकार लिखते हैं कि—

स्रोतो विशुद्धिन्द्रिय सम्प्रसादो
लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम्।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां
सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण॥

स्रोतोंकी शुद्धि, इन्द्रियोंको प्रसन्नता, लघुता, उत्साहवृद्धि, अग्निकी दीप्ति, नीरोगता तथा मल पित्त, कफ (आम) और वायुका क्रमशः निकलना, ये लक्षण सम्यक् विरेचन होनेपर उपस्थित होते हैं।

योग्य विरेचन न होनेपर कफ, पित्त और वातका प्रकोप, अग्निमान्द्य, देहमें भारीपन, प्रतिश्याय, तन्द्रा, वान्ति, अरुचि तथा वायुकी अनुलोम गतिमें प्रतिबन्ध होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

यदि विरेचनका अतियोग हो जाय तो कफक्षय, रक्तक्षय, पित्तक्षय, फिर उनके क्षयसे वात प्रकोप होकर शून्यता, हाथ पैर टूटना, क्लान्ति, कम्प, निद्रानाश, निर्बलता, चक्कर आना, उन्माद और हिक्का आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

डाक्टरी वर्णन

विरेचन द्रव्यों द्वारा अन्त्रशोधन क्रिया होनेमें गुदनलिकाकी पुर सरण क्रियाके दबावकी वृद्धि होती है तथा आभ्यन्तरीय गुदसंकोचनीपेशी खुल जाती है। इस बातका ठीक निर्णय नहीं हो सकता कि, गुदनलिकामें से मल त्यागार्थ कितना वेग मायमिक प्रतिफलितक्रिया उत्पन्न कराता है। औषधिकी मात्रा और उसके द्रव्योंकी द्रवताके भेदसे भी आवश्यक उत्तेजनामें भेद हो जाता है।

विरेचन द्रव्योंकी क्रिया—

१ शोषित न होने योग्य द्रव्योंके आयतनकी वृद्धि।
२ जलका शोषण होनेसे संरक्षण।
३ लघु और बृहद् अन्त्रमें क्षोभ लाकर प्रतिफलित रूपसे पुर सरण क्रियाकी वृद्धि कराना।
४ मांसपेशियों और उनकी वातनाड़ियोंकी यन्त्रिणा पर प्रत्यक्ष उत्तेजना पहुँचाना।

इनमें से एक या अधिक क्रिया विरेचन द्रव्यकी शक्ति अनुसार होती है।

सामान्यतः लघु अन्त्र में रहे हुए द्रव्य सदर्श कपाटिका (Ileo-Cecal valve) में से प्रवाहित होते हैं, जो प्रायः प्रवाही स्थिति में होते हैं। फिर बृहदन्त्र के भीतर जाने के पश्चात् उनमें से शनैः शनैः द्रव्य का शोषण होता है और शेष द्रव्य का गाढ़ा मल बन जाता है। इस हेतु से विरेचन द्रव्य अन्त्र की पुरःसरण क्रिया को बढ़ा देता है। जिससे शोषण का समय कम मिलता है और फल सदृश अधिक मल द्रव्य सत्वर गुदनलिका में पहुँच जाता है। दूसरी ओर अन्त्र के भीतर तरल बड़ी मात्रा में संग्रहीत हो जाता है। यह प्रतिफलित असर भी पुरःसरण क्रिया को उत्तेजित करता है।

अनेक द्रव्य अन्त्र को शिथिल बनाते हैं, किन्तु फिर वे प्रबल क्षोभ करते हैं। अतः उनका उपयोग विरेचनरूप से नहीं किया जाता। या श्रेष्ठ विरेचन द्रव्य उसे कहा जायगा कि, जो अन्त्रके अतिरिक्त कहीं भी असर न पहुँचावे यह आमाशयमें क्षोभ नहीं करता तथा अन्त्र में पहुँचकर प्रबल असर पहुँचाता है। इसका शोषण सरलतासे नहीं होता, [illegible] उतना शनैः शनैः होता है, कि यह अन्त्रके भीतर अपना कार्य कर सकता है।

अनेक मृदुविरेचन द्रव्य उनके विशेष अंश द्वारा भारिक असर पहुँचाते और अन्त्रको स्फीत करते हैं तथा प्रतिफलित क्रियारूप से मल त्याग करते हैं। ये हानि रहित हैं और क्षाम नहीं कराते। एवं उनका सेवन समय तक कुछ भी हानि न पहुँचते हुए हो सकता है। ये म [illegible] वरोधकी लिए उपयोगी हैं तथा जिन रोगियोंकी देहमें मल पिण्डके आकारके अनुसार न हो, उन रोगियोंके लिए मृदुविरेचन—अगर (Agar), सिलियम आदि हितकर हैं।

विरेचन तेल, एरण्ड तैल या जमालगोटे का तैल, ये तब काम करते जब उनमें रहा हुआ अम्ल मुक्त हो जाता है।

एन्थ्रेसिन विरेचन द्रव्य (गुलावा, रेवन्दचीनी, सनाय, केस्केरा आदि) काम करते हैं, जब इनका वियोजन होकर मधुजन (Glyco sadal) [illegible] उपस्थिति होती है।

रालमय विरेचन द्रव्य तब फलोत्पत्ति करा सकते हैं, जब राल [illegible] और क्षार और पित्त द्वारा नियुक्त हो जाय। इस हेतु से रालप्रधान विरेचन ([illegible] निशोथ, जेलप आदि) के लिये पित्तोपस्थिति की आवश्यकता है।

तीव्र विरेचन लघु और बृहत्, दोनों अन्त्र की पुरःसरण क्रिया बढ़ाते हैं। एवं बड़ी मात्रामें देने पर अन्त्रके भीतर द्रवका संग्रह कराते हैं।

मेगनेसियम सल्फेट लघु अन्त्रमें से जानेवाले मार्गमें त्वरा कराता है, [illegible] नहीं होने देता और बृहदन्त्रमें द्रव्योंका संग्रह होने में सहायता पहुँचाता

फेक्लोमल दोनों अन्त्रकी पुरःसरण गतिको उत्तेजित करता है।

विरेचनका सेवन अत्यधिक करते रहने पर मलावरोधके पश्चात् आनुषंगिक अन्त्रकी मांसपेशियोंमें आक्षेप उत्पन्न होता है। यह असर एरण्डतैल और रेवन्दचीनी, जिसमें रेवन्दचीनी प्रधान कषायाम्ल (Rheo tannic Acid) रहता है, इनका सेवन करने पर अधिक प्रतीत होता है।

कतिपय विरेचन त्वचा मार्गसे देनेपर, मल-त्याग कराते हैं, जमालगोटेका तैल त्वचापर रखने मात्रसे विरेचन क्रिया कराता है। सनाय, एलुवा और इन्द्रवारुणी उसी समूहके द्रव्य हैं किन्तु इनका असर अन्त्रपर विशेष प्रभाव नहीं पहुँचाता। अति सम्भवत अन्त्रमें उनके मल त्यागसे असर पहुँचता है।

अनेक औषधियाँ, जो सामान्यत विरेचन रूपसे प्रयुक्त नहीं होती, वात वाहिनियाँ अथवा मांस-पेशियोंपर विशेष प्रकारका असर पहुँचानेके लिये जब त्वचा मार्गसे दी जाती हैं तब ठीक वैसा ही परिणाम लाती हैं। इस प्रकारकी औषधियाँ— पाइलोकार्पिन (जेबरांडिके पानका क्षार), एसिटील कोलिन प्रोस्टिग्मिन आदि प्राणदा-नाड़ियोंके सिरेपर फलोत्पत्ति करते हैं। एपोकोडीन (१ ग्रेन) और अर्गटामिन (१- ग्रेन) महती आशयिकी नाड़ी (Nerve Splachnic) या अवयवकी उत्तेजनाका ह्रास करानेवाली नाड़ी (Nerve Inhibitory) के सिरेपर अवसादक असर पहुँचाकर फल दर्शाते हैं। पोषणिका (Pituitary) ग्रन्थिका सत्व मांस-पेशियोंपर प्रत्यक्ष फलोत्पत्ति कराता है और अन्त्रकी गतिकी स्पन्दन संख्या और प्रसारणकी वृद्धि कराता है किन्तु दबावमें अधिक वृद्धि नहीं कराता।

चिकित्सार्थ औषध प्रयोगके हेतु—

१ मलावरोधके रोगियोंमें मल संग्रहको दूर करनेके लिये, (बहुधा मृदु विरेचन)।

२ हृदय, वृक्क और यकृत, इनकी विकृतिसे उत्पन्न जलोदरके रोगियोंमें रक्तमेंसे रक्त-धारिका आकर्षण करनेके लिये (बहुधा सबल विरेचन और जलवत् भेदन करानेवाला विरेचन)।

३ ज्वरमें उत्तापका ह्रास करानेके लिये (बहुधा मेगसल्फ या निसोत)।

४ सन्यास (Apoplexy) और मस्तिष्कमें रक्तसंग्रह होनेपर रक्त दबाव कम करनेके लिये (बहुधा जलवत् भेदन करानेवाली औषधि)।

५. अर्श, भगन्दर और अन्त्रावरणसे पीड़ित व्यक्तियोंको मलत्यागमें प्रवाहण (कूँथन) न होनेके लिये (मृदुविरेचन)।

६ पित्ताश्मरीको निकालनेके उद्देश्यसे उसके मार्गमें पित्तस्राव करानेके लिये (पित्त निःसारक विरेचन)।

७ रक्तमेंसे कितनेक मल सकान्त द्रव्य मूत्रीया, मूत्राम्ल आदिको निकाल देनेके लिये (लवण विरेचन) ।

८ कोमको शमन करने अथवा हानिकर द्रव्योंको निकाल देनेके लिये, जैसे अपाचित आहार द्रव्यसे उत्पन्न अन्त्रके भीतर पूतिभवन (Putrefaction) और अभिसार होनेपर उन्निद्र शिरकी उत्पत्ति होती है, तब उसे दूर करनेके लिये (अमलतास, एरण्ड तैल आदि स्निग्ध मृदु विरेचन) इनके अतिरिक्त जीर्ण वात्तिका अपरोध करानेके लिये कभी कभी सौम्य विरेचन भी दिया जाता है।

आयुर्वेदमें पचन संस्थामें सञ्चित मल, आम, पित्त, कृमिको बाहर निकाल देनेके लिये विरेचन देनेका विधान किया है। इनके अतिरिक्त दोषोंके प्रवाहके विपरीत गतिसे उत्पन्न कुष्ठ, प्रमेह, त्वचा-विकार, अतिस्वेद आदि व्याधियोंमें पद प्रवाहका वहन सम्यक् मार्गपर कराने या धातुसाम्य स्थापित करानेके लिये कोष्ठ शुद्धि करायी जाती है। एवं श्वास, कास, हिक्का, वमन, उदाक, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, भेदोवृद्धि आदि रोगोंमें नाडीके भीतर जमे हुए मल, मेद, आम, कफ आदिको हटाने (स्रोतोरोध दूर करने) के लिये भी विरेचन दिया जाता है।

सूचना—निम्न अवस्थाओंमें विरेचन नहीं दिया जाता या अतिसम्हलपूर्वक व्यवहृत होता है।

१ उदरके अवयवोंकी प्रदाहिक अवस्था, उदर्याकला प्रदाह, या अन्त्र प्रदाह होनेपर।

२ सगर्भावस्था और मासिकधर्म स्रावके समय प्रबल विरेचन देनेका निषेध है।

३ अन्त्रमेंसे रक्तस्राव, बलह्रास और सन्निपात होनेपर।

४ अन्त्रके भीतर अवरोध और अन्त्रान्त्र प्रवेश (Intussusception) होनेपर।

वर्गीकरण—

अ—आपेक्षिक गुरुत्ववर्द्धक—अन्त्रके भीतर शोषण न होने योग्य द्रव्यों भारकी वृद्धि करानेवाली औषधियाँ।

१ लवण विरेचन (Saline Purgatives)—ये शोषण क्रियामें हस्तक्षेप कराकर परिणाम लाती है। सादा सल्फास, सोडा फॉस्फेट, एसिड टर्टेट आफ पोटाशियम, मैगनेशिया कार्ब, मैगनेशियम सल्फेट, नमक, भूरगा क्षार, अपमार्ग आदिका क्षार और गोमूत्र आदि।

२ सब आहार द्रव्य—रोटी, फल, अंजीर, परोत्तेन्न आदि।

आ—स्रोमोत्पादक वर्ग—

१ मृदु विरेचन (Laxative)—इमली, केसिया, माना (भारेखिस्त), एरण्ड तैल, गंधक आदि ।

२ एन्थ्रेसिनसत्व प्रधान—(Anthracene) हाइड्रोकार्बोन ($C_{14}H_{10}$) विद्यमानता वाले द्रव्य । एलवा, रेवन्दचीनी, सनाय, केस्केरा आदि ।

३ तीव्रविरेचक (Drastic Purgatives)—स्केमोनी, जैलप, जमाल गोटा, इन्द्रवारुणी, कालादाना, निशोथ आदि ।

४ पित्तविरेचक (Cholagogue purgatives)—ये औषधियाँ बहुधा पित्तस्रावको वृद्धि नहीं करती किन्तु अन्त्रकी पुरःसरण क्रियाकी वृद्धि द्वारा अन्त्रके द्रव्योंको गतिको बढ़ाकर पित्तमेंसे मल त्यागकी वृद्धि कराती हैं तथा पुनः शोषण होनेसे रक्षण करती हैं । पोडोफिलिम, पारद प्रधान औषधियाँ आदि ।

इ—अन्तःक्षेपण योग्य विरेचन—इन औषधियोंका अन्तःक्षेपण करनेपर ये चेष्टावाहिनी नाड़ियों या मांसपेशियोंको उत्तेजित करती हैं । ये सामान्यतः विरेचन रूपसे प्रयुक्त नहीं होती किन्तु अन्त्रके पक्षवधके शल्यचिकित्साके पश्चात् संरक्षणार्थ व्यवहृत होती हैं । पायलोकार्पिन आदि औषधियाँ परिस्वतन्त्र नाड़ियों (Parasympathetic nerves) के सिरेको उत्तेजित करके अन्त्रकी गतिको बढ़ाती हैं । पश्चिम पोषणिका ग्रन्थि प्रत्यक्ष मांसपेशियोंको उत्तेजित करती हैं ।

इनके अतिरिक्त जो औषधि जलवत् भेदन कराती हैं उसे डाक्टरीमें हाइड्रागोग (Hydragogue) संज्ञा दी है । ये औषधियाँ अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेंसे अत्यधिक रसस्राव कराती हैं । इस हेतुसे जल सदृश पतले विरेचन होकर देहमेंसे जलका विशेष परिमाण निकल जाता है । कालादाना, जमालगोटेका ऊँटनीके दूधके साथ सेवन, इन्द्रायन सत्व, मेगनेशिया, जैलप आदि ।

लवण विरेचनमें अधिक जल मिलाकर प्रयोग करनेपर मूत्रल गुण भी दर्शाता है, जिससे जलोदरमें सत्वर लाभ पहुँचता है । जल कम मिलानेपर केवल विरेचन गुणकी प्राप्ति कराता है । किन्तु लवण विरेचनकी उपकारिता कितनीक विशेष अवस्थापर निर्भर है । आमाशय और अन्त्रमें कोई युक्त द्रव्य, विशेषतः सरस द्रव्य न होना चाहिये । इस हेतुसे आमाशय रिक्त होनेपर प्रातःकालको इसका प्रयोग करना चाहिये । डाक्टरीमें सामान्यतः मेगनेशिया सल्फास समान जलके साथ मिलाकर दिया जाता है ।

कतिपय सबल विरेचन अन्त्रको श्लैष्मिक कलामेंसे रसस्राव अधिक कराती हैं किन्तु अन्त्र की सञ्चालन क्रिया उत्तेजित न होनेसे निःसृत रसका देहमें पुनः शोषण हो जाता है। फलतः भेद उपस्थित नहीं होता। अतः उनके साथ अन्त्रकी गति-वर्द्धक विरेचनका मिश्रण करके प्रयोगमें लाना चाहिये।

अन्त्रमेंसे उत्ताजनक त्याज्य पदार्थको दूर करने और कोष्ठबद्धतासम्य शिरदर्द, व्याकुलता आदिको नष्ट करनेके लिये मृदु विरेचन देना चाहिये। इन औषधियोंका खास असर शारीरिक द्रवर विधानमें प्रतीत नहीं होता।

एप्सेमिन विरेचन और तीव्र विरेचनकी अन्त्रपर साक्षात् क्रिया दृष्टिगोचर होती है। ये औषधियाँ परम्परा रूपसे रक्तपर कार्यकर प्रचुर परिमाणमें रक्त-रसका हरण कर लेती हैं। अब इन दोनों प्रकारकी औषधियोंसे कतिपय अंशमें दारुन (अपतर्पण) क्रियाकी सिद्धि होती है।

आयुर्वेद मर्यादा अनुसार विरेचन देनेके पहिलेके कर्तव्य, विरेचनकी विधि, अधिकारी, कला फल और अनधिकारी, विरेचनके अतियोग और हीन-योगमें कर्तव्य विरेचनके पश्चात् कर्म, इन सब बातोंको भलीभाँति जानकर विरेचन देना चाहिये। इन सबका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्डके पृष्ठ ६० से ६९ तक किया है।

स्त्रियोंको मासिक धर्मके चार दिनोंमें विरेचन औषधि नहीं देनी चाहिये। एवं गर्भावस्थामें अति सम्हालपूर्वक (आवश्यकता होनेपर) मुनक्का, गुलकन्द, आदि सौम्य औषधि देनी चाहिये। एलुआकी क्रिया लघु अन्त्रपर होती है अतः एलुआ भी नहीं देना चाहिये।

बार बार विरेचन लेते रहनेसे अजीर्ण अतिसार, अन्त्रप्रदाह आदि विविध रोग उपस्थित होते हैं।

विरेचन द्वारा कोष्ठशुद्धि कर लेनेपर दूसरे दिन बहुधा योग्य मलशुद्धि नहीं होती; परन्तु डरनेसे भय मानकर पुनः विरेचन औषधि नहीं लेनी चाहिये।

विरेचन औषधियोंमेंसे कितनीक जल्दी फल प्रदर्शित करती हैं; और कतिपय देरसे असर पहुँचाती हैं। जमालगोटेका तैल १-२ घण्टेमें काम करता है। लवण विरेचन १-४ घण्टेमें, निसोथ, रेवन्दचीनी, एरण्ड तैल आदि ४-५ घण्टेमें और एलुआ आदि ८-१० घण्टेमें विरेचन कराते हैं। देरसे विरेचन करानेवाली एलुआ आदि औषधियोंको रात्रिमें और शेष औषधियोंको प्रातःकाल सेवन करना चाहिये।

इन्द्रवारुणी विरेचनार्थ देना हो, तो कपूर मिला लेनेसे क्रिया शुद्धि होती है। एवं एलुआके साथ भी कपूर मिला लेनेसे एलुआकी उग्रता कम होकर एरण्ड तैलके साथ सोंठका क्वाथ और रसायनके साथ शहद मिलानेसे अन्त्रमें पीड़ा

नहीं होती। एवं अधिक उग्र औषधिके साथ खुरासानी अजवायन मिला देनेसे उग्रताका ह्रास हो जाता है।

अन्त्रप्रदाहके रोगी अति दुर्बल, वृद्ध और बालकोंको मृदु विरेचन देना चाहिये। {

औषधियोंके अतिरिक्त मोटे आटे या भूसी मिले आटेकी रोटी, शहद गुड़, फल (अंगूर, किशमिश पपीता, अंजीर आदि), शाक भाजी आदि पदार्थ, व्यायाम और उष्ण जलपान आदि मल शुद्धिमें सहायक होते हैं।

जीर्ण मलावरोधके रोगीको विरेचन नहीं देना चाहिये। कुचिला, नागमल्ल, चन्द्रप्रभावटी आदि औषधियोंके सेवन द्वारा अन्त्रको सबल बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

वृक्कप्रदाह (Bright's Disease) के रोगीको बहुधा विरेचन औषधि बलवत् मेदोत्पादक कालादाना प्रयोजित होती है। इसके अतिरिक्त दुर्दम कोष्ठ बद्धतामें भी यह उपयोगी है।

वातरक्तके रोगीको विशेषत लवण विरेचन, कुटकी, मजीठ आदि हितकारक हैं।

यदि विरेचन औषधिके सेवनसे उबाक या कै होती हो, तो डाक्टरी नियमा नुसार गुदा द्वारा पिचकारी दी जाती है अथवा बस्ति कराई जाती है।

निसोथ—इसकी अरुण और श्याम दो जाति हैं। चरक संहिताकारने श्यामा त्रिवृत् कल्पमें अरुण निसोतको श्रेष्ठ विरेचन कहा है। टीकार चक्रदत्ताचार्य सुखविरेचनके हेतुसे इसे प्रधान कहते हैं। इसमें रस कषाय-मधुर, गुण रूक्ष, विपाक कटु और वीर्य उष्ण है यह कफ पित्तशामक तथा रौक्ष्य गुणके हेतुसे वातप्रकोपक है। सुकुमार शिशु वृद्ध और मृदु कोष्ठवालोंको दे सकते हैं।

काली निसोथ मोह कराती तथा तीक्ष्ण होनेसे हृदय और कण्ठको कुछ खींचती है, यह क्रूर कोष्ठवालोंको दी जाती है।

डाक्टरीमें इसे तीव्र विरेचन (Drastic purgative) कहा जाता है। इसके मूलमें टर्पेथिन (Turpethin) नामक राल ५ से १० प्रतिशत रही है। इसके अतिरिक्त वसा द्रव्य, उड्डयनशील तैल, शुभ्रभस्मिन, अंगसार, पीला रंग द्रव्य, क्षार और लोहद्रव्य आदि मिलते हैं।

यह लघु और बृहदन्त्र, दोनोंकी पुरःसरण क्रिया बढ़ाती है। अन्त्रमें क्षोभोत्पत्ति कराती है। जिससे अन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेंसे अधिक परिमाणमें रस स्राव होता है और पुनः शोषण नहीं हो सकता। इसी हेतुसे शौच पतला होता है। इसमें वातप्रकोप दोष है। इसलिये अन्त्रमें शूल चलता है। इसे कम करनेके लिये सोंठ, पीपल, सैंधानमक आदि शूलघ्न औषधि मिला देनी चाहिये।

पक्वज्वरमें मलावरोधको दूर करने, मात्राको शुद्ध करने तथा तापको कम करानेके लिये यह व्यवहृत होती है। एवं मस्तिष्कमें रक्त-दबाव बढ़ गया हो, तो उसे भी कम कराती है, यह पतला शौच लाती है, इस हेतुसे शोथ और जलोदर रोगमें भी सुकुमारोंके लिये उपयोगमें आती है।

इन्द्रायण—इसके फल और मूल, दोनोंका उपयोग होता है। फल अति विरेचन कराता है। फलोंको सुखा, बीजोंको निकालकर केवल गर्भका उपयोगमें लेना चाहिये।

फलमें रस तिक्त, गुण विरेचन, लघु, विपाक कटु और वीर्य उष्ण है। डाक्टरीमें इसे तीव्र विरेचक माना है। इसके वीर्यको डाक्टरोंमें कालोसिन्थिन (Colocynthin) संज्ञा दी है। कालोसिन्थिन रवाके रूपमें और उदासीन प्रति क्रियावाले द्रव्य रूपमें मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ गोंदमय द्रव्य मिलता है।

आयुर्वेद की दृष्टिसे यह कफनाशक और वातवर्धक है। इसमें पित्तस्राव करानेका गुण होनेसे यह विरेचन द्वारा पित्तको निकाल देता है। इस हेतुसे पित्तप्रकोपमें लाभ पहुँच जाता है।

डाक्टरी दृष्टिसे यह आमाशयमें भी क्षोभ कराता है। इस हेतुसे हल्लास उत्पन्न होती है। सामान्य मात्रामें आन्त्रकी ग्रन्थियोंको उत्तेजित करता है तथा पुरःसरण क्रिया बढ़ा देता है। फिर उदरमें वेदनासहित जल जैसे पतले शौच कराता है। यह असर मुख द्वारा अथवा त्वचा या रक्तमें अन्तःक्षेपण करने पर होता है।

बड़ी मात्रा होनेपर आमाशय और अन्त्रमें क्षोभके अतिरिक्त उसकी प्रतिफलित क्रिया द्वारा उदर और बस्तिगुदाके अवयवोंपर भी असर पहुँचाता है। इसी हेतुसे सगर्भा स्त्रीको इसका विरेचन देनेपर गर्भपात हो जाता है।

डाक्टरीमें यकृत्की विकृति होनेपर कम मात्राको पतला और पाचक मान देते हैं। प्रतिहारिणी शिराओंमें उत्पन्न रक्त संग्रहका शमन करनेके लिये इसे श्रेष्ठ औषधि मानी है। इस औषधिमें वेदना कराने का दोष है इस हेतुसे डाक्टरोंने मुसब्बर अथवा बेलाडोना (धतूरेकी जाति) मिला देते हैं।

यह अनेक बार जलोदर, शोथ और मस्तिष्क रक्त संग्रह पर भी व्यवहृत हुआ है, किन्तु इन रोगोंमें (डाक्टरी में) जालपिस्ता और पीलू अधिक प्रभावशाली माने गये हैं।

आयुर्वेदमें इन्द्रायणका उपयोग कामला रोगपर किया गया है। पित्ताशय या पित्तनलिकामें प्रतिबन्ध होनेपर अधिक पित्तस्राव द्वारा उसे दूर कर आन्त्रमार्गसे शमन करता है। कामलामें इसका मज्जा देनेपर मात्रमसे अनियम पीड़ा प्राप्त कराता है। जिससे रक्त शुद्ध हो जाता है।

शीतावृद्धि, कफ वृद्धि, अन्त्रमें मलसंग्रह और मद मंद ज्वर बार बार आ जाना आदि लक्षण होनेपर इसका अच्छा उपयोग होता है।

(१८) संशोधन।

चरक संहितामें संशोधनके ४ प्रकार कहे हैं। वमन, विरेचन, आस्थापन बस्ति और शिरोविरेचन। इनमेंसे विरेचनका विवेचन नं० १७ में किया है। मस्तिष्क शोधन नं० २० में तथा वमनका नं० २१ में किया जायगा। यहाँ केवल आस्थापन बस्तिका वर्णन करेंगे।

महर्षि आत्रेय कहते हैं कि, शाखागत, कोष्ठगत और मर्मस्थ रोग अर्थात् त्रिविध मार्गोंमें आश्रित रोग, जो देहके ऊर्ध्वभागगत हुए हों, सम्पूर्ण देहमें फैल गये हों या किसी अवयव विशेषमें आश्रित हो, उन सबका हेतु वायुसे सबल और कोई नहीं है। अष्टाङ्ग संग्रहकारने भी वायुको पित्त और कफ दोषोंका नेता कहा है।

यद्यपि पित्त और कफ प्रकोप भी रोगोत्पत्तिमें कारण होते हैं, तथापि वे पङ्गु हैं, वायु ही उनको इधर उधर फैलाकर रोगोंकी समाप्ति कराती है। इस तरह वायुके अति प्रवृद्ध होनेपर उसके शमनार्थ बस्तिके अतिरिक्त और कोई औषध नहीं है। कई चिकित्सक इसे आधी चिकित्सा मानते हैं और कई पूर्ण चिकित्सा।

बस्तिका प्रवेश नाभिस्थान, कमर, पार्श्व और कुक्षिमें होता है, वहां पहुँच कर पुरीष और संग्रहीत दोषोंको क्षुभित (मथित) कर स्वशक्तिसे देहमें व्याप्त होकर देहको स्निग्ध बना, मलको लेकर बिना कष्ट पहुँचाये बाहर आ जाती है।

बस्ति के तीन प्रकार हैं। १ आस्थापन (निरूह) २ अनुवासन स्नेह) और ३ उत्तर बस्ति। इनमें आस्थापन और अनुवासन बस्ति गुदामार्गसे तथा उत्तर बस्ति मूत्रमार्गसे मूत्राशय और गर्भाशयके शोधनार्थ दी जाती है। आस्थापन बस्ति जल और कषाय प्रधान होता है। शेष दोनों स्नेह प्रधान हैं।

आस्थापन बस्तिमें अन्त्रस्थ मलमूत्र आदि दोषों का शोधन करनेके लिये शोधन, दोषप्रकोपको शमन करने के लिये संशमन मेद-कफ, आदि को सुखाने के लिये लेखन, पाचन और शोधन कार्यके लिये यापन, आदि भेदसे अनेक प्रकार होते हैं।

भिन्न भिन्न व्याधियों के लिये भिन्न भिन्न औषधियों द्वारा तैयार की हुई बहुसंख्यक बस्ति प्रयोग प्राचीन संहिता ग्रन्थोंमें लिखे हैं और इस बस्तिकर्मकी अत्यधिक महिमा गाई गई है। जब अन्य औषधचिकित्सा असफल हो जाती है, तब उस समय भी बस्ति चिकित्सासे सफलता मिल सकती है। फिर भी वर्तमानमें इस बस्ति चिकित्सा का आश्रय कोई चिकित्सक क्वचित् ही लेते हैं। वैद्योंने इस ओर अति दुर्लक्ष्य किया है।

डाक्टरीमें जलबस्ति देते हैं। साबुन, एरण्ड तैल या ग्लिसरीन मिलाते हैं या केवल ग्लिसरीन या एरण्डतैल की बस्ति कराते हैं। यह भी अन्त्रशोधनमें उपकारक

होती है। यदि प्राचीन बस्ति विधि का उपयोग किया जाय, तो असाध्य कहकर छोड़ हुए अनेक व्याधि पीड़ितों को भी लाभ पहुँच सकता है।

आस्थापन बस्तिके मिश्रण, मात्रा अधिकारी आदिका वर्णन तथा कई बस्तिप्रकार चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथमखण्ड के पृष्ठ ७८ से ८४ में लिख दिये हैं। इस आस्थापन बस्तिमें सब रसोंका उपयोग होता है। मात्रा भेदसे उनके मिश्रण असंख्य हो सकते हैं। इनके भीतर उपयोगमें आनेवाले द्रव्य भी अत्यधिक हैं, अतः उनका विभाग चरक संहिताकारने रस भेद के अनुसार प्रकार के नीचे लिखे आस्थापनस्कंधो में किया है।

१ मधुरस्कन्ध, २ अम्लस्कन्ध, ३ लवणस्कन्ध, ४ कटुस्कन्ध, ५. तिक्त स्कन्ध, ६ कषायस्कन्ध,

उक्तस्कन्ध प्रायः अधिक द्रव्य मिश्रित होने से अनेक रसोंवाले हो हैं। अतः उनमें जो रसप्रधान हो, उसे उस रसप्रधान स्कन्ध में कहेंगे। जैसे मधुरस, प्रायः मधुर रस, मधुरविपाक और मधुर प्रभाव वाले द्रव्यों को मधुरस्कन्धमें कहा जायगा। इस तरह अन्य रसों के लिये समझ लेवें।

मधुर स्कन्ध—जीवक, ऋषभक, जीवन्ती वीरा (महाशतावरी), भुँई आंवला, काकोली, क्षीरकाकोली, भीरु (शतावरी भेद), मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, असनपर्णी (अपराजिता), मधुपर्णी (विकंकत-कंटाई), मेदा, महामेदा, काकड़ा सिंगी, सिंघाड़ा गिलोय, छत्रा (तालमखाना), अतिछत्रा (लाल तालमखाना), मावपर्णी (सफेद मुसली), महामाषपर्णी (लाल मुसली), अलम्बुषा (महा श्रावणीका विशेषण है या मुसली भेद), सहदेवी, नागबला, शक्कर, सफेद निसोत, भारंगी, कंघिया (अतिबला), विदारीकंद, क्षीरविदारी, क्षुद्रसहा (गुलाबके फूल), महासहा (महाबला), ऋष्यगन्धा (पलाभेद या विधारा), अश्वगन्धा, पयस्या (अर्कपुष्पी) सफेद पुनर्नवा लाल पुनर्नवा, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, एरण्ड, मोरट (मूर्वा), गोखरू बरगद, शतावरी, सौंफ, मधुकपुष्पी, (मुलहठी भेद), मुलहठी, मधूलिका (द्राक्षा), खिरनी, खजूर, फालसा, बेंत, कमलके बीज, कसेरू, बड़े कसेरू, चिरौंजी, जलक (निमघोपे फल), गम्भारी, गोवषाक्षी, (नील अपराजिता), तालमखाना, गन्ना, नागरमोथा, ईख, इक्षुवालिका (ईख भेद), दर्भ, कुश, कास, शालिकी जड़, गुंद्रा (गोंदनी-गोंदर), इत्कट (एक प्रकारका तृण), सरकण्डेकी जड़, राजक्षवक (राजतरणी), ऋष्यप्रोक्ता (बलाभेद), द्वारदा (शाकजन्य-गुग्गुल), भारद्वाजी (वनकपास, वन मधुरी (वन काकड़ी), अभीरुपत्री (शतावरी भेद), हंसपाद, काकनासिका, कोकिलाक्षी, ... (उन्मादा), क्षीरवल्ली (क्षीर विदारी भेद) कपोतवल्ली (छोटी इलायची), (सोमलता) गोपवल्ली (अनन्तमूल), मधुवल्ली (मुलहठी भेद)

आदि। इन मधुर स्कन्ध और अन्य मधुर वर्गकी ओषधियों मेंसे, जो छेदन या टुकड़े करने योग्य हों, उनके छोटे छोटे टुकड़े करें। भेदनयोग्य हों, उनका सूक्ष्म भेदन कर के स्वच्छ जलसे धो लेवें। फिर धोई हुई हांडी में (या कलईदार बर्तन में) डाल, आधे जलमिश्रित दूध (ओषधिसे आठ गुने) से सींचकर मन्द अग्नि पर सिद्ध करें और कलछी से सतत चलाते रहें। जब चतुर्थांश जल शेष रहे, दूध न जले और ओषधियोंका सत्व दूध-जलमें मिल जाय तब हांडीको नीचे उतारकर थालीमें उड़ेल देवें और उसकी उष्णता कम होने पर छान लेवें। फिर घी, तेल मज्जा, लवण, फाणित (ईक्षु रसकी राब) यथाविधि मिलाकर किञ्चित् निवाये द्रवकी वस्ति वात विकारवाले को देवें। यदि पित्त विकारवालेको देनी हो तो शहद-घी मिलाकर शीतल द्रवकी वस्ति देवें यह वस्ति शास्त्रविधि अनुसार देनी चाहिये।

यद्यपि पित्तमें विरेचनको प्रशस्त कहा गया है, तथापि यहां पर जो वस्ति-विधान किया है, वह पक्वाशयगत पित्त या कफपित्त (आम मिश्रित पित्त) को मलके साथ बाहर निकालनेके लिये है।

अम्ल स्कन्ध—कच्चे आम, अम्बाड़ा, लकुच (बड़हर), करौंदा, वृक्षाम्ल (कोकम), अम्लवेतस, झड़-बेर, बेर, अनारदाने, बिजौरा, गण्डीर (लहाशाक), आंवला, नन्दीतक (कर्पूरनन्दी-पानी आंवला), शीतक (लकुच भेद), इमली, दन्तशठ (जम्बीर), ऐरावत (संतरा), कोशाम्र (जंगली छोटे आम) और वामन के फल। अम्बाड़ा, अश्मन्तक (कोविदार या चूका) और चांगेरीके पान, चारों प्रकारकी इमलीके पत्ते, दोनों प्रकारके बेरके कच्चे या शुष्क पान, जंगली और ग्राम्य दोनों प्रकारकी इमलीके पान। आसव द्रव्य तथा सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, मदिरा, मधु (मुनक्काकी शराब), सीधु, सिरका, दही, दही का तोड़, छाछ, कांजी आदि, ये और इसी प्रकार अन्य अम्लवर्गकी ओषधियां जो छेदनयोग्य हों, उनका छेदन कर और भेदन योग्य हों उनका भेदन करें। फिर स्थिर द्रव्योंको सुरा आदि द्रवों से भिगोकर सिद्ध करें। पश्चात् छान कर यथा विधि तैल, वसा, मज्जा, मज्जा, लवण और फाणित मिलाकर वातरोगी को विधिवत् निवायी वस्ति देवें।

लवणस्कन्ध—सैंधव, सौंचल, कालानमक, बिड़नमक, पाक्य (खारा), अनूप (आनूप देशमें तैयार किया हुआ लवण), कूप्य (तलावमें तैयार किया खार) वालुक (बालुकासे तैयार किया हुआ), ऐल (लूणार क्षार), मौलिक (समुद्र किनारे जमा हुआ लवण), समुद्रनमक, रोमक (सांभर लवण), उद्भिद और औषर (ये दोनों ऊपर भूमिसे तैयार होते हैं), पाटेयक (सज्जीखार), पांशु (ऊपर भूमिका खार), इन सब लवणोंको तथा लवण वर्गके अन्य द्रव्योंको कांजी आदि अम्ल द्रव या निवाये जलमें मिला, विधिवत् तैल आदि मिश्रित कर वातरोगीको निवायी वस्ति देवें।

कटुस्कन्ध—पिप्पली, पिप्पलीमूल, गजपीपल, चव्य, चित्रक सोंठ, काली-मिर्च, अजमोद, अदरक, वायविडङ्ग, नेपाली धनिया, पीलू-फल, तेजोवती (तेजबल), छोटी इलायची, कुठमाठा, भिलावे की गिरी (गाजरभी), हींग, किलिम (सरल देवदारु), मूली, सरसों, लहसुन, करंज, जंगली सुहिंजना, बाग का सुहिंजना (मीठा), खरपुष्पा (मरुवा), भूस्तृण (रोहिस घास), सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्जक, गण्डीर, कालमालक, पर्णास, क्षवक, फणिज्झक, (सुमुख से फणिज्झक तक ये * तुलसी के भेद हैं), क्षार, मूत्र, पित्त तथा इस प्रकार के द्रव्य, जो कटुवर्ग के हों, उनमें से टुकड़े करने योग्य के टुकड़े और चूर्ण योग्य का चूर्ण करे फिर उसे गोमूत्र में सिद्ध कर स्वच्छ वस्त्र से छान लेवें पश्चात् शहद, तैल, लवण आदि यथाविधि मिलाकर कफ पीड़ित को निरूहण बस्ति देवें।

तिक्तस्कन्ध—चन्दन, नलद (उशीर भेद) कृतमाल (कर्णिकार-स्वर्ण अमलतास), नक्तमाल (बृहत् करंज), नीम, तुम्बरु (नेपाली धनिया), कुटज, हलदी, दारुहल्दी नागरमोथा, मूर्वा, चिरायता, कुटकी, अपामार्ग, करेली, करीर, करवीर (कनेर), केबुक (कड़ूँ), कठिल्लक (पुनर्नवा), अडूसा, मण्डूकपर्णी, ककोड़ा, बैंगन, कर्कश (कसौंदी), मकोय, काकगूलर, तुम्बी (कड़वी तोरी), अतिविषा, परवल के पान, कुलक (पटोलभेद), पाठा, गिलोय, बेंत, बेंत का अग्र भाग, विकङ्कत (कंटाई वृक्ष), मौलसरी, सोमवल्क (सफेद खैर), सनौना, चमेली, आक, अमलतास (अपची वल्ली) वच, तगर, अगर, नेत्रवाला और खस तथा तिक्तवर्ग के अन्य द्रव्यों में से टुकड़े करने योग्य के टुकड़े करें तथा भेदन करने योग्य द्रव्यों का भेदन करके धो डालें, फिर जल में मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें, पश्चात् छानकर यथाविधि शहद, तैल लवण आदि मिलाकर श्लेष्मा के रोगी को निरूही बस्ति देवें। यदि पित्तप्रधानों को बस्ति देनी हो तो भी शहद मिलाई हुई शीतल बस्ति देनी चाहिये।

कषायस्कन्ध—प्रियङ्गु, अनन्तमूल आमकी गुठली, पाठा, मजीठ (शरलू), लोध, मोचरस मजीठ, धाय के पुष्प, पद्म (श्वेतकमल अथवा उत्तम पद्म अर्थात् कमल), कमल केसर, जामुन, आम पिलखन वट का वृक्ष कपीतन (पारसपीपल), गूलर, पीपल भिलावा, अश्मन्तक (कचनार या पाषाणभेद) सिरस, शाल्मल असफेद खैर, तेन्दू, पियाल (चिरौंजी का वृक्ष), बेर, खैर, सप्तपर्ण, अश्वकर्ण (शालभेद), तिनिश, अर्जुन, असन, सुगन्धवाला (हिंगु), एलवालुक (सुगन्धवाला द्रव्य), परिपेलव (केवटी मोथा), कदम्ब, शल्लकी (शालभेद), जिंगिनी (कृष्ण शाल्मली), काश कसेरू, बड़े पसेरू, कट्फल, बाँस, पद्माख अशोक, धानक, शाल का वृक्ष, मौलसरी, वनतुलसी, शमी, माषी (जटामांसीभेद), गन्ध (खीना-सर्जभेद), तुंग (पुन्नाग) अश्वकर्ण (शालभेद) अग्निमन्थ (पीतसार),

स्नुहक (सेंदू मेंड) बहेड़ा, कुम्भीक (पाटलाभेद), पुष्करबीज (कमलगट्टे), कमल की जड़, कमलनाल, ताड़के कच्चे फल, खजूरके कच्चे फल, इनके और इसी प्रकारके कषायवर्गके अन्य द्रव्योंमें से टुकड़े करने योग्य हों उनके टुकड़े करें, छाल निकालने योग्य हों, उनकी छाल निकालें फिर जलसे घी, जल मिलाकर मंदाग्नि पर सिद्ध करें। पश्चात् छान शहद, तैल लवण आदि मिला कफ पीड़ितको विधिवत् नियायो बस्ति देवें। पित्त विकारवालाको बस्ति देनी हो तो घृत मधु मिलाकर शीतल बस्ति देनी चाहिये।

उक्त ६ स्कन्धों परसे रोगानुरूप विचार करके आस्थापन बस्तिकी योजना करनी चाहिये। उक्त रसोंके गुण और फल का विस्तारसे विवेचन पहिले रसविवेचनमें किया गया है।

इस आस्थापन बस्तिमें गुणवर्द्धक सहायक औषधियां कितनी ही हैं, जिनके मिला देने पर तुरन्त प्रभाव प्रतीत होता है। उन औषधियों की कुछ यादी चरक-संहितामें निम्नानुसार आस्थापनोपग नामसे दी है।

आस्थापनोपग—निसोत, बेल, पीपल, कूठ, सरसों, वच, इन्द्रजौ, सोया, मुलहठी और मैनफल, ये १० औषधियां आस्थापन क्रियामें सहायक हैं।

(१९) बृंहण।

नुट्रिशियसिस Nutritiouses

बृहत्त्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम्।
गुरुशीतमृदुस्निग्धं बहलं स्थूल पिच्छिलम्।
प्रायो मन्दं स्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं बृंहणमुच्यते॥

जो द्रव्य शरीरमें मोटापन ला देता है (स्थूल बना देता है), वह बृंहण कहाता है। जो द्रव्य गुरु शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल (गाढापन), स्थूल (संहत अवयव युक्त), पिच्छिल, मंद (चिरकारी), स्थिर और श्लक्ष्ण गुणयुक्त हो, वह प्राय बृंहण होता है। प्रायः कहनेका तात्पर्य यह है कि, कोई कोई श्यामाक आदि शीतल द्रव्य लंघन भी होते हैं।

बृंहण द्रव्य पृथ्वीअंश भूयिष्ठ और कफधातुवर्धक होते हैं। मधुर रसप्रधान अनेक द्रव्य बृंहण होते हैं। रस रक्त आदि धातुओंको पोषक (Nutritious) आहार आवश्यकता अनुरूप मिलते रहनेपर सब धातुओंकी वृद्धि होकर देह मोटी हो जाती है। इन धातुओंमें मांसकी वृद्धि और पुष्टि यथोचित हो, तो बृंहण गुण दीर्घ कालपर्यन्त टिक जाता है। मांस वर्द्धक दृष्टिसे श्री वाग्भट्टाचार्यजी लिखते हैं कि —

न हि मांससमं किञ्चिदन्यद्देहबृंहणकृत्।
मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशेषतः ॥

मांसके समान देहको बृंहण करनेवाला कोई भी द्रव्य नहीं है। मांसके पुष्ट होनेपर देह और देहकी अन्य धातुएँ भी पुष्ट बन जाती है।

महर्षि आत्रेय भी कहते हैं कि 'प्रीणनः सर्वधातूनां हृद्यो मांसरसः परम्' मांसरस संपूर्ण धातुओंकी न्यूनताको पूरा करता है। यह हृदयके लिये हितकर है। व्याधियोंसे आई हुई शुष्कता, कृशता और वीर्य क्षीणताको दूर करता है बल और सत्त्वको बढ़ाता है, बुद्धि, इन्द्रिय और आयुमें वृद्धि करता है।

इनके अतिरिक्त पौष्टिकपूर्ण पथ्य आहार, नियमित दिनचर्या, तैलाभ्यंग, चिन्ताका अभाव, शुद्ध वायुका सेवन, आवश्यक श्रम, प्रकृतिके अनुकूल जलवायुमें निवास आदि कारण भी देहको बृंहण करनेमें सहायक होते हैं।

बृंहण चिकित्साके अधिकारी—व्याधि, औषधिसेवन, मद्यपान, स्त्रीसेवन, चिन्ता, भार-वहन, प्रवास और उरःक्षतसे क्षीण हुए व्यक्ति, रूक्ष, अशक्त, वात प्रकृतिवाले, सगर्भा, प्रसूता, बालक और वृद्ध, ये सब बृंहण चिकित्साके अधिकारी हैं। इनके अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतुमें प्रायः सब रोगियोंकी चिकित्सा बृंहणकी जाती है।

कदाच इन अधिकारियोंमेंसे किसीको लंघनसाध्य ज्वर आदि रोग हो जाय, तो उस समय मृदु लंघन चिकित्सा करनी चाहिये।

बृंहणीय कषाय—चरक संहिता कथित कषायमें क्षीरिणी (सिरनी या क्षीरविदारी), राजक्षवक (दूधी), बला (खरैंटी), काकोली, क्षीरकाकोली, वाट्यायनी, (सफेद फूलवाली खरैंटी), भद्रौदनी (पीले फूलकी खरैंटी) भारद्वाजी (वनकपासके कच्चे फल), विदारीकंद और विषाण, ये १० औषधियाँ बृंहण कही हैं।

काकोल्यादि गण—सुश्रुत संहिताकथित काकोली आदि १८ औषधियाँ बृंहण हैं। इसका वर्णन पहिले पित्त संशमन रूपसे किया है।

और बृंहण औषधियाँ सुवर्ण, लोह, सुवर्णमाक्षिक, अभ्रक, शिलाजीत मुक्ता, प्रवाल, अश्वगन्ध, मिश्री, दूध, घृत, मधुर और स्निग्ध औषधियाँ तथा अनुवासन बस्ति आदि।

फलोंमें आम, आमलक, नारियल, केला, खजूर, फनस, फालसा, द्राक्षा, गंभारीफल, खिरनी, महुआ, दूध मधुर बेर, बेलफल, गुलरफल, सिंघाड़ा, बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा, चिरौंजी, उदमाद (तैलप्रधान मधुर फल), चिरौंजी, काजू आदिमें न्यूनाधिक अंशमें बृंहण गुण अवस्थित है।

अनुवासन बस्ति—यह स्नेह प्रधान है। स्नेहमें घी, तैल, वसा और मज्जा, ये ४ हैं। इनमें तैल मुख्य है। तीनोंमें भी तिलतैल प्रधान है। वात और

कफप्रकोपके रोगियोंके लिये तैल, वसा मज्जा और घी इन चारोंमें यथापूर्व श्रेष्ठ हैं अर्थात् सबसे तैल श्रेष्ठ है, किन्तु पित्तविकारोंमें यथोत्तर श्रेष्ठ हैं अर्थात् सबसे घीको विशेष हितावह माना है।

अनुवासन बस्तिका उपयोग—

देहे निरूहेण विशुद्धमार्गे सस्नेह वर्णोबलप्रद च।
न तैलदानात् परमस्ति किञ्चिद् द्रव्यं विशेषेण समीरणार्ते॥

निरूह बस्ति द्वारा मार्गकी सम्यक् शुद्धि हो जाने अर्थात् अनुवासन बस्तिका प्रयोग करनेपर वर्ण और बलकी वृद्धि होती है। वात-पीड़ितोंके लिये बहुधा इस बस्तिसे श्रेष्ठ कोई उपाय नहीं है।

देहमें तैलका शोषण हो जानेसे कृशता, रूक्षता, लघुता और शीतलताका नाश होता है। मनकी प्रसन्नता तथा बल, वीर्य वर्ण और अग्निकी पुष्टि होती है। फिर आगे लिखते हैं कि—

मूले निषिक्ते हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमल पल्लवाग्रः।
काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवासनेन॥

जिस तरह मूलमें जलका सिंचन करनेसे वृक्ष, कोमल हरे पत्तोंवाला (हरा भरा) बन जाता है, शाखा नयी नयी फूटती जाती हैं और कुछ समयमें वृक्ष बड़ा होकर फूलों और फलोंसे सुशोभित मालूम देता है, उसी तरह अनुवासन बस्तिका योग्य सेवन करनेपर मनुष्य भी कुछ समयमें देहसे मोटा, सुदृढ़, अनेक संतान युक्त यशस्वी और कीर्तिमान हो जाता है।

अनुवासन बस्ति कितनी देना, इस विषयमें मतभेद है। सामान्यतः देह पुष्ट हो और सहन हो सके उतनी देनी चाहिये। अनुवासन बस्तिके अधिकारी, समय, अनधिकारी बस्ति मर्यादा, अपथ्य आदिका विचार चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड के पृष्ठ ६९ से ८६ के भीतर किया गया है।

अनुवासनोपग—अनुवासन बस्तिमें सहायता देनेवाली औषधियां—रास्ना, देवदारु, बिल्व, मैनफल, सोया, श्वेत पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, गोखरू, अरणी और श्योनाक, ये १० कही गई हैं।

(२०) शिरोविरेचन।

मस्तिष्कशोधन-एर्हिन्स-स्टर्नुटेटोरिस।

Errhines-Sternutatories.

नस्य करने पर मस्तिष्कके दोष को नाकसे गिरानेवाली औषधियां। [इनमें अनेक औषधियां छींके लाती हैं और कितनी ही नहीं लाती। छींके न लानेवाली

अनेक उग्र औषधियां सूंघने मात्रसे नासिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाहकी उत्पत्ति करता है, फिर यहां से रसस्राव होने लगता है।

शिरोविरेचनोपग—मालकांगनी, नकछिकनी, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, सहजने के बीज, सरसों, अपामार्ग के बीज, श्वेत अपराजिता, (गोकर्णी) और कृष्ण अपराजिता, ये १० औषधियें चरकसंहिताकार ने नस्य कर्मके लिये उपयोगी लिखी हैं।

अष्टाङ्ग हृदयकार लिखित शिरोविरेचन—वायविडङ्ग, अपामार्ग के बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, सुराहा (भेड़ सजरस), सिरसके बीज, बड़ी कटेलीके पत्र, तुलसीके बीज, महुएके फूलका रस, सैंधानमक, ग्लोठ, छोटी इलायची बड़ी इलायची और काला जीरा।

इनके अतिरिक्त छींके लानवाली तमाखू, कायफल, लोबान, बकुल, मैनसल, बच, सिरस, सरसों का तैल, घृत, शिक्कु, कुलिंजन, इलायची, द्रोणपुष्पी, कूठ, इन्द्रयवी, अर्क-दुग्ध-मिश्रित भस्म आदि औषधियां।

श्लैष्मिक कलामें उग्रता उत्पादक—नौसादर चूनेका मिश्रण, सिरकेकी बाष्प, सदाल (देवदाली), नीलगिरी-तैल पीपरमेण्ट्स तैल, मिर्च आदि।

इस प्रकार की औषधियों का नस्य रूप से उपयोग करने से मस्तिष्कसे संचित दोष बाहर निकल जाता है। इस वर्गकी औषधियोंसे रक्त-भार की वृद्धि होती और मस्तिष्कस्थ शिरासमूह परम्परागत प्रसारित होकर मस्तिष्कमें उत्तेजना उपस्थित होती है।

शिरोविरेचन के लिये जो नस्य औषधियां प्रयोजित होती हैं, उनके बृंहण, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड और प्रधमन, ये ५ भेद हैं। इन सबकी विधि, अधिकारी, फल, नस्यके पश्चात् कर्तव्य, अपथ्य आदि का विस्तृत विवेचन 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ८९ से ९४ तक किया गया है।

शिरोविरेचन हेतु—

(१) नासारन्ध्रकी श्लैष्मिक कला शोथ होने पर उसे प्रसारित करना और प्राणशक्तिका ह्रास होने पर उसे उत्तेजित करना।

(२) अधिक श्लेष्मा निःसरण द्वारा दोहन (आकर्षण) और स्थानिक यातायात नाड़ियोंको उत्तेजना द्वारा प्रत्युत्ता साधन करके शिरदर्द, शिरका भारीपन, नेत्ररोग, कर्णरोग कर्णमध्यवे रोग (यूस्टेकियन ट्यूबेर Fustachian Tuber) आदि पर लाभ पहुँचता है।

(३) प्रथम नेत्रगत कालमें प्रवत् पथमें कोई व्यापाउ न हो, तो सन्धान या भ्रूण को बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाती है।

(४) नासारन्ध्रस्थ वातनाड़ियोंकी उत्तेजना मस्तिष्कमें जाती है, फिर तत्काल वक्ष, ग्रीवा और मुखकी मांसपेशियोंमें प्रत्यावर्तन होकर उनकी एक कालीन क्रिया द्वारा छींक उत्पन्न होती है। उसी समय समग्र वात-महा-मण्डल उत्तेजित हो जाता है इस हेतु से मूर्च्छावस्था (बेहोशी) में प्रयोग करने पर चेतना आ जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका या श्वासनलिकामें किसी द्रव्यका प्रवेश हुआ हो, तो वह निकल जाता है। मस्तिष्कमें भारीपन रहता हो तो मस्तिष्कमेंसे दूषित मलका स्राव होकर वह शमन हो जाता है। फिर स्मरण-शक्तिको भी लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—श्वासमार्ग या फुफ्फुसमेंसे रक्तस्राव, मूर्च्छा, रक्तवाहिनियोंकी दीवार-की अपक्रांति (Atheroma), अन्त्रावतरण या गर्भाशय निर्गमन आदि विकारसे पीड़ित या उनके अनुकूल प्रकृतिवालों को नस्य करानेको औषधि नहीं देनी चाहिये।

(२१) वमन।

वान्तिकर-इमेटिक्स—Emetics

अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत् यत्।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा॥

जो द्रव्य अपक्व केवल पित्त अथवा केवल कफको या दोनों को (अपक्व अन्नको और आमाशयमें विष हो तो, विषको भी) बलात्कारसे ऊपर उछालकर मुख द्वारा बाहर निकाल देवे, उसे वमन कहते हैं। जैसे मैनफल।

यद्यपि आचार्योंने कफ शोधनार्थ वमन तथा पित्तनिर्हरणार्थ विरेचन कहा है, तथापि आमाशयस्थ विकृत उग्र अपक्व पित्तका निर्हरण वमनसे कराना विशेष हित-वह माना गया है। इसी हेतुसे अम्लपित्त चिकित्साके प्रारम्भमें वमन द्वारा शोधन करनेकी आज्ञा दी गई है।

इस सम्बन्धमें श्रीवाग्भट्टाचार्यजी कहते हैं—

अपक्वे वमनं दोषान् पच्यमाने विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनस्याऽस्य पाकं न प्रति पालयेत्॥

अपक्व दोषों को दूर करनेके लिये वमन और पच्यमान दोषोंके लिये विरेचन व्यवहृत होता है।

वमनोपग—चरक संहिताकारने वमन करानेमें सहायक औषधियाँ—शहद, मुलहठी, लाल कचनार, सफेद कचनार, कदम्ब, जलबेंत, बिम्बी (कन्दुरी), शणपुष्पी, आक, अपामार्ग आदि कही हैं।

चरक संहिता कथित वमन औषधियाँ—मैनफल, मुलहठी, नीम, देव-दाली, कड़वी तुरई, पीपल, कुड़े की छाल, कडुवी तुम्बी, छोटी इलायची, घिया तुरई

अनेक उग्र औषधियाँ सूँघने मात्रसे नासिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाहकी उत्पत्ति करती हैं फिर वहां से रसस्राव होने लगता है।

शिरोविरेचनोपग—मालकांगनी, नकछिकनी, कालीमिर्च, पीपल, वायविडंग, सहजने के बीज, सरसों, अपामार्ग के बीज, श्वेत अपराजिता, (गोकर्णी) और कृष्ण अपराजिता, ये १० औषधियां चरकसंहिताकार ने नस्य कर्मके लिये उपयोगी लिखी हैं।

अष्टाङ्ग हृदयकार लिखित शिरोविरेचन—नागकेसर, अपामार्ग के बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, गुग्गुल (भेड़ सर्जरस), शिरसके बीज, बड़ी कटेलीके फल, सुहिजनेके बीज, महुएके फूलका रस, सैंधानमक, रसोत, छोटी इलायची बड़ी इलायची और काला जीरा।

इनके अतिरिक्त छींके लानेवाली तमाखू, कायफल, लोबान, नकछिकनी, मैनफल, वच, शिरस, सरसों का तैल, धूप, मिर्च, कुलिंजन, इलायची, द्रोणपुष्पी, कूठ, इन्द्रजौ, अर्क-दुग्ध-मिश्रित भस्म आदि औषधियां।

श्लैष्मिक कलामें उष्णता उत्पादक—नौसादर चूनेका मिश्रण, सिरकेकी वाष्प, मंदार (देवदारी), नीलगिरी-तैल पीपरमेण्टका तैल, मिर्च आदि।

इस प्रकार की औषधियों का नस्य रूप से उपयोग करने से मस्तिष्कमें सञ्चित दोष बाहर निकल जाता है। इस मार्गसे औषधियोंसे रक्त-भार की वृद्धि होती और मस्तिष्कस्थ शिरासमूह परम्परागत प्रसारित होकर मस्तिष्कमें उत्तेजना उपस्थित होती है।

शिरोविरेचन के लिये जो नस्य औषधियां प्रयोजित होती हैं, उनके बृंहण, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अवपीड और प्रधमन, ये ५ भेद हैं। इन सबकी विधि, अधिकारी, फल, नस्यके पश्चात् कर्तव्य, अपथ्य आदि का विस्तृत विवेचन 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ८९ से ९४ तक किया गया है।

शिरोविरेचन हेतु—

(१) नासारन्ध्रकी श्लैष्मिक कला नीरस होने पर उसे आर्द्र करना और भावशक्तिका ह्रास होने पर उसे उत्तेजित करना।

(२) अधिक श्लेष्मा निःसरण द्वारा शोधन (अपतर्पण) और स्थानिक वातवहा नाड़ियोंकी उत्तेजना द्वारा प्रत्युप्रता साधन करके शिरदर्द, हिक्का, नेत्ररोग, कर्णरोग कर्ण-पथमें शोथ (यूस्टेकियन ट्यूबेर Eustachian Tuber) आदि पर काम पहुँचता है।

(३) प्रसव नेदना कालमें प्रसव पथमें कोई व्याघात न हो, तो सन्तान या भ्रूण को बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाती है।

(४) नासारन्ध्रस्थ भावनाड़ियोंकी उत्तेजना मस्तिष्कमें जाती है, फिर तत्काल वक्ष, ग्रीवा और मुखकी मांसपेशियोंमें प्रत्यावर्तन होकर उसकी एक कालीन क्रिया द्वारा छींक उत्पन्न होती है। उसी समय समग्र वात-वहा-मण्डल उत्तेजित हो जाता है इस हेतु से मूर्च्छावस्था (बेहोशी) में प्रयोग करने पर चेतना आ जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका या श्वासनलिकामें किसी द्रव्यका प्रवेश हुआ हो, तो वह निकल जाता है। मस्तिष्कमें भारीपन रहता हो तो मस्तिष्कमेंसे दूषित मलका स्राव होकर वह शमन हो जाता है। फिर स्मरण-शक्तिको भी लाभ पहुँच जाता है।

सूचना—श्वासमार्ग या फुफ्फुसमेंसे रक्तस्राव, मूर्च्छा, रक्त-वाहिनियोंकी दीवार की अपक्रांति (Atheroma), अन्त्रावतरण या गर्भाशय निर्गमन आदि विकारसे पीड़ित या उनके अनुकूल प्रकृतिवालों को नस्य करानेकी औषधि नहीं देनी चाहिये।

(२१) वमन।

वान्तिकर-इमेटिक्स—Emetics

अपक्वपित्तश्लेष्माणो बलादूर्ध्वं नयेत् यत्।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा॥

जो द्रव्य अपक्व केवल पित्त अथवा केवल कफको या दोनों को (अपक्व अन्नको और आमाशयमें विष हो तो, विषको भी) बलात्कारसे ऊपर उछालकर मुख द्वारा बाहर निकाल देवे, उसे वमन कहते हैं। जैसे मैनफल।

यद्यपि आचार्योंने कफ शोधनार्थ वमन तथा पित्तनिर्हरणार्थ विरेचन कहा है, तथापि आमाशयस्थ विकृत उग्र अपक्व पित्तका निर्हरण वमनसे कराना विशेष हितावह माना गया है। इसी हेतुसे अम्लपित्त चिकित्साके प्रारम्भमें वमन द्वारा शोधन करनेकी आज्ञा-दी गई है।

इस सम्बन्धमें श्रीवाग्भट्टाचार्यजी कहते हैं —

अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम्।
निर्हरेद्वमनस्याऽत्र पाकं न प्रति पालयेत्॥

अपक्व दोषों को दूर करनेके लिये वमन और पच्यमान दोषोंके लिये विरेचन व्यवहृत होता है।

वमनोपग—चरक संहिताकारने वमन करानेमें सहायक औषधियाँ—शहद, मुलहठी, लाल कचनार, सफेद कचनार, कदम्ब, अमलबेंत, बिम्बी (कन्दुरी), त्रायपुष्पी, आक, अपामार्ग आदि कही हैं।

चरक संहिता कथित वमन औषधियाँ—मैनफल, मुलहठी, नीम, देवदाली, कड़वी तुरई, पीपल, कुड़े की छाल, कड़वी तुम्बी, छोटी इलायची, मिया तुरई

इत्यादि औषधियाँ आमाशयगत श्लेष्म पित्तविकार उपस्थित होने पर देह को कष्ट न पहुंचे उस रीति से वमन कराती हैं।

विमान स्थानमें लिखि हुई औषधियाँ—मदनफल, देवदाली, कडुयी तुम्बी, पीतपुष्पा कोशातकी, इन्द्रजौ, कडुवी तुरई इन सबके फल। इनमें मैनफल, देवदाली, कडुयी तुम्बी और कडुवी तुरईके पत्ते और फूल भी। अमलतास, इलक (मीठे इन्द्रयव), मैनफल, स्वादुकण्टक (छोटे गोखरू), पाठा पाढल, गुञ्जा (मतान्तरमें कौआठोडी), मूर्वा, सतौना, करंजद्वय, नीम, परवल कडुवा, करेला, गिलोय, सोमवल्क (सफेद खैर), चित्रक (सफेद एरण्डकी जड़), द्रोणि (छोटी कटेली), सुरङ्गनेकी जड़, इनके कषायोंसे मुलहठी (मतान्तरमें शहद), महुआ, सफेद कचनार, कबुदार (लाल कचनार), नीप (कदम्ब), अम्लवेत, बिम्बी (कंदूरी), शणपुष्पी, सदापुष्पी (लाल आक), प्रत्यक्पुष्पी (औंधा-फूली, मतान्तरमें अपामार्ग) इनके कषायसे। छोटी इलायची, रेणुका, प्रियंगु, बड़ी इलायची, नेपाली धनिया, तगर नलद (जटामांसी), उशीर, तालीसपत्र, तज, गोपी (सारिवा), इनके कषायोंसे। ईख, कासेक्षु (ईखभेद), इक्षुवालिका (ईखभेद), दर्भ, पोटगल (नल), कालंकृत (कसौंदी), इनके कषायोंसे। सुमना (चमेली), आविन्नो हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत पुनर्नवा, महासहा (मासपर्णी), क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी), इनके कषायोंसे। शाल्मली (सेमल), शाल्मलक (रोहितक), भद्रपर्णी (गम्भारी या प्रसारणी), एलापर्णी (रास्ना), पोई शाक, उद्दालक (वनकोदों), धामन, सिरनी, उपचित्रा (उन्दरकानी-मूसाकानी), गोपी (सारिवा), शृंगाटिका (जीवन्ती), इनके कषायोंसे। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, सरसों, गुड़की राब, दूध, क्षार, नमक, इनके हिम या क्वाथोंसे। जो औषधियाँ मिल सकें उनसे इच्छानुरूप संस्कार कर वर्ति, चूर्ण, अवलेह घृत, कषाय, मांसरस, यवागू, यूष, काम्बलिक (कांजी विशेष) तथा दूध रूपमें प्रयोग किये जानेवाले मोदक, मोदक अथवा अन्य प्रकारके प्रयोग तैयार कर रोगीको विधिपूर्वक वमन देवें।

मदनफल आदि मुख्य वमन द्रव्योंको आरग्वध आदिके क्वाथके भावना देकर या पाक करके वर्ति आदि प्रयोग बना लेवें।

इनके अतिरिक्त इल्लीशुण्डी, कडुवी ककड़ी, राई, वच, पाठा, नीलाथोथा, गरम जल आदि औषधियों से भी वमन होती है।

वान्तिकर औषध सेवन करने पर कुछ समयके पश्चात् ग्लानि होने लगती है, मुखमण्डल रक्तहीन शरीर शीतल, प्रस्वेदसे भीगा हुआ, धमनीकी गति निस्तेज और चंचल, मुखमेंसे लालास्राव, मांसपेशियोंमें शिथिलता, दुर्बलता और अत्यन्त व्याकुलता आदि लक्षण होकर फिर वमन होती है। उस समय नाड़ी, अनियमित

श्वसन मुखमण्डल लाल हो जाना, मुख, कपाल और कण्ठ देशकी सब शिरायें शिथिल हो जाना, मस्तिष्कमें रक्तकी वृद्धि और भारीपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

फिर हार्दिक कपाटिका (Cardiac Sphincter) खुल जाती है और आमाशय प्रणिलिका प्रदेश (Pyloric Vestibule) बन्द बन जाता है। फिर आमाशयमें रहे हुए द्रव्य उदरपेशियों और महा प्राचीरा पेशीके समकालीन आकुंचन द्वारा बाहर आ जाते हैं। यदि पुनः पुनः वमन होती रहे, तो उदर गह्वरस्थ सब ग्रन्थियों पर अधिक दबाव पड़ता है। पश्चात् सब ग्रन्थियोंसे रसस्राव अधिक मात्रामें होता है और बाहर निकलता रहता है। एवं पित्ताशयका पित्त और अग्न्याशयका आग्नेय रस भी निर्गत होने लगता है।

वमन प्रकार—१. स्थानिक २ सार्वाङ्गिक।

जो स्थानिक कार्यकारी औषधियाँ हैं, वे प्रसनिका, अन्ननलिका और आमाशय पर कार्यकर अर्थात् प्राणदा नाड़ियों के सिरे पर क्षोभ उत्पन्न कराके वमन कराती हैं और सार्वाङ्गिक कार्यकारी औषधियोंकी मौलिक क्रिया सुषुम्ना (Medula) में अवस्थित वमन कराने वाले वातनाडी केन्द्रके अधीन है। जब वातवहा-नाड़ियाँ अथवा विविध स्थान—मस्तिष्क, नेत्र, नासिका, कण्ठ, अन्न-नलिका, फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, आन्त्र, पित्ताशय, वृक्क, उदर्याकला, गर्भाशय आदि पर औषध क्रिया होकर वातनाडियां द्वारा केन्द्राभिमुख प्रतिफलित होती है, तब केन्द्र स्थान उत्तेजित होता है। फिर वमन कराती हैं।

स्थानिक कार्यकारी—(अप्रत्यक्ष या प्रतिफलित क्रिया द्वारा कार्यकारी)—फिटकरी, नीलाथोथा नमक, नालुनाका गरम फांट, जंगली प्याज, वासा, अधिक परिमाणमें उष्ण जलपान, मैनफल और राई आदि। इन औषधियोंकी क्रिया अल्पसमय स्थायी होती है। बहुधा आमाशय शून्य होनेपर क्रिया निवृत्त हो जाती है। इन स्थानिक कार्यकारी औषधियोंसे अधिक क्षीणता नहीं आती अतः आवश्यकता पर उचित मात्रामें निर्भयतापूर्वक दी जा सकती है। जितना इन सबमें नमक मिश्रित निवाया जलपान विशेष सौम्य है। उकडू बैठाकर हो सके उतना अधिक परिमाणमें जलपान करनेसे तत्काल बिना त्रास के हो जाती है।

सार्वाङ्गिक कार्यकारी—(प्रत्यक्ष कार्यकारी) रक्त संचालनमें मिश्र होनेसे वमन केन्द्र उत्तेजित होनेपर कार्य करनेवाली औषधियाँ—रीठा, सत्यानाशी बीजका तैल, हस्तिशुण्डी, वच, मन्दार, अर्क-मूल-त्वक्, तमाखू, अफीमक्षार (एपा-मोर्फाइन), हिपिकेक्युआना आदि। इस प्रकारकी औषधियोंसे अधिक काल-पर्यन्त वमन, उबाक, क्षीणता अङ्गोंमें शिथिलता और रक्त संचालनमें मन्दता होती है। तथा लाला, प्रस्वेद और कफ (श्वासनलिका और आमाशयमेंसे श्लेष्म) का स्राव अधिक होता है।

वमन प्रयोग हेतु—

१ आमाशयमें अपचन क्षोभ होनेपर भुक्तद्रव्य, पित्त, श्लेष्मा, सेन्द्रियविष, या इतर विष हो, उन सबको निकाल आमाशयको शून्य करना।

२ अन्न-नलिका या श्वासनलिकामें बाह्य पदार्थका प्रवेश हो जानेपर उसे बाहर निकालना।

३ धमनीकी पुष्टि और गतिका ह्रास कराना तथा मांसपेशियोंको शिथिल कराना।

४ कण्ठ और बृहद् श्वासनलिकामें श्लेष्मा संचित हो या कृत्रिम त्वचा वर्त्तमान हो, तो अति सूक्ष्म मात्रामें उसे बाहर निकालना।

५. पित्ताशयमेंसे पित्ताश्मरी और पित्तका नि:सरण करना।

६ रह रहकर आनेवाले विषम ज्वर-नाशक औषधिके गुणमें वृद्धि कराना।

७ विरेचन-जन्य शौच बन्द न होनेपर उसे बन्द कराना।

८. आभ्यान्तरिक रक्तस्राव होनेपर रक्त संग्रहका निवारण कराना।

९ प्रसव वेदना होनेपर गर्भाशय ग्रीवाकी कठोरताका दूरीकरण।

१० स्वेदोत्पत्ति करा रक्तमें लीन विषको बाहर निकाल देना।

यदि आमाशयस्थ आहार द्रव्य पचन न हुआ हो वह परिवर्तित होकर अम्ल और उग्र रस युक्त हो गया हो, फिर मस्तिष्क आदि इतर यन्त्रोंमें वेदना उत्पन्न कराता हो, तो उसे वमनकारक औषधि देकर सत्वर बाहर निकाल देना चाहिये।

यदि आमाशय शूल और अपचन-जनित शिरदर्द हो रहा हो, उबाक आती हो तथा व्याकुलता प्रतीत होती हो तो थोड़ा नमक मिला हुआ निवाया जल लगभग १ २ पौंड या अधिक परिमाणमें पिलाकर वमन करा देना चाहिये। यदि जल कम पिलाया जाय, तो आमाशयके उत्तेजक पदार्थ द्रवीभूत होकर आम पहुँच जाता है परन्तु वमन नहीं होती।

सेवित विषको बाहर निकालनेके लिये नीलाथोथा, राई आदि औषधिको जलमें मिलाकर पिलाया जाता है। (केवल अफीमके विषमें वामक औषधि नहीं दी जाती; किन्तु स्टमक पम्प द्वारा विषको बाहर निकाल लिया जाता है) अनेक बार सर्पविष आदिमें आमाशयको शून्य करनेके लिए रीठा, नीलाथोथा, पीनेकी तेज तमाखू आदि औषधियाँ अत्यधिक मात्रामें प्रयोजित होती हैं।

क्षुद्र पित्ताश्मरी-जनित शूलमें पित्तस्राव अधिक करा पित्तनलिकामेंसे अश्मरीको निकाल देनेके लिये वामक औषधका सेवन कराया जाता है; परन्तु साथ-साथ वमन कालमें उदरस्थ मांसपेशियोंको और यकृत्को दबाते रहना चाहिये। इनको दबानेसे पित्तस्रावमें वृद्धि होकर अश्मरी और श्लेष्मा-जनित पित्त-मार्गावरोध दूर हो जाता है।

पित्त ज्वर, अम्लपित्त आदि रोगोंमें वमन करानेपर ज्वरोत्पादक विष, दूषित पित्त और हानिकर द्रव्य बाहर निकल जाता है।

कण्ठरोहिणी (Diphtheria) और स्वर-यन्त्रका आक्षेप-शालीय (Croup) इन रोगोंमें अधिक श्लेष्म स्राव होकर श्वासावरोध होनेपर वामक औषधिका सेवन कराया जाता है। स्वरयन्त्रकी विकृतिमें नीलाथोथा फिटकरी आदि तथा कण्ठरोहिणीमें मैनफल, इपिकाकुआना आदिका उपयोग होता है (कण्ठमें एरण्ड काकड़ीका दूध भी लगाया जाता है)।

सर्पविष, पागल कुत्ता आदि जीवोंका विष और जीर्ण उपद्रवयुक्त उपदंश व्याधियोंमें नीलाथोथा, रीठा, सरपानाथोंका तैल, पीनेकी तमाखू आदि औषधियाँ उपकार दर्शाती हैं।

सूचना—१ हृदय रोग, शिरोरोग, संन्यासके वशवर्ती, धमनी विस्तार या धमनीकी दीवारकी विकृति, तथा फुफ्फुस, आमाशय और गर्भाशय आदिसे रक्तस्रावके वशवर्ती आमाशय प्रदाह, अन्त्र-प्रदाह, उदर्याकला प्रदाह, पूर्ण गर्भावस्था और अति दुर्बल व्यक्तियोंको वामक औषधि नहीं देनी चाहिये।

२ यदि अन्त्रावतरण और गभाशय निर्गमन वालोंको वामक औषधि देनी हो, तो अति सम्हालपूर्वक देनी चाहिये।

३ सगर्भा स्त्रीको गर्भपात प्रवणता हो, तो वमनकारक औषधि नहीं देनी चाहिये।

४ उष्ण जलका सेवन करने और कण्ठप्रदेशमें अँगुली डालनेपर वान्तिकर औषधिकी क्रिया होनेमें सहायता मिलती है।

५. शीतलता और अफीमका सेवन वमन होनेमें प्रतिबन्धक है।

६ बाल्यावस्थामें वमनकारक औषधिसे अधिक क्लेश नहीं होता। औषधि सरलतापूर्वक सहन हो जाती है परन्तु सौम्य औषधि देनी चाहिये।

७ विषप्रकोपमें नीलाथोथा उत्तम औषधि है। इसकी क्रिया सत्वर होती है तथा अधिक ग्लानि और दुर्बलता नहीं आती। इस तरह राईसे भी ग्लानि कम होती है परन्तु राईका कार्य सत्वर प्रकाशित नहीं होता।

८. श्लेष्म पित्तको निकालनेके लिये मैनफल निर्भय और हितकर औषधि मानी गई है, तथा आमाशय और अन्त्रमें अपचन जनित आमके संशोधनार्थ लवण जल श्रेष्ठ है।

९ वमनकारक औषधि सेवन करनेपर आमाशयकी धारण शक्ति कम हो जाती है अत बार-बार वामक औषधिका सेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा अजीर्ण रोग उपस्थित होता है।

१० यदि वमन अधिक हो तो उदर पर राईका पलस्तर लगाना चाहिये, अथवा अफीमका सेवन कराना चाहिये।

वामक औषधि सेवनमें उपद्रव वमन करानेवाली औषधियोंके प्रयोगमें गर्भपात, अन्त्रवृद्धि, अ-भ्रावतरण, संन्यास, रक्तोत्क्लेश, श्वासावरोध, गर्भाशय निर्गमन, उदर प्रदेशकी मांसपेशियोंका विदारण आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं, किन्तु ये सब उपद्रव अति विरल होते हैं।

विकृत कफ-पित्तको निकालनेके लिये वमन देनेमें आयुर्वेदने विधि, अधिकारी, फल, वमनके पश्चात् कर्म, अतियोगमें प्रतिकार वमनके अनधिकारी इन सबका विचार किया है। इन सबको भलीभाँति जानकर छर्दि-कारक औषधि देनी चाहिये। इसका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ ५६ से ६७ तक देखें।

(२२) छर्दि-निग्रहण।

वान्तिहर-वमन निवारक-एंटिइमेटिक्स।

(Antiemetics)

जो द्रव्य कै और उबाकको बन्द करे तथा कारणभूत दोषको दूर करे, उसे छर्दि-निग्रहण संज्ञा दी है।

छर्दि निग्रहणवर्ग—जामुनके पान, आमके पान, बिजौरा, खट्टे बेर, अनार दाने, जौ, साठी चावल, खस, गोपीचन्दन और लाजा (धानकी लावा) ये १० औषधियाँ चरक संहितामें लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें आरग्वधादि, पटोलादि तथा गुडूच्यादि गणको वमन-निवारक कहा है। इनमेंसे आरग्वधादिका वर्णन नं० १७ अध्यायमें तथ शेष दोनोंका नं० १० अध्यायमें वर्णन किया जायगा।

शेष वान्तिहर औषधियाँ—संतरा मोसम्मी, अंगुर, आमला, धनिया, सौंफ, फिटकरी जीरा, नागकेसर, इलायची केला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, पद्मकाठ, पीपल-वृक्षकी छालका जल, रक्तचन्दन, लोहबान, गिलोय, अर्क, अदरख, दालचीनी, सोंठ, मयूरशिखा भस्म, शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, राजावर्त पिष्टी, तुलसी, टंकण, शठी, वंशलोचन, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, पाठा और मृदु विरेचन आदि।

डाक्टरी मतानुसार वमन-निवारक औषधियोंके दो प्रकार हैं। १ आमाशयके क्षोभसे उत्पन्न वमनको शान्त करनेवाली औषधियाँ, उनको स्थानिक या प्रत्यक्ष वान्तिहर (Direct antiemetics) संज्ञा दी है।

२ सुषुम्नास्थ वमन केन्द्रपर कार्यकारी औषधियाँ, उनको परम्परागत कार्यकारी कहा है।

जब वमन केन्द्र उत्तेजित होकर वमन कराने लगता है, तब सत्वर लाभ नहीं पहुँच सकता। उदाहरण के लिये परिवर्तित वमन (Cyclic vomiting) समुद्र पर्यटनजन्य विकृति (Sea sickness), सगर्भाकी वमन, पित्तनलिका या गवीनी, (Ureter) में अश्मरीका फंस जाना और विविध विष या कीटाणुविषज प्रभावसे वमन केन्द्र उत्तेजित होता है, यह वमन सरलतासे निवृत्त नहीं होती।

स्थानिक वमननिवारक—बर्फ, शराब, अफीम, मौक्तिक, शुक्ति, प्रवाल, राजावर्त, फिटकरी, स्वल्पमात्रामें सोमल, लोबान, मुलहठी, इलायची, वंशलोचन, नागरमोथा चाँगेरी, बिजौरा, मधुरअम्ल रसयुक्तफल, जीरा, मुनक्का आदि सारक औषधियां, धानका लावा, मिश्री मिला चूनेका जल आदि।

स्थानिक उपचारमें बर्फ उत्तम औषधि है। दुर्दमन वमनमें बर्फ मिला दूध या इतर पेय पदार्थ पीने और बर्फके टुकड़ोंको मुँहमें रखकर चूसते रहनेसे वमनकी निवृत्ति हो जाती है।

पीपल (अश्वत्थ) वृक्षकी छालकी राखको १६ गुने जलमें भिगोकर निथरा हुआ जल थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे या मुलहठीका सेवन करानेसे भी तत्काल गुण प्रतीत होता है।

राजयक्ष्मा रोगीकी वमनमें गोपीचन्दन और फिटकरी तथा सुरापानजनित वमनमें राजावर्त लाभदायक है।

वमन केन्द्र और वातवहानाड़ियोंपर कार्यकारी औषधियाँ—अफीम रौप्यभस्म, गिलोय सत्व, मिश्री मिला आंवलेका रस, स्वल्प मात्रामें सुरा सत्व (Alcohol), राईका प्लास्टर आदि।

ये औषधियां आमाशयस्थ वातनाड़ियों और वमन उत्पादक वातनाडी केन्द्रकी उग्रताका ह्रास करा वमनका निवारण कराती हैं। इनके अतिरिक्त विविध यन्त्रोंकी उग्रताका भी शमन कराती हैं।

आमाशयमें उग्र तरल पदार्थ होनेपर अधिक परिमाणमें निवाया जल पिला, कै करा देनेसे दाह और वेदनाकी निवृत्ति हो जाती है। फिर प्रवाल पिष्टी, शुक्ति भस्म वराटिका भस्म, सोडा या इतर क्षार आदि औषधि देनेसे स्थिर लाभ पहुँच जाता है।

आमाशयमें वेदना होती हो, तो आमाशय अवसादक रूपसे अफीम या सोमल हितकर हैं।

आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें तीव्र उग्रता हो जानेसे छर्दि होती हो, तो बर्फ, शुक्ति भस्म, गिलोय, सत्व आदि तथा चिरकारी मन्द उग्रता और रक्तसंग्रह जन्य वमन होनेपर मधुर अम्ल फलोंका रस; आंवला, लोबान, फिटकरी आदि उपकारक हैं।

आमाशयव्रण, पित्ताशय शूल, वृक्कशूल, अन्त्रविद्रधि आदि विकारोंमें वमन रूप उपद्रव होनेपर मूल कारणको दूर करना चाहिये।

सगर्भाके वमनमें फलोंका रस और आमाशय अवसादक औषधियां भी आती हैं।

इन वमन-निवारक औषधियोंका विशेष विवेचन छर्दि चिकित्सामें 'चिकित्सा तत्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया है।

मोर्फियाके प्रकोप या आमाशयके मुद्रिका (Pyloric) द्वारके आक्षेपजन्य वमनपर सूची बूटी सत्व (Atropine) का प्रयोग उपकारक है।

डाक्टरीमें वमन केन्द्रपर शामक असर पहुँचानेके लिये निद्राप्रद औषधियां— ब्रोमाइड और क्लोरल हाइड्रेटका प्रयोग वडी मात्रामें करते हैं। कभी अमिल नाइट्रेट और नाइट्रोग्लिसरीन भी उपयोगी होती हैं।

आमाशय अवसादक हाइड्रोस्येनिक एसिड, कोकेन, टिंचर आयोडीनकी कुछ बूंदें, सिन्धव लवण आदिका उपयोग भी किया जाता है।

(७१) तृष्णा-निग्रहण।

तृषाशामक-पिपासाहर-रेफ्रिजरण्ट्स।

(Refrigerants)

जो औषधियां प्यासको रोकें तथा उसके कारण रूप शोषको दूर करें, उनको तृषा-निग्रहण कहते हैं।

तृषा-निग्रहण वर्ग—सोंठ, धमासा, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, रक्त (और श्वेत) चन्दन, चिरायता, गिलोय, नेत्रवाला, धनिया और पटोल, ये १० औषधि तृषा शामक हैं।

सुश्रुत संहितामें सारिवादि, परूषकादि, उत्पलादि, गुडूच्यादि और अम्बादि गणको तृषा-शामक लिखा है। इन से सारिवादि, परूषकादि तथा उत्पलादि, इन गणोंका वर्णन नं० ५१ दाह-शामक वर्गमें, अम्बादि गणका वर्णन नं० २१ विषशामक वर्गमें तथा गुडूच्यादि गणका वर्णन ज्वरघ्न नं० ९० में किया जायगा।

और तृषाशामक औषधियाँ—वंशलोचन, आंवला, लौंग, बड़ी इलायची, जौं, धानकी लावा, गन्ना, मीठा दही, नीबूका रस, सन्तरा, मोसम्बी, पकी इमली, मधुराम्ल, अनारदाने, अंगूर, मुलहठी, अतीस, इसबगोल आदि।

डाक्टरी मतानुसार २ विभाग—१ स्थानिक, २ सार्वाङ्गिक। मुख, तालु, कण्ठ आदि शुष्क होनेपर पिपासाका बोध हो, उसे स्थानिक; और रक्तमें द्रवशोष पदार्थ (विशेषतः क्षार) के परिमाणकी वृद्धि होने या रक्तमें जलका परिमाण न्यून होनेपर पिपासाकी उत्पत्ति होवे, उसे सार्वाङ्गिक पिपासा कहते हैं।

स्थानिक पिपासानिवारक औषधियाँ जलपान, अत्यधिक जल मिला हुआ उद्भिद् अम्ल, सुपारी, लौंग, धनिया, इलायची, मधुराम्ल फलोंका रस, आंवला, आदिका मुखमें धारण कर रस निगलना।

सार्वाङ्गिक पिपासानिवारक औषधियाँ—जलपान, वंशलोचन, अफीम पित्तपापड़ा, धमासा, चिरायता, कडुवी नाई, गुडमार, मेषपत्र आदि। इनमें अफीम वातवहा नाड़ियोंके पिपासोत्पादक केन्द्रकी उग्रताका ह्रास कराकर प्यासका दमन कराती है।

तृषानिदान और तृषाचिकित्सा सम्बन्धी विशेष विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है।

(७४) स्वेदन।

स्वेदजनक घर्मकारक-डायाफोरेटिक्स-स्यूडोरिफिक्स।
(Diabhoretics—Sudorifics)।

जो द्रव्य स्तम्भ (अंगोंका जकड़ना), गौरव और शीतको दूर करे तथा पसीना ला देवे, उसे स्वेदन कहते हैं। स्वेदन द्रव्योंमें उष्ण, तीक्ष्ण, सर (या स्थिर) स्निग्ध (वा रूक्ष), सूक्ष्म, द्रव्य और गुरु गुण प्रायः होते हैं।

ईश्वर रचित इन शरीरोंमें विविध यन्त्रोंका व्यापार नित्य निरन्तर होता रहता है। साथ-साथ आहार आदिसे पोषक सत्वका सात्म्यकरण तथा विकृत हुए और हानिकर तत्त्वका पृथक्करण भी यथा नियम होता रहता है।

विकृत तत्त्वरूप मलमें कुछ भाग स्थूल और कुछ सूक्ष्म है। जो भाग स्थूल है, वह विशेषतः बृहदन्त्रमें आकर गुदा द्वारसे बाहर निकलता है; तथा जो सूक्ष्म अंश है वह रक्तमें आकर फिर मूत्रके साथ और प्रस्वेद रूपसे बहिर्गमन करता रहता है। यदि इस शारीरिक विष निकलनेकी क्रियामें व्याघात हो जाय, तो स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है। इस हेतुसे सब क्रिया सतत होती रहती है। इनमें प्रस्वेद लानेकी क्रिया भी दिन और रात, शीतकाल और उष्णकाल, में सर्वदा होती रहती है। शीत कालमें प्रतिक्रिया होकर शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होती है फिर रक्ताभिसरण क्रिया उत्तेजित होकर प्रस्वेद निकलनेमें सहायता पहुँचाती है। उष्णकालमें शारीरिक उत्ताप न्यून हो जाता है फिर चर्मस्थ शिराएँ और ग्रन्थियाँ शिथिल होकर स्वेद रूप विषको निकाल देती हैं। शीतकालमें घर्मकी मात्रा न्यून होनेसे बाहर निकलनेका बोध नहीं होता और उष्ण कालमें स्वेद अधिक आनेसे स्पष्टतया जाना जाता है।

यदि किसी कारणवश अधिक शीत लग जाय, तो शारीरिक उत्ताप बहुत कम हो जाता है रक्ताभिसरण क्रिया मंद हो जाती है स्वेदावरोध हो जाता है एवं पचन क्रिया विकृत होकर आमवृद्धि भी हो जाती है। फिर स्वेद लानेकी क्रिया

यथाविध नहीं हो सकती। इस तरह स्वेदावरोध होनेपर औषधि सेवन या इतर चिकित्सा करके इस क्रियाको नियमित बनानेका प्रयत्न किया जाता है। अन्यथा अनेक व्याधियोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त अनुचित आहार-विहारमें भूल होनेपर रक्तमें विष वृद्धि हो जाती है, तब रक्तमेंसे विषको बाहर निकालने या मूत्रपिण्डोंकी विकृतिमें मूत्रपिण्डोंको शान्ति देनेके लिये भी स्वेद लानेकी क्रिया उपेक्षित कराई जाती है।

यह स्वेद चममें रही हुई घर्मग्रन्थियों द्वारा बाहर आता है। त्वचामें सघन अत्यधिक संख्यामें घमग्रन्थियां रहती हैं। जिस तरह वृक्कोंमें रहनेवाले अनेक कोष सर्वदा त्याज्य पदार्थको पृथक् कर मूत्र द्वारा बाहर निकालते रहते हैं उसी तरह त्वचामें रहनेवाले अनेक स्रावक कोष रक्तमेंसे स्वेद द्वारा विषको बाहर निकालते रहते हैं। ये स्रावक कोष स्राव करानेवाली वातवहा नाड़ियों (Secretory Nerves) के अधीन हैं और वातवाहिनियोंका केन्द्रस्थान सुषुम्णामें अवस्थित है।

स्वेदस्राव जितना अधिक होता है, उतनी ही जल, नमक नत्रजनविशिष्ट मलके परित्यागमें सहायता मिलती है। एवं यह जलन से बाष्प बनाकर शारीरिक उत्तापको नियमित रखता है, २४ घण्टमें विशेष अनुकूल परिस्थिति होने पर ५०० से ७०० सी० सी० (लगभग १७ से २४ औंस) अथवा इससे भी अधिक जल स्वेद मार्गसे बाहर निकल जाता है।

स्वदेकी प्रतिक्रिया क्रिया अम्ल होती है, कारण, वसा ग्रन्थियोंमें से वसाम्लका स्राव मिल जाता है। यह स्वेद वातनाड़ियों और रक्तदबावके प्रभाव से मूत्रमें से या सार्वाङ्गिक अभिसरणमें से पृथक् हो जाता है।

यदि त्वचाकी अभिसरण क्रिया बिल्कुल न हुयी हो और स्वेदस्राव प्रचुर हो रहा हो, तो वह स्वेद शीतल या मृदु होता है। रक्ताभिसरणकी आवृत्ति प्रचुर जलपान करने पर जैसे होती है, वैसी अन्तर स्थिति होने पर ही प्रचुर स्वेदस्राव हो सकता है।

घर्मग्रन्थियोंका स्वतन्त्र (इडा-पिंगला) नाड़ीके तन्तु मिलते हैं, जो केन्द्रीय नाड़ी संस्थाके नियन्त्रणमें हैं। यदि देहगत औषध क्रिया विज्ञान दृष्टिसे (Pharm acologically) विचार किया जाय, तो परिस्वतन्त्रनाड़ियों (Parasympathetic nerves) द्वारा स्वतन्त्र नाड़ियोंको शक्ति मिलती है अर्थात् नाड़ियोंके तन्तु द्वारा लवणोत्पन्न अम्ल (Acetylcholine) का प्रतिपादन होता है।

एड्रेनलिन, जो स्वतन्त्र नाड़ियोंको उत्तेजित करता है, वह स्वेदस्राव पर कुछ भी असर नहीं पहुँचाता।

स्वेदोपग वर्ग—स्वेदन द्रव्योंके साथ मिलाने पर उनकी शक्तिकी वृद्धि करानेवाले द्रव्य-सुहिजना, एरण्ड, आक, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, जौ, तिल, कुलथी, उड़द और बेर, ये १० औषधियां।

स्वेदजनक ओषधियाँ—प्रवाल भस्म, कलमी सोरा, नौसादर, जवाखार, सप्तपर्ण, सहदेवीमूल, कुलथी, आक की जड़, सुहिंजने की छाल, द्रोणपुष्पी, एरंड की जड़, बच्छनाग, फिटकरी, अनन्तमूल, कपूर, बनफ्सा, अंकोल, वच, देवदारु, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, नागरमोथा, अतीस, मालकांगनी, कुटकी, मरुआ, सब्जा, तुलसी, रोहिषघास, सोंठ, दालचीनी, कुसुम्भ, विशल्यकरणी, चाय, गरम जल, सौंफ, शीतलमिर्च, गन्धक, तार्पिन तैल बेर, उड़द, जौ, तिल, कुलथी, आदि औषधियों में प्रस्वेदवृद्धि करानेका गुण है। इनके अतिरिक्त परिश्रम मार्गगमन, व्यायाम, सूर्यके ताप और अग्निका सेवन आदि भी घर्मवृद्धि कराते हैं।

इन औषधियोंका प्रयोग तीव्र प्रतिश्याय, ज्वर, जलोदर, चिरकारी प्रवाहिका, अतिसार और कतिपय जातिके चर्मरोगोंमें होता है। इनके अतिरिक्त जब मूत्रके साथ खटीका (शुभ्रप्रथिन एल्व्युमिन) जाती हो, वृक्कप्रदाह की प्राप्ति हुई हो, या वृक्कमें अश्मरी आ जानेसे या इतर हेतुसे उस पर शस्त्र चिकित्साकी हो, तब वृक्कोंको शान्ति पहुँचाने (वृक्क क्रिया कम कराने) के लिये भी घर्मकारक औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

गरम जल, चाय, कपूर, सोंठ, दालचीनी, मुरावीर्य आदि अनेक औषधियोंमें उत्तेजक घर्मकारक गुण रहता है और कतिपय औषधियोंमें अवसादक गुण न्यूनाधिक अंशमें रहता है। शारीरिक उत्ताप कम कराने और चर्मकी क्रियामें वृद्धि करानेके लिये अवसादक और स्वेदल गुणयुक्त बच्छनाग आदि विशेष हितावह मानी जाती हैं।

विविध तीव्र चर्मरोगोंमें चिरकारी पिडिका अदृश्य होने पर आभ्यान्तरिक यन्त्रोंमें प्रदाह हो जानेकी संभावना है। ऐसी स्थितिमें चर्मके रक्तसंचालनकी वृद्धि करानेके उद्देश्यसे स्वेदल औषधि व्यवहारमें लाई जाती हैं।

जलोदर रोगमें मूत्रल औषधिके साथ स्वेदल औषधि देनेसे उदर्य्या-कलामेंसे जलका अधिक शोषण हो जाता है।

आयुर्वेदमें अनेक रोगोंमें बाष्प द्वारा प्रस्वेद लानेका रिवाज है। परन्तु यह स्वेद वातप्रकृतिके लिये स्निग्ध, कफ प्रकृतिके लिये रूक्ष और वात-पित्तमिश्रित प्रकृति-वालोंको रूक्ष-स्निग्ध दिया जाता है।

स्वेदन क्रियामें सार्वाङ्गिक और स्थानिक ऐसे दो भेद हैं। रोग भेद और प्रकृति भेदसे सार्वाङ्गिक स्वेदमें औषधि और क्रियामें भेद किया जाता है। स्थानिक स्वेदन (सेक) क्रियामें भी आमाशय, अन्त्र, हृदय आदि स्थानभेद से अन्तर हो जाता है।

इस स्वेदन क्रियाके अधिकारी, विधि, फल, आदिका विस्तृत वर्णन "चिकित्सा-तत्त्व प्रदीप" के प्रथम खण्ड पृष्ठ ४७ से ५६ तक में किया गया है।

स्वेदवर्द्धक औषधियों की क्रिया—

१ केन्द्रको प्रत्यक्ष उत्तेजित करनेवाली औषधियां—कपूर, अम्लप्रधान नौसादर (एमोनिया एसिटेट) आदि, यह शिराओंके रक्तकी उष्णता वृद्धि द्वारा उत्तेजित होता है।

२ नाड़ीतन्तुओंके सिरे द्वारा उत्तेजित करनेवाली—पाइलोकार्पिन, फाइसोस्टिग्माइन, एसिटिलकोलिन आदि।

३ त्वचागत रक्तवाहिनियों के प्रसारण द्वारा—सूर्यका ताप, उष्णता, उष्ण स्वेद, वर्कश वाष, गरम पेय, त्वचागत रक्तवाहिनी प्रसारक विशेष औषधियां मद्यार्क, अफीम, (डावर्स पाउडर अफीम, नीलाथोथा, इपिकाक्यु आना मिश्रण), क्लोरल, हाइड्रेट, सेलिसिलेट आदि।

४ केन्द्र की प्रतिफलित उत्तेजना—जैसे आमाशय की उत्तेजना द्वारा वैसे गले पर गुलगुली करने और वमन औषध-अर्कमूललक, सुरमा, इपिकाक्युआना आदिका सेवन करने पर प्रतिफलित क्रिया द्वारा स्वेद लाता है। इस तरह हुलास आने पर और भय उद्वेग आदि मानस उत्तेजना द्वारा भी स्वेद आ जाता है।

इनके अतिरिक्त वच्छनाग प्रोणपुष्पी, सहदेवी, सारिवा, शीतल मिर्च और अनेक मूत्रल औषधियां भी स्वेद लाती हैं परन्तु उनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, यह निर्णीत नहीं हुआ है।

मुमूर्षावस्थामें प्रस्वेद आता है, यह चर्मस्थ शिराएँ शिथिल होने पर आता है। एवं जब वमन होने लगती है, तभी प्रस्वेद आ जाता है। वमन भी दुर्बलता और शिथिलता लाता है। इस हेतुसे वमनकारक और अवसादक औषधियोंमें घर्मकारक गुण अवस्थित है।

चर्मस्थ शिराएँ अधिक परिमाणमें रक्त संचालन करके स्वेद लाती हैं। परिश्रम, व्यायाम उष्ण जलसे स्नान, गात्रमर्दन, उष्ण जलपान आदि। इनके अतिरिक्त स्वेदन क्रिया आदिसे भी चर्मस्थ शिराओंमें रक्तसंचालन अधिक वेगपूर्वक होने लगता है। कतिपय औषधियां और क्रिया अनेक प्रकारसे घर्म लाती हैं, एवं उत्तेजना, रक्ता भिसरण क्रिया वृद्धि आदि गुण भी दर्शाती हैं।

घर्मकारक औषधियोंके सेवनमें उद्देश्य—

१ त्वचाकी उष्णता और शुष्कताका निवारण।

२. विशेष प्रकारके विषप्रकोप अथवा सेन्द्रिय विषज (चयापचयमें उत्पन्न Metabolic Products) आपत्तिकर—मलेक अथवा प्रदाहको नष्ट करना।

३ सरणमें रुग्ण तरलका ह्रास कराना। जैसे जलोदर और शोथमें मल त्याग करनेवाले अवयवको सहायता पहुँचानेके लिये यथा शर्करा-मेहमें वृक्कोंको।

अतिसार होनेपर अन्त्रको तथा आम-संग्रहजन्य घर्मरोध और शीतके निवार णार्थ पचन-संस्था और उष्णता उत्पादक केन्द्रको सहायता पहुँचानेके लिये।

४ जब वृक्क कर्मच्युत होते हैं (जैसे वृक्क संन्यास Uraemia में) तब त्याज्य मलका परित्याग करनेके लिये। इस कार्यके लिये पिलोकार्पाइन श्रेष्ठ है।

५ अनेक चिरकारी त्वचा रोगोंमें त्वचागत रक्ताभिसरणको उन्नत करनेके लिये। उदा० किटिमकुष्ठ—(Psoriasis) में गरमजल या टर्किशबाथ। एवं त्रिफला क्वाथकी वाष्प।

सूचना—मूत्रल औषधि, विरेचन और शीतल प्रयोग करने पर स्वेदल क्रियामें प्रतिबन्ध होता है।

गरम जल, गरम वस्त्र धारण और उष्ण वायुके सेवनसे स्वेदल क्रियामें वृद्धि होती है।

(७५) स्वेदावरोधक।

स्वेदापनयन—घर्मरोधक—अन्हाइड्रोटिक्स—एन्टिहाईड्रोटिक्स।

(Anhidrotics-Antihidrotics)।

अति प्रस्वेद निःसरणका ह्रास करानेवाली औषधियाँ—जसद भस्म, कुचिला, स्वल्प मात्रामें किनाइन, पद्मकाष्ठ, कुलथी, लोध, वंशलोचन, सुराखानी अजवायन, धतूरा, सूची बूटी, ब्रह्मदण्डी और अम्ल-कषाय गुणयुक्त औषधियाँ आदि।

राजयक्ष्मा रोगमें निशाघर्म (रात्रिको अति पसीना आना) एवं ज्वर आदिमें अत्यन्त प्रस्वेद और निर्बलता आनेपर उसका रोध करानेके लिये जसद भस्म, फिटकरी, आदि औषधियोंको प्रयोगमें लाया जाता है। डाक्टरोंमें किनाइन, जसद वत्सि औषधि सूचीबूटीका सत्व (Atropine) आदि व्यवहृत होते हैं।

ज्वरावस्थामें घर्मरोधक औषधियोंकी मालिश भी की जाती है। इसका वर्णन *चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथमखण्ड सन्निपात चिकित्सामें किया गया है।

डाक्टरी मतानुसार स्वेदावरोधक क्रिया प्रकार:—

(१) घर्मोत्पादक वातनाड़ी केन्द्रकी उग्रताका शमन या उग्रताके कारणका निवारण। इस उपाय द्वारा रक्तकी सैरिक अवस्थाका ह्रास होता है। यथा क्षीणता लानेवाली व्याधियोंमें शीतल स्वेद आता है, वह कुचिला, लोहभस्म, द्राक्षारिष्ठ, शराब, नौसादर, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर, विशुद्ध वायुके सेवन, पौष्टिक भोजन आदिसे निवृत्त होता है।

(२) केन्द्राभिमुखी स्रावक वातवाहिनियोंकी क्रिया शमन द्वारा। यथा राजयक्ष्मामें निशाघर्मका ह्रास करानेके लिये गन्धक-द्रावके साथ अफीम दिया जाता है। एवं जसद भस्म प्रयोजित होती है।

(३) वातनाडियोंके चर्मस्थ अंत भागका अवसादन द्वारा। इस क्रियाके लिये खुरासानी अजवायन, सूचीभूली, धतूरा आदि हितकारक हैं। एवं गन्धक-आम्लके जलमें कपड़ा भिगोकर शरीरको पोंछ लेनेसे या उसका लेप करनेपर चर्मस्थ रक्त प्रणालिकायें संकुचित होती हैं। इस हेतुसे स्वेदावरोध होता है।

(४) केन्द्राभिमुखी सब वातनाडिनियोंकी क्रिया ह्रास करानेसे प्रस्वेद कम हो जाता है। यथा—स्थानिक शैत्यप्रयोग, पखा तथा शीतल वायुसेवन आदिसे।

मेटेरिया मेडिकाकार डाक्टर घोषने निम्नानुसार २ विभाग दर्शाये हैं।

१ स्रावक नाडियों (परिस्रवन्न नाडियां) के सिरेका अवसादन करके स्वेदाप नयन करानेवाली। इस प्रकारमें सूचीबूटीसत्व (Atropine) का असर अत्यन्त प्रबल है।

संज्ञावाही नाडियोंकी उग्रताके ह्रास द्वारा, उदाहरणार्थ शीतल कपड़ेकी पट्टी बांधना, शीतल जलवायु आदि। अम्ल, क्विनाइन, कुचिला आदि अनेक औषधियां व्यवहृत होती हैं किन्तु इनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, यह निर्णीत नहीं हुआ।

(२६) रसायन।

ऑल्टरेटिव्ह—Alteratives.

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्॥

जिस द्रव्यके सेवनसे दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणा और विवेकशक्ति बुद्धि), आरोग्य, तारुण्य, सुदृढता, प्रभा, वर्ण और स्वर, तीनों की सुन्दरता, देह और इन्द्रियोंके बलकी वृद्धि, प्रभावशाली वाणी, जनतामें सम्मान और कान्तिकी प्राप्ति हो, उसे रसायन कहते हैं। रसायन सेवनसे रस, रक्त आदि धातु श्रेष्ठ बनती हैं तथा रस, वीर्य, विपाक आदि, जो औषधको सुदृढ रखनेवाले हैं, उनकी विशेष प्राप्ति होती है।

संक्षेपमें रसायन स्वस्थ मनुष्यके बलको बढ़ानेवाला, रस रक्त आदिकी निर्बलता जन्य रोगोंको तथा वृद्धावस्थाकी निर्बलताको दूर करनेवाला है। शार्ङ्गधराचार्य ने रसायनको जराव्याधिनाशन कहा है।

वयः स्थापन गण—तरुणावस्था को स्थापना करनेवाली औषधियां—गिलोय, हरड़, आंवला, मुक्ता, रास्ना, श्वेत अपराजिता, जीवन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी और पुनर्नवा ये १० औषधियां हैं।

अन्य औषधियाँ—सुवर्ण, अभ्रक, लोह, पारद, हिंगुल, सुरमा, सोमल, वंग, यशद, नाग (शीशा), हरताल, मनःशिला, हीरा, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, वैक्रान्त मोती प्रवाल, गूगल, अष्टवर्ग, जीवनीयगण की औषधियां, असगन्ध, शालम मिश्री, विधारा शिलाजीत, रुद्रवन्ती आदि।

इन औषधियोंका सेवन आयुर्वेद कथित मात्रामें करते रहनेसे किसी यन्त्र विशेष पर तत्काल प्रत्यक्ष क्रिया प्रकाशित नहीं होती किन्तु शनै शनैः चयापचय क्रिया सुधरती है रक्तमें उपस्थित मृत अणु नष्ट होकर, शरीर पूर्व स्थितिमें आ जाता है।

चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टाङ्ग-संहिता आदि ग्रन्थों कुटीप्रावेशिक, वातातपिक भेदसे द्विविध काम्य (देह, बुद्धि-बल आदिकी वृद्धि रूप कामना सहित), नैमित्तिक (व्याधि नाशके लिये) और आजस्रिक (घी, दूधके अभ्यास आदि) त्रिविध तथा संशोधन। संशमन भेदसे द्विविध, ये विभाग किये हैं। इन सबका वर्णन चरकसंहिताके चिकित्सा स्थान प्रथम अध्यायमें तथा सुश्रुत संहिताके चिकित्सा स्थानके २७ वें अध्यायमें वर्णन किया है।

कृमि, अर्शपीड़ितोंके लिये छिले हुए वायविडङ्ग और मिलावा आदि, क्षय, रक्तपित्त, रक्तवमन पीड़ितोंके लिये खरैंटी, विदारीकंद, शतावरी आदि, चक्षु काम और माघ कामकी चाहना वालोंको त्रिफलासार, अरणी चित्रकमूल, आंवला, नागबला आदि बुद्धि और आयुवृद्धिकी कामनावालोंको मेधाचूर्ण, सुवर्ण शतावरी, पिप्पली नागबला लोह, वाचा, चित्रकमूल, आंवला आदि हृदय विकृतिशमनार्थ मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, श्वेत वचादि, व्याधि शमनार्थ सोम शिलाजतु आदि रोगनिवृत्तिके पश्चात् मनकी प्रसन्नता (हर्षवर्द्धन) के लिये अजगरी, कापोती, गोनासी आदि कतिपय अप्रसिद्ध दिव्य औषधियाँ दर्शायी हैं। वर्तमान में तिब्बतमें अनेक दिव्य औषधियां मिलती हैं। रशियाका वनस्पति संशोधक डॉ० बेडमेव अनेक वर्षोंसे तिब्बतमें रहता है, जिसने अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियोंकी रशिया भेजी हैं।

रशियाके संशोधक मण्डलने शहद तथा शहदके साथमें शहदके नीचे रहनेवाले कंकड सदृश टुकड़ोंमें दीर्घायुषी करनेका गुण बतलाया है।

डाक्टरी मतानुसार, रक्तरस (Blood Plasma) की सहायतासे पौष्टिक पदार्थ देहके विविध घटकोंमें पहुँचता है एवं शारीरिक घटक परिवर्तन क्रियाजन्य पदार्थका भी रक्तरस के द्वारा ही वहन होता है। इसलिये यदि रक्तरसके उपादानमें कुछ विकृति हो जाय, तो साक्षात् सम्बन्धसे देहके पोषण, सर्व विधान और घटकोंकी जीवन क्रियामें विकृति हो जाती है।

पथ्य भोजन, औषध द्रव्य या रक्तमोक्षण द्वारा रक्तवारिके उपादानमें कुछ अंशमें परिवर्तन हो सकता है। शरीरमें प्रवेशित अनेकानेक पदार्थ शोषण होनेके पश्चात् वे रक्तरसमें द्रवरूप होकर अवस्थिति करते हैं किन्तु विरेचक, मूत्रल और स्वेदल

औषधियाँ रक्तरसमें प्रवेशित होकर इनमेंसे अनेक पदार्थोंके परमाणुओंको निर्गत करा देती हैं। इस हेतुसे रक्तवारिके उपादानमें रूपान्तर हो जाता है। फिर रक्त-जलपर कार्यकारी औषधियाँ उसमें क्षारत्वकी वृद्धि करानेके उद्देश्यसे दी जाती हैं। यथार्थमें रक्तरसको अम्ल गुणविशिष्ट बनानेवाली अथवा इसके क्षारत्वका ह्रास करानेवाली औषधि एक भी नहीं है। सब मातव अम्ल रक्तरसमें समवायाम्ल लवण-रूपमें अवस्थित होते हैं।

रक्तवारिमें क्षारवर्द्धक औषधियाँ—शिलाजीत, प्रवाल, मौक्तिक, शुक्ति, वराटिका, शंख, पा क्षार, सज्जीक्षार, जवाखार, नौसादर, विविध लवण, चूना, मेगनेशिया, केलेका क्षार आदि रक्तरसमें प्रवेश होकर क्षारकी वृद्धि कराते हैं। फिर ये क्षार मूत्रल गुण तथा मूत्राम्लके साथ संमिलित कर देहके बाहर निकल जाते हैं।

जब रक्तरसमें अधिक मात्रामें मूत्राम्ल हो जाता है, तब क्षारप्रधान औषधिका अवलम्बन किया जाता है। परन्तु जब दीर्घकाल तक औषधि सेवन कराना हो, तब पाचन क्रियामें विकृति करनेवाली औषधियोंका व्यवहार नहीं किया जाता। ऐसे समयपर शिलाजीत, जवाखार, केलेका क्षार प्रवाल आदि विशेष हितकारक हैं।

वातरक्त, सीसेका विष, विविध प्रमेह आदि रोगोंमें इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। एवं जीर्ण आमवातजन्य संधि जकड जाने (Rheuma toid arthritis) पर भी इस प्रकारकी औषधियोंका सेवन कराया जाता है।

जब शरीरमें किसी स्थानपर अधिक शोथ होनेपर या किसी व्याधि-विशेषके हेतुसे लसिका गह्वर (Serous Cavity) में रक्तरसका उत्सृजन होता है, तब विरेचन, मूत्रल या स्वेदल औषधिका सेवन कराया जाता है, जिससे रसका सत्वर निराकरण होता है। इसके अतिरिक्त रक्तमें मूत्र विष-वृद्धि (वृक्क-संन्यास–Uraemia) होने पर रक्त विषमय बन जाता है इस विषको निकाल देनेके लिये भी विरेचन, मूत्रल या स्वेदल औषधि ही दी जाती है। इन औषधियों द्वारा रक्त जलमें रहे हुए विविध क्षार और जलीय अंश निकल जाते हैं।

रक्तके रक्ताणुओं पर कार्यकारी औषधियाँ स्वस्थावस्थामें सब रक्ता णुओं (Red Corpuscles) के भीतर वर्ण द्रव्य (Hemoglobin) सम परिमाणमें रहता है। इसका प्रधान उपादान लोह है। स्वस्थावस्थामें रक्त रक्ता णुओंके भीतर रक्तकी वृद्धि करे, ऐसी कोई औषधि नहीं है। किन्तु व्याधि विशेषके हेतुसे रक्तके रक्ताणुओंमेंसे वर्ण द्रव्यका परिमाण न्यून हो जानेपर रक्तपर साक्षात् कार्यकारी और परोक्ष कार्यकारी ऐसे २ विभाग होते हैं। साक्षात् कार्यकारी औषधियाँ (Direct Hematics or Hematinics)—लोहभस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म रससिन्दूर, सुवर्णमाक्षिक भस्म, आंवला आदिके सेवन द्वारा इस क्षतिकी पूर्ति हो सकती है।

इन औषधियोंके सेवनसे केवल रक्तकणके वर्णका परिवर्तन ही नहीं होता, अपितु रक्त-कणिकाओंकी भी वृद्धि होती है। रक्त-वृद्धिमें पौष्टिक पथ्य, सूर्यके ताप और विशुद्ध वायुका सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदिका पालन, नियमित जीवनचर्या आदि क्रिया सहायक होती हैं।

परोक्ष कार्यकारी (Indirect Hematics)—सप्तपर्ण, गिलोय, सुवर्ण-मालिनी वसन्त, क्विनाइन आदि औषधियां ज्वर और निर्बलताको दूर कर परम्परया लाभ पहुँचाती हैं।

सूचना—कितनीही औषधियां रक्तके भीतर रक्तवर्णद्रव्य और प्राणवायुको घटाती हैं। उनका प्रयोग रक्तवर्णद्रव्य कम होनेपर नहीं करना चाहिये। उदाहरणार्थ सोमल प्रधान भस्म, पॉरसरस, तार्पिन तैल, आयोडीन आदि।

रक्तके श्वेताणुओंपर कार्यकारी औषध—जब उग्रदाहक औषध द्वारा या इतर हेतुसे पीड़ा होकर प्रदाह उत्पन्न होता है, तब रक्तमें अवस्थित श्वेताणु (White Corpuscles) समीपकी केशिकाओंकी दीवारका भेदनकर उस स्थानपर सगृहीत हो जाते हैं। इन श्वेताणुओंका स्थानान्तरित होना, यह स्वाभाविक है। इस स्वाभाविक क्रियाका क्विनाइन और सिंकोनाइन दमन करती हैं अर्थात् इनका आभ्यन्तरिक या स्थानिक प्रयोग करनेपर श्वेताणुओंका रक्तप्रणालियोंसे बाहर निकलनेमें प्रतिबन्ध हो जाता है।

कपूर, अगर, श्वेत चन्दन, इलायची आदि सुगन्धित द्रव्य तथा लाल बोल आदि औषधियों के अन्त्रमें शोषित होनेपर, रक्तमें श्वेत रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है।

मौक्तिक शुक्ति, प्रवाल, शङ्ख, वराटिका, संगजराहत भस्म और चूना आदि औषधियोंके सेवनसे रक्तकी संयमशीलताकी वृद्धि होती है। सोमल, रसकपूर दाल-चिकना आदिकी मात्रा अधिक लेनेपर रक्तकी संयमशीलताका ह्रास होता है कठिन उपादानमें कमी होता है, और रक्तकी तरलताकी वृद्धि होती है। बादाम, पिस्ता और मूँगफली आदिके तैलके सेवनसे रक्तका कठिन उपादान बढ़ जाता है।

(२७) जीवनीय।

रेस्टोरेटिव्स Restoratives

जो द्रव्य जीवन (प्राणधारण) के लिये हितकर हो, जो जीवनको स्थिर रखनेवाला और आयुवर्धक हो, उसे जीवनीय कहते हैं। जीवनीय औषधि पृथ्वी जल प्रधान गुणयुक्त और विशेषत: मधुररस-विपाकवाली होती हैं। मधुर रससे रस, रक्त और मांस आदि धातुओंका पोषण होता है। ये धातुएँ सबल होनेपर रोगोंके आक्रमणका भय प्रायः नहीं रहता।

जब योग्य पथ्य आहारविहारका सेवन न होनेसे या व्याधि विशेषके हेतुसे धातुओंमेंसे रस आदि द्रव्यों और प्राणवायुका ह्रास हो जाता है, तब न्यूनताकी पूर्ति करने और चयापचय क्रियाको नियमित बनानेके लिये जीवनीय औषधियोंका सेवन किया जाता है।

जीवनीय गण जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी, ये १० औषधियां जीवनशक्ति (Vitality) की वृद्धि कराती हैं।

सुश्रुताचार्यने काकोल्यादि गणको जीवनीय कहा है। उसका वर्णन पहिले पित्तशामक रूपसे किया गया है। इनके अतिरिक्त रसायन वर्ग नं० २६ में कही हुई सुवर्ण आदि धातु विविधरत्न और वय:स्थापन गणकी औषधियोंमें भी जीवनीय गुण अवस्थित है।

(२०) मूत्रल।

मूत्रजनन-डाइयूरेटिक्स Diuretics।

जो द्रव्य मूत्रकी उत्पत्तिको कर वृद्धि करा देहमेंसे जल तथा रक्तमें रहे हुए विजातीय द्रव्य और हानिकर विषको पेशाबके साथ बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाते हैं, उनको मूत्रल कहते हैं। इन्द्रायनी (पन्दाल), गोखरू अनन्तमूल, शीतल मिर्च, मोलसरीके बीज, कलमी सोरा, नौसादर, सोहागा अपामार्गके पान, जवाखार, तालमखाने फूल, पाषाणभेद खरैंटी, वनगोभी, गुग्गुल, वत्सनाग, बहुफली, सहदेवी, कमलगट्टा, पाढ, पलाशपुष्प (केसूड़ा), नरसल, कुश, कास दर्भमूल, हस्त (हस्त-कर्णपलन्ती), काकमाची सागके बीज, अपराजिता, देवदारु, नागरमोथा, नारियल सुहिंजना, पुनर्नवा तार्पिन तैल, वनपलाण्डु (Urginea), शतपत्र कुसुम्भ, ऊँट कटारा, देवदाली, सोमलता, भुई आंवला, पत्थरफूल कडुवी तोरई का पचांग, अलसी, दूध, अधिक जलपान आदि।

मूत्रल और पौष्टिक—मूत्रल गुणके साथ मूत्रयन्त्र, वीर्यस्थान और वीर्यको लाभ पहुँचानेवाली औषधियां—शिलाजीत, सालमखाना, गोखरू, विदारीकन्द, शतावर, छोटी कटेरीकी जड़की छाल, सेमल, हस्तिगोलकी मूली, गुंजा, अगस्तके पुष्प, पद्मसुख आदि। ये सब औषधियां शीतल तथा मूत्रल हैं।

मूत्रविरजनीय कषाय—मूत्रविकृतिको दूर करके उसको यथा स्वाभाविक बना देनेवाली औषधियां—श्वेतकमल, नीलकमल, नलिन (रक्त कमल), कुमुद अति सुगन्धवाला नीलकमल, पुण्डरीक (श्वेत कमल), शतपत्र कमल, मुलहठी, प्रियंगु और धायके फूल, इन सबके पुष्प।

डाक्टरी विभाग—१ शीतल मूत्रल और २ उत्तेजक मूत्रल।

(१) शीतल मूत्रल - (Refrigerant diuretics)—इस वर्गकी औषधियां वृक्कोंको धोकर स्वच्छ बनाती हैं। आयुर्वेदमें इनको मूत्रविरजनीय संज्ञा दी है। शीतल जलपान, दूध-जलकी लस्सी, सोडावाटर, जलमिश्रित कार्बोलिक एसिड अथवा वार शिलाजीत बादाम आदिकी ठण्डाई, सोरा, बाँदा, गोखरू, खस, खरैंटी, पञ्चतृणमूलका हिम, चावलका धोवन, माण्ड, तालमखाना, इसबगोल और अलसीका जल आदि, ये सब औषधियां अधिक परिमाणमें सेवन करनेपर रक्तमें अधिक तरलता Diluent) उत्पन्न करके कार्य करती हैं।

(२) उत्तेजक मूत्रल—(Stimulant Diuretics) गंधाविरोजा, तार्पिन तैल, शीतल मिर्च, धागके बीज, अलसीका तैल, सारिवा, छोटी दूधी, पुनर्नवा, काकमाची, वच्छनाग, बुंददाणा (कॉफी), जंगली प्याज आदि। ये सब औषधियां वृक्कोंको उत्तेजित करके कार्य करती है।

यदि उक्त औषधियों की मात्रा अधिक दी जाय, तो ये मूत्रविरेचन (Hydragogue diuretics) का कार्य करती हैं।

डाक्टर घोषके मतानुसार वर्गीकरण —

(१) वृक्कस्थ अणुका धमनीके गुच्छ (Glomeruli) की क्रिया बढ़ाकर इनकी क्रिया द्वारा केफाइन (कॉफी, चाय आदिमें अवस्थित मूत्रलद्रव्य और मूत्रीया) स्रवता जाता है।

(२) वृक्कोंमें रक्तप्रवाहकी वृद्धि करा या अणुकाओंमें रक्तदबाव बढ़ाकर मूत्रस्रावकी विशेष मात्राका आधार अणुकाओंमें रक्तदबाव और वृक्कोंमें रक्तकी आमदपर अवलंबित है। जब वृक्कोंकी शिराएँ रक्तको वापस करनेमें असमर्थ होती हैं, तब उनमें रक्त संग्रह होता है और मूत्रोत्पत्तिका ह्रास हो जाता है। जब इन औषधियां— डिजिटेलिस समूह, केफाइन, मद्यार्क ईथर आदिकी क्रियावृद्धि द्वारा रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ाकर मूत्रल गुण उत्पन्न कराती है तब वृक्कशिराएँ प्रसारित होती हैं और फिर अणुकाओंमें रक्तदबाव बढ़ जाता है।

उदर्याकलामें जब तरल संग्रह होता है तब वृक्कशिराओंमेंसे रक्तप्रवाहकी गतिमें बाधा पहुंचती है। फिर उदरसें छिद्रकर, विरेचन देकर या मूत्रवृद्धि कराकर रक्तको दूर किया जाता है।

रक्तमें जलकी वृद्धि अर्थात् रक्तवारि प्रथिनके एकीकरणमें ह्रास होनेपर अणुकाओंमें दबाव बढ़ता है। इसके २ कारण हैं। १. अधिक जलपान, २. सामान्य लवण जलका गुदा, त्वचा या शिरा द्वारा अन्तःक्षेपण।

३ क्षारके ह्रास, (Acidosis) द्वारा एमोनिया क्लोराइड और केलशियम क्लोराइडमें देनेपर मूत्रल असर पहुँचकर रक्तवारिमेंसे संग्रहीत क्षारका ह्रास होता है।

ये रक्तवारि अपिच्छिल (Non-Colloidal) विधानकी वृद्धि और रक्तवारि प्रथिनके केन्द्रीकरणका ह्रास कराते हैं।

(४) वृक्कपर स्थानिक क्रिया—जब धमनी संस्थामें दबाव और वृक्क-शिराओंमें (प्रतिबन्ध परिवहन हुए बिना) होता है, तब वृक्कके धमनीप्रतानोंको सामान्य क्षोभ पहुंचनेपर ये प्रसारित होते हैं और आशुकाओंमें दबाव बढ़ता है। ये वृक्कोंके घटकोंको उत्तेजित करते हैं। फिर वृक्कके कुण्डलित स्रोतोंका साथ बढ़ाकर या उन स्रोतोंमें पुन शोषण होनेमें प्रतिबन्ध करके मूत्रल असर उत्पन्न कराते हैं। इस हेतुसे इसे क्षोभक मूत्रल (Irritant diuretics) संज्ञा भी दी है। केफाइन और इसके सम्बन्धवाले द्रव्योंके अतिरिक्त शेष औषधियोंमेंसे अत्यधिक मूत्रल औषधियां वृक्क घटकोंमें क्षोभ कराती हैं। जिससे अधिक मात्रा देनेपर रक्तसंग्रह और वृक्कप्रदाह भी होता है। इस प्रकारमें निम्न ३ उपविभाग हैं।

अ—मधुमन (Glycosides)—सुगन्ध द्रव्य, भूम (स्कोपरिन), केन्थारिडिन आदि।

आ—अम्ल, क्षार और कतिपय लवण—केफाइन, थियोब्रोमाइन, पारदप्रधान येलोमल आदि।

इ—कतिपय उड्डयनशील तैल, कोपायबा, जुनिपर, चन्दन, बकू (Buchu) शीतलमिर्च आदि।

(५) अपथ्य क्रिया द्वारा—इस प्रकारकी औषधियां रक्तमेंसे विषविधापन कम करा छननेकी क्रिया बढ़ा और आशुकाओंमें दबाव बढ़ाकर मूत्रल गुण दर्शाती हैं। ये कुण्डलिकोंके भीतर पुन शोषण होनेसे रक्षण करते हैं। जैसे, मूत्रीमा, एमोनिया ऐसिटेट, एमोनिया साइट्रेट, लवण, शर्करा, वृक्क ग्रैवेयक ग्रन्थिसत्व आदि इस प्रकारकी क्रिया द्वारा फल दर्शाते हैं।

मूत्रल प्रयोग हेतु—

१ हृदय और फुफ्फुस क्रियाकी अव्यवस्थासे मूत्रपरिमाणका ह्रास हो जानेपर।

२ रक्ताभिसरणमें हानिकर त्याज्य द्रव्य और विष द्रव्योंको बाहर निकाल देनेके लिये अर्थात् रक्तशोधन और प्रदाह निवारणार्थ।

३ किसी स्वाभाविक गुहामें तरल संग्रह हो जानेपर। उदाहरणार्थ जलोदर और उरस्तोयमें।

४ मूत्राशय और मूत्रप्रसेकके प्रदाहमें मूत्रको तरल बनाने और क्षोभका ह्रास करानेके लिये। इसके अतिरिक्त अश्मरीकी रचना या कठोर द्रव्य संग्रह होनेपर।

शिरासंमूहमें रक्तसंग्रह (Venous Congestion) होनेपर जलोदर या शोथ (हृदय विकृति या फुफ्फुस विकृति जन्य शोथ) होनेपर सार्वाङ्गिक रक्त-

प्रणाली विधानपर कार्यकारी पुनर्नवा, काकमाची आदि मूत्रल औषधिकी योजना करनी चाहिये।

यकृत् विकृति जनित शोथ रोगमें शीतल मिर्च और वृक्कविकार जनित शोथ रोगमें शिलाजीत गोखरू, पुनर्नवा आदि लाभदायक हैं। यदि ज्वर रोगसे वृक्क-विकृति हुई हो, तो तार्पिन तैल, चाय, सोरा, नागरमोथा आदि औषधियां प्रयोजित की जाती हैं।

जब वृक्क या मूत्राशयमें अश्मरी, शर्करा, सिकता आदि पदार्थ संग्रहीत हो जाते हैं, तब मूत्र परिमाणकी वृद्धि करानेके लिये शीतल मूत्रल औषधि दी जाती है।

मूत्र वृद्धि करानेके लिये सरल उपाय अधिक शीतल जलपान है। शरीर भी शीतल रखना चाहिये। ताकि जल मूत्रग्रन्थियों द्वारा निर्गत होकर मूत्र बढ़ जाय। इस उपयोगसे वृक्क उत्तेजित नहीं होते। इतर उपायोंमें रक्तसंचालन गति बढ़ जाती है। परन्तु उनमें भी शरीर शीतल रखना चाहिये, और प्रस्वेद वृद्धि नहीं कराना चाहिये।

सूचना मूत्रल औषध प्रयोगकालमें प्रदाह हो, तो प्रदाहनाशक चिकित्सा द्वारा उसका दमन करना चाहिये।

जिन पदार्थोंके सेवनसे अधिक प्रस्वेद या अधिक पतले दस्त हों, उनका सेवन नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि, इतर यन्त्रोंकी क्रियाका ह्रास न करानेपर मूत्रल गुण पूर्णांशमें नहीं मिल सकता।

अफीम सेवन करनेपर मूत्रल औषधियोंकी क्रियाका ह्रास होता है। तार्पिन तैल और फास्फरस आदि औषधियोंसे वृक्कप्रदाहकी प्राप्ति होती है। अतः वृक्कप्रदाह कारक औषधियोंका सेवन नहीं करना चाहिये।

(२९) मूत्रविरेचन।

मूत्रकृच्छ्रनाशक—Hydragogue diuretics—बलात्कारसे मूत्र उत्पन्न करा मूत्राशय और मूत्रमार्गके प्रदाह, विषसंग्रह, अश्मरीद्रव्यसंग्रह और इतर कारणोंसे उत्पन्न मूत्रावरोधको दूर करनेवाली औषधियां।

मूत्रविरेचनीय कषाय—पाषाणभेद, गोखरू, वसुक, (अर्कपुष्प), वशिर (सूरज मुखी पुष्प), पाषाणभेद, दर्भ कुश, काश, गुन्द्रा (शर), इत्कट (इक्कड़, वन जयन्ती), ये १० औषधियां चरक संहितामें लिखी हैं।

सुश्रुताचार्यने परूषकादि गण और पञ्चतृणमूलको मूत्रदोषहर कहा है। परूषकादि वर्गका वर्णन नं० ५१ वाह शामक प्रकरण में किया जायगा।

और औषधियां—सफेद चन्दन, शीतल मिर्च, वंशलोचन, अरनी, अलसी, छोटी इलायची, गंधाबिरोजा, कुलथी, गूगल, कपासबिनौला, छोटी दूधी, सागके बीज, मकोयके बीज आदि।

विविध कारणोंसे उत्पन्न मूत्रावरोधमें भिन्न भिन्न चिकित्सा की जाती है।

अश्मरीजन्य मूत्रावरोध होनेपर अश्मरीद्रावक औषधियां (Lithontriptics or Antilithics) दी जाती हैं। दूध-जलकी लस्सी, गोखरू, कुलथी यवक्षार, शिलाजीत लोबान सत्व, पाषाणभेद, मौलसरी पुष्प, पद्मतृण, केलेका क्षार, संगयहूद आदि।

मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, तो जवाखार केलेका क्षार, शिलाजीत, संगयहूद आदि तथा प्रतिक्रिया क्षारीय होनेपर लोबान सत्व, कुलथी, नीबू सत्व, इमली सत्व, पद्मतृण आदि लाभदायक होते हैं।

अश्मरीजन्य मूत्रावरोधमें विशेषतः स्निग्ध और मूत्रल औषधिकी योजना की जाती है। एवं निवाये जलमें बैठाना एक स्थानमें शूल हो, तो एक स्थानपर हींगका लेप, मूत्राशयमें अवरोध हो, तो पलाश पुष्पका लेप या पुल्टिस आदि सहायक चिकित्सा की जाती है।

मूत्राशयप्रदाहसे मूत्रकृच्छ्रता हुई हो, तो मूत्रल औषधियां दी जाती हैं। सुजाकके हेतुसे मूत्रकृच्छ्र हो, तो चन्दनका तैल, शीतल मिर्च या मस्तुमता साधक गन्धाविरोजा आदिकी योजना करनी चाहिये।

विसूचिका रोगकी प्रथमावस्थामें मूत्रस्तम्भ होनेपर मूत्रोत्पत्ति करानेवाली औषधियां—यवक्षार, शोरा, संगयहूद आदि अति सूक्ष्म परिमाणमें देनी चाहियें, एवं वृक्कोंपर नारायण तैलकी मालिश और उष्ण जलसे सेक तथा मूत्राशयप्रदाह निवारणार्थ शोरा और केवड़ाको जलमें घिसकर मूत्राशयपर लेप भी करना चाहिये। अन्तिमावस्थामें तो रक्तके भीतर जल और लवणकी अति कमी हो जाती है। इस हेतुसे मूत्रोत्पत्ति नहीं होती। इस अवस्थामें लवण जलका अन्तःक्षेपण करना चाहिये।

अश्मरी जन्य मूत्रावरोध होनेपर सुश्रुत संहिता कथित निम्न वीरतर्वादि गणकी औषधियां विशेष लाभप्रद मानी गई हैं।

वीरतर्वादि गण—वीरतरु (वेलतरु) नीले फूलका पियाबांसा, सफेद फूलका पियाबांसा, दर्भ-मूल, कांस, नागरमोथा, नरसल, कुशकी जड़, कासकी जड़, पाषाणभेद अरणीकी छाल, मोरटा (ईखकी जड़ या अंकोल पुष्प), वसुक (बक पुष्प), वसिर (अपामार्ग या सूर्यावर्त), भल्लूक (श्योनाक), कुरंटक (लाल फूलका पियाबांसा), इन्दीवर (स्थलपद्म), कपोतवंका (ब्राह्मी) और गोखरू ये १९ औषधियां कही हैं। यह गण वातविकार, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातका नाश करता है।

मूत्रकी अम्ल प्रतिक्रियाकी वृद्धि करनेवाली औषधियों—अम्ल लवण-साइट्रिक एसिड टारटरिक एसिड आदि, एमोनियम क्लोराइड, केलशियम क्लोराइड, नान अम्ल (बेन्ज़ोइक एसिड), सोहागेका अम्ल (बोरिक एसिड), ब्रेम्पि

सिलिक एसिड, चावल, कुलथी, अम्ल अनारदाने, कच्ची इमली, आदि खट्टे या ऐसे फल आदि।

मूत्रकी क्षारीय प्रतिक्रियाकी वृद्धि करानेवाली औषधियाँ—नमक, सोडा, पोटास, यवक्षार, केलेका क्षार, अपामार्ग क्षार आदि। मुक्ता प्रवाल, शुक्ति, शंख, वराटिका और चूना भी मूत्रकी अम्लताका ह्रास कराते हैं।

(३०) मूत्रसंग्रहणीय।

मूत्ररोधक—एण्टीडाइयूरेटिक्स—(Antidiuretics)

जो द्रव्य बारबार और अति मात्रामें होनेवाले मूत्रको रोके (कम करावे) उसे मूत्ररोधक कहते हैं।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय—जामुन, आम पिलखन, वट, कपीतन (अम्बाड़ा), गूलर पीपल, भिलावा, अश्मन्तक (कोयदार वृक्ष), सोमवल्क (खैर), ये १० औषधियां चरकसंहितामें कहीं हैं।

और औषधियां—नागभस्म, जसद भस्म अफीम, तगर आदि। लवण विरेचन, अथवा भेदन करानेवाली औषधियां, सूर्यके तापका सेवन, परिश्रम और मार्गगमन आदिसे भी उस समयके लिये मूत्रोत्पत्ति कम हो जाती है। तैल और तैली पदार्थ—बादाम, मूंगफली तिल, काजू आदि तथा अजवायन, पिप्पलीमूल आदिके सेवनसे भी मूत्रोत्पत्तिका ह्रास होता है।

जब प्रथमावस्थामें वृक्ककी रक्तवाहिनियां आकुञ्चित होनेसे मूत्रोत्पत्ति नहीं होती, तब डाक्टरोंमें पिट्युटरिनका अन्तःक्षेपण करते हैं। इस तरह पोषणिका ग्रन्थिके सत्वका प्रयोग वीर्यावस्थामें करते हैं।

तार्पिन तैल, केन्थारिडिन और फोस्फरस मूत्रपरिमाणका ह्रास कराता है किन्तु इस उद्देश्यसे ये व्यवहृत नहीं होतीं। क्योंकि अधिक मात्रामें प्रयोग करनेपर वृक्कप्रदाह हो जाता है।

वंग भस्म, जसद भस्म और कषाय रसवाली औषधियां वृक्कपर अवसादक गुण उत्पादक कर शनैः शनैः मूत्रोत्पत्तिको कम कराती हैं।

(३१) शोथहर।

श्वयथुहर—एण्टहाइड्रोपिक्स—Anthydropics।

जो औषधियां रक्तरसके संग्रहज शोथको (आयुर्वेद कथित निज श्वयथुको) दूर करे, उसे शोथहर कहते हैं। इसके २ प्रकार हैं। १ स्थानिक २ सार्वाङ्गिक। इसकी चिकित्सामें मुख्य २ बातोंपर लक्ष्य दिया जाता है।

१ रक्तरसके दूरीकरणार्थ पुनर्नवा, काकमाची, निसोथ, हरड़, रेवन्दचीनी आदि मूत्रल, विरेचन और घर्मकारक औषधियोंका सेवन।

२. शोथोत्पादक कारण शमनार्थ—हृदय, यकृत, वृक्क, इनमेंसे जिसकी विकृति हुई हो, उसके अनुरूप उपचार करना।

इनके अतिरिक्त रक्तपौष्टिक और रक्तसंस्थापौष्टिक लोह, मण्डूर, सुवर्ण, अभ्रक, मुक्ता, प्रवाल आदिका सेवन कराना चाहिये। एवं अग्निप्रदीप्तकर स्रोतोंकी शुद्धि करनी चाहिये।

चरक संहितामें दशमूलको शोथहर लिखा है। यह वातवाहिनियोंके दोषरा दूर कर हृदय आदि इन्द्रियोंको लाभ पहुँचाता है।

सुश्रुतसंहितामें विदार्यादि गण और करमर्दादि गणको शोथहर दर्शाया है।

विदार्यादि गण—विदारी (विदारीकंद) सारिवा, हल्दी, गुडूची अजशृंगी (मेंढासिंगी), ये ५ वल्ली पञ्चमूल रक्तपित्त, तीनों दोषोंसे उत्पन्न शोथ, सब प्रकारके प्रमेह और शुक्रदोषके नाशक, विशेषतः कफ प्रधान शोथ नाशक हैं।

करमर्दादि गण—करौंदा, गोखरू पियाबांसा, पलनखी (कसडकपासी) और शतावरी, ये ५ कण्टक पञ्चमूल कफवातप्रधान शोथ, रक्तपित्त, प्रमेह तथा शुक्र दोषके नाशक हैं।

और औषधियाँ—पुनर्नवा, वच्छनाग, कलिहारी रोहिषा, देवदारू, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, दन्तीमूल, मकोय, पाठा, यवक्षार, शिलाजतु, हरड, परवलकी जड़, कुटकी आदि।

निज शोथके अतिरिक्त जन्तुके काटने आगन्तुक चोटसे या व्रण होनेपर जो शोथ होता है, उन सबको आगन्तुक शोथ कहा गया है। उसका वर्णन आगे नं० ४१ व्रणशोधन में किया जायगा।

(३७) जन्तुघ्न-कृमिघ्न।

एन्थेलमिण्टिक्स-वर्मिफ्यूजस-वर्मिसाइड्स।

Anthelmintics—Vermifuges—Vermicides।

पचन संस्थागत—*नाना प्रकारके कृमियोंको मारने या गिराने तथा उनसे* उत्पन्न होनेवाले विकारोंको नष्ट करनेवाली (किन्तु शरीरको हानि न पहुँचानेवाली) औषधियोंको कृमिघ्न संज्ञा दी है।

सुश्रुत संहितामें अर्कादि गण, सुरसादि गण, मुष्कादि गण और लाक्षादि गणको कृमिघ्न लिखा है। इनमेंसे अर्कादि गण नं० ४१ व्रणशोधनमें, सुरसादि गण नं० ९ कफदोषघ्नमें मुष्कादिगण नं० ३९ शिरोशामकमें तथा लाक्षादि गणको नं० ४१ व्रणशोधनमें देखें।

कृमिघ्न औषधियाँ—पारद, गन्धक, ताम्रल, हरताल, हिंगुल, मैनशिल, ..., अजवायन, पलाशके बीज, अनारके मूलकी छाल, अतीस, वायविडंग, काली

जीरी, कम्मी (वायपु या), मुश्किनाके बीज कपिला, हींग, कपूर, पोदीना, जंगली प्याज, भिलावा, कीवामारी, कौंचकी फलीके काँटे, गोकर्णी, कुचिला, डीकामाली, नीम, सम्हालू, मूसाकानी, गोखरू, अपामार्ग, थूहर, धतूरा, कपूर, नीलगिरी तैल, तार्पिन तैल मालगोगनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, पपीतेका रस, कड़ुवी जीरी सुपारी, यावची, पारसी यमानी (किरमाणी अजवायन जिसमेंसे सेन्टोनीन निकलता है), एरण्ड तैल आदि ।

मुख्य उदरकृमि —

१ गोल कृमि (गण्डूपदोपमा-महागुदा-केंचवे-सदृश Round Worms) ये कृमि छोटी और बड़ी आँतमें रहते हैं । इनमें ३ जाति हैं ।

२ जंजीर सदृश लम्बे (पृथुवप्ननिमा-उदरवेष्ठा—१ इन्चसे २४ फीट तक लम्बे कद्दू दाना-Tape worms) ये छोटी आँतमें रहते हैं । इस प्रकारके कृमियोंमें मुख्य ३ जाति हैं ।

३ सूक्ष्म कृमि (रूढ धान्यांकुर-Flukes)—इस प्रकारके कृमियोंमें अनेक जाति हैं । सूत्र कृमि और बिश कृमि मुख्य हैं ।

गोल कृमिके लिये बूँटी, सेन्टोनीन, खुरासानी अजवायन, कोलकन्द, सोमा तार्पिन तैल आदि ।

जंजीर सदृश लम्बे कृमिके लिये कपिला, अनार मूलकी छाल, तार्पिन तैल सुपारी, कद्दू बीजका मगज आदि ।

सूक्ष्म कृमियोंके लिये फिटकरी, लोह घटित औषधि, चूनेका जल, नीलगिरी तैल वायविडंग, कीवामारी, निर्गुण्डी, गोखरू, मूसाकानी, काली मिर्च, डीकामाली कौंचकी फलीके काँटे, नागरमोथा, बंगभस्म, नमकीन जलकी बस्ति, त्रिफला, अतीस, कूठ, कपूर, केसर, अजवायन इन्द्रजौ, कड़ुवी तुम्बी, कुचिला, पलाश बीज, सत्यानाशीकी जड़, एरण्ड तैल आदि इनके अतिरिक्त एरण्ड तैल, तार्पिन तैल हींग, फिटकरी मिश्रितजल आदि औषधियोंकी एनिमा भी दी जाती है ।

कृमि नष्ट होकर फिर उत्पत्ति न होनेके लिए हिंगुल, सुवर्ण या लोह घटित और कड़ुवी-आमाशय-पौष्टिक (दीपन-पाचन) औषधि या शरायका सेवन कराना चाहिये ।

कृमिरोगकी उत्पत्ति, निदान और चिकित्सा आदिका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्डमें किया गया है ।

डाक्टरी विभाग —

(१) विशेष कृमिघ्न (Specific Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे कृमि निपात होकर मर जाते हैं । फिर विरेचन देकर मृत कृमियोंको निकाल दिया जाता है ।

उदाहरणार्थ गोल कृमिके लिये सेण्टोनीन, चेनोपोडियम तैल कद्दूदानाके लिये मेलफर्न, हूकवर्मके लिये अजवायन फूल, थेटानेफयाल, सूत सदृश छोटे कृमियोंके लिये लवण जलकी बस्ति।

(२) यान्त्रिक कृमिघ्न (Mechanical Anthelmintics)—इस प्रकारका औषधियोंके सेवनसे कृमियोंके शरीर छिद जाते हैं, और फिर वे गिर जाते हैं जिससे वे अन्त्रमें नहीं रह सकते। संगमरमर, कलईका मिश्री मिला चूर्ण, कौंचकी फलीके बाल इत्यादि।

कलई १ तोलेके पतले पतरे करा, ५ तोले मिश्री मिलाकर खरल करें। मात्रा १—१ माशा दिनमें दो बार जलके साथ देवें। यूनानी हकीम इस प्रयोगको विशेष बरतते हैं।

(३) विरेचन कृमिघ्न (Purgative Anthelmintics)—कलिंजा इन्द्रायण उसारेरेवन्द आदि तीव्र विरेचन औषधियोंके सेवनसे सब कृमि गिर जाते हैं, परन्तु बहुधा उनमें से कुछ जीवित रह जाते हैं।

(४) कृमिविकारघ्न कृमि उत्पत्ति निवारक (Preventive Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियां अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाका संशोधन करती हैं। जब अपथ्य आहारका अधिक सेवन होता है, तब यह कला दूषित हो जाती है; फिर उसमेंसे अधिक श्लेष्मा निकलता रहता है। ऐसी स्थितिमें कृमियोंके लिए अनुकूल उत्पत्तिस्थान और निवासस्थान मिल जाता है। यदि इस कलाका संशोधन हो जाय, तो फिर कृमिकी उत्पत्ति नहीं होती। इसका वर्णन आगे नं० १४ में किया जायगा।

सेण्टोनीन आदि कतिपय कृमिघ्न औषधियोंकी योग्य मात्रासे कृमि नहीं मरते, किन्तु उनके स्वापजनक प्रभावसे बेहोश हो जाते हैं। यदि उनको शीघ्र न निकाला जाय, तो फिर वे स्वस्थ हो जाते हैं। इस हेतुसे इन औषधियोंके पश्चात् विरेचन देना पड़ता है। जिससे कृमि गिर जाते और औषध विष नष्ट हो जाता है।

सेण्टोनीन नेत्रपटल (Retina) को हानि पहुँचाता है। इस हेतुसे इसका प्रयोग रात्रिको सोनेके समय किया जाता है।

कितनी ही कृमिघ्न औषधियां—मेलफर्न, अजवायन पुष्प, कार्बन टेट्राक्लोराइडका सेवन प्रातःकालका खाली विरेचनके साथ कराया जाता है एवं इनके प्रयोगके पहिले अन्त्रमेंसे आमको निकाल देनेके लिये भी विरेचन दिया जाता है।

लवणसह कृमिघ्न औषधिका प्रयोग करनेपर कद्दूदाना और अंकुश कृमि (Hook Worms) अन्त्रश्लेष्मा द्वारा अपना संरक्षण नहीं कर सकते किन्तु इससे रोगीको कुछ क्षीणता आती और औषधि शोषण होनेमें सहायता मिल जाती है, अतः लंघन गम्भीर न होना चाहिये।

(३३) उदरकृमिघ्न और विरेचन।

परगेटिव एन्थेलमिन्टिक्स—Purgative Anthelmintics।

उदरके कृमियोंको मारने और विरेचन करा कर बाहर निकालनेवाली औषधिया—कपिला, इन्द्रायण, उसारेरेवन्द (रेवन्दचीनी सत्व आदि।

कपिला कृमिनाशक और विरेचक है। मात्रा २ से ८ माशे। नैनीताल आदि पहाडो स्थानमें इसकी अधिक उत्पत्ति होती है। कपिला विशेषतः गुडके साथ मिला कर दिया जाता है, खाने पर कुछ बेचैनी रहती है परन्तु वमन नहीं होती। विशेषत यह गोलकृमि और सूक्ष्म कृमिको बाहर निकालनेके लिये उपयोगमें लिया जाता है।

इन्द्रायण—अति विरेचन कृमिघ्न, जलोदरनाशक है। इस इन्द्रवारुणीमें मुख्य तीन जाति है। इसका जुलाब लेनेपर उदरमें दर्द बहुत होता है। एव अधिक मात्रामें लेनेपर आंतोमें दाह शोथ हो जाता है। (अगुली पकने पर भयकर वेदना होनेपर इन्द्रायणके फलमें छिद्र कर उसमें अंगुली प्रवेश करा देनेसे वेदना कम हो जाती है। जलोदर और शोथ रोगीको इन्द्रायणका जुलाब देनसे दस्तमें बहुत पानी निकल कर व्याधिबल कम हो जाता है)।

उसारेरेवन्द (Gamboge)—अतिविरेचन, कृमिघ्न। मात्रा—१ चौथाई से १ रत्ती। यह नष्टार्तव और उदर रोगको दूर करता है। इसके सेवनसे विरेचनके साथ वमन और उदरमें वेदना उपस्थित होती है। सोठ और खारके साथ मिलाकर सेवन करनेपर ये उपद्रव कम होते हैं। अधिक मात्रामें सेवन करनेपर अन्त्रप्रदाह और विषलक्षण प्रकाशित होते हैं। इसके सेवनसे मूत्रकी वृद्धि होती है, और इसका वर्ण मूत्रमें शोषित हो जाता है। यह कृमिनाशके लिये लाभदायक है।

(३४) कृमि विकारघ्न

प्रिवेन्टिव एन्थेलमिन्टिक्स—Preventive Anthelmintics।

कृमियोंकी उत्पत्तिके कारणरूप रक्त आदि धातु और आमाशय अन्त्र आदिमें रहे हुए सूक्ष्म बीजको नष्ट करनेवाली औषधियाँ—पारद, गन्धक, हिंगुल, सोमल, हरताल, सुवर्ण, मौक्तिक प्रवाल शिलाजीत, मिलावा, कुचिला, इन्द्रजौ, सफेद या चिरायता, नीम, हींग, वच, कीडामारी, कीडामारी अतीस, पलाशबीज कडुवी तोरी कोशातकी औषधियाँ, कासीस, अभ्रक, अजवायन, गोमूत्र, शिलाजीत, वायविडङ्ग और परवल आदि कडुवे रस प्रधान औषधियाँ। इसका वर्णन पहिले न० ३२ उदर कृमिघ्नमें किया गया है।

पलाश बीज—मृदु विरेचन कृमिनाशक और रसायन, बाहर लगानेपर सतंचक है। नीबूके रसमें पिसकर पामा, दद्रु और इतर चर्म रोगपर बाह्य कृमिघ्न (Insecticides) गुणके लिये लगाया जाता है।

डाक्टरी मतानुसार मात्रा १० से २० ग्रेन है। खानेके लिये पलाश बीजको जल या गोमूत्रमें भिगोकर ऊपरकी छाल निकाल देवें। केवल भीतरकी गिरी लेनी चाहिये। गोल कृमियोंके लिये यह लाभदायक है। यह सेन्टोनिनके प्रतिनिधि रूपसे व्यवहृत होती है।

कीटमारी (कीडामारी)—इसको कट्टू भी कहते हैं। यह कड़वी, उष्णवीर्य, ज्वर, शोथ और कृमिको नाशक है। अग्नि प्रदीप्त करती है और आहारपर रुचि उत्पन्न करती है। शोथपर इसके रसका लेप होता है। बालकोंकी नाभिपर इसके पत्ते बांधनेसे मलशुद्धि हो जाती है। मासिकधर्म लानेके लिए और प्रसवकालमें गर्भाशयमें सङ्कोच करानेके लिये इसका उपयोग होता है। कीडामारीका रस दूधमें मिलाकर उपदंशके घावपर लगाया जाता है, एवं सुजाकके रोगीको अफीम मिलाकर पिलाया जाता है। यह वृश्चिक विषपर भी लाभदायक है।

हिंगुपत्री (डीकामाली)—उष्ण, कटु तीक्ष्ण, दीपक, कफघ्न, वातहर, विषघ्ननाशक और वेदनाहर है। बाजारमें इस वृक्षका गोंद मिलता है यही औषध रूपसे व्यवहृत होता है। इसके सेवनसे आन्त्रकी शुद्धि होकर पचन क्रिया प्रबल बनती है। मात्रा आधसे दो रत्ती।

अनेकवार मस्तक, केश, रोम और बाह्य त्वचापर कृमि, जूं, चामजूं आदिकी उत्पत्ति हो जाती है। उस समयपर बाह्य कृमिघ्न (Insecticides) औषधियोंका उपयोग किया जाता है। इस प्रकारमें कायफल, कड़वी जीरी वच, मिर्च, नोमतैल, कमलकी जड़, तमाखू, गन्धक, चूनेका जल, अफीम, नीलगिरी तैल, फिटकरीका जल, नौसादरका जल, धतूरेका रस आदि अनेक औषधियां व्यवहृत होती हैं।

(३४) अपक्षयरोधक और कीटाणुनाशक

एण्टीसेप्टिक्स, डिसिन्फेक्टण्ट्स और पेरासाइटिसाइड्स।

Antiseptics, Disinfectants and Parasiticides.

अपक्षयरोधक (Antiseptics)—जो द्रव्य सूक्ष्म कीटाणुओंकी वृद्धिका अवरोध करे अथवा उनको प्रगतिमें विलम्ब करे; फैलनेमें प्रतिबन्ध करे, किन्तु नष्ट न कर सके, उनको अपक्षयरोधक संज्ञा दी है।

संक्रामक कीटाणुनाशक (Disinfectants or Germicides) इस प्रकारके द्रव्य रोगोत्पादक कीटाणु, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एक व्यक्तिसे दूसरोंपर आक्रमणके हेतु होते हैं उनको नष्ट करते हैं।

दुर्गन्धहर (Deodorizers or deodorants)—द्रव्य दुर्गन्ध और अप्रिय गन्धको दूर करते हैं। ये द्रव्य भी कीटाणुनाशक माने जाते हैं।

परोपजीवी कृमिघ्न (Parasiticides or Antiparasitics)—जो कृमि अन्य जीवोंके आधारसे अपना जीवन निर्वाह करते हैं, उनको परोपजीवी संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ जू, खटमल, उदरकृमि आदि)। उन कृमियोंके नाशक द्रव्यको परोपजीवी कृमिघ्न कहते हैं। इस प्रकारके द्रव्योंके बाह्य प्रयोगोंका वर्णन आगे नं॰ १६ कुष्ठघ्न प्रकरणमें किया जायगा।

आमाशयपर लाभदायक औषध वातादि दोषोंकी मल रूप विकृति या आमाशय आदिमें कीटाणु उत्पन्न होकर विविध रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं, इन विकृति या कीटाणुओंकी वृद्धिको रोकनेवाली औषधियां—पारद, गन्धक, रसकपूर, सुवर्ण भस्म, नीलाथोथा, ताम्र भस्म, कासीस भस्म, मौक्तिक, शुक्ति, प्रवाल, शंख, वराटिका, सोहागा, चूना, नीम, कुचिला, वच्छनाग, अजवायनके फूल, पीपरमेण्टके फूल, नीलगिरी तैल, लौंग, दालचीनी और सौंफ आदिके तैल तथा मिर्च, सोंठ, पीपल आदि दीपन-पाचन औषधियां।

यद्यपि आमाशयका अम्लस्राव अनेक प्रकारके सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। भोजनके साथ निगलनेमें आये हुए कितनेक व्याधिकर कीटाणुओं (स्ट्रेप्टो कोकाई तथा प्रवाहिका, मधुरा विसूचिका आदिके कीटाणुओं) को भी न्यूनाधिक अंशमें नष्ट कर देता है, तथापि आमाशयिक अम्ल अपूर्ण होनेसे या निर्बल होनेपर आमाशयमें आमोत्पत्ति सूक्ष्म कीटाणुओंकी उत्पत्ति होकर विविध विकारोंकी उत्पत्ति होती है। फिर अपचयरोधक और कीटाणुनाशक औषधिका सेवन करने की आवश्यकता होती है।

अन्य चिकित्सामें अनेक रोगोंकी उत्पत्तिको रोकने और उत्पन्न रोगोंमें कीटाणु नाशके हेतुसे औषध प्रयोग किया जाता है। यदि भुक्त द्रव्यके आम और विदाह (फेनीभवन क्रिया या सेन्द्रिय विष) की उत्पत्तिके दमनार्थ प्रयोग किया जाता है, तो इस कार्यके लिये आमाशयकी उग्रताका दमन करके वमनका निवारण करने वाली औषधियां व्यवहृत होती हैं। गन्धक, गन्धकका तेजाब, प्रवाल, शुक्ति, शंख, वराटिका, कासीस भस्म और इतर आमाशयप्रदाहशामक औषधियां हितकारक हैं।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोगका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' के प्रथम खण्डमें और वमन रोगका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है।

अन्त्रपर लाभदायक औषधियां—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन अजमोद, अजवायन का फूल, पीपरमेण्टका फूल, सेलिसिलिक एसिड ताम्र, हिंगुल, पारद, गन्धक, इन्द्रजव इतर और विविध विरेचन और ग्राही औषधियां। घृत, तैल आदिके आश्रयमें रहनेवाले कितनेक कीटाणु आमाशयके अम्लरसमें नष्ट नहीं होते और अन्त्रके भीतर क्षारीय पित्त मिश्रणके योगसे नष्ट हो जाते हैं। कभी कभी आमाशय रसकी तीक्ष्णता कम होने पर आमविषकी उत्पत्ति हो जाती है। यदि यकृत् पित्त पूरी मात्रामें

कभी-कभी देहपर छोटी-छोटी पिटिका निकलना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। गर्भाशयके विविध रोगोंमें यह प्रयोजित होता है। मूत्रमें मूत्राम्ल (Uric Acid) बढ़नेपर उसे द्रावीभूत करानेके लिये यह अति उपयोगी है। पारद सेवनसे मुँह आनेपर इसके कुल्ले कराये जाते हैं। एवं मुखपाक (व्रण) पर शहदके साथ मिलाकर लगाया जाता है। पूय-प्रमेह और प्रदररोगमें इस औषधिका उपयोग उत्तर बस्तिरूपसे किया जाता है। विसर्पमें और स्तन फटनेपर शहदके साथ मिलाकर इसका लेप किया जाता है। स्वरभंगमें मुँहमें रखनेके लिये दिया जाता है।

सोहागामें गन्धक द्राव मिलाकर बोरिक एसिड (Boric Acid) बनाया जाता है। इसे डाक्टरीमें अत्यधिक उपयोगमें लेते हैं। यह सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट औषधि है। इसमें यह विशेष गुण है, कि प्रयोग करनेपर शारीरिक घटकोंपर उग्रता उत्पन्न नहीं करता। अधिक मात्रामें सेवन करनेपर आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह हो जाती है, फिर भी विष क्रिया नहीं दर्शाता। मात्रा ५ से १५ ग्रेन। इसका शस्त्र चिकित्सामें अत्यधिक व्यवहार होता है। एवं व्रण आदिपर इसके स्वेद, द्रव, मलहम आदि प्रयोगोंको उपयोगमें लिया जाता है। पूयमुक्त चक्षु प्रदाह स्त्रियोंके जननेन्द्रियके समीप खूजली, कण्ठरोहिणी, मुख, नासिका, कण्ठ आदिमें व्रण और विविध चर्मरोगमें स्थानिक प्रयोगरूपसे उपयोगमें आता है। मूत्राशयप्रदाहमें ५ रत्ती मात्रामें दिनमें २ से ३ बार खानेको दिया जाता है।

(नं० ३६) कुष्ठघ्न।

एण्टिपेरेसाइटिक्स—Antiparasitics।

जो औषधियां त्वचापर उत्पन्न हुए विकार और कुष्ठ रोगके उत्पादक विषको नष्ट करें, उनको कुष्ठघ्न संज्ञा दी है।

कुष्ठघ्न गण—चरक संहितामें खैरछाल, हरड़, आँवला, हल्दी, भिलावा, सप्तपर्ण (छतौनेकी छाल), अमलतासके पत्ते, सफेद कनेरकी जड़, वायविडङ्ग, चमेलीके पत्ते, ये १० औषधियां लिखी हैं।

इनके अतिरिक्त चरक संहिता सूत्रस्थान तृतीय अध्यायमें कुष्ठहर अनेक सिद्ध प्रयोग दर्शाये हैं। जिनमें अनेक औषधियां कही हैं।

सालसारादि गण साल वृक्षका सार, अजकर्ण (सालभेद), गैर, सफेद खैर, उदुम्बर, सुपारी, भोजपत्र, मेंढासींगी, तिनीश, सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, शीशम शिरस असन (विजयसार), धव, अर्जुन, ताड़, सागवान, करंज, करंजुवा, अश्वकर्ण (सालद्रुम भेद) अगर, पीतचन्दन। इन २१ औषधियोंको सालसारादि गण कहते हैं। ये गण कुष्ठ, प्रमेह और पाण्डुका नाश करता है। तथा कफ-मेदका शोषण करता है।

इनके अतिरिक्त सुश्रुत संहितामें आरग्वधादि गण, लाक्षादि गण, त्रिफला

और त्रिकटुको कुष्ठहर लिखा है। आरग्वधादि गणका वर्णन नं० ३७ कफघ्नमें तथा लाक्षादि गणका वर्णन नं० ४३ रक्तशोधनमें देखें।

त्रिफलाको कफपित्तहर, प्रमेहनाशक, कुष्ठविनाशक, चक्षुष्य, दीपन और विषमज्वरनाशक कहा है। पुनः आगे सर्वरोगहर और वयस्स्थापन गुण भी दर्शाया है।

त्रिकटुको कफ, मेद, प्रमेह, कुष्ठ, त्वचारोग, गुल्म, पीनस, अग्निमान्द्य आदिका नाशक तथा अग्निप्रदीपक कहा है।

और औषधियाँ—सोमल, हरताल, पारद, गन्धक, रसकपूर, दालचिकना, सीसा (नाग), सर्पविष, लोहभस्म, चालमोगराका तैल, पीला चम्पा, ठरबा, चोप चीनी, गोखर्वी, सत्यानाशी, सरसोंका कसौंदी, नीम, रक्तशोधनार्थ निशोथ आदि विरेचन द्रव्य रसके शोधनार्थ रसकपूर, नाग (सीसा) और चना आदि।

आयुर्वेदमें कुष्ठके मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग हैं। मुख्य कुष्ठ (Leprosy) में भी वात, पित्त, कफ, वातपित्त, श्लेष्मपित्त, वातकफ, और त्रिदोषके प्राधान्यके भेदानुसार ७ भेद किये हैं। इनको क्रमशः कपाल, औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरिक, सिध्म और काकण संज्ञा दी है। सबके स्वरूप, लक्षण और परिणाममें भेद है।

क्वचित् यह कुष्ठ रोग उपदंश रागजनित विष रक्तमें लीन होनेपर उत्पन्न हो जाता है। इस कुष्ठमें जाति या अवस्था और लक्षणके अनुरोधसे भेद नहीं होता। इस उपद्रव रूप कुष्ठके लक्षण सब रोगियोंमें बहुधा समान ही होते हैं।

रोग जीर्ण होनेपर गलितकुष्ठकी प्राप्ति हो जाती है। प्रारम्भमें कान, नाक, गाल आदि पर लाल चकते होते हैं। फिर हाथ-पैरकी अँगुलियों पर शोथ आता है। पश्चात् संवेदना शक्तिका शनै शनै लोप हो जाता है। ऐसे समय पर अग्नि स्पर्शका भी पूरा बोध नहीं होता। तत्पश्चात् स्थान-स्थानपर शोथ फूटने लगता है, उसमेंसे पीप निकलने लगता है। संपूर्ण शरीर सूज जाता है। मुखमण्डल भयानक बन जाता है। अन्तमें हाथ-पैरकी अँगुलियां टूट-टूट कर गिरने लगती हैं।

कुष्ठ रोगमें कतिपय चर्मकुष्ठ, किटिम, विपादिका, अलसक, दद्रुमंडल, चर्मदल, पामा, कच्छु, विस्फोटक, शतारु, विचर्चिका, ये ११ उपकुष्ठ (Diseases of the skin) हैं। इन सबका अधिक विष अधिक गहराईमें नहीं जाता। इसके कीटाणु विशेषतः त्वचामें रहते हैं। इस हेतुसे डाक्टरी ग्रन्थकारोंने इन सबको चर्म रोगके भीतर लिखा है।

सोमल, हरताल, पारद भस्म रसकपूर, दालचिकना, नाग भस्म, सर्पविष लोहभस्म, खदिर छाल, भिलावा और चोलमोगरा तैल, ये सब महाकुष्ठको नाश करनेवाली औषधियां हैं। शेष उपकुष्ठोंमें उपकारक हैं।

सोमल, हरताल, पारद भस्म रसकपूर, दालचिकना, ये उपदंश जनित कुष्ठमें भी लाभदायक हैं। पारद भस्म रसकपूर, दालचिकना आदि प्रथमावस्थामें हरताल भस्म द्वितीयावस्थामें और तृतीयावस्थाके प्रारम्भ समय तक लाभदायक हैं, और सोमल अति बढ़ी हुई अवस्थामें भी लाभ पहुँचाता है।

सर्पविषका उपयोग कुष्ठरोग पर यूनानीमें होता है, और परिणाम भी संतोषजनक होता है। अनेक हकीम मृत सर्पका मांस डाल कर ईख बोते हैं। फिर कुष्ठरोगीको खिलाते हैं। ऐसा सुना है कि इस प्रयोगसे लाभ पहुँचाता है, अनेक सर्पके मुँहमें सोमल, दालचिकना आदि औषधियाँ भर, संपुट कर भस्म बना लेते हैं। फिर गलितकुष्ठ रोगमें प्रयोजित करते हैं

महाकुष्ठ रोगपर चौलमोग्राके तैलका उपयोग वर्तमानमें अत्यधिक हो रहा है। डाक्टरी मतानुसार यह विशेष लाभदायक माना गया है।

नाग भस्म—रस, रक्त, मांस आदि सब दूष्योंको सबल बनानेमें लाभदायक है। दूष्य सबल बनने पर कीटाणु और विषकी वृद्धि रुक जाती है, इस हेतुसे इसे कुष्ठनाशक माना है।

भल्लातक पाकका उपयोग गलितकुष्ठको प्रथमावस्था (चकत्ता होने के प्रारंभ) में किया गया है। यह भी रोगके विषको जलाकर रोगीको नीरोग बना देता है।

गन्धक, मजीठ, चोबचीनी, सत्यानाशी, खदिर छाल, रक्तपर्ण, त्रिफला, मुलहठी, उशबा, अम्लतास आदि रक्तशोधक और त्वचा रोगहर हैं।

लोह भस्म रक्तमें घटे हुए रक्ताणुओंकी वृद्धि करती है, तथा मृत अणुओंको जला देती है। इस तरह रक्त सबल और निर्दोष होनेपर कुष्ठरोग सरलतापूर्वक दूर हो जाता है।

मुर्दासंग, रसकपूर, कपूर, सोहागा, नीलाथोथा, गन्धक, कत्था, गोमूत्र, दमाल, नारियली तैल, चक्रमर्द (पुंवाड़) के बीज, कसौंदी, नीम पञ्चांग, चमेलीके पत्र, मायफिकल, सत्यानाशी आदि औषधियां त्वचामें रहे हुए कीटाणुओंको नष्ट करती हैं।

(३७) कण्डूघ्न।

एण्टिसोरिक—एण्टिप्रुरीजिनस—एण्टिप्रुराइटिक।

Antipsoric—Antipruriginous—Antipruritic।

जो द्रव्य कण्डू (खुजली) का नष्ट करे और उसकी उत्पत्तिको रोके, उनको कण्डूघ्न, कण्डूनाशन और कण्डूरोधक कहते हैं।

खुजलीकी उत्पत्ति अधिक मिर्च, नमक, अधिक खटाई, या अधिक परिमाण में मधुर पदार्थका सेवन करने पर और कब्ज अधिकांशमें रहनेसे रक्तमें हानिकर विषका प्रवेश होनेपर होती है। इनके अतिरिक्त बाहरसे कीटाणुके प्रवेशसे भी होती है। कण्डू या कण्डूपीड़ित रोगीके वस्त्रका उपयोग करना, मुलाकात आदि रोगीसे पुनर मा

स्त्रीका समागम, गन्दे जलसे स्नान, गन्दे स्थानमें नंगे पैरसे चलना इत्यादि कारणोंसे भी कण्डूकी उत्पत्ति होती है। कण्डूकी उत्पत्तिमें जो हेतु हो, उसका त्याग करने पर औषधि सत्वर लाभ पहुँचा सकती है।

पारद, गन्धक, विरेचन औषधि, ये सब अन्न और रक्तमें अवस्थित विषको नष्ट करनेमें सहायक होती हैं। सरसोंका तैल, नीलगिरी तैल, निम्ब तैल और सत्यानाशीका तैल आदिकी मालिश और इतर औषधियोंके लेपसे चर्ममें रहे हुए कीटाणु या कृमि नष्ट हो जाते हैं। तमाखूका जल या गोमूत्रसे कण्डूवाले स्थानको धोना तथा गन्धक मिले जलके स्रोतमें स्नान करना आदि प्रयोगासे भी खुजली शमन हो जाती है।

कण्डूघ्न—चरक संहितामें चन्दन, जटामांसी अमलतास करंज, नीम, कुटजत्वक, सरसों, मुलहठी, दारुहल्दी और नागरमोथा, ये १० औषधियां लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें पटोलादि गण, एलादि गण तथा आरग्वधादि गण, कहा है। इनमेंसे पटोलादि गणका वर्णन नं० ९० में किया जायगा।

एलादि गण छोटी इलायची, तगर, कूठ, जटामांसी, रोहिषघास दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, प्रियंगु, रेणुका, नख्री, सीप, चण्डा (सुरफानी अजवायन), स्थौणेयक (ग्रन्थिपर्ण—थुनेर), श्रीवेष्टक (सरलवृक्ष—गूगल), दालचीनी, चोरक (ग्रन्थिपर्ण भेद), तेजबाला, गूगल, राल, शिलारस, कुन्दरू, अगर, स्पृक्का (कपूर बल्ली), खस, देवदारु, केशर, कमल केशर, ये २८ औषधियां। यह गण वात, कफ, कण्डू पिटिका, कोढ़ आदि रोगोंका नाश करता है और देहके वर्णको सुधारता है।

आरग्वधादि गण—अमलतास, मैनफल, गोपघण्टा (सुपारी भेद), कुड़ा, पाठा, कण्टकी (बड़ी कटेली), पाढ़ल, मूर्वा, इन्द्रजौ, सप्तपर्ण, नीम, पीले फूलका कटसरैया, नीले फूलका कटसरैया, गिलोय, चित्रक, शार्ङ्गेष्टा (काकजंघा—मतान्तरमें काकमाची), करंज, पूतिकरंज, परवलके पत्ते, चिरायता और करेला, ये २१ औषधियां। यह गण श्लेष्मप्रकोप, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन, कण्डू आदिका नाशक और व्रणका शोधक है।

(३८) विषवर्ग—Poisons

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु।
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च॥
ओजसो विपरीतं तत् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणैः।
वातपित्तोत्तरं नृणां सद्यो हरति जीवितम्॥
विषं हि देहं सम्प्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम्।
कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान्सहाशयान्॥
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते।

अ० हृ० उ० अ० ३५।

विषमें तीक्ष्ण, उष्ण, वीर्य, रूक्ष, विशद, व्यवायी, आशुकारी, लघु, विकाशी, सूक्ष्म और अव्यक्त रस आदि १० गुण अवस्थित हैं। इस विषका पाक न होनेसे इसे अपाकी कहा है। विष तीक्ष्ण आदि गुणों युक्त होनेसे ओजके विपरीत (नाशक) है। यह वात, पित्त आदि धातुओंको नष्ट कर तत्काल जीवनका हरण कर लेता है। पहिले रक्तको दूषित करता है। फिर कफ, पित्त, वात, इन दोषोंको और आशयोंको विकारी बनाता है। पश्चात् हृदयमें प्रवेश करके जीवनका उच्छेद करता है।

भगवान् आत्रेय कहते हैं कि, विष प्रथम रूक्षगुणके कारण वायुसे, उष्ण होनेसे पित्तको, सूक्ष्म होनेसे रक्तको तथा अव्यक्त रसके कारण कफको प्रकुपित करता है। आशुकारी होनेसे शीघ्र अन्नरसका अनुसरण करता है। व्यवायी होनेसे (सत्वर व्याप्त होनेका स्वभाव होनेसे) संपूर्ण शरीरमें शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है। तीक्ष्ण होनेसे मर्मघ्न (हृदय आदि मर्मस्थानोंको दूषित करनेवाला) होता है। विकाशी गुणके कारण प्राणोंको नष्ट कर देता है। लघु (चंचल) गुण होनेसे दुश्चिकित्स्य होता है। विशद गुणके कारण दोषोंमें सर्वत्र सहज में ही फैल जाता है।

सूक्ष्म होने से रक्तवाहिनियोंके मार्गमें सरलतापूर्वक प्रवेश करके रक्तको दूषित बना देता है। विषको प्राण नाशक कहा है क्योंकि, प्राण ओजपर अवस्थित हैं और यह ओजको नष्ट करता है इस हेतुसे इसे प्राणका नाशक कहा है।

विषको अष्टाङ्ग समह और अष्टाङ्ग हृदयकारने अपाकी (पाक न होने योग्य) कहा है अर्थात् उसकी गति सम स्थितिमें बनी रहती है। इस हेतुसे भी वह देहका विनाश कर देता है। मन्त्र और औषध बलसे विषको शान्त करने पर भी सुविधा मिलनेपर वह प्रकुपित हो जाता है।

विष वातप्रधान प्रकृतिके मनुष्योंकी देहमें प्रवेशित होनेपर जब वात स्थानमें पहुँचता है, तब वातप्रकोपके लक्षण तृषा, मूर्च्छा, व्याकुलता, मोह, गलग्रह (गला-पकड़ना), वमन और झाग आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तथा कफपित्तके लक्षण कम हो जाते हैं।

पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंके पित्तके आशयमें विषका प्रवेश होनेपर तृषा, कास, ज्वर, भ्रान्ति, भ्रम, दाह, तमःप्रवेश (अन्धेरा आना) और अतिसार आदि पित्त-प्रकोपके लक्षण प्रतीत होते हैं, तथा वातकफके लक्षण कम होते हैं।

कफप्रकृतिवालोंमें विष कफके स्थानमें पहुँचने पर श्वास, गलग्रह (कण्ठमें कफसे रोध होना), कण्डू, लार गिरना और वमन आदि लक्षण प्रधान रूपसे तथा वातपित्तके लक्षण गौण रूपसे होते हैं।

एवं वातप्रकोपक विष वातस्थानको, पित्तप्रकोपक विष पित्तस्थानको तथा कफ-प्रकोपक विष कफस्थानको अधिक प्रकुपित करता है।

विषका प्रवेश त्वचा, श्वासमार्ग, अन्नमार्ग, गुदा और मूत्रमार्गसे होता है।

कितनेक कीटाणु देहमें प्रवेशकर विषोत्पत्ति करते हैं। एवं अपचन आदिसे भी देहमें सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति हो जाती है।

विषद्रव्य—उग्र प्रकारके नव महाविष (कालकूट, हलाहल, ब्रह्मपुत्र, वत्सनाग हारिद्रक सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक और शृङ्गिक), सप्त उपविष (थूहरका दूध, धतूरा, कलिहारी, कनेर, सफेद गुञ्जा, अफीम, आकका दूध), कुचिला, जमालगोटा, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, गांजा, केसर, कपूर, नीलाथोथा, सर्प आदि जीवोंका जंगम विष आदि। स्थावर और जंगम आदि विषोंका विशेष विचार चरक संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ तथा सुश्रुत संहिताके कल्प स्थानमें किया गया है।

क्वचित् हानिकर औषधि, ऋतु-परिवर्तन, अपथ्य आहार, हितकर औषधिका अत्यधिक मात्रामें सेवन, अत्यधिक पथ्य भोजन, विरुद्ध भोजन, क्रोध, मानसिक चिन्ता, मलावरोध, मूत्रावरोध, पूयोत्पत्ति, दुष्ट संकल्प, प्रेरणा आदि कारणोंसे भी देहमें विषोत्पत्ति हो जाती है। एवं विषूचिका, ग्रन्थिज्वर, श्लैष्मिक ज्वर, आमवातिक ज्वर आदि व्याधि उत्पादक कीटाणुओंके प्रवेश होनेपर कीटाणु-सन्तानकी उत्पत्तिके साथ साथ विष वृद्धि भी होने लगती है। इनको छोड़ कर जो खनिज, उद्भिज और जान्तव मारक विष हैं, उनके परिणाम अनुरूप डाक्टरीमें उनको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है।

(१) क्षोभ उत्पादक (इरिटण्ट्स Irritants)।

(२) मोहजनक (नार्कोटिक्स Narcotics)।

(३) मोहजनक और क्षोभोत्पादक (नार्कोटिक इरिटण्ट्स और एकानार्कोटिक्स Narcotic-Irritants or Acro-Narcotics)।

(१) क्षोभोत्पादक अर्थात् उग्रता और प्रदाहकारक विष—सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, दालचिकना, आक, कनेर, भिलावा, कलिहारी, एलुआ, जमालगोटा, निशोथ, रेवन्दचीनी, कालादाना, उसारे रेवन्द, इन्द्रायण, चित्रकमूल शीतल मिर्च, पीपल, तार्पिन तैल आदि। इस प्रकारकी औषधियोंके लक्षण कुछ विलम्बसे प्रतीत होते हैं परन्तु तीक्ष्ण, विनाशकारी (Corrosive) विष—क्षारसत्व, तेजाब, दाहक क्षार, उग्र अम्ल आदिकी क्रिया तत्काल प्रकाशित होती है। इनके सेवनसे आमाशय आदिकी श्लैष्मिक कला कोमलीभूत होकर विनष्ट हो जाती है।

(२) मोहजनक विष—अफीम, धतूरा, गांजा, शराब, धतूरेकी गिरी, आदि। ये सब वातवहानाड़ियोंपर प्रभाव दर्शाते हैं। इनके सेवनसे प्रलाप बकवा, चक्कर, शिरदर्द, सौम्यता, तीव्र आक्षेप और फिर अचेतनाकी उत्पत्ति होती है।

(३) मोहजनक और क्षोभोत्पादक विष—कुचिला, कुचिला सत्व, वत्सनाग, कपूर, तमाखू, कड़वे बादाम आदि। इस प्रकारकी औषधियों द्वारा उग्रता और मोहजनकता (बेहोशी) दोनों परिणामोंकी प्राप्ति होती है।

क्षोभोत्पादक गुण नं० ९९, प्रतिक्षोभोत्पादक नं० १०० और मोहजनक नं० ७७, इन स्थानोंमें विशेष गुण वर्णन देखें।

विषनिर्णायक लक्षण—

१ बलक्षय (Collapse)—क्षोभोत्पादक और तीक्ष्ण दाहक विषका यह प्रधान लक्षण है। इतर प्रकारके विषोंमें शेषावस्था होनेपर बलक्षय होता है।

२ बेहोशी (Coma)—अफीम, शराब, क्लोरोफॉर्म आदिमें इस लक्षणकी प्राप्ति होती है।

३ उत्तेजना (Stimulation)—शराबकी प्रथमावस्थामें उत्तेजना आती है, एवं खुरासानी अजवायन, गांजा आदि औषधियोंसे अन्तिमावस्थामें उत्तेजना आती है।

४ नेत्र परिवर्तन—अफीमसे नेत्रकी कनीनिका आकुञ्चित होती है, और धतूरा, खुरासानी अजवायन, एट्रोपिया आदिसे प्रसारित होती है। शराबसे सामान्यतः नेत्रकी पुतली प्रसारित होती है किन्तु क्वचित् संकुचित भी हो जाती है।

५. त्वचा परिवर्तन—बेलाडोना सत्व (एट्रोपाइन) से त्वचा शुष्क हो जाती है। अफीम और वत्सनागसे चर्म आर्द्र हो जाता है, एवं अनेक विषोंकी बलक्षयावस्थामें भी त्वचा गीली हो जाती है।

६ निश्वासमें गन्ध—अफीम शराब, कार्बोलिक एसिड आदिके विषमें मूल पदार्थकी गन्ध निःश्वासमें निकलती रहती है। फास्फरस सेवनसे निश्वासमें लहसुन सदृश दुर्गन्ध आती रहती है।

७, मुखाभ्यन्तरस्थ श्लैष्मिक कलाविकृति—तेजाब और दाहक क्षारसे कोमलीभूत और श्वेत वर्णकी हो जाती है। अफीम, गांजा, एट्रोपिन आदिसे मुखमें शुष्कता आ जाती है।

८ वमन—क्षोभोत्पादक विषसे वान्त पदार्थ रक्त मिश्रित कहीके चूर्ण सदृश वर्णका हो जाता है। फास्फरससे वमन काली होती है। सोमलमें वान्तद्रव्य हरा-सा और क्वचित् रक्तमिश्रित होता है, ताम्र और नीलेथोथेमें वमनका वर्ण नीला-सा हो जाता है।

इनके अतिरिक्त उदरशूल, अतिसार, शिरदर्द, व्याकुलता, आक्षेप, दाह, मस्तिष्क आदि लक्षण भी विष निर्णयमें सहायता पहुँचाते हैं।

(१९) विषघ्न—Antidotes.

सेन्द्रिय विष, रोगजन्य विष और औषधप्रकोपज विष, जो धातुओंमें लीन हो गया हो, उसे शमन करे, उसे विषशामक (Chemical Antidotes), आमाशयमें प्रवेशित कतन, भेदन, विरेचन आदि गुणयुक्त विषको शोषित न होने दे, उसे विषरोधक (Mechanical Antidotes); विषको जलाकर स्वेदद्वारा बाहर

निकाल दे, उसे विषनाशक (Physiological Antidotes), तथा वमन विरेचन करा विषद्रव्यको बाहर निकाल दे, उसे विषापह (Evacuant) संज्ञा दी है।

विषघ्न गण—चरक संहितामें हल्दी, मजीठ, मुवहा (हारसिंगार या ईसपदी) छोटी इलायची, पालिन्दी (श्यामा, काली निशोथ), चंदन, कतक (निर्मली), शोरोष, सिंदुवारो, श्लेष्मांतक, ये १० औषधियाँ लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें आरग्वधादि, लोध्रादि, अर्कादि, एलादि, पटोलादि, उत्पलादि, अञ्जनादि और त्रप्वादि गणको विषहर कहा है। इनमेंसे आरग्वधादि नं० १७ कफघ्नमें, लोध्रादि गण नं० ५० प्रदरनाशकमें, अर्कादि गण नं० ४१ व्रणशोधनमें, एलादि गण नं० १७ कफघ्नमें, पटोलादि गण नं० ९० ज्वरघ्नमें तथा अञ्जनादि गण और उत्पलादि गण नं० ५१ दाहशामक प्रकरणमें देखें।

त्रप्वादि गण—बङ्ग, सीसा (नाग), ताम्र, रौप्य, सुवर्ण, लोह और मण्डूर, ये ७ औषधियाँ। यह गण गर (कृत्रिम विष), कृमि, तृषा, विषप्रकोप, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेहका नाशक है।

एकसर गण—बावची, मैनफल, नागकेशर, कल्मी, सरहालू, चोरक, (ग्रन्थिपर्ण भेद-सुगन्धद्रव्य), वरणा, कूठ, सप्तगन्धा, सातला, पुनर्नवा, शिरीषके फूल (और पञ्चाङ्ग), अमलतासकी फली और पुष्प, आकके फूल (और मूल), श्यामा (काली निशोथ), पाठा, वायविडङ्ग, आम, अश्मन्तक (अम्लोट), काली मिट्टी और चिचारांसा, ये २१ औषधियाँ। इनमेंसे एक-एक, दो-दो या तीन-तीन औषधोंका प्रयोग करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त मुलहठी, तगर, अगर, देवदारु, पित्तपापड़ा, छोटी इलायची, एलवालुक, कमल, मिश्री, प्रियङ्गु, रोहितवृक्ष, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, कोषातकी, वला, अजमोद, त्रिकटु, सुवर्ण गेरु, जटामांसी, नागर मोथा, लाख, अतीस, हरड़ गिलोय, पारिभद्र, असन, अश्वकर्ण (शाल), यव (बाबना) त्रिफला, हिंगु, लवणवर्ग, सज्जीखार, चित्रक, कुटकी, गुग्गुलु, तालीशपत्र, श्योनाक, छरीला, बिजौरा, गोकर्णी, कपित्थ, वचा, करंजके बीज, काकमाची, अपामार्गके बीज, तिलपर्णी, भारंगी, कपूर, रास्ना, केतकी, चमेली अरनी आदि अनेक औषधियाँ सुश्रुत संहिताके कल्पस्थानमें कहे अगदों (विषहर औषधियों में तथा चरक संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ में लिखो हैं।

और औषधियाँ—भस्म, पारद, प्रवाल, मुक्ता, राजापत, जहरमोहरा खताई, निरोमा, नीलाथोथा, सोमल हरताल, शिलाजीत, ईसरमूल, कुचिला, चूनेका जल, सोहागा, रेवन्दचीनी, उसारे रेवन्द, सत्यानाशी, हस्तीशुण्डी, एरण्डके पत्ते, अंकोल, रीठा, राई, वसु (पुनर्नवा भेद), जदवार खताई, (निर्विषी), सुहिंजना, तमाखू, बछनाग

केलेके सम्मेका रस, मिरचाकंद, नौसादर आदि। एवं घी, शहद, मक्खन, दूध, दही, अरण्डेका रस, शीतल जल, उष्ण जल ये सब आवश्यकतानुसार मिलाये जाते हैं।

चिरोंजा, गन्धक, रेवन्दचीनी, सनाय, निसोत, उशारेरेवन्द, कुटकी, सत्यानाशी, त्रिफला, नमक गोकर्णी आदिमें विरेचन गुण मैनफल, सत्यानाशी, हस्तीशुण्डी, बच, नीलाथोथा, रीठा, आक, तमाखू, अंकोल आदिमें वमन गुण, उशारेरेवन्द, नीलाथोथा बच, सत्यानाशी आदि कतिपय औषधियोंमें वमन-विरेचन, दोनों गुण, नौसादर, गरम जल, राई, अजवायन, सुहिजना आदिमें स्वेदन गुण; गिलोय, शाल पर्णी गूगल, शिलाजीत आदिमें विषशामक गुण, अनन्तमूल, पुनर्नवा, मधु, सनाय, केलेके सम्मेका रस, छोटी इलायची आदिमें मूत्रल गुण, तथा अनेक औषधियों में विशेष प्रकारके विषको नष्ट करनेका गुण है।

सामान्यतः तिक्त रसमय द्रव्य लघु और सूक्ष्म स्रोतोगामी होनेसे विषके समान सूक्ष्म स्रोतसोंमें सत्वर पहुँच जाते हैं। फिर अपने विशद गुण और शीत वीर्यके हेतुसे पित्तप्रकोप और श्लेष्मप्रकोपके लक्षणोंको शमन करनेमें सहायक होते हैं।

सामान्यतः विषका परिणाम सत्वर होता है। रक्तधातु दूषित होनेपर हृदय पर असर पहुँच हो जाता है। अतः हृदयके संरक्षक और बलवर्द्धक द्रव्य-सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल आदि तथा मूत्र द्वारा विषको बाहर निकाल कर रक्तको शुद्ध करनेवाले द्रव्य सारिवा, श्वेतचन्दन, मजिष्ठा, पुनर्नवा आदिका प्रयोग भी करना चाहिये।

कितनेक विष वातवाहिनियों और रक्तवाहिनियां द्वारा सत्वर मस्तिष्कमें पहुँच जाते हैं। कितनेक प्रकारके विषों (अफीम, धतूरविष आदि) से बेहोशी आ जाती है। उसे रोकनेके लिये तेज कॉफी पिलायी जाती है। एवं नेत्रमें तीक्ष्ण अंजन किया जाता है। पीपल आदिका प्रयोग इस तरह अंजन रूपसे होता है।

सुवर्णमें कीटाणुनाशक और प्रतिविषोत्पादक गुण होनेसे यह सर्प आदिके तीव्र विष, उपविष और देहमें उत्पन्न सेन्द्रिय विष और विविध कीटाणु तथा इन सबसे उत्पन्न विकृतिको दूर कर, देहको निर्विष बनाता है।

रौप्य भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, बंग भस्म, रससिंदूर, शिलाजीत आदि औषधियां प्रमेह या मधुमेहसे उत्पन्न सेन्द्रिय विषको नष्ट करती हैं।

सोमल, हरताल, पारद भस्म, रसकपूर आदि औषधियां उपदंश जनित विषको जलानेमें अति हितकारक हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें पारद भस्म, रसकपूर, मुर्दासंग आदि हितकारक हैं। कुछ समयतो औषधिसे उपदंश विष कुपित होनेपर प्रथमावस्थामें नीलाथोथा, द्वितीयावस्थामें हरताल, और द्वितीया तथा तृतीयावस्थामें सोमलप्रधान औषधियां लाभदायक हैं।

बंग भस्म, शृंग भस्म, जसद भस्म आदिके सेवनसे विद्रधि आदिका पूय

जनित विष, जिसका रक्तमें प्रवेश हो गया हो, वह जल जाता है ज्वर कम हो जाता है और विद्रधि जल्दी भर जाती है।

लोह भस्म प्रमेहजन्य विष और विविध प्रकारके कुष्ठविषके नाशमें अति हितकारक औषधि है।

ताम्र भस्म, मोहजनक विष, कृत्रिम विष, सेन्द्रिय विष आदिको दूर करती है।

शिलाजीतमें दोषको सुखानेका अद्भुत गुण है। मधुमेहमें रक्त, विषमय बनता रहता है। फिर विष अधिक बढ़नेपर संन्यासकी प्राप्ति हो जाती है परन्तु शिलाजीतका सेवन करते रहनेसे रक्तमें विषवृद्धि नहीं हो सकती। इसके विपरीत शिलाजीतके रसायन गुणके हेतुसे रक्ताणु शुद्ध और सबल बनते जाते हैं।

कुचिला तमाखूके विषको, चूनेका जल तेजाबजन्य दाहक विषको, कपूर विसूचिकाके विषको, क्विनाइन मलेरियाके विषको, सुवर्णमाक्षिक क्विनाइनके विषको, हींग अफीमके विषको तथा दही अथवा कॉफी भांगके विषको दूर करनेमें उपयोगी माने गये हैं।

डाक्टरीमतानुसार विभाग—

(१) रासायनिक (Chemical)—विषमें मिश्रित होकर रासायनिक क्रिया द्वारा विषके स्वभावको नष्ट कर देनेवाली औषधियां। जैसे गन्धकके तेजाबका विषमय असर होनेपर क्षार या चूनेको जलमें मिलाकर सेवन करना। क्षार द्वारा विषाक्त होनेपर अम्ल रसका प्रयोग करना। उद्भिज्ज विषके असरको नष्ट करनेके लिये जंगम विष और जंगम विषके असरको नष्ट करनेके लिये स्थावर विषकी योजना करना आदि।

(२) यान्त्रिक (Mechanical)—जो औषधियां आमाशयकी श्लैष्मिक कला और विषके परमाणुओंके चारों ओर आवृत्त होकर यन्त्रोंका रक्षण करें और विषको शोषण न होने दें, वे यान्त्रिक कहलाती हैं। जैसे कांच खानेपर घी तैल, अरण्डेका रस, दूध, दही, मक्खन, गोंदका जल, मिश्री आदि पिलाना (एवं वमन भी कराना)।

(३) आधिभौतिक (Physiologic)—विष विरोधी क्रिया करके विषको नष्ट करनेवाली औषधियाँ। जैसे काफी द्वारा अफीमके मोहजनक असरको नष्ट करना। पारद भस्मका सेवन कर जीवनीय शक्तिकी क्रिया द्वारा उपदंशके विषको नष्ट करना। सुवर्णका सेवन कर क्षय कीटाणुका विनाश करना आदि।

विषचिकित्साके नियम—

(१) विष स्थानान्तरित करण—औषध या कण्ठमें अँगुली डालकर वमन कराना, अथवा यन्त्र (स्टमक पम्प) द्वारा आमाशयमेंसे विष खींच लेना।

दाहक औषध प्रकोपमें वमन करा तरल कारक और शिथिल कारक औषध (दूध, दही), ईसबगोलका लुआब आदिका सेवन कराना।

उग्र द्रावक या क्षार आदिके विषमें स्तम्भक वम्पका प्रयोग निषिद्ध है। निवाये जलमें नमक मिलाकर अथवा नीलेथोथेका जल पिलाकर वमन करना चाहिये। नीलेथोथेकी मात्रा वमनार्थ २॥ रत्तीसे ५ रत्ती।

(२) रासायनिक (Chemical) विषशामक प्रयोग।

(३) विषविकारमें संरक्षणार्थ यान्त्रिक (Mechanical) प्रयोग।

(४) आधिभौतिक क्रिया द्वारा विषक्रिया शमनकरण। जैसे तेज काफी द्वारा अफीमका मादक असर कम किया जाता है।

(५) विसरक्रमें शोषण होनेपर शमन या शोधन औषधि द्वारा निर्गतकरण। यथा पारद (रसकपूर आदि) के विषशमनार्थ भाँगरेके रस और लस्सीमें सोरा मिलाकर पिलावें। बच्छनागके विषशमनार्थ दूधमें चौलाईका रस मिलाकर पिलावें। अथवा नीलाथोथा जलमें मिलाकर पिलानेसे भी विषका निवारण होता है। सोमल द्वारा विपाक्त होनेपर विरेचन और रासायनिक विषशामक औषधि व्यवहृत होती हैं। घृत अथवा चौलाईका रस, दूध-मिश्री और जल मिला, ठण्डाई बनाकर पिलानेसे विष सत्वर शमन हो जाता है।

(४०) रक्तवर्द्धक।

रक्तपौष्टिक-हिमेटिनिक्स-ब्लड टॉनिक्स।

Haematinics—Blood tonics।—

जो औषधियाँ रक्तमें रक्ताणुओंकी संख्या और रक्तरंजनकी वृद्धि करें, उनको रक्तवर्द्धक-संज्ञा दी है। रक्ताणु और रक्तरंजनकी वृद्धि होने पर रक्त सबल बन जाता है, इस हेतुसे इन औषधियोंको रक्तपौष्टिक भी कहते हैं।

* रक्तके भीतर रक्ताणु, श्वेताणु, रक्तचक्रिका और रक्तधारि, ये ४ द्रव्य होते हैं। रक्ताणुका ह्रास या रक्तरंजनका ह्रास होने पर पाण्डुरोगकी संप्राप्ति होती है। पाण्डुरोगका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप द्वितीय खण्डमें किया गया है।

रक्तवर्द्धक औषधियाँ—लोह, अभ्रक, सुवर्ण, सुवर्णमाक्षिक, मण्डूर, कासीस, मुक्ता, प्रवाल, शृंग भस्म, फॉस्फरस आँवला और जीवनीय गण, काकोल्यादि गण, बृंहणीय गण तथा वय:स्थापन वर्ग की औषधियाँ आदि।

विसूचिकामें रक्तमेंसे जल बहुत निकल जाता है, तब लवणजल का अन्तः सेचन करके रक्त बढ़ा लिया जाता है। अति रक्तस्राव होने पर समान रचनावाले रक्त अथवा लवणजलका अन्तःसेचन कर लिया जाता है। रक्तके अन्तःसेचनार्थ विशेष नियम बनाये गये हैं और रक्तके ४ विभाग किये गये हैं, उनका वर्णन रुग्णनिरीक्षणी के सातवें प्रकरण के १० वें भागमें किया गया है।

(४१) रक्तप्रसादन द्रव्य विवेचन।

जो द्रव्य रक्तके भीतर मृत रक्ताणु, विष, कीटाणु, पूय अथवा अन्य विजातीय द्रव्य मिलनेसे उत्पन्न विकृति को दूर करे, उसे रक्तप्रसादन और रक्तशोधन कहते हैं। इसमें २ प्रकार हैं। १ सार्वाङ्गिक और २ स्थानिक।

सार्वाङ्गिक रक्तप्रसादन—यसद भस्म, सुवर्णघटित औषधियां, लोह, सुवर्ण माक्षिक, मण्डूर, कासीस,

वंग भस्म, नाग भस्म, गन्धक, पारद, हिंगुल, रसकपूर, हरताल, सोमल, शिलाजीत, मैनसिल, गन्धाबिरोजा, भिलावा, कपिला, कुचिला, कपूर, मजीठ, सत्यानाशी, अनन्तमूल, आंवला, रेवन्दचीनी, एलुआ, सनाय, गूगल, चोपचीनी, उश्बा, चालमूगरा तैल, शतावरी, उन्नाव, असगन्ध, एरंडमूल, अंकोल कचनार, इन्द्रायण, पुनर्नवा, सिरस, सुवर्ण चम्पा, शरपखा, सवीना, धमासा, रोहेड़ा, रुद्रवन्ती, कचालु, बबूल, चदन, हल्दी, कलिहारी, क्विनाइन, फिटकरी आदि।

स्थानिक रक्तप्रसादन—व्रणपाक, तन्तुदंश, चोट आदि से स्थान विशेष में रक्त-दूषित होने पर उसे शुद्ध करनेवाली औषधियों का वर्णन नं० ४६ व्रणशोधन प्रकरणमें किया जायगा।

यकृद्विकार, पित्तप्रकोप और मूत्रविकृति (मूत्रमें यूरेट्स या ओक्जलेट क्षार अधिक निकलना) आदि से रक्तविकृति होने पर पारदघटित और शिलाजतुप्रधान औषधियां लाभदायक होती हैं।

वातुरक्तज विकार होने पर हरताल, मजीठ कलिहारी आदि, उपदंशज विकार होने पर प्रथमावस्थामें पारद भस्म, सत्यानाशी मूल सत्यानाशी तैल द्वितीयावस्थामें रसकपूर, चोपचीनी, उश्बा आदि और तृतीयावस्थामें सोमलघटित औषधियां।

कण्ठमाला, गलगण्ड, अपची आदि रोगोंमें गन्धक, गूगल, यसद भस्म, नाग भस्म, सुवर्ण, मन शिला आदि।

महाकुष्ठ, उत्कुष्ठ और चर्मरोगज रक्तविकारमें हरताल, सोमल, गंधक, लोह; चोपचीनी, मजीठ, शिलाजीत, चालमूगरातैल, भिलावा, खदिर, बावची आदि।

सुजाकमें गन्धाबिरोजा, चन्दन तैल, फिटकरी, गूगल, भिलावा, रसकपूर घटित औषधियां।

आक्षेपोत्पादक कीटाणुओंसे उत्पन्न रक्तविकृतिमें सोमल, पारद, गूगल और कीटाणुनाशक विशेष औषधियां।

शीतपित्त, पिटिका, काठे आदिमें सोमल, गन्धक, विरेचन औषधियां, त्रिफला, काली मिच आदि।

उदर्दप्रशमन कषाय—चरक संहितामें तिन्दुक, चिरौंजी, बेर, खैर, कदर

(सफेद मैर), सवीना, अश्वकर्ण (सर्जभेद), अर्जुन, अरिमेद (दुर्गन्धयुक्त खैर), ये १० औषधियाँ कही हैं।

उदरकृमिजन्य रक्तविकृति पर कपूर, कुचिला कपिला, गन्धक, उशबा, वायविडङ्ग आदि कृमिघ्न औषधियाँ।

विविध प्रकारके मादक ज्वर, शराब, गांजा, ताम्र भस्म आदि उत्तेजक औषधियाँ, उत्तेजक आहार, बार बार अत्यधिक क्रोध करना और अति गरम गरम आहार या उपदंश आदि रोगसे धमनीकी दीवार अति कठोर हो जाना आदि कारणोंसे रक्त अशुद्ध होता है। फिर रक्तदबाव (Blood pressure) बढ़ जाता है। शिरमें भारीपन, व्याकुलता, आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब रक्त प्रसादन औषधि दी जाती है।

चरक संहिताकार लिखते हैं कि :—

कुर्याच्छोणितरोगेषु रक्तपित्तहरीं क्रियाम्।
विरेकमुपवासं वा स्रावणं शोणितस्य वा॥
॥ सू० अ० २४।१८॥

रक्तदबावको न्यून करनेमें उपवास, विरेचन, शिराव्यध और औषधियोंमें सर्पगन्धा सर्वोत्तम मानी जाती है। लहसुन भी रक्तभारके दबावका ह्रास करनेमें अति हितकर है।

रक्तकण, रक्तभारवृद्धि हेतु, रक्तभारक्षय हेतु, रक्तभारमापक यन्त्रसे परीक्षा करनेकी विधि इत्यादि बातोंका वर्णन "सिद्ध परीक्षाप्रदीप" में किया गया है।

शिराव्यधके, विधि, अधिकारी, पथ्य आदिका विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृ० १०९ से ११५ तक किया है।

उपर्युक्त औषधिके अतिरिक्त सुवर्ण भस्म, लोहघटित औषधियाँ (धात्र्यादि लोह आदि), सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक, प्रवाल आदि हितकारक हैं।

नेत्रपाक होने पर नेत्रस्थ रक्तके प्रसादनार्थ शतधौत घृतमें कासीस भस्म मिला मलहम बनाकर उपयोग किया जाता है, और खानेके लिए सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिकभस्म शुक्ति भस्म, प्रवालपिष्टी आदि दी जाती हैं।

इनके अतिरिक्त नेत्रके प्रसादनार्थ, स्त्रीदुग्ध, मांस मज्जा, घी, गिलोय, अडूसा, परवल, कटेली आदि का पुटपाक बना, रस निचोड़कर नेत्रमें डाला जाता है।

(४२) संधानीय।

संधान—यूनियन—हीलिंग—Union—Healing।

जो द्रव्य टूटी हुई अस्थि, त्वचा, पेशी आदिको जोड़नेमें हितकर हो, और जो औषधि जखम को जोड़ देवें, उसे संधानीय संज्ञा दी है।

संधानीयवर्ग—चरक संहितामें मुलहटी, मधुपर्णी (जलज मुलहठी अथवा

गिलोय), पृश्निपर्णी, पाठा, लजालु, मोचरस, धातकी, लोध, प्रियंगु और कायफल, ये १० ओषधियां लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें प्रियङ्ग्वादि, अम्बष्ठादि और न्यग्रोधादि गणको संधानीय कहा है। इनमेंसे न्यग्रोधादि गणका वर्णन नं० ६ पित्तशामक प्रकरण में किया गया है।

प्रियङ्ग्वादि गण—प्रियंगु, लजालु, धायके फूल, पुन्नाग, नागकेशर, चन्दन, इसकी जातिका चन्दन, मोचरस, रसौंत, मोचपत्र, सुरमा, कमलकेशर, मजीठ और जवासा आदि।

अम्बष्ठादि गण—पाठा, धायके फूल, लजालु, श्योनाक, मुलहठी, कच्ची बेलगिरी, लोध, पलाश, नन्दीवृक्ष (गंभारी), कमलकेसर आदि।

ये दोनों वर्ग अतिसार नाशक, संधानीय, पित्तशामक और व्रणरोपण्य हैं।

और औषधियां—माजूफल, कासीस, फिटकरी, लहसुन, गूगल, कुन्दरु, चीआबोल, मैदालकड़ी, हल्दी, आमाहल्दी, अस्थिसंधिनी (हड़जोड़ी) तथा अन्य कषैली रसवीय प्रधान औषधियां। इनका आगे नं० ५७ रक्तस्तम्भक रूपसे पृथक वर्णन किया है। उक्त गुणवाली औषधियां आगन्तुक घावजन्य त्वचाभेदको जोड़ देती हैं।

(४२) व्रणशोथहर।

विम्लापन—एण्टिफ्लोजिस्टिक्स—रिजॉल्वण्ट्स—डिसक्युशण्ट्स।

Antiphlogestics—Resolvents—Discutients।

जो द्रव्य *व्रणशोथकी प्रथमावस्थामें लेप* रूपसे व्यवहृत होनेपर व्रणशोथको बिना पकाये बैठा देवे, उसे विम्लापन, प्रदाहहर और व्रणशोथहर (Antiphlogestics) संज्ञा दी है। जो औषधि रक्त जमकर या रसग्रन्थिकी वृद्धि होकर गांठ बन जानेपर उसे बिखेर देती है, उसे विम्लापन—ग्रन्थिविलयन (Resolvents-Discutients) संज्ञा दी है।

व्रणशोथहर औषधियाँ—पारद, वत्सनाग, कुन्दरु, गूगल, रेवन्दचीनी, एलुवा कुटकी, दशांगलेप, हरड़, बिजौरा, अरणी, देवदारु, सोंठ, रास्ना, चंदन, मुलहठी, पीलीमिट्टी, काली मिट्टी, गिले आरमनी, अजमोद, असगंध गिलोय, लोध, जवासा, काकड़ासिंगी, आदि।

चरक संहितामें शोथनिर्वापक प्रलेपमें वड़, गूलर, पीपल, पिलखन, वेतस्, इन पंचवृक्षोंकी छालका चूर्ण तथा विजयादिप्रदेह (प्रलेप) में विजया (हरड़) मुलहठी, क्षीरा (काकोली), सिराग्रन्थी (भिलकी गांठ, शतावरी, नीला कमल, नागकेशर और सफेद चंदन इन औषधियोंको शोथहर दर्शायी हैं।

ग्रन्थिविलयनकारी—पारद, दारुहल्दी, कूठ, सिरसकी छाल, देवदारु, कुन्दरु, गूगल, गोरुम (मालाकंद—Eulophia nuda), आयोडिन, सेक, पोस्तकेडोडेकी भाफसे सेक आदि।

रसको निकालनेके लिये जो लेप लगाया जाय, उसपर रुई चिपकाकर गरम कपड़ा (ऊनी वस्त्र) बांध लेना चाहिये। एवं लेप सूख जाने पर उसे हटा, उस स्थानको गरम जलसे धोकर नया लेप लगाना चाहिये। पहिले वाले लेपके दूषित परमाणु रह न जायँ इसलिये सम्हालपूर्वक रुईको जलमें भिगाकर धोना चाहिये। या साबुन लगाकर भली भाँति साफ कर लेना चाहिये। इस तरह दिनमें कई बार लेपको हटा देना चाहिये।

वायुकी शोथ पर रात्रिको लेप नहीं लगाना चाहिये। यदि पहिले लगाया हुआ लेप गिर जाय तो उसे उठाकर फिरसे नहीं लगाना चाहिये।

गांठको बैठानेके लिये गाढ़ा लेप किया हो, उसे रात्रिको रहने देवें। पकाने योग्य गांठ पर रात्रिको अवश्य लेप करना चाहिये।

(४४) व्रणपाचन-शोधन-रोपण।

पकने योग्य व्रणशोथको जो द्रव्य शीघ्र पकावे, उसे व्रणपाचन (Maturant) जो द्रव्य पकनेपर भी अपने आप न फूटनेवाले व्रणशोथको फोड़ दे, उसे व्रणदारण (प्रबलदाहक Escharotic or Caustic), जिस व्रणशोथका मुंह फूटनेपर अति सूक्ष्म होनेसे पूयस्राव सम्यक् न होता हो, उसे पीड़ित कर मुखको मोटा बनाकर पूयका बाहर बहन करावें, ऐसे द्रव्यको पीड़न पककर फूटे हुए या फोड़े हुए व्रणको जो द्रव्य शुद्ध बनावे, कीटाणु, पूय और दूषित मांस आदि धातुओंको आकर्षित कर बाहर निकाल दे, उसे व्रणशोधन तथा जो द्रव्य शुद्ध व्रणको भर देता है, उसे व्रणरोपण संज्ञा दी है।

व्रणपाचन—तिल, सत्तू, अलसी, गेहूं, सरसों, सनके बीज, धतूरा, सज्जीखार, घाकुंवार, प्याज, खट्टा दही, किण्व (सुराबीज), कूठ, सैंधानमक, सुहिंजनके बीज आदि। उष्ण द्रव्य, इन द्रव्योंका प्रयोग उपनाह (पुल्टिस) के रूपमें होता है। पुल्टिस (Poultice) का वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथमखण्ड पृष्ठ ५० से ५१ तक तथा रुग्णपरिचर्या के २१ वें भाग में किया गया है।

व्रणदारण—चित्रकमूल, कबूतरकी विष्ठा, सोमल हाथीदांत और तीव्र क्षार आदि औषधियाँ।

व्रणपीड़न—सोमल, त्वचाको गलानेवाला क्षार, त्वचामें खिंचाव करनेवाले एलवा, गूगल, राल आदि औषधियां। सुश्रुत संहितामें पिच्छिल द्रव्योंका प्रपीडन कहा है, जैसे सेमलकी छाल, लिसोड़ा, बकके पान आदि।

व्रणशोधन—सुश्रुत संहितामें इसके ८ प्रकार कहे हैं। कषाय, वर्ति, कल्क, घृत, तैल, रसक्रिया, चूर्ण, धूप (धुआं)।

वर्तिरूपसे शोधन द्रव्य—अजगन्धा (अजमोद), अजशृंगी (मेंढासिंगी), इन्द्रायण, कलिहारी, कहरकंज चित्रकमूल, पाठा, वायविडङ्ग; इलायची, रेणुका,

सोंठ, मिर्च, पीपल यवक्षार, लवण (सेंधव आदि), मन शिला, कासीस, त्रिवृत (निशोत), दन्तीमूल, हरताल, गोपीचन्दन आदि।

कल्करूपसे भी ये द्रव्य सब व्यवहृत होते हैं।

घृत द्रव्य—आकके मूल, त्रिफला, सेहुँडका दूध, क्षार (यवक्षार, अपामार्ग-क्षार, पलाश क्षार, सज्जीक्षार आदि), चमेली की जड़, हल्दी दारुहल्दी, कासीस, कुटकी, गूगल आदि।

तैल द्रव्य—अपामार्ग अमलतास सुरई, नीम, तिल, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, हरताल, मनःशीला आदि।

शोधन चूर्ण—कासीस, सेंधव, मुरावीज, बचा, हल्दी, दारुहल्दी, आदि (पूय होनेपर छिड़कनेके लिये)।

रसक्रियाके द्रव्य—सालसारादि गण, पटोल, त्रिफला आदि द्रव्योंका क्वाथ करें, फिर उस क्वाथको छान कर राबको जैसा गाढ़ा बनालें, इसे रस क्रिया कहते हैं।

धूप द्रव्य—कुन्दरु, राल, गूगल आदि कीटाणुनाशक द्रव्योंका धुआं देना।

अर्कादि गण—सुश्रुत संहिता [१] आक, सफेद आक, करंज पूतिकरंज, नाग दन्ती (हस्तीशुण्डी), अपामार्ग, भारंगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी (ईशरमूल) क्षुद्र श्वेता (लाल आभा वाला अपामार्ग) महा श्वेता (बंध्या कर्कोटकी), वृश्चिका, अश्वगन्धा (मालकांगनी) और हिंगोट, ये १४ औषधियाँ कहीं हैं। यह गण कफ, मेद, विष, कृमि और कुष्ठका नाशक और विशेषत व्रणशोधक है।

लाक्षादि गण—लाल, अमलतास, इन्द्र जौ, कनेर कायफल, हल्दी, दारु-हल्दी, नीम, सतौना, चमेली और मायमाण। यह गण कसैला, कड़ुवा, मधुर, कफ, पित्त और रक्तकी विकृति, कुष्ठ, तथा कृमिका नाशक और दुष्टव्रणको शुद्ध करनेवाला है।

व्रणशोधन प्रलेप—चरक संहितामें तिलकल्क, सेंधानमक, हल्दी, दारुहल्दी, निशोत, घी मुलहठी, नीमके पात व्रणशोधन कहे हैं।

शोधन कषाय—चरक संहितामें त्रिफला, खैरकी लकड़ी (या कत्था), दारु-हल्दी बड़, आदि पंच क्षीर वृक्षोंकी छाल, सरैंटी, कुश, नीमके पत्ते, बेरके पत्ते, इनके क्वाथसे व्रणको शुद्ध किया जाता है।

मलहम द्रव्य—वर्तमानमें विशेषत मलहम द्वारा शोधन क्रिया करायी जाती है। पारद, रसकपूर, गन्धक, मुर्दासंग, नीलाथोथा, सोमल, हरताल, मनः शिला जंगाल, चूना, गन्धाविरोजा, कासीस सोहागा, जपापुष्प, कपूर, सैंधानमक, नीमके पत्ते, हींग, हल्दी, धतूरा, निर्गुण्डी, फिनाइल, समुद्रशोष, अलसी, अफीम, तमाखू, करंज, शहद, एरण्ड तैल, घृत, वेसलीन, मोम, लेनोलीन (ऊनका तैल), आदि, इनमेंसे—

पारद, गन्धक, चूना, कपूर, नीलाथोथा आदिमें कीटाणुनाशक गुण तथा मुर्दासंग, गन्धाबिरोजा आदि औषधियोंमें पोषको सुखाना, कीटाणु नाश करना, और घाव भरना, ये त्रिविध गुण हैं।

मलहमकी पट्टी हट जानेपर उसे निकाल देनी चाहिये, एवं पूय लग जाने पर भी पट्टीको बदल देनी चाहिये। साफ लकड़ी या साफ छुरीसे सम्हालपूर्वक मलहम निकाल पट्टीपर लगा कर व्रण-विद्रधि पर चिपका देवें, या सौम्य मलहमको अँगुलीसे विद्रधि पर लगा लेवें। पूय लगी हुई अँगुलीसे डिब्बीमेंसे मलहम नहीं निकालना चाहिये। एवं अँगुलीको अच्छी तरह साबुन लगा निवाये जलसे धो लेना चाहिये।

पूयमय व्रण विद्रधिको प्रातःसायं त्रिफलाके क्वाथ, नीमके पत्तोंका क्वाथ, कार्बोलिक लोशन या इतर औषधिके जलसे सम्हालपूर्वक धोते रहना चाहिये। परन्तु पूय मन्द हो जानेके पश्चात् और व्रणरोपण क्रिया वर्त्तमान होनेपर व्रणको बार-बार नहीं धोना चाहिये। अन्यथा आई हुई, नूतन कोमल त्वचा नष्ट हो जाती है।

चरक संहितामें पक्व व्रणके शोधन और भेदनके लिए उमादि गणमें निम्न औषधियां कही हैं —

उमादि गण—अलसी, गूगल, सेंहुडका दूध, मुर्गे और कबूतरकी बिष्ठा, पलाशक्षार, हेमवीरी (सत्यानाशी या उसारे रेवन्द) और दन्ती या हाथी दाँत, ये औषधियां सुकुमार व्यक्तियोंके शोथके शोधन-भेदनार्थ प्रयोजित होती हैं।

अनेक समय व्रणशोधनार्थ बाह्य प्रयोगके साथ आभ्यन्तरिक संशोधन औषधि भी दी जाती है। गन्धकभस्म, बंगभस्म, गन्धक, शिलाजीत, मृदुविरेचन और रक्तशोधन औषधियाँ आदि प्रयोजित होती हैं।

व्रणरोपण कषाय—वड़, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, बेतस, इन सबकी छाल, कनेरकी जड़की छाल, आकको जड़की छाल और कुटज छालके कषायको व्रण रोपण कहा है। इन सबका या किन्हींका कषाय उपयोगमें लेवें।

व्रणरोपण लेपकी औषधियाँ—चरक संहितामें चन्दन, कमल केशर, दारुहल्दी, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, मजीठ, मुलहठी, जीवन्ती, गोजिह्वा, धायके फूल, खरैटी मूलकी छाल, पुण्डरीक काष्ठ, ये औषधियां कही हैं।

व्रणरोपण तैल द्रव्य—कम्पिल्लकाद्यतैलमें कबीला, वायविडंग, हल्दी, त्रिफला, बलामूल, पटोलपत्र, नीमके पान, लोध, नागरमोथा, प्रियंगु, खैरछाल, धायके फूल, राल, छोटी इलायची, अगर और रक्तचन्दन; प्रपौण्डरीकाद्य तैलमें पुण्डरीक काष्ठ, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली और रक्तचन्दन इनके अतिरिक्त भूम्यस्वरस और वायहरडीकी छाल आदि औषधियां कही हैं।

सुश्रुतसंहितामें इनके अतिरिक्त सर्पिद्रव्योंमें ब्राह्मी, गिलोय, असगंध, काकोल्यादि गणकी औषधियां तथा पंच क्षार वृक्षोंके अङ्कुर कल्क द्रव्योंमें शतालु,

लोध (मासी), सरल, कटफल, चन्दन और काकोल्यादि गणकी औषधियां रोपण घृतमें पृश्निपर्णी, कौंच, हल्दी, मालती, दारुहल्दी और काकोल्यादि गणकी औषधियां, तैलमें तगर, अगर, हल्दी, दारुहल्दी और लोध, रोपणचूर्णमें प्रियंगु, त्रिफला, लोध, कासीस मुरदी, धव (धामोवा), अश्वकर्ण (शाल भेद) और राल, रोपणी रसक्रियामें नारियलकी करोटि, न्यग्रोधवर्गकी औषधियां तथा त्रिफलाका उल्लेख किया है।

और रोपण औषधियाँ—सिंदूर, सफेदा, कुन्दरु, राल, कत्था, खैरसार, गेरू, मेंहदी, विजयसार आदि तैल, घी, मोम और वेसलीन मिला मलहम बनाकर व्यवहृत होती हैं।

इनके अतिरिक्त व्रणचिकित्सामें उत्सादन अर्थात् शुष्क, अल्पमांसवाले और गम्भीर व्रणोंमें मांसकी वृद्धि करानेवाली औषधियां—अपामार्गमूल, असगन्ध, मूसली, सुवर्चला (सूर्यावर्तकी मूल) आदि तथा अवसादन अर्थात् उभरे हुए मृदु मांसको बैठाकर सम ऊँचाई पर लानेवाली औषधियां—कासीस, सेंधानमक, सुरावीज, कुरुविन्द (लाल सोंचल नमक या हिंगुल) मन शिला, कुक्कुट्यण्डत्वक्, चमेलीकी कली, शिरीषके फल, करंजफल, हरताल, कासीस, खपर आदिका उल्लेख किया है।

(४५) वेदना-स्थापन।

वेदनाशामक—पीड़ाहर—एनोडाइन्स—एनलजेसिक्स—एण्टलजिक्स।

Anodynes—Analgesics—Antalgics।

उत्पन्न हुई वेदनाका नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनावे, उसे वेदनास्थापन कहते हैं। इन औषधियोंकी शामक क्रिया मस्तिष्कमें रहे हुए केन्द्रस्थान या संज्ञावाही वातनाड़ियों पर होनेसे वेदना शमन हो जाती है।

वेदनास्थापन वर्ग—चरक संहितामें साल, कायफल, कदम्ब, पद्माख, नागकेशर, मोचरस, सिरस, बेंत, एलवालुक (सुगन्ध द्रव्य विशेष) और अशोक, ये १० औषधियां कही हैं।

अंगमर्दप्रशमन वर्ग—चरक संहितामें अंगमर्द (कुटनी-मांसपेशियामें होने वाले खिंचाव) को दूर करनेवाली औषधियां-शालपर्णी पृश्नपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, एरण्ड काकोली, चन्दन, खस, छोटी इलायची और महुआ (मतान्तरमें मुलहठी), ये १० लिखी हैं।

और औषधियाँ—अफीम, गांजा, खुरासानी अजवायन, लौंग तैल, दालचीनी तैल, नीलगिरी तैल, पिपरमेण्ट तैल, वत्सनाग, सूचीबूटी, धतूरा आदि।

वेदनाके दो प्रकार हैं। १ स्थानिक और २ सार्वांगिक।

स्थानिक वेदनाहर द्रव्य (Local Anodynes)—ये स्वस्थ त्वचाके

ऊपर लगानेमें व्यवहृत होती हैं। ये वातनाड़ियोंके सिरेको बधिर बनाती हैं अथवा केन्द्र स्थानपर असर पहुँचाकर वेदनाको दूर करती हैं। कितनीक औषधियां आमाशयकी क्रिया पर स्थानिक शामक (Lcoal sedative) असर पहुँचाकर वमन अथवा आमाशयके क्षोभको दूर करती हैं। उनका वर्णन पहिले नं० २२ छर्दि निग्रहमें किया गया है।

स्थानिक वेदनाहर—अतिशीत (बर्फ), उष्ण सेक, रक्तमोक्षण, जलौका-प्रयोग, पुल्टिस, अफीम, मेयोज जायफल, वच्छनाग, भांग कुचिला केसर, कपूर, धतूरा, कटेली, सूचीबूटी (बेलाडाना), बारासिंगेका सींग आदि। इनमेंसे अधिक औषधियां मर्दन, तैल, मलहम, लेप, धूम्र आदि प्रयोग रूपसे व्यवहृत होती हैं।

सार्वाङ्गिक वेदनाहर—चेतनाहर (Anaesthetics) औषधियां—अफीम, गांजा, खुरासानी अजवायन, धतूरा आदिका स्वल्प मात्रामें सेवन करने पर सार्वाङ्गिक पीड़ा शमन होती है। चेतनाहरका विशेष वर्णन आगे नं० ७८ में किया जायगा। एवं ज्वरघ्न औषधियां भी सार्वाङ्गिक लाभ पहुँचाती हैं। उनका वर्णन नं० ९० में देखें।

अफीम वातवहा नाड़ियोंके सिरे, सुषुम्णा और संज्ञावाही नाड़ियां, तीनोंपर परिणाम दर्शाकर कार्य करती है।

भांग और गांजा मस्तिष्ककी वातवहा नाड़ियोंके केन्द्र पर प्रभाव पहुंचाते हैं।

खुरासानी अजवायन, धतूरा, वच्छनाग आदि संज्ञावाही नाड़ियोंकी उत्तेजनाको दमन करने वाली औषधियां हैं।

वेदना स्थान किसी भी आशयमें हो जिस वातवहा नाड़ी द्वारा वेदनाका अनुभव होता हो, उसकी चेतनाका ह्रास होनेपर वेदना निवृत्ति होती है। इस दृष्टिसे अफीम, अफीमसत्व, गांजा आदि औषधियां, वातनाड़ियोंकी मूल पर मोहजनक असर पहुँचा कर दर्दको दूर करती हैं।

दही, घृत, तैल, चर्बी आदि स्निग्धता पहुँचाकर मांस आदि अङ्गोंको सबल बनाते हैं; तथा कपूर, केशर, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, पीली मिट्टी, गिलेआरमनी आदि औषधियां कीटाणु, विषप्रभाव, प्रदाह, शोथ आदिको दूर कर पीड़ाका निवारण करती हैं।

संज्ञावाही वातवाहिनियोंको बधिर बनानेसे कुछ समयतक व्यथाका बोध नहीं होता परन्तु औषध बल दूर होनेपर पुनः वेदना उपस्थित होती है। अब मूल हेतुको दूर करनेके लिए मर्दन, लेप आदि उपचार करना चाहिये।

(४६) शूलप्रशमन।

जो द्रव्य पचन संस्थामें उत्पन्न शूलको तथा शूलके कारणरूप आम, कीटाणु, प्रदाह आदिको दूर करे, उसे शूलप्रशमन, या शूलघ्न कहते हैं।

पचन संस्थाके अतिरिक्त हृदय, यकृत्, फुफ्फुस, वृक्क, गर्भाशय, बीजाशय आदि अन्य स्थानोंमें भी शूल उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन उन अवयवोंके रोगोंमें पृथक् किया है। पचन संस्थामें आमप्रकोप, अपचन, आमाशयकी श्लैष्मिक कला प्रदाह, वायुसंग्रह, अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह, मल अम आना, व्रण, विद्रधि, कर्कस्फोट, विजातीय द्रव्य प्रवेश आदिसे शूल उत्पन्न होता है। इनमेंसे अपचन, आमविष, श्लैष्मिक कलाप्रदाह वायुसंग्रह, मलावरोध आदिसे उत्पन्न शूलोंको आयु र्वेदने वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज संज्ञा दी है। अन्त्र पुच्छप्रदाहका भी इसमें संग्रह किया गया है। व्रण और विद्रधिजन्य शूलका अन्तर्भाव परिणाम शूलमें और अन्नद्रव शूल में किया है। कर्कस्फोटज शूलको त्रिदोषज शूल माना है। व्रण विद्रधिजन्य शूलपर औषध चिकित्सासे लाभ बहुत कम मिलता है। त्रिदोषज शूलको असाध्य माना है। इन सबका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप द्वितीय खण्डमें किया गया है।

शूलप्रशमन कषाय—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ (या अदरख), काली मिर्च, अजमोद, अजगन्धा (जंगली अजमोद), जीरा, गवडीर (रामठ शाक), ये १० औषधियां चरक संहितामें लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें पिप्पल्यादि गणको शूलघ्न कहा है। उसका वर्णन नं० ९ कफदोषघ्नमें किया गया है।

और औषधियाँ—दोनों ग्रन्थोंमें न आई हो ऐसी औषधियां—कुचिला, नीलगिरी तैल, लौंग दालचीनी, पीपरमेंटके फूल, अपामार्गक्षार, सज्जीखार, काला-नमक, शुक्ति भस्म, शंख भस्म, लवण वर्ग, अर्कक्षार, मण्डूर, लोह, शंखद्राव, चनेका क्षार, कांटेवाले करंजके फल, राई विरेचन औषधियां आदि।

(४०) मेदोहर और मेदक्षोपघ्न।

बढ़ी हुई मेदको कम करनेवाली और मेदकी उत्पत्तिको रोकनेवाली औषधियां—शिलाजीत, गोमूत्र, क्षार, शुष्क-भोजन, भांगरा, लोह, गूगल, लाख, अपामार्ग, जलमिश्रित शहद और चरपरी औषधियां इत्यादि। इनके अतिरिक्त नं० ११ लेखनके साथ अनेक औषधियां लिखी हैं, ये सब मेदोहर क्रिया करती हैं।

इनमेंसे शिलाजीत, जलमिश्रित शहद और गोमूत्रमें मेदोहर गुण अधिक है। आवश्यक व्यायाम करनेसे औषध सत्वर लाभ पहुँचाती है। भोजनमें घी, मक्खन, शक्कर आदि मेदोवर्द्धक आहार कम देना चाहिये।

सुश्रुत संहिताकारने मेद दोषका शमन करनेके लिये निम्न वरुणादि गण कहा है—

वरुणादि गण—वरुण, आरगल (कटसरैया), सहजना, लाल अरणी, मेंढासिंगी, पूतिकरंज, करंज, मोरट (मूर्वा), बड़ा अरणी, लाल पुष्पका

कटसरैया, पीले फूलका कटसरैया, कंटूरी, मधुक (बक पुष्प या अगस्तियाका फूल,) अपामार्ग, चित्रक शतावरी बिल्व, अजशृंगी (मेंढासिंगी), कुशाकी जड़, छोटी कटेली बड़ी कटेली इन २२ औषधियोंको वरुणादि गण कहते हैं। यह गण कफ-मेदनाशक है। शिरःशूल, गुल्म और आभ्यन्तरिक विद्रधिमें प्रयोजित होता है।

मेदोवृद्धि विकार (Obesity) अनेकोंको कुल परम्परा मिलता है। कइयोंको मेदवर्द्धक पदार्थोंके अति सेवन, व्यायामके अभाव आदि कारणोंसे हो जाता है। इनके अतिरिक्त पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland), ग्रैवेयक (Thyroid) ग्रन्थि और अधिवृक्क (Suprarenal) ग्रन्थि, इनके अन्तःस्रावका हीनयोग होने पर भी मेद बढ़ जाता है। यदि इन ग्रन्थियोंकी विकृति हो, तो डाक्टरीमें इन ग्रन्थियोंके सत्वका प्रयोग करते हैं।

क्वचित् हृदय, वृक्क यकृत् आदि इन्द्रियामें मेदापकान्ति (Fatty degeneration) होकर (जीवित घटक नष्ट होकर) मेद संचय हो जाता है।

(४८) आर्तवजननं।

रजोनिःसारक—ऋतुप्रदोत्पन्न—एमेनगाग्स।
(Emmenagogues)।

जो द्रव्य न्यून, लुप्त, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुनः स्वाभाविक नियमानुसार स्थापन करे, उसे आर्तवजनन और रजोनिःसारक कहते हैं। यह द्रव्य ओषिगुहामें रक्तको संग्रहीत करता है। गर्भाशय आकुंचक द्रव्य (Ecbolics) जो सगर्भा न हो ऐसी स्त्रियोंको जब कम मात्रामें दिया जाता है, तब वह भी रजोनिःसारक रूपसे कार्य करता है। जो स्त्रियां जीर्ण विषमज्वर, जीर्ण पाण्डु, अन्य रोगजन्य अति निर्बलता आदिसे पीड़ित हों, उनको लोह, सुवर्णमाक्षिक कासीस, क्विनाइन आदि पौष्टिक औषधियां अवश्य देनी चाहिये। यदि मलावरोध हो, तो एलुआ भी मिला देना चाहिये।

औषधियाँ—सोहागा, हींग, कासीस, लोह भस्म, एलुआ हाऊबेर, लाल बोल, आंवला, सोय, खिरनी, मेथी, उलट कमल (Abroma Augusta) इन्द्रवल्ली, ब्राह्मी, कचनार, कपासमूलत्वक् आदि।

मुख्य प्रकार—१ साक्षात् (Direct) और २ परम्परा।

साक्षात् रजोनिःसारक औषधियाँ—विपुल प्रमोत, सामल, अरगट, उलट कमल, हींग, सोहागा, कपासमूलत्वक् दालचीनी कासीस भस्म आदि। इन औषधियोंकी क्रिया साक्षात् गर्भाशय पर होती है।

परम्परा रजोनिःसारक औषधियाँ—गर्भाशयमें रक्तसंग्रह होनेके लिये पैरोंको निवाये जलमें डुबोना, उष्ण जलसे कटिस्नान, उदरके नीचे सरसोंका सेक,

नाभिके नीचे पुल्टिस बांधना, ऊरुके भीतर जननेन्द्रियके पास जलौका प्रयोग तथा एलुआघटित औषधियां आदि। इनके प्रयोगसे गर्भाशयमें रक्त संगृहीत होकर मासिक धर्म आने लगता है।

गर्भपातक (गर्भाशय सकोचक) औषधियाँ (Ecbolics)—गर्भाशयके संकोचकी वृद्धि करा गर्भस्थ सन्तान आदिको बाहर निकालनेवाली औषधियोंको गर्भपातनी कहते हैं। ये औषधियां उत्तेजना पहुँचाकर गर्भाशयका आकुंचन करती हैं। इनमें भी साक्षात् और परम्परा फलदर्शक, ऐसे दो विभाग हैं।

साक्षात् फलप्रदमें क्विनाइन, बेरियम, सीसा, हिस्टेमीन और पोषणिका ग्रन्थिका पश्चिम भाग, ये गर्भाशय पेशीपर क्रिया करते हैं। अर्गट स्वतन्त्र नाड़ियों (Motor sympathetic) के सिरे पर कार्य करता है। कुचिलासत्व (Strychnine) केन्द्रस्थानपर असर पहुँचाता है। इनमेंसे हिस्टेमीन, अर्गट और पोषणिका सत्व अत्यन्त प्रबल कार्यकारी और विश्वसनीय औषधियां हैं। सीसेकी क्रिका प्रयोग प्राय गर्भस्राव या गर्भपात (Abortifacient) करानेके लिये किया जाता है।

परम्परा फलदर्शक औषधियां श्रोणिगुहामें रक्तसंग्रह कराती हैं। इनमें एलवा और अलसदृश पतले विरेचन लानेवाली औषधियां हैं। कितनेक क्षोभोत्पादक तैल सेवीन (Savine) आदि भी परम्परा असर पहुँचाते हैं।

उक्त औषधियोंका प्रयोग कम मात्रामें किया जाय, तो ये रजोनि सारक क्रिया करते हैं। उनके अतिरिक्त सर्पगन्धा, ईश्वरमूल (Aristolochia Indica) सुन्ताव (Ruta graveolens), सताप (हरमल), सोहागा, गांजा आदिमें भी गर्भ पाति गुण है।

आविजनन (Oxytocics)—जो औषधियां उत्तेजना पहुँचाकर प्रसव करानेमें सहायता पहुँचावे और प्रसव होनेपर गर्भाशयका आकुंचन करावें, उनको आविजनन संज्ञा दी है। क्विनाइन अर्गट, कीड़ामारीके मूल, गांजाकी कली, भांग, चित्रकमूल, पथ्य अजवायन, पिप्पलीमूल, सोंठ आदि व्यवहृत होते हैं। इनमें रजोनिःसारक गुण भी न्यूनाधिक अंशमें रहता है।

मासिकधर्मके समय गर्भाशय और दोनों बीजाशयोंमें रक्त संगृहीत हो जाता है। फिर बीजाशयोंमेंसे बीज (डिम्ब) निक्षिप्त होते हैं और गर्भाशयमेंसे रक्त प्रवाहित होने लगता है।

सार्वाङ्गिक और स्थानिक अवस्था भेदसे इस मासिकधर्मका लोप या ह्रास हो सकता है। जैसे पाण्डु रोग, अतिकृशता, अतिस्थूलता, गर्भाशय और बीजाशयोंमें स्वल्प रक्तसंग्रह होना आदि कारणोंसे युवावस्थामें भी रजोदर्शनमें हीनता आ जाती है।

सूचना—१ यदि आयु वृद्धि हो जानेसे स्वभावत रज लुप्त हुआ हो,

तो रजोनिःसारक औषधि नहीं देनी चाहिये। यदि औषधि दी जायगी, तो, गर्भाशय प्रदाह आदि रोग उपस्थित होंगे और रज स्राव भी नहीं होगा।

२ *सगर्भावस्था और गर्भाशय पर* मस्फोट होनेपर रजःस्राव करानेवाली औषधि व्यवहृत नहीं होती।

३ रजोनिःसारक औषधि देनी हो, तो मासिकधर्म आनेके पहिले देनी चाहिये।

मासिकधर्ममें क्रिया और समय भेदसे प्रकार—

१ अधिक रज स्राव (Profuse menses)।

२ दीर्घकाल स्थायी रजःस्राव (Long menses)।

३ असमय या अतीतकालमें ऋतुप्रकाश (Premature menses)।

४ विलम्बसे ऋतुप्रकाश (Delaying or retarded menses)।

५ अल्पकालस्थायी रज स्राव (Short menses)

६ अल्प रजःस्राव (Scanty menses)।

७ बार-बार रज स्राव (Again and again menses)।

८ पाक्षिक ऋतुप्रकाश (Fortnightly menses)।

९ अनियमित ऋतुप्रकाश (Irregular menses)।

१० गर्भावस्थामें ऋतुस्राव (Mense during pregnancy।

११ प्रतिरुद्ध या ऋतुस्राव (Suppressed Menses)।

मासिकधर्ममें रजके वर्ण उज्वल लाल (Red), कृष्ण (Black) पाण्डु (Pale), *मलिन वर्ण* (*Brown*), और हरित वर्ण (Greenish) होते हैं।

इनके अतिरिक्त इस रजःस्रावमें प्रकृति भेद और विकार भेदसे (१) विशुद्ध (Pure blood), (२) जलवत् (Watery), (३) मांसके टुकड़े (Clots) युक्त जमा हुआ, (४) चिपचिपा (Slimy) (५) दुर्गन्ध (Fetid smell) युक्त, (६) सड़ा हुआ (Putrid), (७) दाह युक्त (Ardent), (८) अम्ल वासयुक्त (Sour smelling) एवं (९) रज्जुवत् (like string) आदि प्रकार प्रतीत होते हैं।

किसीका चलने फिरनेसे अधिक रजःस्राव तथा बैठने और शयन करने पर मन्द हो जाता है। एवं किसीको दिनमें अधिक और किसीको रात्रिमें अधिक स्राव होता है। किसीको शूलसहित ऋतुस्राव होता है। शूलमें भी किसीका ऋतुप्रकाशके पहिले, किसीको ऋतुप्रकाशके प्रारम्भमें, ऋतुप्रकाशके मध्यमें और किसीको स्राव बन्द हो जानेपर वेदना होती है।

इनके अतिरिक्त शिरदर्द उदरस्फीति, कोष्ठबद्धता, अतिसार, ज्वर, कास, अपस्मार, बेहोशी, हृदयकम्पन, ऐंठन (Cramps), आक्षेप (Convulsions), अर्श, स्वरभंग, वमन, जननेन्द्रियमें दाह, शुष्कता, व्रण और जननेन्द्रियमेंसे आवाज-सहित वायुनिर्गमन आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। अत इन सबको दूर करनेके लिये कारण और उपद्रवके विचारपूर्वक मासिकधर्म शोधक चिकित्सा करनी चाहिये।

(४९) अत्यार्तव जननहर।

स्त्रियोंके मासिकधर्म कालमें रजःको विकृति होकर अधिक परिमाणमें रज स्राव (Menorrhagia Menorrhea) होने और मासिकधर्म कालके पश्चात् रक्तस्राव (Metrorrhagia) होनेपर विकृतिको दूर कर अति स्रावका ह्रास या दमन करावे, उनको अत्यार्तव जननहर संज्ञा दी है। इस कार्यके लिये शामक औषधियां हितकर होती हैं। एवं शीशियोंके काष्ठकी काली राख, उनकी काली राख, अशोक छाल, गूलर, केला, आंवला, भांग, गांजा, लालबोल आदि व्यवहृत होती हैं।

सूचना—यदि स्थानिक कारणके अतिरिक्त हृदयविकार या यकृतमें रक्त संग्रहके हेतुसे रक्तस्राव अधिक होता हो, तो मूल कारणको दूर करना चाहिये।

बोल—(बीजाबोल Myrrh) बोल वृक्षके गोंद (श्रीवास-कुन्दरु) को आयुर्वेदमें लघु, उष्ण, विपाकमें कटु, कफ-वातनाशक और विशेषतः रक्तहन्ता माना है परन्तु डाक्टरीमें उष्ण, कम्पन और रजोनिःसारक तथा अपचन, अत्यार्तव, हरीमक (पाण्डु भेद-Chlorosis) और इतर गर्भाशयके विकारमें हितकर माना है।

आयुर्वेदने रक्तहन्ता मानकर रक्तप्रमेह, रक्तप्रदर, नासिकासे रक्तस्राव और रक्तपित्तमें इसकी योजना की है। डाक्टरीमें रजोनिःसारक रूपसे प्रयोजित होता परन्तु कलकत्ताके सुप्रसिद्ध डाक्टर श्री किरणचन्द्र घोष L M S ने लिखा है कि "बोलकी रजोनिःसारक क्षमताके सम्बन्धमें संदेह होता है।"

(५०) प्रदरहर।

गर्भाशयप्रदाहहर अर्थात् गर्भाशयकी शिराओंका प्रदाह (Metrophlebitis), गर्भाशय और बीजकोषनलिकाका प्रदाह (Metrosalpingitis), तथा योनिमार्ग आदिकी श्लैष्मिककलाकी प्रदाहनाशक औषधियोंको प्रदरहर कहते हैं। लोहभस्म, भांग, गांजा, कुसुम्भ, राल, चौलाईकी जड़, रसौत, लाख, गम्भारी, मुलहठी, कमलकेसर, जामुनकी गुठली, पाठा, आमकी गुठली, सुपारी, लोद आदि ग्राही औषधियां तथा पिचकारी रूपसे फिटकरी आदि।

गर्भाशय आदिके प्रदाहके हेतुसे श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) होता है; अतः प्रदाहशमन होने पर श्वेत प्रदरका निवारण हो जाता है। गर्भाशय के मध्यसे स्राव

होता हो, तो यह जल सदृश पतला और क्वचित् पूय संयुक्त होता है। गर्भाशय ग्रीवा-सरणी (Cervical canal) से होनेवाला स्राव चिपचिपा श्लेष्ममय और विशेषतः पूयमिश्रित दुर्गन्धयुक्त पीले रंगका होता है। योन्याशय नलिकार्मेंसे स्राव पूययुक्त दुर्गन्धवाला, पतला और वेदना युक्त होता है तथा भगमेंसे होनेवाला स्राव गाढ सदृश चिपचिपा होता है।

रोध्रादि गण—सुश्रुत संहितामें लोध, पठानी लोध, पलाश, श्योनाक, अशोक, भारंगी, कायफल, एलवालुक (अभावमें कूठ या नेत्रबाला), सल्लकी (सालमेंच), मजीठ, कदम्ब, साल और केला, ये १२ औषधियां कही हैं। यह गण मेद, कफ, योनिदोष और विषका नाशक, अतिसार आदिका स्तम्भक तथा वर्णकर है।

(४१) दाह प्रशमन।

दाहशामक—रिफ्रिजरन्ट्स—Refrigerants।

जो द्रव्य आमाशय, मस्तिष्क हाथ-पैरोंके तल आदिके भीतर और बाहर होनेवाले दाहका निवारण करे, उनको दाहशामन कहते हैं। मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण मादि r, गन्धक, इलायची, केशर, श्वेतचन्दन, वनतुलसीके बीज, त्रिफला, मेंहदी, केवड़ा, कमल, कपूर, शिरस, धानका लावा, गम्भारीके फल, मुलहठी, मिश्री, खस, सौंफ, वनप्सा, वंशलोचन, अगर, अनन्तमूल, गिलोय, धनिया, पित्तपापड़ा, मंजिष्ठा, ककड़ीके बीज, पद्मकाष्ठ, दूर्वा, नेत्रबाला, दारुहल्दी, घी, मक्खन, दूध आदि।

सूचना—इस प्रकारकी औषधिके सेवन कालमें मिर्च, तैल, राई, सरसों आदि दाहक पदार्थ, नमक, आचार, सूर्यके ताप और अग्निका सेवन, तमाखू, गांजा, शराब गरम चाय गरम कॉफी, गरम-गरम भोजन, गरम मसाला, इत्यादि दाहवर्द्धक आहार-विहारका बिल्कुल त्याग करना चाहिये या हो सके उतना कम करना चाहिये।

नं० ६-७ पित्तशामकमें और नं० २३ तृष्णाप्रशमनमें कही हुई औषधियां तथा नं० ९० ज्वरघ्नकी कतिपय औषधियां दाहको शमन करती हैं।

क्वचित् भोजन कर लेने पर आमाशयिक रस अति तीव्र और अम्ल बन जाता है, तब रोगीको दाह होता है, खट्टी-खट्टी डकारें आती हैं। यदि १–२ घण्टेमें वमन न हो जाय, तो उदरमें भारीपन, अफारा और वेदना उपस्थित होती है। ऐसे समय पर यदि भोजनके पहिले आमाशयमें खट्टा अम्लरस शेष न हो, तो भोजनके २० ३० मिनट पहिले या भोजन कर लेने पर तुरन्त क्षारस प्रधान औषधि दी जाती है, जिससे आमाशयकी श्लामेंसे रसस्राव न्यून हो जाता है। किन्तु विशेषतः अम्ल पित्त या अपचनसे रोगीके देहमें दूषित रस संग्रहीत रहता है, जिससे तुरत वमन क्रिया

द्वारा आमाशयका संशोधन और भोजनके ३ घण्टे पश्चात् क्षार प्रधान औषधि देनी पड़ती है। यदि आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता अधिक है, तो उसके शमनार्थ, आंवला, कूष्माण्ड आदि शामक औषधका भी प्रयोग किया जाता है। इस तरह आमाशय रसकी अम्लता दूर कराने पर दाह सहज शमन हो जाती है।

क्वचित् विषप्रकोप या उग्र वस्तुके सेवनसे त्वचामें पित्तकी उष्णता पहुँच जानेसे त्वचामें दाह होती है, समस्त शरीरमें मस्तिष्कमें, हाथ-पैरोंके तलवोंमें या इतर किसी स्थान विशेष पर दाह मालूम पड़ती है। ऐसे समयपर शीतल जलमें बैठना, रीठा, बेरके पत्ते या नीमके पत्तोंके झागकी मालिश की जाती है। सिद्ध तैल, मक्खन, बकरीके दूध आदिसे मर्दन कराया जाता है, या घीकुंवारके गर्भका लेप अथवा चन्दनको जलमें घिसकर लेप कराया जाता है तथा खानेके लिये भी शीतल औषधि दी जाती है।

यदि मिर्च, राई आदि दाहक पदार्थोंके स्पर्शसे स्थानिक दाह होता हो, तो घृत-तैल आदिकी मालिश करानेसे दाहकी निवृत्ति होती है।

अग्नि सेवन, धूपके तापका सेवन या उष्ण वस्तुके हेतुसे दाह होता हो, तो मौक्तिक, प्रवाल, दूधकी लस्सी या शीतल जल मिला शर्बत आदिका सेवन कराना चाहिये।

सुश्रुत संहितामें सारिवादि गण, परुषकादि गण, अञ्जनादि गण और उत्पलादि गण दाहशमनार्थ कहे हैं —

सारिवादि गण—अनन्तमूल, मुलहठी, रक्त चन्दन पद्माख, गम्भारीफल, महुवेका फल और खस, ये ७ औषधियां कही हैं। यह गण तृषा, रक्तपित्त, पित्तज्वर और दाहका निवारण करता है।

परुषकादि गण—फालसा, दाख, गम्भारीफल, अनार, खिरनी, निर्मलीफल, शाकफल (सागके फल) और त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), ये १० औषधियां कहीं हैं। यह गण वात, मूत्रदोष (मूत्रदाह मूत्रकी लाली आदि) और पिपासाका नाशक, हृद्य और रुचिवर्द्धक है।

अञ्जनादि गण—सुरमा, रसोत, नागकेशर, प्रियंगू नीलोफर, खस, कमलकेशर, और मुलहठी, ये ८ औषधियां कहीं हैं। यह गण रक्तपित्त, विषदोष और आभ्यन्तरिक दाहको शमन करता है।

उत्पलादि गण—नीलोफर, लालकमल, कुमुदनी, सुगन्धवाला, नीलारविंद कमल, श्वेत कमल और मुलहठी, ये ७ औषधियां कही हैं। यह गण दाह, पित्त, रक्त दोष, प्यास, विष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छाको दूर करता है।

दाह शमन सम्बन्धी विशेष विचार "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" द्वितीय खण्डमें किया गया है।

(५२) दीपन।

अग्नि दीपन—एपिटाइजर्स—Appetisers.

जो द्रव्य पचन संस्थाकी अग्निको बढानेमें हितकर हों, उनको दीपन संज्ञा दी है। आचार्य खारणादिका वचन अष्टाङ्ग संग्रहके टीकाकार इन्दुदत्ताचार्यने उद्धृत किया है कि, "दीपनं त्वग्निकृत्सामं कदाचित्पाचयेन्न वा" अर्थात् जो द्रव्य अग्निको प्रदीप्त करनेवाला हो, नियमपूर्वक आमका पचन करावे या न करावे, वह दीपन कहाता है।

दीपनीय गण—चरक संहितामें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, अदरख (सोंठ) अम्लवेंत, काली मिर्च, अजमोद, गोखरू (भिलावेकी गिरी) और हींग, ये १० औषधियां कही हैं।

सुश्रुत संहितामें त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), बिल्वादि गण (बृहत्पंच मूल), गुडूच्यादि गण तथा आमलक्यादि गण (आंवला, हरड़, पिप्पली, चित्रक) को दीपन कहा है। गुडूच्यादि गणका वर्णन नं० ९० ज्वरघ्नमें किया जायगा।

और औषधियाँ – घी, सौंफ, सोया, बिजौरा, सन्तरा, नीबू, धनिया, दाल चीनी, जाविन्त्री, जायफल, जीरा, कालाजीरा, मेथी, लहसुन, प्याज, अम्लवाष्प, भांग, शराब, सोमल, अभ्रक भस्म, कुचिला, अम्लद्रव आदि।

दीपन औषधि प्रायः अम्ल, कटु, लवण, मधुर रसप्रधान होती हैं। अम्लरस वातनाड़ियोंपर क्रिया दर्शाकर कार्य करता है। कटु रस विशेषतः पाचन होता है। लवणरस मलाका शोधन करके लाभ पहुँचाता है। मधुर रस (घृत, तैल आदि) पाचक रस उत्पादक घटकोंके बलकी वृद्धि करता है।

रसवैशेषिक सूत्रकारने दीपन गुणको पृथिवी वायु प्रधान कहा है तथा ये द्रव्य पित्तप्रधान रस और गुणोंकी वृद्धि करते हैं। आमाशयगत वातवाहिनियां उत्तेजित होकर आमाशय रसस्राव अधिक कराती हैं (पाचन द्रव्य आमाशय रसस्रावको उत्पन्न बनाती है) अग्निमें थोड़ा-थोड़ा घृत-तैल आदि डालने पर जिस तरह वह प्रज्वलित होता है उस तरह मर्यादित घृत, तैल और तैलप्रधान द्रव्यके सेवनसे पचनाग्नि प्रदीप्त होती है। जो द्रव्य रुचिकर होते हैं, वे भी लालास्राव और आमाशय रसस्राव अधिक कराते हैं। भांग सोमल, अभ्रक आदि वातनाड़ियोंके उत्तेजक होनेसे आमाशयके रसस्रावको बढ़ाते हैं।

दीपन क्रियाकी सिद्धि तब होती है, जब आमाशय रिक्त हो, तथा पहिलेके आहारका पचन होकर शौच शुद्धि हो गई हो। यदि अपचन हो तो पाचक औषधि देनी चाहिये। शौच शुद्धि न हुई हो तो उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। मलकी शुद्धि होने पर दीपन औषधिका कार्य सरलतापूर्वक हो सकता है।

ज्वर, पच्यमान शोथ, कफप्रधान कास, श्वास आदि अनेक रोगोंमें अग्निमान्द्य हो जाता है। उन रोगोंमें पहिले उन रोगोंकी नाशक औषधि लेनी चाहिये। रस, रक्त, मांस आदि धातुएँ निर्बल हैं, तो उनका बल बढ़े, ऐसी योजना करनी चाहिये। दीपन पौष्टिक औषधि (विशेषतः दीपन-पाचन-तिक्त रसप्रधान), लघु पौष्टिक आहार और आवश्यक व्यायाम द्वारा धातुओंको लाभ पहुँच सकता है।

डाक्टरी दृष्टिसे विशेष विचार नं० ५४ दीपन-पाचन गुणके साथ किया जायगा।

(५३) पाचन।

डाइजेस्टेण्ट्स—डाइजेस्टिव्स—Digestants—Digestives

पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद् यत् तद्धि पाचनम्।
नागकेशरवद् विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः॥

जो द्रव्य आम (अपक्व आहार रस) का पचन करता है किन्तु अग्निको प्रदीप्त नहीं करता, उसे पाचन कहते हैं। जैसे नागकेशर। पचनगुणके साथ जो द्रव्य जठराग्निको प्रदीप्त भी करता है, उसे दीपन-पाचन संज्ञा दी है।

अन्त्रमें क्षोभ होकर अतिसार होनेपर ग्राही औषध सेवन करायी जाती है। परिणाममें अनेक बार क्षोभ शमन होकर निर्बलता और बड़ोंके अन्त्रमें आम संग्रहीत हो जाती है। अन्त्र कुण्डलीकी वातनाड़ियाँ खिंच जानेसे स्थान-स्थानपर आकुंचन हो जाता है। जिससे आहार द्रव्यकी योग्य गति नहीं होती। मल बकरीकी मेंगनी या घोड़ेकी लीदके समान बन जाता है। मलके चारों ओर आम लगा रहता है और आमविषका शोषण भी रक्तमें होता रहता है। ऐसी अवस्थामें आमविघ्न, आम पाचन और अन्त्रको सबल, बनानेका काम दीपनगुण प्रधान औषधिसे नहीं होता। उसके लिये पाचन गुणकी ही आवश्यकता है। श्री शार्ङ्गधराचार्यने इस गुणवाले द्रव्योंमेंसे नागकेशरका उदाहरण दिया है।

चरक संहितामें दीपनीय गणमें ही पाचन औषधियाँ लिख दी हैं। अतः उस ग्रन्थमें दीपन, पाचन, ये दो विभाग नहीं किये। सुश्रुत संहितामें वचादि, हरिद्रादि और मुस्तादि गण (तीनों नं० ७० स्तन्यशोधनमें), पिप्पल्यादि गण (नं० ९ कफदोषघ्नमें), दशमूल तथा बृहत्यादि गण (नं० ९ कफदोषघ्नमें), इन सबको पाचन कहा है। यथार्थमें ये सब दीपन-पाचन मिश्रित द्रव्य हैं।

और औषधियाँ—मठा, सज्जीखार, यवक्षार आदि अनेक सौम्य क्षार, भिलावा, सेंधानमक, समुद्रनमक आदि। पाचन औषधि उष्णवीर्य विशेषतः कटु, अम्लरस प्रधान होती हैं। क्षार और लवण भी पाचन गुण दर्शाते हैं।

डाक्टरीमें पेप्सिन (वराह आदि पशुओंके आमाशयमेंसे प्राप्त पाचन द्रव्य) पपैन (अर्धपक्व एरण्डककड़ीके दूधका सत्व), यवसत्व (Ext. Malt.) को पाचन कहा है।

पाचन द्रव्य चरकाचार्यके मतमें अग्नि वायु गुण प्रधान हैं। रसवैशेषिक सूत्रकारने आग्नेयगुण प्रधान दर्शाया है। जो द्रव्य आमाशय रसको तीव्र बनावें, वे आमका पचन कर सकते हैं। जब आमाशयमें अत्यधिक भोजनसे अपचन हुआ हो, आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें चिरकारी प्रदाह होनेसे आमोत्पत्ति अधिक होती रहती हो, तब क्षोभशामक और पाचन गुण युक्त या केवल पाचन गुणयुक्त द्रव्यके सेवनकी आवश्यकता रहती है।

पाचन गुण प्रधान तथा दीपन-पाचन गुण प्रधान आदि औषधियोंका कब प्रयोग करना चाहिये। इस सम्बन्धका विशेष विचार नं० ५४ दीपन-पाचनके डाक्टरी विवेचनमें किया जायगा।

अनेक बार किसी विशेष द्रव्यके अपचनसे स्वास्थ्य बिगड़ता है, तब उस द्रव्यके विरोधी द्रव्य (दोषशामक द्रव्य) द्वारा उसके विकारको दूर करना चाहिये। जैसे अम्लरसजन्य विकृति होनेपर क्षार सेवन। क्षारजन्य विकार होनेपर अम्लरसका सेवन आदि। इसके कुछ उदाहरण रसवर्णनके अन्तमें दिये हैं।

(५४) दीपन-पाचन।

स्टमकिक्स एण्ड एपिटाइजर्स—Stomachics & Appetisers.

दीपन और पाचन, दोनों गुण जिन द्रव्योंमें हो, उनको दीपन-पाचन कहते हैं। चरक संहितामें कहे हुए दीपनीय गण तथा सुश्रुत संहितामें कहे हुए पिप्पल्यादि गणमें दीपन और पाचन दोनों गुण दर्शाये हैं।

और औषधियाँ—ताम्र भस्म, कुचिला, करंजबीज, स्ट्रिकनाइन, अजवायन, अतीस, चिरायता, वच, सुवर्ण चम्पाकी छाल, चित्रकमूल, आलानमक आदि लवण, सज्जीखार, नीलगिरी तैल, पीपरमेण्ट तैल, हींग, इन्द्रजौ, प्रवाल, शंख, वराटिका, दालचीनी तैल, लौंगका तैल, नौसादर आदि।

आमाशय गतिपर कार्यकारी औषधियाँ—कुचिला, कुचिला सत्व और चित्रकमूल आदि चरपरी, दीपन-पाचन औषधियोंके सेवनसे आमाशयस्थ मंथन क्रिया प्रबल होकर भोजन सत्वर पचन हो जाता है।

आहार-मलकी शोषण क्रियाको बढ़ानेवाली औषधियाँ—ताम्र भस्म, नौसादर आदि जो औषधियाँ यकृत् और अन्त्रकी क्रियापर काम पहुँचाती हैं, वे ही परम्परा आमाशयकी शोषण क्रियाको सबल बनाती हैं। इसी हेतुसे यकृत् पित्त निःसारक और विरेचन औषधियाँ आमाशयकी शोषण क्रिया पर उपकारक होती हैं।

सोमल, ताम्र, लोह भस्म, पारदघटित औषधियाँ, ऊसारेरेवन्द, वत्सनाभ आदि औषधियाँ आमाशय कलाको उत्तेजित करती हैं।

सोहागा, गन्धक, नौसागिरी तैल आदि आमाशयकी फेनीमथन क्रियाको निर्दोष बनाती हैं। इसी हेतुसे अपचन नष्ट होता है।

ताजा मधुर तक्र और क्षार रस लाला स्रावकी कमी और आमाशय रसकी वृद्धि कराते हैं। भोजनके साथ लिये हुए अम्ल तक्र और अम्ल रस आमाशय रस स्राव कम तथा लालास्राव अधिक कराते हैं।

वराटिका आदि भस्म, अफीम वर्ग, खुरासानी अजवायन, आमाशय रसकी अधिक उत्तेजना होनेपर उग्रताका ह्रास करा आमाशयको लाभ पहुँचाती हैं। अत ये सब विविध वेदनायुक्त अजीर्ण रोगमें व्यवहृत होती हैं।

दीपन, पाचन औषधियाँ क्षुधा प्रदीप्त करती हैं किन्तु यह आमाशयकी विशेष अवस्था और औषध परिमाणपर निर्भर है। आमाशय कला स्वल्प उत्तेजित होने पर क्षुधाका उद्रेक होता है अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजना होनेपर क्षुधा विरोहित हो जाती है और अत्यन्त उत्तेजना होनेपर उबाक और वमन उपस्थित हो जाती हैं। सामान्यत स्वस्थावस्थामें आमाशय स्वल्प उत्तेजित होनेपर आमाशयका रसस्राव बढ़ जाता है और अधिक उत्तेजना होनेपर आमाशयका रसस्राव बन्द हो जाता है।

दुर्बलताजन्य अग्निमान्द्य (Atonic Dyspepsia) में कचित् उत्तेजना होनेपर क्षुधाका उद्रेक हो जाता है।

जब जिह्वा कोमल स्निग्ध हो, तब सोमल, ताम्र और चरपरी औषधियाँ लाभदायक होती हैं। परन्तु आमाशयमें उग्रता आ जानेसे जब जिह्वा फटी हुई रक्तवर्ण युक्त प्रतीत होती हो, तब ये सब औषधियाँ उग्रता बढ़ा देती हैं। परिणाममें क्षुधाका अधिक ह्रास हो जाता है, और उबाक प्रारम्भ हो जाती है।

पित्ताशय शूलके आक्रमणके पूर्वकालमें आमाशयमें उग्रताकी वृद्धि होती है और *यथेष्ट क्षुधा लगती है और भोजन रुचिपूर्वक किया जाता है।* फिर उग्रता अधिक बढ़नेपर भोजनके पहिले अति क्षुधाका भास होता है, परन्तु थोड़ा-सा भोजन करनेपर क्षुधा लोप हो जाती है। ऐसी अवस्थामें चरपरी औषधियाँ लाभ नहीं पहुँचा सकती प्रत्युत हानि पहुँचाती हैं। ऐसे समयपर आमाशय शामक प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख भस्म, जवाखार, इसर क्षार और सौंफ आदि औषधियाँ उपकारक होती हैं।

आमाशय क्रिया प्रकार—

१ पाचक रस निःसरण करा भुक्त द्रव्यको शोषण और समीकरण योग्य बनाना।

२ आमाशय की गति द्वारा आहार द्रव्य अणु अणु रूपमें विभक्त होकर उनका आमाशय रसमें सम्मिलित होना।

३ आहारके कुछ अंशका आमाशयकी पाचन क्रिया द्वारा शोषण योग्य होनेपर शोषित हो जाना।

आमाशय रसस्राव पर कार्यकर आहार—भोजनके पहिले शर्करामिश्रित जलका सेवन करनेसे आमाशय रस अधिक निकलता है। भोजनके प्रारम्भमें किञ्चित् नीबूके रस, सैंधानमक और अदरखके सेवनसे भी रसस्राव अधिक होता है। जल मिश्रित स्वल्प शराबसे भी आमाशयमें उत्तेजना आ जाती है।

अम्लरस मिश्रित क्षार सेवनसे मुखमें लालास्राव अधिक होता है। लालास्राव विशेष होनेपर भोजन सुस्वादु लगता है एवं अच्छी तरह आहारको चबानेसे लालास्राव और आमाशय रस निःसरणमें भी वृद्धि होती है।

अजीर्ण रोगके निर्बल आमाशय वालोंको चाहिये कि, भोजनके प्रारम्भमें शुष्क पदार्थका सेवन करें। जिससे आमाशयमेंसे योग्य मात्रामें रसस्राव हो, स्मरण रखें कि तरल पदार्थके अधिक सेवनसे रसस्रावमें न्यूनता होती है।

निर्बल पचन शक्तिवालोंको भोजन कर लेने पर जल्दी जलपान नहीं करना चाहिये। कमसे कम भोजनके १ घण्टे बाद जल पीना चाहिये।

तीव्र रोगोंके अन्तमें सार्वांगिक क्षीणतामें एवं वृद्धावस्थाजनित निर्बलतामें (आमाशयको उत्तेजित करनेसे भी) यथोचित रसस्राव न होता हो, तो भोजनके प्रारम्भमें नीबू रस और नमकमिश्रित अदरख, भोजनके अन्तमें तक्र, भोजनके साथ लहसुन, अनारदाने और पोदीनेकी चटनी या भोजनके दो-तीन घण्टे बाद नीबूका रस या सन्तरा आदि फलोंका रस सेवन करना चाहिये।

जब अपचन रोगमें खट्टी डकार आना दाह, प्यास आदि लक्षण उपस्थित हो, तब भोजनके दो-तीन घण्टे पश्चात् सोडा लेना या उदर क्षार अथवा शंखवटी देनेसे उदरमें भारीपन, खट्टी डकार, दाह और बेचैनी आदि दूर होकर भोजन सरलतासे पचन हो जाता है।

डाक्टरी विशेष विचार

आहारका संग्रह करनेवालोंमें आमाशय मुख्य स्थान है। यह देहके लिये उपयोगी हो, उस तरह कुछ पचन द्वारा और कुछ यान्त्रिक रीतिसे तरल और अर्द्ध तरल आहारका परिवर्तन और दमन करता है। कठोर आहार आमाशयमें कुछ घण्टोंतक रह जाता है, इस समयके भीतर आमाशयस्थ मांसपेशियां आकुंचित होती है और परिचालन क्रिया द्वारा आहार तरल बनता जाता है और वह मुद्रिका द्वारसे ग्रहणीके भीतर फैंका जाता है। हार्दिकद्वारसंकोचनी, और मुद्रिकाद्वारसंकोचनी, दोनों पेशियोंके दबाव द्वारा आमाशयमेंसे आहार रसको बाहर निकाल दिया जाता है। जब आहार द्रव्य अमुक पचनावस्थाको प्राप्त होता है, तब प्रतिफलित क्रिया होकर

मुद्रिका द्वार खुलता है। और आहाररसका ग्रहणीमें प्रवेश होता है किन्तु, जो आहाररस अन्त्रमें जाने योग्य न बना हो, उसे आमाशयका अन्तर्भाग रोक लेता है।

आमाशयपर अंकुश रखनेके लिये दो प्रकारकी नाड़ियोंके तन्तु फैले हुए हैं, १ प्राणदानाडी (Vagus or Augmentor nerve), यह आमाशयकी आकुंचन क्रियाको उत्तेजित करती है २ आशयिकीनाड़ी (Splanch nics or inhabitor nerve), यह आमाशयकी गति या उत्तेजनाको शांत करती है। इस हेतुसे सब परिस्वतन्त्र नाड़ियोंकी उत्तेजना द्वारा आमाशय गतिकी वृद्धि और स्वतन्त्र नाड़ियोंकी उत्तेजना द्वारा, सब गतिका निवारण होता है। यह एक स्वयं सचालित अवयव है, जो रसस्राव और गतिका संरक्षण करता तथा आमाशयकी पचन क्रिया नियमित करता है।

आमाशयिक रससे होनेवाली क्रिया —

१ पेप्टिक पचन (Peptic digestion)—इस क्रियाके लिये पेपसिन द्रव्य और लवणाम्ल स्रावकी सहायता चाहिये। यह पेपिन पचनमें सहायक है, लवणाम्लके अभावमें इसका महत्व नहीं है। क्योंकि, मांस अविकृत (पचन क्रिया रहित) शेष रह जाता है।

२ अपक्षयरोधक क्रिया (Anti septic action)—यह क्रिया अति महत्वकी है। क्योंकि आमाशयका अम्लरस अनेक जातिके कीटाणुओंको नष्ट कर डालता है। प्रसिद्ध स्ट्रेप्टोकाकाईका भी नाश हो जाता है। एवं प्रवाहिका, मधुरा, विसूचिकाके कीटाणु भी न्यूनाधिक अंशमें आमाशयरस द्वारा नष्ट हो जाते हैं। यदि आमाशयके लवणाम्ल स्रावका अभाव हो तो लघु अन्त्रके द्रव्योंका क्षारीयपन बढ़ जाता है। ऐसी स्थितिमें ग्रहणी बेसिलसकालाईके आक्रमणके अनुकूल बन जाती है। सामान्यतः लघु अन्त्रकी ओरसे स्ट्रेप्टोकोकाइ द्वारा तथा नीचेकी ओरसे बेसिलस कोलाई द्वारा प्रभावित हो जाता है। यह परिवर्तन लवणाम्लके अभावसे आहार द्रव्यका योग्य भेदन न होनेसे होता है। फिर श्लैष्मिक कलापर क्षोभ होकर चिरकारी अन्त्र प्रदाहकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

३ रक्तरचना (Hoemopoisis)—इसके २ विभाग हैं।

अ लोहशोषण (Iron absorption)—सामान्यतः भोजनमें पूरा लोहद्रव्य रहता है, जो रक्तमें रक्तरञ्जकका कुछ अंशमें पोषण करता है। लवणाम्लके अभावमें आहार और उसके अनुवर्ति आहार लोहका उपयोग अपूर्ण होता है। यदि रक्तकी कुछ हानि होती है या लोहकी मात्रा आहारमें शोषित होती है, यह लोहके योग्य अनुपातकी रक्षा नहीं कर सकती। परिणाममें लघु रक्ताणुओंकी उत्पत्तिमय पाण्डु उपस्थित होता है। लवणाभावमें आहार लोहका अधिक अनुकूल

परिवर्धन करनेमें असफलता मिलनेसे तथा लोहशोषणमें अन्नकी असमर्थता हो जानेसे स्वास्थ्यका पतन होता है।

आ रक्तरंजन (Hoemopoietin)—की उत्पत्ति आमाशयरसके भीतर आभ्यन्तरिक प्रतिनिधि (Intrinsic factor) जो आहारस्थ प्रथिन (बाह्य प्रतिनिधि Extrinsic Factor) पर परिपक्व रक्तद्रव्य बनानेकी क्रिया करता है, जो मज्जामें रक्ताणुओंकि परिपाकके लिये उपयोगी है। इसके अभावमें घातक (Pernicious) पाण्डु उपस्थित होता है।

४ नाड़ीजनकी (Neuropoietin) की उत्पत्ति—आमाशयरस जिस तरह रक्तजनकी उत्पत्ति कराता है, उस तरह केन्द्रीय नाड़ीसंस्थाके सामान्य पोषणार्थ नाड़ीजन भी तैयार कराता है। यह मज्जाके स्वमायका है और आमाशयरसमें इसका अभाव होनेपर सुषुम्नाकाण्डकी अपक्रांति होती है।

आमाशयरसके उत्पत्तिवर्द्धन हेतु—आमाशयरसकी उत्पत्ति पर प्राणदा नाड़ी अंकुश है, जो रसस्रावी सूत्रों द्वारा दमन करती है। प्राणदानाड़ियोंके परिधि मान्यके सिरेकी उत्तेजनाके अनुरूप आमाशयिक रसस्राव होता है। आमाशय रिक्त होनेपर भी अन्नकी सुगन्धमात्रसे आमाशयके भीतर रसस्राव होने लगता है। स्वाद और सुगन्धग्राही नाड़ीकी उत्तेजना होनेसे प्राणदा नाड़ीके रसस्रावी तन्तुपर प्रतिफलित क्रिया होती है। इस तरह उत्पन्न रसस्रावको मानसस्राव (Psychic Secretion) संज्ञा दी है। मनुष्योंमें भी कड़ियोंको इमली आदि पदार्थोंको देखने मात्रसे मुखके भीतर लालास्राव होने लगता है, यह भी मानस स्राव है।

इस तरह मानस उत्तेजना द्वारा आमाशय स्राव और लालास्राव, दोनोंकी वृद्धि होती है। यदि सूचीबूटी सत्व (Atropine) आदिके प्रयोग द्वारा प्राणदा नाड़ियोंका पक्षवध कराया जाय, तो रसस्रावी सूत्रोंकी उत्तेजना नहीं होती एवं रसस्राव भी नहीं होता। यह स्राव आमाशयिक पचनका प्रारम्भ करता है, जो आमाशयमें आगे स्रावोत्पत्ति द्वारा स्वयमेव पूर्ण हो जाता है। इसलिये यह विदित होता है कि, अतिरिक्त स्राव कतिपय रासायनिक या विशेष प्रकार की उत्तेजनाका आभारी है। यथार्थमें जब मुद्रिका द्वारकी श्लैष्मिक कलाका सत्व रक्तके भीतर प्रविष्ट होता है, तब आमाशयका स्राव बढ़ जाता है। यह स्रावोत्तेजनाकी उत्पत्तिके लिये आरोपित होता है, जो कतिपय आहारसे उत्पन्न होता है और जो मुद्रिका द्वारकी श्लैष्मिक कलापर क्रिया करके गेस्ट्रिन (Gastrin) अर्थात् आमाशयरसके उत्तेजक द्रव्यकी रचना करता है, जो रक्तमेंसे लाया जाता है और वह ग्रन्थियोंपर रासायनिक उत्तेजन क्रिया करता है। कितनेक आहार, मुख्यतः मांसरस, शोरवा आदि रासायनिक उत्तेजक द्रव्यकी उत्पत्तिको सन्दीपित करते हैं। और अण्डेकी सफेदी, रोटी और सामान्य शाकरस ऐसी क्रियाकी उत्पत्ति नहीं कराते।

आमाशयरस स्राववर्द्धक औषध क्रिया—इसके ५ प्रकार हैं —

१ मानस स्राव (Psychic Secretion)—मुखकी नाड़ियोंकी उत्तेजनाकी प्रतिफलित क्रिया द्वारा उत्पत्ति जो रुचिकर आहारकी वार्तालाप या दर्शन द्वारा मुखमें रहे हुए गंधग्राही या स्वादग्राही नाड़ीतन्तु उत्तेजित होते हैं। जो क्षुधाकी भावनाको प्रदीप्त करते हैं और आमाशयमें रसस्रावकी वृद्धि कराते हैं, इस प्रकारके द्रव्य रुचिकर आहार या पेय हैं। तिक्त और सुगन्धयुक्त औषधियां भी भोजनके पहिले मानसस्रावको उत्तेजित करती हैं, जिनकी प्रतिफलित क्रिया स्वादग्राही नाड़ियों द्वारा होती है।

२. प्राणदा नाड़ियोंके रसस्रावी सूत्रोंकी उत्तेजना द्वारा—पाइलोकार्पिन, एसिटैलकोलिन और मस्केरिन आदि।

३ आमाशय स्कंधकी प्रत्यक्ष उत्तेजना द्वारा—शराब आदि।

४ मुद्रिका द्वारकी उत्तेजना द्वारा—कतिपय मांसरस, यवाम्ल, शोरवा आदि, रासायनिक उत्तेजकके सदृश कार्य करते हैं।

क्षार—भोजनके पहिले सेवन करानेपर आमाशयस्राव बढ़ जाता है।

आमाशय रसस्रावका ह्रासकरनेवाली औषधियाँ—इसके ५ प्रकार हैं।

१ ग्राही औषधियाँ—अफीम, टैनिक प्रधान औषधियां (लोध, माजूफल आदि), धातुओंके लवण आदि।

२ प्राणदानाड़ीके सिरेका पक्षवध करानेवाली औषधियाँ—एट्रोपिन, खुरासानी, धतूरा आदि।

३ जमनेवाले तैल और वसा।

४ क्षार—ये कतिपय प्रकारके अजीर्णमें दुग्धाम्ल और यवाम्लसे उत्पन्न अत्यधिक अम्लताको उदासीन बनानेके लिये व्यवहृत होते हैं। इसके सेवनसे पहिले आमाशयरसका ह्रास होता है; किन्तु आरोग्य होनेपर ग्रन्थियां अधिकतर अम्लका स्राव कराती हैं (अतः इसका सेवन सम्हालपूर्वक करना चाहिये)

५ आमाशय स्कन्धपर प्रत्यक्ष क्रिया—पहिले श्लेष्मकी वृद्धि होती है। फिर आमाशय रसस्रावका ह्रास होता है।

इनके अतिरिक्त जिस तरह मानस प्रभाव द्वारा स्राव बढ़ता है, उसी तरह मानस आघात, चिन्ता आदि द्वारा स्राव घटता है। बर्फजल भी स्रावका ह्रास कराता है। भोजनके पहिले या भोजनके बीचमें बर्फजलका पान करना, यह पचन क्रियामें कुछ बाधा पहुँचाता है।

आमाशयिक रसकी रचनापरिवर्त्तक औषध—आमाशयरसमें विकृति आनेपर अपूर्ण या अत्यधिक (Hyperchlorhydria) भी होता है। कभी अनेक परिस्थितियोंमें लवणाम्लकी न्यूनता होती है और सामान्य स्थितिमें कुछ भी

लवण प्रभावित नहीं होता। लवणाम्लके अभावमें आमाशयके कीटाणुनाशक द्रव्यका ह्रास होता है और इसलिये आमाशयरसमें लवणाम्लका अभाव (Achlorhydria) पचनसंस्थाके ऊपरके हिस्सेको रोगविष संचारके अनुकूल बनाता है। आमाशयमें कर्कस्फोट आदि रोगोंके हेतुसे या श्लेष्माका अधिक संग्रह होनेपर यह अपूर्णता उपस्थित होती है। परिणाममें चिरकारी आमाशयप्रदाहकी संप्राप्ति होती है। ज्वरावस्था, घातक पाण्डु और अन्य अनेक रोगोंमें तथा अन्त्रमेंसे क्षारीयरसका विपरीतागमन (Regurgitation) होनेपर ऐसी स्थिति प्राप्त होती है।

आमाशयिक व्रणसे पीड़ितोंमें सामान्यतः अत्यधिक रसस्राव होता रहता है। अधिक स्रावकी चिकित्सा क्षार द्वारा होती है। डाक्टरीमें मेगनेशियम ऑक्साइड उत्तम माना है, क्योंकि वह कार्बोनिक एसिडकी उत्पत्ति नहीं कराता जो एसिड आमाशय स्रावकी उत्पत्तिको बढ़ाता है कैलशियम और मेगनेशियम-कार्ब इसके पश्चात् आते हैं, जो सोडाबाईकार्ब और पोटाशियमकी अपेक्षा सबल हैं। वे अम्ल विरोधी कहाते हैं। दूध भी मूल्यवान अम्लविरोधी और अम्लको उदासीन करनेवाला है।

आमाशयिक गतिके परिवर्त्तक औषध—आमाशयकी गति बढ़ी हुई हो, ऐसे समयपर आमाशयकी श्लैष्मिककलापर शामक असर पहुँचानेवाली औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। जो चेष्टानाड़ी यन्त्रणा द्वारा क्रिया करता है, जो आमाशयशामक (Gastric Sedatives) द्रव्य हैं वे आमाशयकी श्लैष्मिककलापर शामक असर पहुँचाते हैं। कोकीन और वमन औषध, सूचीबूटीसत्व, पहुँनसिन आदि बढ़ी हुई गतिको कम कराते हैं। पहिले प्राणदानाड़ियों पर शामक असर और फिर परिस्वतन्त्र नाड़ियोंपर उत्तेजक असर पहुँचाकर कार्य करते हैं। अफीम मांसपेशियोंपर आकुंचन क्रिया करके और मुद्रिका द्वारकी पेशीका आकुंचन करके आमाशयकी गतिका ह्रास कराती है। बिस्मथका अद्रवीभूत लवण, मेगनेशियम और कैलशियम आवरणकी रक्षा और आमाशय गतिका ह्रास कराते हैं। कोकीन, हाइड्रोश्येनिक अम्ल और क्लोरोफार्म आदि औषधियाँ संवेदना नाड़ियोंके सिरेपर शामक असर पहुँचाती हैं और प्रतिफलित क्रिया द्वारा आमाशयगतिका ह्रास कराती हैं।

अम्ल और क्षारका असर आमाशयकी गतिपर अनुमानात्मक मूल्यवान होता है। आमाशयमें मुक्त अम्लकी विद्यमानता दार्विक द्वारका आकुंचन कराती है, मुद्रिका द्वारकी गति बढ़ाती है, मुद्रिका द्वारकी संकोचक पेशीको खोल देती है और आमाशयिक द्रव्यको ग्रहणीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देती है। ग्रहणीमें मुक्त अम्लकी विद्यमानता मुद्रिका द्वारको बन्द करनेके लिये प्रतिफलित क्रिया कराती है और जबतक वह अन्त्रके रसद्वारा उदासीन न हो जाय, तबतक नहीं खुलता। यह भी निश्चित हुआ है कि, मुद्रिका द्वारकी आकुंचक पेशीपर आमाशयकी अपेक्षा ग्रहणीका अधिक

प्रभुत्व है। यद्यपि क्षोभोत्पादक ग्रासक मुद्रिका द्वारका आकुंचन कराता है, तथापि यह क्रिया जब वमन द्रव्यका प्रयोग होता है या जब आहार द्रव्य क्षोभ उत्पन्न कराता है, तब ही होती है, अन्य समयमें तो ग्रहणीका ही अधिकार अधिक रहता है। जब आमाशय स्वयमेव वमन द्वारा द्रव्यका परित्याग करता है, तब हार्दिक द्वारकी आकुंचनपेशी खुलती है और मुद्रिका द्वारकी मन्द होती है।

क्षार नियमानुसार आमाशयको रिक्त होनेमें विलम्ब कराता है, किन्तु फिर भी द्रव्य जब क्षारयुक्त, अम्ल या उदासीन होते हैं, तब उसी वेगसे रिक्त होते हैं।

५. वातहर औषधियाँ (Carminatives)—यह क्रिया निम्नानुसार ३ प्रकारसे होती है।

अ नियमित मथन क्रियाको उत्तेजित करके।

आ हार्दिक या मुद्रिका द्वारका आकुंचन पेशीको शिथिल करके।

इ वातनाड़ियों या मांसपेशियोंको उत्तेजित करके।

इसके लिए उड़नशील तैल उत्तम औषधियाँ हैं। सुगन्धवाले द्रव्य, सुगन्धवाले कड़ुवे द्रव्य, कपूर, पीपरमेण्ट, स्पिरिट आदि आमाशयमेंसे गैसको निकालनेके लिये प्रयोजित होते हैं।

डाक्टरीमत अनुसार कड़ुवे द्रव्योंमें आमाशय पौष्टिक (रसस्राव वर्द्धक और पाचक) गुण अधिक है। यद्यपि इनमें विशेष गुण भिन्न-भिन्न हैं, तथापि ये सब आमाशय पौष्टिक गुणवाले हैं। उदाहरणार्थ कुचिला वातनाड़ीपर विशेष कार्यकारी और क्विनाइन ज्वरघ्न है। कड़ुवी औषधियोंमें २ प्रकार हैं।

१ सामान्य (सुगन्ध रहित) कड़ुवी औषधियाँ—केलम्बा, क्वासिया, जेन्शन, चिरायता, कांटेवाले करंजके फल आदि।

२. सुगन्धयुक्त कड़ुवी औषधियाँ—इसरमूल (Serpentary), संतराके फलकी छाल आदि उड़नशील औषधियाँ।

(४५) तृप्तिघ्न।

अरुचिनाशन—रोचन—भक्तद्वेषहर

जो द्रव्य तृप्ति (अन्नकी इच्छा न होना—अरुचि)को नष्ट करे, उसे तृप्तिघ्न संज्ञा दी है। श्लैष्मिक प्रकोप होनेपर भोजन न करने पर भी उदर खूब भरा हुआ प्रतीत होना उदरमें भारीपन, आलस्य, मलावरोध, मुंहमें फीकापन आदि लक्षण मालूम होते हैं। मुंहमें स्वादु अन्नका ग्रास डालने पर भी यह बेस्वादु लगता है। उदरमें पाचन, शोषण और अभिसरण क्रिया मंद होनेपर, ऐसा होता है, जिससे तृप्तिघ्न अर्थात् पाचन (अधिक रसोत्पादक), शोषण और अभिसरण बढ़ानेवाली औषधियां व्यवहृत होती हैं।

क्वचित् आमविष या कीटाणुविष बढ़ने पर भी उदरमें भारीपन आ जाता है। ऐसी स्थितिमें विपन्न औषध प्रयोजित होती है। कभी कभी शोक, चिन्ता आदिसे क्षुधा नष्ट हो जाती है। इन सब प्रकारोंका विशेष वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप द्वितीय खण्डमें रोग नं० १-अरोचकमें किया है।

तृप्तिघ्नवर्ग—चरक संहितामें सोंठ, चित्रकमूल, चव्य, वायविडङ्ग, मूर्वा, गुडूची वच, नागरमोथा, पिप्पली, पाटल, (वृद्धवाग्भटके मतानुसार पटोल), ये १० औषधियाँ लिखी हैं।

सुश्रुत संहितामें बृहत्यादि गण, पिप्पल्यादि गण, सुरसादि गण (तीनों का वर्णन नं० ९ कफदोषघ्नमें); पटोलादि गण, गुडूच्यादि गण (इन दोनोंका वर्णन नं० ९० ज्वरघ्नमें) तथा आमलक्यादि गण (आंवला, हरड़ पिप्पली और चित्रकमूल), इन सबको अरुचिनाशक कहा है।

और औषधियाँ—संतरा, नींबू, अनारदाने आदि अम्ल फल, सैंधानमक लगा हुआ अदरख और नीबूरस, नागकेसर, चांगेरी, शङ्ख भस्म, सोमल, गन्धक, रससिंदूर, कपूर, पीपरमेंटके फूल, नीलगिरी तैल आदि।

(४६) ग्राही।

संग्राहक—पुरीषसंग्रहणीय—एस्ट्रिन्जेण्ट्स—Astringents

> दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्।
> ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली॥

जो द्रव्य अग्नि प्रदीपक और आम आदिका पाचन करनेवाला हो तथा उष्ण वीर्यके हेतुसे दोष, धातु और मल आदिके पतलापनका शोषण करनेवाला हो, उसे 'ग्राही' संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ सोंठ, जीरा, गजपीपल।

ग्राहि द्रव्योंको यहां उष्णवीर्य कहा है किन्तु सुश्रुताचार्यने वातगुणभूयिष्ठ माना है। क्योंकि, वायुका कार्य शोषण करना है। विचार भेदका समाधान करनेके लिये शार्ङ्गधर संहिताके टीकाकार श्री० आढमल्लाचार्यने लिखा है कि, ग्राही द्रव्योंके २ प्रकार हैं। १ जो द्रव्य ग्रहणीमें आमका पचन करा, जठराग्निको प्रदीप्त करा वहांपर रहे हुए द्रवका शोषण करता है, वह उष्ण संग्राहक तथा जो द्रव्य अतिसार आदिमें पक्वमल आदिका स्तम्भन कराके संग्रहण (धारण) करता है, उसे शीत संग्राहक संज्ञा दी है। ये द्रव्य वातगुणभूयिष्ठ होते हैं।

ग्राहि द्रव्य अन्त्रके शिथिल और प्रसारित स्रोतसोंको आकुंचन करते हैं। अन्त्रकी पुरःसरण क्रियाकी उग्रताका शमन करते और अन्त्रमें उत्पन्न होनेवाले आमजन्य स्रावका ह्रास कराते हैं।

पुरीषसंग्रहणीय वर्ग जो द्रव्य अति सरनेवाले पुरीषको धारण करे, उसे

पुरीषसंग्रहणीय कहते हैं। प्रियंगु, अनन्ता (धमासा) आमकी गुठली, श्योनाक, लोध, मोचरस, समंगा (लज्जालु), धायके फूल, पद्मा (मारंगी) और कमलकेशर, ये औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

सुश्रुत संहितामें न्यग्रोधादि गणको संग्राही कहा है। इसका वर्णन नं० ६ पित्तसशमन प्रकरणमें किया है।

और औषधियाँ अतीस, भांग, खसखस, हिंगोट, राल, शाहबूव, शम्य, कुचिला, अजमोद, केशर, सोंठ, जीरा, गजपीपल, इन्द्रजौ, ईसबगोल, कुड़ाकी छाल, बेलगिरी, नागकेशर, कत्था, जामुनकी गुठली, जायफल, जावित्री, अनार, दारुहल्दी, मारंगी, माजूफल फिटकरी, सेमलका गोंद, राल, सेलखड़ी, चाक, गेरु, अहरमोहरा, सलाई, कमलकेशर, अनन्तमूल, विजयसार, लालबोल, पान, मत्स्याची (मछेछी), गोंद, हीराबोली गोंद, बहेड़ा, कासीस, सिलारस (हेमेमेलिस वृक्षका रस), बकुल (मूत्राशय संकोचक और दन्तमूल दृढ़ करनेमें हितावह), गूलर, कवाकपित्थ, पिस्तेके फूल, पलाशगोंद, तेंदुगोंद, मेंहदीके पान, खैरछाल बबूलछाल, काकड़ासिंगी, इमलीके बीज, तक्र, चाय, ओक वृक्षकी छाल आदि।

डाक्टरी मतानुसार ग्राहीवर्गके भीतर स्तम्भनगुणका भी अन्तर्भाव किया है। दोनोका विवेचन पृथक नहीं किया। इस मतमें ग्राही औषधियोंकी क्रिया तन्तुओंके आकुंचन द्वारा प्रकाशित होती है तथा स्राव द्वारा नष्ट होती है। अन्त्रके भीतर इनका असर मलकी अभिसरण क्रियाके विरुद्ध होता है। ग्राहीवर्गमें ग्राही धातु, गन्धकाम्ल और उद्भिद् ग्राही औषधियां हैं। अफीम और खड़िया मिट्टीका प्रभाव अन्त्रकी गति और स्राव, दोनोंपर होता है, गति मन्द होती है और स्रावका भी ह्रास होता है।

उद्भिद् ग्राही औषधियां विशेषतः उनमें रहे हुए कषायाम्ल (Tannin) द्रव्यके हेतुसे फल दर्शाती है। कासीस या लोहप्रधान औषधियां अन्य ग्राही धातुओंकी अपेक्षा अधिक सौम्य है।

और निर्दोष होनेसे पचनसंस्थाके रोगमें विशेष व्यवहृत होती हैं।

सब ग्राही औषधियां स्थानिक स्तम्भक (Local hoemostatics) हैं। उनका लेप करनेपर रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है। इस तरह इससे श्लैष्मिक कलाकी सतहका और मांसपेशियोंके सूत्रोंका भी संकोच होता है। इस प्रकारकी औषधियां फिटकरी, रौप्य, सीसा, लोह आदि हैं। ये औषधियाँ और उद्भिद् ग्राही औषधियां, सब रक्तवाहिनियोंके चारों ओर रहे हुए तन्तुओंमें प्रथिनको घनीभूत करके फल दर्शाती है। इसका प्रभाव रक्तवाहिनियोंकी दीवारकी पेशीकला (Muscular coat) पर नहीं होता। इसका विशेष विचार रक्तस्तम्भक प्रकरणनं० ५७ में किया जायगा।

कषायाम्ल अथवा कषायाम्लयुक्त द्रव्य अनेकधातु, उपक्षार (Alkaloids) और मधुज्वन (Glycosides) आदिके साथ न्यूनाधिक अंशमें अवसादनीय मिश्रित होता है। ग्राही औषधियोंके २ प्रकार हैं। १ खनिज प्रधान और २ उद्भिज्ज प्रधान। १ खनिज द्रव्य—शीशा (मुर्दासंग) रौप्य भस्म, ताम्र (नीलाथोथा), फिटकरी आदि। उद्भिद् द्रव्य-कषायाम्ल, कत्था, लोद, माजूफल आदि।

ग्राही औषध प्रयोग प्रकार—१ बाह्य, २ आभ्यन्तरिक। लेप आदि प्रयोगसे लाभ पहुँचावें, वे बाह्य, २ मुखसे सेवन करनेपर आमाशयिक आदिमें मिलकर आभ्यन्तरिक यन्त्रोंमें कार्य करें, वे आभ्यन्तरिक।

१ बाह्य प्रयोग—मलहम का लेप, द्रव, चूर्ण आदि रूपसे घाव आदिपर होता है। ये औषधियां रक्तस्राव और श्लैष्मिक कलाके स्रावका दमन करती हैं। सर्पविषघ्न रक्तवाहिनीपर लेप करनेपर वहां रक्तको जमाकर रक्तस्रावको रोक देता है। इतर ग्राही औषधियोंका प्रयोग नेत्र और मुँहमें द्रव रूपसे कण्ठनलीमें गण्डूष और छिड़काव (Spray) रूपसे तथा नासिका, मूत्रप्रसेक नलिका, योनि और गुदा द्वारमें पिचकारी और वर्ति (Suppository) रूपसे प्रयोजित होता है।

आभ्यन्तरिक प्रयोग—अतिसार, रक्तवमन, रक्तस्राव, रक्तस्राव आदि रोगोंके दमनार्थ उपयोग होता है। इस विभागमें फिटकरी, लोध, माजूफल, बेलगिरी, अतीस, शंख भस्म आदि अनेक औषधियां हैं।

अतिसार होनेमें मुख्य हेतु,

१ अन्त्रमें उच्चालन क्रियाकी अधिकता (इस हेतुसे यथोचित शोषण होनेके पहिले आहार-द्रव्य बाहर निकल जाता है)।

२ शोषण क्रियाका ह्रास। इस हेतुसे मलमें पतलापन रह जाता है।

३ अन्त्रमें रसस्रावकी अधिक उत्पत्ति।

इन तीनोंमेंसे जिस कारणसे अतिसार हुआ हो, उस विकृतिके अनुरूप औषध योजना करनी चाहिये।

कारण भेदसे ३ प्रकार—

१ अन्त्रकी उग्रताशामक—अफीम, आमकी गुठली, परवलबेलका गुदीकरण, लिसोड़ा, शहतूत, ईसबगोल, बिहदाना आदि।

२ आन्त्रिक शोषण क्रियावर्द्धक—नागकेशर, अतीस, भांग, इन्द्रजौ, जीरा, सोंठ, गजपीपल आदि।

३ रसोत्पत्तिकी दमनकारी—फिटकरी, कुड़ेकी छाल, सोनापाठा, कत्था, लोध, माजूफल, कासीस आदि रसोत्पत्तिका ह्रास कराती हैं। इसके लिये अफीम भी व्यवहृत होती है।

कषायाम्ल (Tannic Acid)—इसकी प्राप्ति माजूफलमेंसे अधिक होती है। लोध्र हरड़, बहेड़ा आदिमें भी यह रहता है।

गुणधर्मविज्ञान (Pharmacology)—अच्छी त्वचापर लगानेपर इसकी कुछ भी क्रिया नहीं होती किन्तु पीड़ित श्लैष्मिक कला या फटी हुई त्वचाके नीचे रही हुई नग्न श्लैष्मिक कलापर लगानेपर श्लेष्मा और ग्रथिनस्रावको गाढ़ा बनाता है। फिर यह घनीभूत ग्रथिन या चिपचिपा सरेस (Gelatin) विगलन (Putrifaction) होनेमें प्रतिबन्ध करता है। यह तन्तुओंमें शोषित होता है और अन्तरस्थ द्रवको (ग्रथिन द्रवको) गाढ़ा और संयोजक तन्तुओंको मोटा बनाता है, फिर इस हेतुसे रसस्रावका ह्रास हो जाता है।

कषायाम्ल सबल स्थानिक ग्राही औषधि है। यह कुछ अंशमें छोटी रक्तवाहिनियोंमें डाटके समान बन कर और कुछ अंशमें तन्तुओंके चारों ओर घनीभवन कराकर रक्तस्तम्भन कराती है किन्तु रक्तवाहिनियोंकी मांसमयी कलापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये यह स्थानिक रक्तस्तम्भक है।

मुखसे सेवन करनेपर पहिले मुखके भीतर शुष्कता लाती है तथा श्लैष्मिक कलाके स्रावको घनीभूत कराकर जिह्वा और कण्ठका आकुंचन और खिंचाव करती है। यह असर ग्रथिन पर प्रत्यक्ष रासायनिक प्रभाव पहुँचकर होता है। आमाशयके भीतर जानेपर उसका रूपान्तर होकर कषायाम्ल क्षार (Tannate) बन जाता है। जबतक उसका ग्राही द्रव्य नष्ट न हो, तबतक ग्रथिनका कषायाम्ल क्षार आमाशयरस में पुनः पृथक् होता रहता है और कषायाम्ल भी मुक्त होता रहता है।

यह अन्त्रके भीतर ग्रथिनाका निक्षेप और ग्रन्थियोंके स्रावका ह्रास कर मल अवरोध करता है। इससे मल कठोर और शुष्क बन जाता है। यह यीस्ट और लघु कीटाणुओंको अव क्षेपित करता तथा सौम्य अपचयरोधक क्रिया करता है एवं उद्भिद् कीटाणुओंकी संख्याका ह्रास करा मलमेंसे दुर्गन्ध कम करता है। अविश्लिष्ट कषायाम्ल क्षार और अशोषित उपकषायाम्ल क्षार (गेलेट्स Gallates) मलके साथ फेंक दिये जाते हैं तथा कषायाम्ल यकृत्स्रावपर बिलकुल असर नहीं पहुँचाता।

कषायाम्ल रक्तमें उपकषायाम्ल क्षार रूपसे और कुछ अंशमें कषायाम्ल क्षार रूपसे प्रवेशित होता तथा उसी रूपमें भ्रमण करता है। यदि कषायाम्लका शिरामें अन्तःक्षेपण किया जाय तो स्थानिक शल्यों (Thrombosis) की उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

मल रूपसे परित्याग (Elimination)—मानव देहमें यह विश्लेषित होकर शोषित होता है। इसमेंसे १ प्रतिशत मात्र ही मूत्र या पुरीषमें विच्छिन्न होता है।

रोगावस्थामें उपयोग (Therapeutics) - स्थानिक रक्तस्तम्भक रूपसे नासिका, गुदा, मूत्राशय, मूत्रप्रसेक नलिका आदि पर व्यवहृत होता है। नासिकासे स्राव होनेपर तमालूके समान सुंघाया जाता है, अथवा पिचकारी लगायी जाती है। व्रणोंमें वर्तिरूपसे प्रयोग किया जाता है। त्वचापर सौम्य प्रकारके आशुकारी या उपाशुकारीप्रदाह (ग्मूची आदिमें) होकर उत्पत्ति होने और रसस्राव होनेपर ग्लिसरीनके साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

कानमेंसे पूयस्राव होनेपर भी ग्लिसरीनमें मिला हुआ कषायाम्ल व्यवहृत होता है। नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivities) और शुक्लमण्डल पर रक्तवाहिनियोंकी प्रतीति होनेपर नेत्रबिन्दु (Collyrium) रूपसे प्रयोजित होता है (१ औंस वाष्पजलमें ४ ग्रेन) पीनस (नासिकासे दुर्गन्धमय स्राव (Ozaena) होनेपर तमाखुके सदृश सुंघाया जाता है।

श्वेतप्रदर होनेपर योनिमार्गमें अन्तःक्षेपण, वस्ति या फ़लो (Pessary) का उपयोग किया जाता है। गर्भाशयमें क्षत होनेपर ग्लिसरीन युक्त कषायाम्लमें रूईका फोहा भिगोकर या फ़लोको गर्भाशय मुखमें रखवाया जाता है। मूत्राशय प्रदाह होनेपर इसका अन्तःक्षेपण किया जाता है। गुदनलिकामें क्षत या विदारण होनेपर या गुदनलिकाका बहिर्गमन (गुदभ्रंश) होनेपर अन्तःक्षेपण या वर्तिरूपसे प्रयोग होता है।

जले हुएकी चिकित्सामें इसका प्रयोग होता है। इसका पट्टी बांधनेमें प्रयोग किया जाता है। बालकोंको ५ प्रतिशत और बड़ेके लिए १० प्रतिशतके द्रावणका उपयोग होता है। यह वेदना दूर करता है, तरल स्रावसे रक्षा करता और विषप्रयोगका ह्रास करता है। द्वितीय और तृतीय श्रेणीके दग्धपर यदि श्लेष्मिक कला हो, तो यह अनन्त त्वचाकी उत्पत्ति कराता है। विषशोषणसे सर्वथा यह चिकित्सा उत्तम है, जो विष आघातके बहुधा २ रे या ३ रे दिन मृत्युका कारण हो जाता है। जब इसका घावपर उत्क्षेप (छिड़काव Spray) किया जाता है, तब पट्टी नहीं बांधी जाती, जबतक शुष्क पिंगल छिलका न बने तबतक प्रत्येक १५-१५ मिनटपर छिड़काव किया जाता है। यद्यपि कषायाम्लके इस उपचारमें कुछ असुविधा है। इसका द्रावण अस्थिर है, इसमें अपघयरोधक शक्ति नहीं है तथा इसमें समान स्थितिका भी अभाव है। इस हेतुसे इसका प्रयोग इतर रंग द्रव्य (नीले, पीले आदि) के साथ छिड़काव रूपसे होता है।

इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग मुख्य पचन संस्थापर होता है, यह मसूड़ेमेंसे रक्तस्रावको बन्द करने और दांतको घिसानेमें उत्तम दन्तमंजन (Dentifrice) है। मुखपाक, उपाशुकारी या चिरकारी कण्ठ क्षत, काकलककी शिथिलता या दीर्घता, उपजिह्विकादि आदिमें ग्लिसरीन युक्त कषायाम्लका लेप किया जाता है। एवं

इसका गण्डूष, उत्क्षेप या पिचिकारूप से भी प्रयोग होता है। मुख और स्वरयन्त्रके भीतर धाप्य या धूम (Insufflation) रूपसे श्वेतसारके साथ इसका उपयोग किया जाता है।

यह आमाशय और अन्त्रोंमेंसे होनेवाले रक्तस्रावको मन्द करनेके लिये मूल्यवान औषध है, किन्तु इसका प्रयोग अधिक मात्रामें ३० या ४० ग्रेन ११ या २९ घण्टेपर करना चाहिये, यह उपचार और धात्रव लवण द्वारा विपाक होनेपर उत्तम विषघ्न द्रव्य है। इसका प्रयोग अतिसारमें विशेष रूपसे होता है, चाहे आशुकारी हो या चिरकारी, किन्तु प्रतिसारमें विशेषत कत्थेका ही प्रयोग होता है।

(५७) स्तम्भन।

रौक्ष्यात शैत्यात् कषायत्वात् लघुपाकाच यद्भवेत्।
वातकृत् स्तम्भन तत्स्यायथा वत्सकटुण्टुकौ॥

जो द्रव्य रूक्ष, शीतल, कसैला और पाकमें लघु होनेसे वायुकी उत्पत्ति करे और रस आदि धातुओंके प्रवाहका अवरोध करे, उसे स्तम्भक सज्ञा दी है। जसद भस्म, नाग भस्म, लोह भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, नीलाथोथा, अफीम कुड़ाकी छाल, स्योनाक, ईसबगोल, कत्था, केशर, जामुनकी छाल, बबूलकी छाल, सेमलका गोंद इत्यादि।

अफीममें शोषण, ग्राही, कफघ्न, वात पित्तकारक, स्वापजनक, दाहकारक, शुक्रस्तम्भक, आलस्यकर और मोहजनक गुण हैं। डाक्टरोंने अफीमके गुण मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, निद्राकारक, वेदनानिवारक, आक्षेपनिवारक, स्पर्शहारक, संग्राही, स्वेदजनक और पुनर्पेत्पत्ति निवारक कहे हैं। यह थोड़ी मात्रामें सेवन करनेपर पहिले उत्तेजना देती है, फिर स्वापजनक और अवसादक गुणकी प्राप्ति कराती है। मस्तिष्क-प्रदाहके अतिरिक्त इतर सब प्रकारकी वेदना कम करनेके लिये अफीम प्रयोजित होती है। जीर्ण अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, निद्रानाश, आक्षेपक वात, धनुर्वात, अर्धाशीशी, कम्पवात, विविध प्रकारके शूल, श्वासप्रकोप, विविध आशयोंके प्रदाह, अन्त्रवृद्धि, उपा प्रप्रदाह, मूत्ररोग, शुक्राशय सम्बन्धी रोग, बहुमूत्र, मधुमेह, अधिक लालास्राव, प्रदर, अधिक कफस्राव, दाँतोंका दर्द, विसूचिका आदि व्याधियोंमें अफीम उत्तम औषधि मानी गई है। मात्रा ½ रत्तीसे ½ रत्ती।

सूचना—बालकको अफीम देनी हो, तो अति कम मात्रामें देनी चाहिये। वेदना और आक्षेप निवारणार्थ अफीम पूर्ण मात्रामें देनी चाहिये। एक मात्रासे लाभ न हो, तो कुछ समय पश्चात् पुन दूसरी मात्रा देवें। निद्रा लानेके लिये अफीम शयन करनेसे १ घण्टा पहिले देनी चाहिये।

अफीमके साथ पारद मिलानेसे यह काम नहीं करता। किरातके साथ मिलाकर देनेसे दोनोंके दोष दूर होते हैं तथा अफीमके साथ मिलाकर देनेसे अधिक [illegible] लाती है।

(५८) रक्तस्तम्भन।

रक्तस्कन्दन—हिमास्टेटिक्स-एण्टहेमोरेजिक्स-स्टिपटिक्स।

Haemostics-Anthemorrhagics-Styptics

सिरा आदिसे निकलनेवाले रक्तका रोध करनेवाली औषधियाँ—लोहभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल, अफीम, मोती, लाख, संगमरमर, अशोक, सनकी राख, लालबोल, गिलोय सत्व, वासा (अडूसा) कमलकी केशर, लाल, फिटकरी, माजूफल, [illegible], रक्त चन्दन, कहरवा, बड़, कत्था, मायफल, लाख, सोनागेरु, बबूल, मोलश्री, नीबू और अनारका रस, [illegible], पत्ता, [illegible] दूध, अडूसाके पान, चूना और नौसादरके मिश्रणमेंसे अमोनिया निकल जानेके पश्चात् रहा हुआ खटिकहरिद (Calcium chloride) आदि। इनमेंसे आंवले, अडूसे आदि अनेक औषधियाँ रक्तपित्तशामक (Anti scorbutics) रूपसे भी व्यवहृत होती हैं। इस प्रकारकी औषधियोंमें दो विभाग हैं—आभ्यन्तरिक और बाह्य।

आभ्यन्तरिक रक्तस्तम्भक (रक्तसंग्राही–Haemostatics) रक्तविकार, विविध प्रकारके रक्तपित्त, रक्तवमन, रक्तप्रदर, मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्राव, क्षय, नासिकासे रक्तस्राव आदि विकारोंमें रक्तस्रावको रोकनेवाली औषधियाँ—प्रवालपिष्टी, मौक्तिकपिष्टी, नागभस्म, तृणकान्त मणि (कहरवा) पिष्टी, फिटकरी, अफीम, रक्तबोल, अशोक गूलर, चन्दन, नेत्रबाला, आंवला आदि।

बाह्य रक्तस्तम्भक (रक्तस्कन्दन–Styptics) स्थानिक संकोचक क्रिया द्वारा रक्तस्रावका अवरोध करनेवाली अथवा क्षत होकर या रक्तवाहिनी फटकर होनेवाले रक्तस्रावका रोध करनेवाली औषधियाँ—क्षार या तेजाब आदिसे रक्तवाहिनीको जलाना, बर्फ या शीतल जलधाराका प्रयोग, फिटकरी, रामबाण मकड़ीका जाल किया हुआ सफेद जाला, बारहसिंगेके धोये हुए चमड़ेकी कतरन, लोध, रसोत, चायके फूल, रेशम या बालोंकी भस्म, कासीस, हिंगुल, गन्धक, सोहागेका फूला और पलबीज (अलम हैयात) आदि औषधियाँ प्रयोगमें लाई जाती हैं।

शोणित स्थापन वर्ग—चरक संहितामें लिखी हुई रक्तके स्रावको रोकनेवाली या गाढ़ा करनेवाली औषधियाँ। शहद, मुलहठी, केशर, मोचरस, मिट्टीका ठीकरा, लोध, सोनागेरु, प्रियंगु, मिश्री और लाजा, ये १० औषधियाँ। रक्तस्तम्भन क्रिया किस नियमानुसार होती है तथा रक्तके स्तम्भनार्थ किस किस प्रयोगका आश्रय लिया जाता है, इसका विचार नं० ५५ ग्राही गुण और कषायाम्लके उपयोगमें विस्तारपूर्वक किया है।

(५९) वीर्यस्तम्भन।

शुक्रका अधिक समय तक स्तम्भन करनेवाली औषधियाँ—जायफल, जावित्री, अफीम, अश्वगंध, भांग, केशर, खसखस आदि।

अनेक जातियोंमें बालविवाहका रिवाज है। उन जातियोंमें अनेक व्यक्तियोंके ब्रह्मचर्यका भंग छोटी आयुमें ही हो जाता है। जिससे वीर्य स्थान सबल नहीं बन पाता तथा वीर्य भी पतला रह जाता है। एवं कितने ही अबोध विद्यार्थी कुसंगदोषसे अपने अपरिपक्व वीर्यको नष्ट कर देते हैं। उन सबमें स्तम्भन शक्ति अति कम हो जाती है।

शुक्रजनन यन्त्र निर्बल बननेपर अनेक अज्ञानी धूर्त चिकित्सकोंके जालमें फँसकर अफीम प्रधान औषधका सेवन तथा अति स्त्रीसमागम करते रहते हैं, अत वे कुछ वर्षोंमें शुक्रक्षयसे पीड़ित हो जाते हैं।

शुक्रमें उष्णता और पतलापन आनेसे तथा शुक्राशयकी या मूत्रप्रसेक नलिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित होने पर शुक्रपात सत्वर होने लगता है। यदि शुक्रमें अधिक उष्णता आई हो, तो मौक्तिक आदि शीतल शुक्रल औषधिका सेवन करना चाहिये। यदि मूत्रप्रसेक नलिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित हो गई हों, तो शामक लेप लगाना चाहिये। शुक्राशयकी निर्बलतामें वंगभस्म, त्रिवंगभस्म, नागभस्म, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, प्रवालपिष्टी आदि औषधियाँ हितकारक हैं।

वंगभस्म और नागभस्म शुक्रवर्द्धक हैं तथा शुक्राशयके मांस और वात वाहिनियोंको दृढ़ बनाती हैं।

त्रिवंगभस्म पुरुष और स्त्री, दोनोंको लाभदायक है। इस भस्मका शुक्राशय और गर्भाशय आदि अङ्गोंके मांस और वातवाहिनियों पर पौष्टिक असर होता है।

सुवर्णभस्म अण्डकोषकी ग्रन्थियों और केन्द्रस्थानको बलवान बनाती है।

रौप्यभस्म अण्डकोष और वातवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचाकर शुक्राशय और शुक्रको लाभ पहुँचाती है।

प्रवालपिष्टी शुक्र स्थानके दाहको दूर करनेमें अति हितकर है। अनेक रोगियोंको प्रवालपिष्टी और वंगभस्म, दोनोंको मिलाकर सेवन करानेसे अधिक लाभ पहुँचा है।

(६०) बल्य।

पौष्टिक–टॉनिक्स–Tonics

सर्वाङ्ग या किसी एक अङ्गके बलको बढ़ानेवाली औषधियाँ। शास्त्रोंमें इन औषधियोंके निम्नानुसार अनेक विभाग किये हैं।

१ सार्वाङ्गिक पौष्टिक (General tonics)

२ रक्तपौष्टिक—रक्तकणवर्द्धक (Hematic tonics)
३ आमाशय पौष्टिक (Stomachics)
४ अन्त्रपौष्टिक (Intestinal tonics)
५ ज्ञानवहा नाड़ी पौष्टिक (Nervines)
६ हृदयपौष्टिक (Cardiac tonics)
७ रक्तसंचालन पौष्टिक (Vascular tonics)
८ मांसपौष्टिक (बृंहण) व अस्थिपौष्टिक, लसीका संस्था पौष्टिक आदि आदि विभाग होते हैं।

• विषमज्वरनाशक औषधियाँ रोगसे पुनराक्रमणसे संरक्षण करती हैं, वे पुनरावृत्ति निवारक (Anti periodics)—रोगशमन द्वारा देहको पुष्ट बनाती हैं।

पौष्टिक—सार्वांगिक बलवर्द्धक औषधियोंके सेवनसे जीवन क्रिया उत्तेजित होती है तथा रोगनिरोधक शक्ति (Immunity) बढ़ जाती है।

इनके अतिरिक्त आमाशय शक्ति सबल होती है; क्षुधा प्रदीप्त होती है; हृदय-क्रिया और नाड़ी बलवती बनती है; शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है; एवं वात वाहिनियोंकी शक्तिमें भी वृद्धि होती है।

पौष्टिक औषधियाँ कुछ संशमन आकुंचन भी करती हैं; परन्तु ग्राही औषधि सदृश अति संकोच नहीं करती। एवं ये औषधियाँ उत्तेजना भी देती हैं परन्तु यह उत्तेजना तीव्र और स्थिर नहीं होती। शनैः-शनैः स्थिर उत्तेजना देती हैं। इस उत्तेजनाके पश्चात् अवसादकता नहीं आती।

जब किसी कारणसे जीवनीय शक्ति (Vitality) क्षीण हो जाती है, तब जीवनीय और बल्य औषधिका सेवन करना चाहिये। एवं दौर्बल्य, जीर्ण रोग, पाण्डु, आवेशक व्याधियाँ और उलट-उलट कर आक्रमण करनेवाले रोगोंमें कारण अनुरूप औषधि सेवन करनी चाहिये।

दुर्बलता विविध कारणवशात् उपस्थित होती है। यथा-मांसपेशियोंकी क्षीणता, रक्तरंजकद्रव्यकी न्यूनताजन्य क्षीणता, रक्तमें आहारिक वायु-वृद्धिजन्य निर्बलता, अधिक शुक्रस्रावसे क्षय, दूषित जलवायुसे दुर्बलता, लंघन अथवा अनुपयुक्त आहारजन्य कृशता, एवं आमाशय, अन्त्र, फुफ्फुस, हृदय, वृक्क, यकृत, मूत्राशय आदिमें विकृति होनेसे निर्बलता। इस तरह अनेक हेतुओंसे दुर्बलता आ जाती है। अतः मूल कारणको दूर कर फिर कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

सार्वांगिक दौर्बल्यमें लोहघटित औषधियाँ, सुवर्णभस्म और रसायन औषधियाँ आदि हितकर हैं।

रक्तकी न्यूनतामें मण्डूर, लोहभस्म, सुवर्णभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, कासीस, आँवला, कचनार, शिलाजीत, गूगल, मल्लभस्म आदि।

वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलतामें अभ्रकभस्म, रौप्यभस्म, आंवला, जटामांसी, ब्राह्मी, शंखाहूली आदि हितकारक हैं। जो वाताक्षेप निवारक औषधियां पहिले नं० २ में लिखी हैं, वे भी सम प्रयोजित होती हैं।

फुफ्फुसोंकी निर्बलतामें लोहभस्म, अभ्रकभस्म आदि।

रसायनियोंकी क्षीणतामें जसदभस्म आदि।

मानसिक निर्बलतामें सुवर्णभस्म, कस्तूरी, भांग तथा सूक्ष्म मात्रामें सुरा आदि।

पचनेन्द्रिय संस्थाकी निर्बलतामें दीपन-पाचन औषधियां।

दोषसञ्चयजन्य दुर्बलता पर स्वेदन और वमन आदि शोधन क्रिया।

मासिकधर्म विकृतिमें गर्भाशय शोधक औषधियां।

इस तरह कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

वातवहा नाड़ी पौष्टिकका विवेचन वात दोषघ्न नं० १ और आमाशय पौष्टिकका विवेचन दीपन-पाचन नं० ५४ में किया गया है। तथा वृष्य नं० १९ में किया गया और हृदयपौष्टिकका नं० ४७ में किया जायगा।

सूचना—पूर्ण स्वस्थ, रक्ताधिक्य और प्रदाहयुक्त व्यक्तियोंको इस वर्गकी औषधियां नहीं देनी चाहियें।

सुश्रुत संहितामें लघु पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, छोटे गोखरू) को बलवर्धन, वातहर, पित्तशामक और बृंहण कहा है। गोखरूके स्थान पर चरक संहिताकारने एरण्डमूल लिया है। यह पञ्चमूल वातनाड़ियों पर पौष्टिक असर पहुँचाता है।

बल्य वर्ग—ऐन्द्री (गोरख ककड़ी), ऋषभी (कौंच), अतिरसा (शतावरी), ऋष्यप्रोक्ता (माषपर्णी), पयस्या (क्षीरकाकोली) असगन्ध, शालपर्णी रोहिणी (जटामांसी)- खरैंटी और कङ्घिया, ये १० औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

(६१) शुक्रल।

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते।
यथाऽश्वगन्धा मुसली शर्करा च शतावरी॥

जो औषधियां शुक्र (वीर्य) की वृद्धि करायें, उनको शुक्रल और शुक्रजनन संज्ञा दी है।

शुक्रजनन वर्ग—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी (मतान्तरमें महामेदा), मेदा, वृद्धरुहा (शतावरी), जटिला (उच्चटा या जटामांसी), कुलिङ्गा, ये १० औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

और औषधियाँ—सुवर्ण भस्म, लोह भस्म, वंग भस्म, त्रिवंग भस्म, अण्डेके छिल्केकी भस्म, असगन्ध, मूसली, मिश्री, बहमन लाल, बहमन सफेद, पातालगरुड़ी, उड़द, जटामांसी, आंवला, सालम मिश्री, दूध, भिलावेकी गिरी, भिलावे आदि।

प्रजास्थापन वर्ग—चरक संहिता कथित प्रजानाशक दोषको हटाकर प्रजाकी स्थापना करनेवाली (सन्तानोत्पादक) औषधियां—ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या (दूब) सहस्रवीर्या (श्वेत दूब) अमोघा (पाढल या लक्ष्मणा), अव्यथा (हरड़, शिवा), हल्दी, अरिष्टा (भरैटी), वाट्यपुष्पी (गंगरन), विष्वक्सेन कान्ता (वाराहीकंद), ये १० औषधियां कही हैं। ये गर्भको स्थिर करनेमें सहायक हैं।

ऊपर कही हुई औषधियोंमें सुवर्ण भस्म, अष्टवर्ग, दूध, आंवला, ये शीत-वीर्य हैं और लोह, कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म, भिलावे, असगन्ध, मूसली आदि उष्ण-वीर्य हैं।

असगन्ध—यह कडुवा-कषैला, उष्णवीर्य, मधुर विपाक युक्त है। वातशामक कफ, कास, श्वास, क्षय, व्रण और शोथका नाशक, बल्य और अति शुक्रल है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ वाजीकरण गुण भी है।

उष्णवीर्य होनेके कारणसे कम हुआ वीर्य सत्वर पूर्ण हो जाता है। इसके सेवनसे साथ-साथ कामोत्तेजना भी होती है; जिससे रुचिमें स्त्री-समागमका विचार आता रहता है। अतः स्वप्नदोष होनेकी भीति रहती है। आलस्य, हाथ-पैरोंकी फूटनी, निरुत्साह आदि दूर होते हैं। रस, रक्त, मांस आदि धातुओंकी वृद्धि होती है। यह तरुण वृद्ध भी, बालक आदि सबके लिये हितकारक है।

श्री वाग्भटाचार्यजीने अष्टाङ्गहृदय उत्तरस्थानमें लिखा है कि—

पीताऽश्वगन्धा पयसार्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथा सुवृष्टिः॥

जिस तरह वृष्टि होनेपर घास पुष्ट बन जाता है, उस तरह असगन्धका सेवन घी, तैल, दूध या निवाये जलके साथ करानेसे कृश बालक पुष्ट बन जाता है।

(६७) शुक्रल और शीतल

शीतल वीर्यवर्द्धक औषधियां—सुवर्ण, रौप्य, वङ्ग, जस्ता, हीरा, अभ्रक, मोती, प्रवाल, आंवला, गोखरू, मुलहठी, गिलोयसत्व, गुञ्जा, बादाम, वंशलोचन, शतावर, तालमखाना, मूसली जीवन्ती, सिंघाड़ा, चिरौंजी, नारियल, कटहरके पकके फल बबूलकी फली, सेमलका मूल, सेमलका गोंद, बलात्रय आदि।

इन औषधियोंमें शुक्रल गुण शीतल होनेसे पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंके लिये विशेष उपकारक हैं। इन औषधियोंका उपयोग उष्णकालमें किया जाय, तो भी बाधा नहीं पहुँचती।

(६३) शुक्रशोधन ।

शुक्रमें रहे हुए मृत, निर्बल, दूषित और विजातीय अणुओंको दूर कर शुक्रको विशुद्ध बनानेवाली औषधियां—पारद, हिंगुल, सुवर्ण, रौप्य, मौक्तिक, हरताल, सोमल, शिलाजीत, वंग, सेमलका गोंद, प्रवाल, वंशलोचन, शतावरी, गिलोयसत्व, गूगल, कपूर, कूठ, एलवालुक, नेत्रबाला, कायफल, समुद्रफेन, कदम्बका गोंद इसकी जड़, तालमखाना, अगस्त्यके फूल, खस, बबूलकी कच्ची फली आदि।

सुश्रुत संहितामें मुष्ककादि गण (नं० ९ कफदोषघ्नमें), विदार्यादि गण तथा करमर्दादि गण (नं० ३७ शोथहरमें), इन ३ गणोंको शुक्रदोषविनाशन कहा है।

उपदंश सुजाक आदि रोगोंके विष, संक्रामक ज्वर दीर्घकाल तक रहना आना वृद्धावस्था, वीर्यका अत्यन्त दुरुपयोग, इतर अनेक व्याधियां आदि कारणोंसे वीर्य दूषित हो जाता है, ऐसे समय पर मूल हेतुको भी दूर करना चाहिये।

यदि उपदंश विषरक्तमें हो, तो पारद या सोमलप्रधान औषधि सेवन करनी चाहिये। सुजाकके विषमें मल्लसिंदूर, गन्धाविरोजा, रौप्यभस्म, प्रवाल आदिका सेवन हितकर माना है।

क्षय, जीर्ण ज्वर आदिसे वीर्यमें निर्बलता आ गई हो, तो सुवर्णभस्म, वंगभस्म, गूगल, शिलाजीत आदि हितकारक हैं।

उष्णता शमनार्थ मौक्तिक, प्रवाल, सुवर्ण, गिलोयसत्व, वंशलोचन, तालमखाना आदि विशेष रूपसे व्यवहृत होते हैं।

(६४) वाजीकरण ।

कामोत्तेजक-वृष्य-ऍफ्रोडिसियाक्स-Aphrodisiacs

> येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः ।
> व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥

जिस आहार, विहार या औषध से पुरुष स्त्रियोंमें (सुरतके विषयमें) वाजी (घोड़े) के समान सामर्थ्यको प्राप्त होता है और जिसके द्वारा अधिक काल तक मैथुन कर सकता है, उसे वाजीकरण संज्ञा दी है (चरकसंहिता)

वृष्य प्रकार—१ शुक्रस्तुतिकर, २ शुक्रवर्द्धन ३ शुक्रस्तुतिकर और शुक्र सदन।

१ शुक्रस्तुतिकर (शुक्रप्रवर्तक-कामोत्तेजक)—स्त्रियोंका स्पर्श, मानस संकल्प, शराब, अफीम, कपूर, धतूरा आदि।

२ शुक्र वर्द्धन (शुक्रल)—दूध, घी, मांस, रसायन और जीवनीय औषधियाँ आदि।

१ इनके अतिरिक्त जीर्ण विषमज्वर, लसीकामेह, मधुमेह, आलस्य, क्षय आदि विकार और शारीरिक क्षीणता दूर करने पर रतिशक्ति स्वयमेव उत्पन्न हो जाती है। पौष्टिक औषधि, पौष्टिक आहार—दूध, मांस आदि द्वारा स्वास्थ्यकी वृद्धि होनेपर सहज कामोत्तेजना होने लगती है।

(६५) शुक्रल और वाजीकरण।

शुक्रल और वाजीकरण—दो गुणयुक्त औषधियाँ—सुवर्ण, अभ्रक, पारद, कौंचके बीज, विदारीकन्द, सालमिश्री, सरैंटी, जायफल, जावित्री, असगन्ध, शहद, कुन्देवेदस्तर, दूध, घी, गेहूँ इत्यादि वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक हैं। इनमेंसे कुन्देवेदस्तरमें कामोत्तेजक गुण अधिक है। सुवर्णभस्म, कौंच बीज और सालमिश्रीमें दोनों गुण लगभग समान हैं। शेष औषधियोंमें कामोत्तेजक गुण कुछ कम रहता है।

(६६) कामशामक।

अवृष्य षाण्ढ्यकर अँनेफ्रोडिज़ियाक्स—Anaphrodisiacs

कामवासना और रतिशक्तिका ह्रास करनेवाली औषधियाँ—मद्य, शीतल-जलसे स्नान (स्थानिक या सार्वाङ्गिक स्नान), विरेचन, केलेके खम्भेका रस, ठण्डे जलमें बैठना, नीलोफर पुष्प, सारिवा, ब्राह्मी, जटामांसी, शंखाहुली, विशेष मात्रामें कपूरका बार-बार सेवन, सोहागा तथा उबाक उत्पादक औषधियाँ आदि।

इनके अतिरिक्त अधिक मात्रामें क्षार, अफीम, खुरासानी अजवायन, तमाखू, आयोडाइड, ब्रोमाइड, एथीपूटी और धतूरा आदिके सेवनसे भी कामोत्तेजना मन्द होती जाती है। कपास मूत्रलवर्ग आदि जो जननयन्त्रके सुषुम्णा सम्बन्ध वाले, रक्त संचालनको कम करती हैं, वे भी परम्परागत कामको शमन करती हैं।

इन औषधियोंमेंसे कितनीही स्थानिक क्रिया (जननेन्द्रियके वात नाड़ियोंकी उत्तेजनशीलताका ह्रास) दर्शाती है; और कितनीक वातवहा नाड़ियोंके केन्द्रपर शामक असर पहुँचा कर काम शमन कराती हैं।

नैतिक और मानसिक शुद्धि, प्रतिदिन देहके उष्ण भागको उचित श्रम पहुँचाना, सामान्य सात्त्विक भोजन, सात्त्विक विहार, भक्ति, प्राणायाम, धर्मग्रन्थोंका पठन, पूज्योंकी सेवा, एकान्त सेवनका त्याग, दुष्ट सहवासका त्याग, विषय भोगसे उपराम वृत्ति आदि काम शमनमें सहायक होते हैं।

सूचना—कामनिवारणार्थ प्रयत्न करनेके पहिले बृहदन्त्रमेंसे कृमि और संगृहीत मल, मूत्राशयमेंसे अश्मरी या पेशाबकी अधिकता तथा कामोत्तेजक आहार-विहार और पाचन आदिमेंसे जो हेतु हो, उसे दूर करना चाहिये। अन्यथा कामनिवारक औषधियोंके उपयोगसे उचित लाभ नहीं होता।

तीव्र कामोत्तेजक औषधियोंका बारबार अति मात्रामें उपयोग, सुरापान और कामोत्तेजक, आहार-विहारका अति सेवन, क्वचित् गुदामेंसे निकले सूक्ष्म कृमि-समूहोंका योनि मार्गमें प्रवेश अथवा किसी कारणवश रति-लालसाकी तृप्ति न होनेपर स्त्रियोंकी (पुरुषोंकी भी) कामोत्तेजना अत्यधिक बढ़ जाती है। उसे आयुर्वेदमें तीव्र कामोत्तेजना कही है। डाक्टरोंमें पुरुषोंकी कामोत्तेजनाको सेटिरियासिस (Satyriasis) और स्त्रियोंकी कामोत्तेजना (उन्माद) को निम्फोमेनिया (Nymphomania) संज्ञा दी है। क्वचित् स्त्रियोंमें मानसिक उन्मत्तताके लक्षण भी हो जाते हैं, उसे कामोन्माद इराटोमेनिया (Erotomania) कहा जाता है।

ऐसा होनेपर लज्जाशील कुमारिका उन्मत्त वेश्याके समान निर्लज्ज बन जाती है (The timid girl becomes like a mad prostitute)। फिर व्यभिचार या आत्ममैथुन (Self abuse) में प्रवृत्त हो जाती है। प्रारम्भमें इस विकारके लक्षण विविध वातविकार, निद्रानाश, अश्लील स्वप्न दर्शन, बेहोशी, दीर्घ निःश्वास आदि होते हैं। तत्पश्चात् ज्वर, अतिसार और क्षय आदि रोगोंका भोग होकर मरणके मुखमें चली जाती है।

इस विकारके प्राथमिक या द्वितीय अवस्थामें कामशामक औषधिका प्रयोग किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है। तृतीयावस्थाकी प्राप्ति हो जानेपर आरोग्यताकी आशा कम रहती है।

(६७) हृद्य।

हृदयपौष्टिक-कार्डियाक टॉनिक्स ऐण्ड वेसक्युलर टॉनिक्स।

Cardiac tonics and Vascular tonics-

हृदय और रक्तवाहिनियोंको सबल बनाने वाली औषधियाँ—सुवर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, मण्डूरभस्म, संगयशब, माणिक्य, मोती, जहरमोहरा खताई, अकीक, पन्ना, रससिंदूर, लालबमिश्री, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अर्जुनछाल, द्राक्षा, पर्णबीज, पीपल, शहद, घृत, दूध, डिजिटेलिस आदि।

इस प्रकारकी औषधियोंका सेवन बहुधा हृद्य गुणके लिये अत्यन्त कम मात्रामें करना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर हृदयके आकुञ्चनमें अनियमितता उपस्थित होती है। आवश्यक मात्रामें सेवन करने पर बहुधा इन औषधियोंकी क्रिया सत्वर प्रतीत नहीं होती। दीर्घकाल सेवन करने पर हृत्स्पन्दन अधिकतर सबल होता है और हृत्स्पन्दन संख्याका ह्रास हो जाता है। ये औषधियाँ हृदयकी मांसपेशीको सबल बनाती हैं; एवं हृत्संकोच बलकी वृद्धि और उसकी मृदुगति होती है।

कपूर, क्षार, धातुपौष्टिक लवण आदि औषधियाँ हृद्य हैं परन्तु इनका नाड़ीस्पन्दन पर प्रभाव नहीं पड़ता। इनसे हृदयाकुञ्चन बलकी वृद्धि होती है।

विशेषतः हृदयके वाम निलय खण्ड (Left Ventricle) शिथिल हो जाने पर जब वह महाधमनी (Aorta) में यथोचित बलपूर्वक रक्त प्रेरण नहीं कर सकता, तब हृद्य औषधियोंकी आवश्यकता रहती है। मलनिरुद्ध श्वास, कास आदि हेतुसे हृदयके दक्षिण गवाक्षका प्रसारण होने पर भी हृद्य औषधि व्यवहारमें लाई जाती है।

हृदयविकृतिके अनेक हेतु हैं। यथा आशुकारी ज्वर, आम-वातिक ज्वर, शुक्रक्षय, पाण्डु, अधिक व्यायाम, हृदयके कपाटकी विकृति, विविध मद्योंकी अनियमित क्रिया, श्वास, कास आदि व्याधियाँ, मानसिक आघात, अधिक प्राणायाम, गरम चाय आदिका अधिक सेवन इत्यादि।

अनेक बार क्षुद्र धमनी शाखाओं और कैशिकाओंका प्रसारण हो जाने पर शोथ या जलोदरकी सम्प्राप्ति होती है, तब रक्तवाहिनी पौष्टिक (Vascular tonics) औषधियाँ—लोहभस्म, मण्डूरभस्म, कुचिला, आदि व्यवहृत होती हैं। इन औषधियोंके सेवनसे क्षुद्र रक्तप्रणालिकाओंका आकुंचन होकर रोगकी निवृत्ति हो जाती है। धमनीका सम्बन्ध हृदयके साथ रहता है। इस हेतुसे इसका विवेचन भी हृद्य वर्गमें ही किया गया है।

उपर्युक्त औषधियोंके अतिरिक्त चरकसंहितामें हृद्य कषाय तथा सुश्रुत-संहितामें पुरुषकादि गण और उत्पलादि गण (नं० ५१ दाहशमनमें) कहे हैं। ये औषधियाँ पचनक्रिया पर लाभ पहुँचाकर, हृदयको लाभ पहुँचाती हैं।

हृद्यवर्ग—आम, आम्रातक (अम्बाडा), लकुच, करौंदा, वृक्षाम्ल (अम्ल आमचूर), अम्लबेत, छोटे बेर, बड़े बेर, मीठे अनार और बिजौरा, ये १० औषधियाँ हृद्य मानी गई हैं।

डाक्टरी मतानुसार हृदय सम्बन्धी क्रिया दो नाड़ीकेन्द्रों द्वारा होती है। एक केन्द्र हृदय क्रिया दमन करता है, उसे हृदय दमनकारी केन्द्र (कार्डियो इनहिबिटरी सेन्टर Cardio Inhibitory Centre) कहते हैं। दूसरा केन्द्र हृदय क्रिया वृद्धि करता है, उसे हृदय क्रिया वर्धक केन्द्र (एक्सिलरेटिंग सेन्टर Accilerating Centre) संज्ञा दी है। ये दोनों केन्द्र सुषुम्नामें अवस्थित हैं। मन, इन्द्रियाँ और शरीरके विभिन्न स्थानोंमें आघात या संस्कार होने पर, वातवहा नाड़ियों द्वारा समाचार सुषुम्नामें पहुँचता है। फिर वहाँसे यह आवेग हृदय पर प्रतिफलित होता है।

यह क्रिया दो प्रकारकी वातनाड़ियों द्वारा साधित होती है। १ मापवहा नाड़ियाँ (Vagus Nerves) द्वारा हृदय, फुफ्फुस, आमाशय आदिसे उत्तेजना केन्द्र स्थानमें पहुँचती है एवं इनके द्वारा हृदय क्रियाका दमन भी होता है। २.

क्रियावर्द्धक केन्द्रसे उत्पन्न क्रिया बढ़ानेवाली वातनाड़ियों (इड़ापिङ्गला नाड़ियों Sympathetic Nerve-fibres) द्वारा हृदयकी क्रिया उत्तेजित होती है।

जो औषधियाँ प्राणदा नाड़ियोंको उत्तेजित करती हैं, वे सब नाड़ीकी गतिको मन्द करती हैं। यदि प्राणदा नाड़ियोंको काट दिया जाय तो नाड़ीके स्पन्दनकी मन्दता निवृत्त हो जाती है। वच्छनाग, क्लोरोफॉर्म, खुरासानी अजवायन, धत्तूरीबूटी-सत्व (Atropine), रक्तसवापकी वृद्धि, धमनीके रक्तको शैरिक अवस्थाकी प्राप्ति होना इत्यादि औषधि और क्रिया प्राणदा नाड़ियोंको उत्तेजित करती हैं।

सर्पगन्धा, लहसुन, विरेचन आदि जो रक्तसवापका ह्रास कराती हैं, वे सब प्राणदा नाड़ियोंको अवसादित करती हैं, तथा उपर्युक्त वच्छनाग आदि उत्तेजक औषधियोंका प्रयोग अधिक मात्रामें किया जाय, तो वे भी प्राणदा नाड़ियों पर अवसादक असर पहुँचाती हैं।

हृदयको उत्तेजना देनेवाली (Cardiac Stimulants) औषधियाँ— शराब, क्लोरोफॉर्म, कुचिला, सोमल, कस्तूरी, नीलगिरी तैल और वायुमें उड़ने वाले सब तैल इत्यादिके प्रयोगसे हृत्स्पन्दन बल और सङ्ख्याकी वृद्धि होती है, तथा खुरासानी अजवायन, धत्तूरीबूटी, कोकीन आदि औषधियोंके सेवनसे भी हृत्स्पन्दन सङ्ख्याकी वृद्धि हो जाती है; परन्तु यह हृदयोत्तेजना अधिक काल तक नहीं रहती, अतः इसको हृद्य (हृदयपौष्टिक) नहीं कह सकेंगे।

इनके अतिरिक्त हृदयको अवसादक करनेवाली (Cardiac Depressants) औषधियाँ हृदयके स्पन्दन बल और सङ्ख्याका ह्रास कराती हैं। वच्छनाग, एपिटमनिवटित्व, लवण, हाइड्रोस्यानिक तेजाब और कड़वे बादाम आदिमें हृदय अवसादक गुण रहता है। इन सबकी क्रिया हृद्य गुणके प्रतिकूल मानी गई है। अवसादकका वर्णन आगे नं० ७४ में किया जायगा।

(६८) मेधाकर।

बुद्धिवर्द्धक—ज्ञानवाही नाड़ियों और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारण शक्तिकी वृद्धि करने वाली औषधियाँ – सुवर्ण, रौप्य, मल्ल, मोती, प्रवाल, असद, अभ्रक, पूर्ण चन्द्रोदय रस, रससिन्दूर, पथ्या, मालकांगनी, आंवला, गिलोय, शंखाहुली, ब्राह्मी, शतावरी, जटामांसी वंशलोचन, वच, दूध, घी, बादाम, पिस्ता, खरैंटी, विदारीकन्द, केशर, वनप्सा और शुक्रल औषधियाँ आदि।

बुद्धि वृत्तिमें ज्ञानग्रहण शक्ति (समझ शक्ति), स्मरण शक्ति (धारण शक्ति) और विवेक शक्ति (सत्यासत्य, लाभ-हानि, कर्तव्याकर्तव्य आदिके निर्णय करनेकी शक्ति), ये तीन विभाग हैं। तीनों विभागोंका परस्पर सम्बन्ध है। फिर भी तीनोंका सञ्चार सर्वदा एक साथ हो, यह नियम नहीं है। कतिपय स्थानोंमें ये दोनों एक

साथ प्रवीण होती हैं। फिर भी कितनेही व्यक्तियोंमें समझ शक्ति प्रबल होती है, तथा अनेकों मनुष्योंमें धारणा शक्ति असाधारण होती है। एवं अनेकोंमें विवेक शक्तिका विकास अधिक हो जाता है।

समझ शक्ति, धारणा शक्ति और विवेक शक्ति, ये तीनों शक्तियां मनुष्योंमें जन्मसिद्ध ही होती हैं। इनका शिक्षा और अनुभव द्वारा अधिक विकास किया जाता है। इनमेंसे धारणा शक्तिका सम्बन्ध युवावस्थाके समय अनेक अंशमें शुक्रके साथ भी रहता है। शुक्रका जितने अंशमें संरक्षण होता है, उतने अंशमें धारणा शक्ति भी प्रबल रहती है; और शुक्रके क्षयसे धारणा शक्तिका भी ह्रास होता है। अतः शीतल और शुक्रल औषधियोंके सेवनसे भी मेधाकर गुणकी सम्प्राप्ति होती है। इसी तरह रसायन और जीवनीय गुण युक्त औषधियां भी लाभ पहुँचाती हैं।

(६९) योगवाही।

गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तुगुणान्।
पच्यमानं यथैवम्मधु-जल-तैलाज्य-सूत-लौहादि॥

इस योगवाही का अर्थ पहिले गुणवर्णनके प्रभाव में विशेष स्पष्टरूपसे दर्शाया है।

पाकके समय साथमें मिली हुई औषधियोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाली औषधियां—पारद, सुवर्ण, अभ्रक, लोहा आदि धातु, शहद, घी, तैल, जल आदि।

जैसे मदन फलको शहदके साथ मिलाकर देनेसे शहद मदनफलके वमन कार्यमें सहायता करता है, और निशोथके साथ शहदकी योजना करनेसे निशोथके विरेचन कार्यमें सहायता पहुँचती है। विरेचन औषधिके अनुपान रूपसे शहदकी योजना करनेसे उदरमें पीड़ा नहीं होती और विरेचन क्रिया सरलतापूर्वक होती है। इसी नियमानुसार अभ्रक आदि धातुओंके साथ किसी अनुपानकी योजना की जाती है, तब अभ्रक आदि धातुओंके गुण-धर्मके साथ अनुपानके गुण भी विशेष रूपसे प्रकाशित होते हैं।

(७०) स्तन्य शोधन।

जो द्रव्य दूषित दूधको शुद्ध और मधुर बनावे, उसे स्तन्यशोधन संज्ञा दी है। सुश्रुतसंहितामें वचादिगण, हरिद्रादि गण और मुस्तादि गणको स्तन्यशोधन कहा है।

वचादिगण—वच, नागरमोथा, अतीस, हरड़, देवदारु और नागकेशर, ये ६ औषधियां।

हरिद्रादिगण—हल्दी, दारुहल्दी, पृश्नपर्णी, इन्द्रजौ और मुलहठी, ये ५

औषधियाँ। वचादि और हरिद्रादि गण स्तन्यशोधन, आम और अतिसारशामक तथा विशेषत: दोषपाचन हैं।

मुस्तादिगण—नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, आंवला, बहेड़ा, कूठ, हैमवती (रेणुका मतान्तरमें सफेद बच), लाल बच, पाठा, कुटकी, काकजंघा, अतीस, छोटी इलायची, भिलावा और चित्रकमूल, ये १६ औषधियाँ। यह, गण श्लेष्महर, योनिदोषहर, स्तन्यशोधन तथा पाचन है। (बच वमनकारक है, उसका उपयोग अतिक्रम मात्रामें करना चाहिये)।

स्तन्यशोधन कषाय—चरकसंहितामें पाठा, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, मोरबेल, गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, ये १० औषधियाँ कही हैं।

और औषधियाँ—तगर, पित्तपापड़ा, चोबचीनी, उश्बा, सोवा, सवौना, गन्धक, पारद, हरताल आदि।

स्तन्यविकृति कारण—माता की देहमें १ वातप्रकोप, २ पित्तप्रकोप ३ कफप्रकोप; ४ उपदंश, सुजाक आदि रोगोंका लीन विष ५. अनुचित आहार विहार, ६ माताका स्वास्थ्य पहिलेसे ही खराब रहना आदि।

वातदुष्टि होनेपर दशमूल सोवा आदि, पित्तदुष्टिमें पित्तशामक औषधियां—गिलोय, शतावरी, पित्तपापड़ा, सारिवा, रक्तचदन चिरायता, कुटकी, आदि कफदुष्टि में सोंठ, अजवायन, पीपल, पीपलामूल, कुटकी मुस्तादि गण, आमप्रकोपज विकृति होनेपर वचादिगण, हरिद्रादि गण आदि त्रिदोषज विकृतिमें स्तन्यशोधन कषाय उपदंशज दुष्टिमें चोबचोनी, उश्बा, हरताल, रसकपूर आदि; सुजाकविकृतिमें भिलावा, श्वेत चन्दन, सारिवा, वंशलोचन प्रवाल, गोखरू, शीतलमिर्च आदि। चर्मरोगज विकृतिमें गन्धक, त्रिफला, कुटकी आदि औषधियां प्रयुक्त होती हैं।

दुग्धकी विकृति होनेपर शिशु पुष्ट नहीं बन सकते बहुधा रोगपीड़ित हो जाते हैं और अनेक बालक मृत्युके मुखमें चले जाते हैं। अत दुग्धविकृतिपर माताको स्तन्यशोधक औषधियोंका सेवन सत्वर कराना चाहिये।

डाक्टरी दृष्टिसे विशेष विचार नं० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" औषधके विवेचनमें किया जायगा।

(७१) स्तन्यजनन।

स्तन्यवर्धक—गेलेक्टेगोग्स—लेक्टेगोग्स।

Galactagogues—Lactagogues,

स्त्रियोंके स्तन्यको उत्पन्न करने और बढ़ानेवाले द्रव्योंको स्तन्यजनन संज्ञा दी है।

स्तन्यजनन कषाय—चरकसंहितामें खस, शालि, षष्ठिक (सांठी चावल),

दर्भ, इक्षुवालिका (ईख भेद), दर्भ, कुश, काश, गुन्द्रा (पाटरक घास), इत्कट (शरभेद) ये १० औषधियाँ कही हैं। शर, दर्भ, कुश आदि सबके मूल लेने चाहिये।

सुश्रुत संहितामें काकोल्यादि गणको स्तन्यकर कहा है। इसका वर्णन पहिले नं० ५ पित्तसंशमनमें किया है।

और औषधियाँ—दूध, मीठे जलकी मछली, नारियल, गायका मांस, सेमलकी जड़, अश्वराग, असगन्ध, शतावर, सोवा, एरण्डपत्र, उड़द, हालोंकी खीर, बिनौलेकी गिरी, मिश्री, मधुरअम्ल औषधियाँ, क्षीरीवृक्ष (दुधवाले वृक्ष), सोमुख छोड़कर अन्य प्रकारकी शराब आदि।

दूध तथा दूधके समान द्रव्य-क्षीरीवृक्ष, शतावरी, भूमिकुष्माण्ड स्वत्वर लाभ पहुँचाते हैं। उड़द, सुरण, चावल, पंचतृणमूल, मधुर अम्ल फल आदि रसधातुको सबल बनाकर लाभ पहुँचाते हैं। अष्टवर्ग आदि औषधियाँ देहकी मांस आदि धातुओंको पुष्ट बनाकर दूध बढ़ाते हैं।

प्रविकारवस्थामें अनेक स्त्रियोंके दुग्धके परिमाण अथवा स्वभावमें वैलक्षण्य प्रतीत होता है। कभी-कभी दूध बहुत कम आता है। इसमें अनेक कारण हैं।

(१) यदि दुग्धग्रन्थियोंके विधानमें साम्य वृद्धि न होनेसे दूध कम उतरता हो, तो उसकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती।

(२) गर्भावस्थामें निर्बलता, ज्वर आदिसे क्षीणता, प्रसवाके पोषणमें न्यूनता, रक्तस्राव, अतिसार, ज्वर आदि विविध पीड़ाके हेतुसे दूधमें न्यूनता हुई हो, तो उसके कारण अनुरूप चिकित्सा की जाती है।

(३) स्तनोंके भीतर श्लैष्मिक आवरण आ जानेसे योग्य दुग्धस्राव नहीं हो सकता। ऐसे समय पर स्तनोंको कुछ दिनोंतक मसल कर दूध निकालनेसे फिर *स्वाभाविक निःसारण क्रिया होती रहती है।*

(४) मानसिक उद्वेगजनित स्तन्यमें न्यूनता या विलक्षणता हो, तो मानसिक उद्वेगको दूर करना चाहिये।

(५) स्तनमें रही हुई दुग्ध ग्रन्थियोंकी क्षोभता होनेपर दूध कम आता हो, तो उपर्युक्त औषधियोंसे लाभ होता है एवं विद्युत्प्रयोगसे भी उपकार होता है।

(६) शारीरिक बल योग्य मात्रामें होनेपर भी दुग्ध बननेकी क्रिया यथोचित न होती हो, या पित्तकी प्रबलताके हेतुसे दूध सूख जाता हो, तो उपर्युक्त स्तन्यवर्द्धक औषधियोंका सेवन कराना हितकर होता है।

इस स्तन्यका विशेष विचार नं० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" वर्गमें देखें।

(७२) स्तन्यपर कार्यकर।

दूधमें अपना गुण प्रकाशित करने वाली औषधियाँ—पारदघटित औषधियाँ, लोहभस्म, वंगभस्म, मल्लभस्म, मौक्तिकभस्म, नौसादर, सोया, शीतलमिर्च, तार्पिन तैल, रेवन्दचीनी, सनाय पत्ती, एरण्ड तैल, अफीम, सौंफ, इलायची, सुगन्धयुक्त तैल, वाले पदार्थ, लहसुन, शिलाजीत, जवाखार आदि विविध क्षार, उड़द, केला इत्यादि। यद्यपि सामान्य रूपसे माताके भोजनका प्रभाव स्तन्यपर होता ही है, तथापि उपर्युक्त औषधियोंके सेवनसे माताका दूध अधिक प्रभावित होकर स्तनपायी शिशुपर विशेष रूपसे परिणाम प्रकाशित करता है।

सौंफ, इलायची, बादाम आदिके सेवनसे दुग्ध मधुर, सुगन्धित और पौष्टिक बनता है। एवं यह दूध बालककी बुद्धिपर भी लाभ पहुँचाता है।

लहसुनसे दुग्ध उग्र, दुर्गन्धयुक्त, बेस्वादु, बुद्धिमान्द्यकारक और वातहर बनता है।

शिलाजीत, जवाखार, केलेका क्षार आदिके सेवनसे बालकको मूत्रल गुणकी प्राप्ति होती है। जब दूधमें क्षारकी न्यूनता हो, तब क्षारप्रधान औषधि दी जाती है।

तार्पिन तैल देनेसे बालकके मूत्र संस्था और मूत्रपर उग्रता पहुँचती है।

अफीम शिशुपर स्वापजनक असर पहुँचाती है।

उड़द, केला, पका भोजन आदि बालककी पचन क्रियाको विकृत कर मलावरोध उत्पन्न करते हैं।

माताको विरेचन औषधि देनेसे बालकको जुलाब लग जाता है।

सौंफ, सोया आदि देनेसे स्तन्यकी शुद्धि होकर बालककी पचन क्रिया सबल बनती है। बालकको उत्पन्न हुए उदरविकार नष्ट होते हैं।

माताको मल्ल भस्म देनेसे बालकके रक्तमेंसे उपदंशजनित लीन विषकी निवृत्ति हो जाती है।

तेजाब और अम्लरस युक्त औषधि देनेसे बालकको उदरशूल, पेचिस आदि व्याधियाँ हो जाती हैं। अत ऐसी औषधियाँ, सिरका, तीव्र अम्लरसप्रधान भोजन आदिका निषेध किया गया है

चर्बी, (घृत आदि) प्रधान भोजनसे दूधमें शर्कराके अंशकी वृद्धि होती है परन्तु परिमाण कम होता है। उद्भिद् (अन्न, शाक और फल फूल आदि) आहारसे दूधमेंसे किलाटजनक सत्व (Casein) का ह्रास होता है मांस और शाकमिश्रित भोजनसे दुग्धमें चर्बी और किलाटजनक सत्वके परिमाणकी वृद्धि होती है। गोदुग्धका सेवन करनेसे शुद्ध स्वादु और बुद्धिवर्द्धक दुग्धका परिमाण बढ़ जाता है।

कभी-कभी किसी-किसी स्त्रीको दुग्धका परिमाण अधिक होता है। यदि कुछ अंशमें अधिक हो, तो विरेचन औषधि और नियमित पथ्य देनेसे दूध मर्यादित हो जाता है। क्वचित् दूध अत्यधिक आता रहता है, उसे स्तन्यक्षरण व्याधि (गेलेक्टोरिया Galactorrhoea) कहा दी है। उस पर अनन्तमूलके क्वाथके साथ शिला-जीतका सेवन कराया जाता है, तथा स्तनपे ऊपर हल्दी मिली हुई धतूराकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये एवं उष्ण जलसे सेक करें या धत्तूरेका लेप करें। आवश्यकतापर दुग्धचूषक यन्त्र (Breast pump) से दूध खींच लेना चाहिये।

अनेक बार प्रसूताको पुनः मासिकधर्म आनेपर दुग्धस्रावका दमन हो जाता है अथवा किसी तरह गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर स्तन्यनि सरणका ह्रास हो जाता है। निवाया जलका बूस्ति (वस्ति) देनेसे लाभ हो जाता है।

गर्भाशयमें गर्भवृद्धि होनेके साथ-साथ स्तनमें स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जैसे-जैसे सगर्भा स्त्रीके स्तनोंके आकारका परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे भीतर एक प्रकारका दुग्धरस निकलने लगता है। फिर जब सन्तान बाहर आती है, तब यह पहिली समय गाढ़े दूध सदृश होकर बाहर निकलता है। इसे पीयूष (Colostrum) कहते हैं। इसे भाषामें खीस नाम दिया है। यह स्वाभाविक स्तन्यकी अपेक्षा घन, ईषत् पीताभवर्णका और मधुर स्वाद युक्त होता है।

कितना आश्चर्य है कि सन्तानका जन्म होनेसे पहिले जगदीश्वर जननीके स्तनोंमें स्तन्य सञ्चारित कर देते हैं। फिर जन्म होने पर परिपोषण पदार्थ (स्तन्य) की क्षरणक्रियामें जीवनीय शक्ति सहायता करती है। प्रभुने जननयन्त्र इस तरह बनाया है, कि एक अंशको क्रिया वर्तमान होने पर इतर अंश विश्राम लेता है। गर्भावस्थामें जिस तरह गर्भाशयको परिश्रम पहुँचता है, उसी तरह स्तनोंको नहीं पहुंचता। फिर प्रसव होनेके दो तिन बाद स्तन कठोर और स्थूल हो जाते हैं। एवं प्रसूताके शरीरमें विविध परिवर्तन हो जाते हैं। शीत लगना, मुख लाल हो जाना, मस्तिष्कमें वेदना, क्षुधानाश, जिह्वापर श्वेत वर्णका लेप, सामान्य ज्वर, वेग नाड़ी आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यदि इस अवस्थाकी वृद्धि हो जाती है, तो स्तन्य ज्वर (Milk fever) कहलाता है। यह ज्वर लङ्घन और योग्य उपचार करनेसे २-३ दिनमें शमन हो जाता है।

स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ होने पर नियमपूर्वक होती रहती है। इस हेतुसे जब माता अपने शिशुको स्तनपान कराती है, तब उसके स्तनोंमें गुदगुदी (एक प्रकारकी मधुर वेदना) होती है। किसी-किसीको तो सन्तानके सन्मुख आने पर स्नेहाधिक्य वशात् दुग्ध वेगपूर्वक संचारित होकर स्तन वृन्तमेंसे बाहर निकलने लग जाता है। यदि बालक बहुत दिनों तक स्तनपान करता रहता है, तो स्तन्य

निःसरण क्रिया ५–७ वर्ष तक सतत होती रहती है और स्तन्यपान करानेका त्याग कर देवें, तो दूध थोड़ेही दिनोंमें सूख जाता है।

कभी-कभी बालककी माताका देहान्त होजानेसे बालकी दादी या नाना सम्हालने लगती है। ऐसे समय पर अप्रसूता वयोवृद्धा स्त्रीके स्तनोंमें भी स्नेह वृद्धिके हेतुसे स्तन्यकी उत्पत्ति हो जाती है।

स्तन्य उत्पत्ति किसी माताके स्तनमें अधिक और किसीमें कम होती है। किसीको इतना अधिक दूध आने लग जाता है, कि दूध स्वयमेव बाहर निकलता रहता है।

इस दूधमें जब रोग आदि कारणोंसे विकृति हो जाती है, तब यह सन्तानके जीवनका, पोषणके बदले शोषण करता है।

स्वस्थ माताका दुग्ध कुछ नील आभायुक्त होता है। स्वस्थ माताके दुग्धका विश्लेषण करने पर उसमें निम्नानुसार तत्व मिलते हैं।

शर्करा प्रधान द्रव्य-कर्बोदक (Carbohydrates)	५९	१०००
वसा (Fat)	२८	
प्रथिन-पौष्टिक तत्त्व (Protein)	१२	
लवण	२४	
जल	८९·८६	

नीरोगी दूध स्वादमें मधुर होता है। इसमें एक प्रकारकी सुवास आती है। आपेक्षिक गुरुत्व १०२६ से १०३५ पर्यन्त होता है। यदि स्तन्यको किसी पात्रमें कुछ समय रख दिया जाय, तो उसपर मलाई आ जाती है। स्त्रीदुग्ध विशेषतः क्षार गुणविशिष्ट होता है। गोदुग्ध भी क्षारयुक्त होता है। बहुधा मांसभोजियोंका दूध अम्ल गुणविशिष्ट होता है।

अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा विशुद्ध स्तन्यकी परीक्षा करनेपर उसमें तरल पदार्थ—किलाटजनक सत्व (Casein) पाया जाता है। इस दुग्धसत्व द्वारा प्रकाश प्रतिक्षिप्त होनेसे दूधका वर्ण श्वेत प्रतीत होता है।

स्तन्य गुण चरकसंहिता और सुश्रुतसंहितामें लिखा है कि—

> जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।
> नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षि शूलिनाम् ॥ च० सं० ॥
> नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम्।
> नस्यार्श्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम् ॥ सु० सं० ॥

स्त्रीदूध जीवनीय, बृंहण, सात्म्य (मनुष्य देहके अनुकूल) तथा स्निग्ध करने वाला है। यह रक्तपित्तमें नस्यरूपसे और नेत्रशूलमें तर्पणरूपसे (नेत्रको दूधसे भर देनेमें) उपयोगी है।

सके। जो स्त्री अति कृश या अति स्थूल न हो, जिसके स्तनोंके वृन्त (चूचुक) अति कठोर न हों, एवं स्तनवृन्त अति ऊर्ध्वमुख या अधोमुख न हों, ऐसी स्त्रीको धात्रीरूपसे रखनी चाहिये ।

दुग्ध पिलानेके पहिले और पीछे चूचुकोंको गरम जलसे धो लेना चाहिये। जिससे प्रस्वेद आदि बालकके उदरमें न जाय, एवं दुग्ध जो बाहर लगा हो वह तुरन्त दूर हो जाय। यदि हो सके तो रासायनिक और अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा दुग्धकी परीक्षा करा लेनी चाहिये ।

नीरोगी दूध—जिस दूधके वर्ण, गन्धर स और स्पर्शस्वा भाविक हो, और जल पात्रमें दुहने पर तत्काल जलमें मिल जाय वह पुष्टि कारक और आरोग्यप्रद माना जाता है।

वातदुष्ट दूध—जिस स्तन्यमें श्यामता या अरुणता हो, जो स्वादमें कषाय रसविशिष्ट हो जिसकी वास अच्छी न हो, जिसमें रूक्षता (चिपचिपापनका अभाव) हो, जो झाग युक्त और लघु हो, और जो दुग्ध अतृप्तिकारक, कृशकर हो, उसे वात दुष्ट जानना चाहिये ।

पित्तदुष्ट दूध—जो दूध काला, नीला, पीला, ताम्रवर्णकी आभायुक्त हो, जो तिक्त, अम्ल और कटु रसविशिष्ट हो, जिसमेंसे वास रक्तके सदृश आती हो, जो अति उष्ण हो, उसे पित्तप्रकोपक जानना चाहिये ।

कफदुष्ट दूध—जो दूध अति श्वेत, अति मधुर, लवण रसविशिष्ट, घृत, तैल, वसा और मज्जा सदृश गन्धयुक्त पिच्छिल और तन्तुयुक्त हो तथा जलपात्रमें दोहन करने पर जो जलमें डूब जाय, उसे कफप्रकोपक माना है ।

वात, पित्त या कफके दोष युक्त दूधको दोषप्रशमनकारक आहार विहार, योग्य औषधि या वमन, विरेचन, आस्थापन और अनुवासन बस्तिके प्रयोगों द्वारा सुधार लेना चाहिये ।

वर्तमानमें शहरोंमें जो धात्री व्यवसाय करनेवाली स्त्रियां हैं, उनकी धात्री रूपसे योजना नहीं करनी चाहिये। कारण, वे स्वार्थनिमित्त कृत्रिम उपायों द्वारा स्तन्यको चिरकालतक समान रखनेका प्रयत्न करती हैं। यह विधि स्वास्थ्यप्रद नहीं है, इससे बालकको योग्य लाभ नहीं मिलता।

दुष्ट दूधवाली धात्रीको जौ, गेहूं शालि और षष्टिक चावल, मूँग, मग्ग, कुलथी, सुरा (शराब), सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक (ये शराब के भेद हैं), लहसुन और करंजका अधिक प्रयोग करना चाहिये। एवं दूधके दोषके अनुसार दोषशामक आहार-विहार और औषधि देनी चाहिये ।

गेहूँ, चावल, मांसरस, मछली, लहशुन, कसेरु, सिंघाड़े, मीठी तुम्बी आदि शाक, अनेक प्रकारकी शराब, शतावरी, मुलहठी, विदारीकन्द आदि स्तन्योत्पादक आहार माने गये हैं।

(७३) स्तन्यनाशन।

स्तन्यनाशकर—लेक्टीफ्युग्स।

(Lactifuges)

जो औषधियाँ स्तन्यको सुखा देवें, उनको स्तन्यनाशन कहते हैं। बालकको स्तन्य दानसे हानि पहुँचनेका भय हो या शिशुकी मृत्यु हो जाने पर यह प्रयोग करना पड़ता है। नागरवेलके पान, धतूरेके पान या मालतीके फूल स्तन पर बाँधे जाते हैं अथवा धतूरेके पानोंके स्वरसका लेप किया जाता है तथा कपूर २ २ रत्ती दिनमें २ समय खिलाया जाता है।

स्तनोंपर बेलाडोनाका लेप (Emp. Belladonna) लगाया जाता है। इससे दूध सूख जाता और सूजन भी दूर हो जाती है तथा धतूरेके लेपसे भी यही लाभ होता है।

इस तरह रेचन औषधि या विरेचनका प्रयोग किया जाता है। दुग्धवर्धक पदार्थ कम लिया जाता है। दुग्धग्रन्थियोंको शिथिल करनेके लिये हल्दी, देवदारु पुनर्नवा आदिका लेप भी लगाया जाता है। उष्ण जलसे स्तनोंपर सेक भी किया जाता है।

(७४) शामक।

अवसादक—शैथिल्यकर—सिडेटिव्स—डिप्रेसण्ट्स।

अ मस्तिष्कपर कार्यकर द्रव्य —

१ मादक (Intoxicants) शराब, मद्यार्क, ताड़ी आदि।

२ सार्वाङ्गिक चेतनाहर और मोहजनक—General Anaesthe thetics and Narcotics—क्लोरोफार्म ईथर आदि।

३ निद्राप्रद और मोहजनक—Hypnotics and Narcotics—अफीम, भांग, गांजा, क्लोरल हाइड्रास, सल्फोनल, पेरलडीहाइड, बार्बिटोन, ब्रोमाइड आदि।

आ सुषुम्णाशीर्षपर कार्यकर द्रव्य—उत्तेजक-Stimulants कपूर, सेल्यामोल आदि।

इ सुषुम्णाकाण्डपर कार्यकर द्रव्य—आक्षेपोत्पादक—Convul sants-कुचिला सत्व (स्ट्रिक्निन)।

स्वतन्त्रवातनाड़ी संस्थानपर कार्यकर द्रव्य —

१ परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेके उत्तेजक—पाइलोकार्पिन, एसिटिलकोलिन आदि।

२ परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेके अवसादक—सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन (Hyoscyamus), धतूरा आदि।

३ स्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेके उत्तेजक—एड्रेनलिन, एफेड्रिन (सोम) आदि।

४ स्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेके अवसादक—बड़ी मात्रामें अर्गोटोक्सिन, एपोकोडीन आदि।

उ. चेष्टावाही नाड़ियां और नाड़ीग्रन्थिपर कार्यकर द्रव्य—अखसिनि बमके मूल, निकोटिन, कोनायम (हेमलाक सत्व), लोबेलिन आदि।

ऊ. संचेतनावाही नाड़ियोंके सिरेके अवसादक द्रव्य—कोकेन, बेन्सोकैन, परकैन आदि।

ए. संचेतनावाही नाड़ियोंके सिरेके उत्तेजक द्रव्य—इनका वर्णन प्रतिक्षोभोत्पादक द्रव्य नं० १०० में आगे किया जायगा।

अन्य प्रकारसे शामक विभाग—१ व्यापक अवसादक, २ मस्तिष्कशामक ३ सुषुम्णाशामक ४ वातनाड़ीशामक ५. धमनी शामक। यदि स्थानभेदसे विभाग किया जाय, तो हृदयावसादक, फुफ्फुसावसादक आमाशयावसादक, यकृदवसादक, मूत्राशयावसादक, गर्भाशयावसादक आदि भेद हो जाते हैं।

(१) व्यापक अवसादक (General Sedatives)—रक्तमोचन वायु, कफ या जलकी शीतलता और उपवास आदि।

(२) मस्तिष्क अवसादक (Cerebral Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियोंका अल्प मात्रामें सेवन करने पर, मस्तिष्क, सुषुम्णा और इतर भागोंमें स्थित वात-नाड़ी पुंज, इन सब पर पहिले असर होता है। फिर श्वास यन्त्र और रक्त संचालन यन्त्रकी अवसन्नता उत्पन्न होती है। अधिक मात्रामें ये औषधियाँ संहारक हैं। अतः इनके निद्राकारक, मोहजनक, वेदनाशामक और वेदनाहारक, ये ४ उप विभाग होते हैं। इनमेंसे वेदनाशामकका विवेचन पहिले नं० ५५ में किया गया है। शेष तीन विभागोंका विवेचन आगे नं० ७६ से ७८ तक में किया जायगा।

मस्तिष्क उत्तेजक औषधियोंसे और मस्तिष्क शामक औषधियोंके सही सेवनसे वेदनाका हरण हो जाता है। परन्तु दोनों में यह अन्तर है, कि उत्तेजक औषधि से रक्ताभिसरण होकर क्रिया जोर होती है; और शामक औषधि से रक्तहीनता आकर चेतना नष्ट होती है।

(३) सुषुम्णा अवसादक (Spinal Depressants)—सुषुम्णाद्वारा उत्तेजना और अवसादन क्रिया ३ प्रकारसे प्रकाशित होती है। १ संचालन (Conduction) यह क्रिया केन्द्रगामी या केन्द्रत्यागी नाड़ीद्वारा होती है। २ प्रत्यावर्तित क्रियाद्वारा। ३ विरोधनाशी केन्द्रद्वारा, उदाहरणार्थ स्वेद केन्द्रद्वारा। अवसादनगुण पहुँचानेवाली औषधियोंके २ प्रकार हैं। १ उत्तेजना दिये बिना शामक असर पहुँचानेवाली और २ उत्तेजना देकर फिर अवसन्नताकी प्राप्ति करानेवाली।

बिना उत्तेजना शामक असर पहुँचानेवाली औषधियाँ—अभ्रक भस्म, रौप्य भस्म, रौप्य लवण, सज्जीक्षार, मौक्तिक भस्म प्रवाल भस्म शुक्ति भस्म, वराटिका भस्म, शंख भस्म, मुक्ताशुक्तिक भस्म, मण्डूर भस्म, राजावर्त भस्म आदि।

उत्तेजनाके बादमें अवसादक गुण पहुँचानेवाली औषधियाँ—नौसादर सत्व, अफीम, अफीम सत्व कामल, गुराचीर्य, शराब, कपूर, क्लोरोफॉर्म आदि। ये सब सुषुम्णाको प्रारम्भमें कुछ उत्तेजित करती हैं। फिर शिथिल बनाती हैं।

इनमेंसे अफीम सुषुम्णास्थ धूसर द्रव्य (Gray matter) की अवसादन ह्रास कराती है। अतः यह वेदनानिवारणार्थ अति उपयोगी है।

उपर्युक्त अफीम, भांग, गांजा आदि औषधियाँ सुषुम्णाकी प्रतिक्षिप्त क्रिया (Reflex) का ह्रास कराती हैं। अत सुषुम्णाके विविध स्थानोंमें उत्तेजनाकी अधिकतासे उत्पन्न नाना प्रकारके आक्षेपों (धनुर्वात, अन्तरायाम, बहिरायाम, पक्षाघात कम्पवात आदि) पर व्यवहृत होती हैं। इनके अतिरिक्त कुचिला आदिके विषप्रकोपके शमनार्थ भी प्रयोजित होती हैं।

दीर्घ काल तक शराबका व्यसन रहने पर सुषुम्णाकी सब क्रियाओंमें न्यूनता आ जाती है; तथा वत्सनाभ और अधिक मात्रामें कुचलेका सेवन करनेपर सुषुम्णामें क्रिया दमन होकर परम्परागत मस्तिष्कको क्रियाका अवसादन होता है।

(४) वातनाड़ी शामक (Nervous Sedatives)—वातवहा नाड़ियोंके विकारोंमें, व्यापक और स्थानिक, ऐसे दो भेद हैं। समस्त शरीरकी वातवहा नाड़ियोंमें विकृति हो, वो व्यापक विकार कहलाता है और मस्तिष्क और सुषुम्नासे सम्बन्धवाली वातवहा नाड़ियों शाखाएँ जो विविध यन्त्र या स्थानोंमें रहती हैं, वे सब स्थानिक कहलाती हैं। इन स्थानिक नाड़ियोंकी विकृतिको स्थानिक विकार कहा है।

व्यापक वातवहा नाड़ियोंपर अवसादक औषधियोंका वर्णन आगे नं० ७६ निद्रा उत्पादक (Hypnotics) विभागमें किया जायगा।

स्थानिक वातनाड़ी शामक (Local Sedatives)—स्थानिक शामक औषध कुछ समयके लिये चमको अवसन्न (मूर्च्छित) सा बनाती है। इस हेतुसे उस भागमेंसे स्पर्श बोधका ह्रास हो जाता है। बच्छनाग, अफीम, कार्बोलिक एसिड, क्लोरोफॉर्म आदिका प्रयोग स्थानिक अवसादक रूपसे होता है।

इनके अतिरिक्त स्थानिक स्पर्शहारक-चेतनाहर (Local Anaesthetics) का प्रयोग करनेपर भी वेदना और स्पर्शानुभव लोप हो जाते हैं। इस विभागका वर्णन आगे नं० ७८ में किया जायगा।

वातनाड़ियाँ फुफ्फुस, हृदय, आमाशय आदि प्रदेशोंमें प्रविष्ट हुई हैं। इनमें उत्तेजनाकी वृद्धि हो जानेपर स्थानका लक्ष्य रखकर शामक औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

(५) धमनी अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ रक्तसंचालन यन्त्र पर अवसादक क्रिया दर्शाती हैं। इन औषधियोंद्वारा हृदय और सब धमनियोंके स्पन्दनका लाघव होता है। श्वसोच्छ्‌वास क्रिया मन्द होती है। एवं शारीरिक उत्तापका ह्रास होता है।

नये बुखार और मदात्यय आदि व्याधियोंमें जब हृदय स्पन्दनकी वृद्धि, धमनीके वेगकी वृद्धि और श्वासोच्छ्‌वास क्रियाकी वृद्धि हो जाती है, तब शीतल औषध (Refrigerants) द्राक्षासव, अंगूरका सिरका, यवक्षार, केलेका क्षार, बिजौरेका रस, नीबूका सत्व, इमलीका सत्व, बच्छनाग, पपकाष्ठ, सुरमा, सुवर्णमाक्षिक, सर्पगन्धा, मुक्ता, प्रवाल, जसदभस्म आदि औषधियाँ दी जाती हैं। इन औषधियोंसे धमनी पर अवसादक असर पहुँचता है।

सब रक्तप्रणालिकाएँ वातनाड़ियोंके आधीन हैं। इन वातनाड़ियोंमें दो प्रकार हैं—एक रक्तप्रणाल संकोचक (Vaso constrictor) और दूसरा रक्तप्रणालीप्रसारक (Vaso-dilator)। इन दोनों प्रकारकी (वातवाहिनियों पर कार्य करनेवाली) औषधियोंके दो विभाग किये हैं। जो औषधियाँ स्थानिक क्रियाद्वारा रक्तप्रणालियोंको संकुचित या प्रसारित करती हैं, वे सब उक्त वातवाहिनियों पर कार्य करके क्रिया दर्शाती हैं।

जो औषधियाँ हृदय या विस्तीर्ण रक्तप्रणालीमय स्थान पर कार्य करती हैं, उनके द्वारा रक्तसंचारमें परिवर्तन हो जाता है। जब धमनियोंकी दीवारमें वेग या दबाव पड़ जाय, उसे रक्तसंचाप कहते हैं। रक्तसंचापकी ह्रास-वृद्धि उक्त दोनों प्रकारकी वातनाड़ियोंकी क्रियाके तारतम्यके ऊपर निर्भर है। अतः वातनाड़ियों पर असर पहुँचाने वाली औषधियोंसे भी रक्तप्रणाली पर लाभ-हानि पहुँच जाती है।

हृदय अवसादक (Cardiac Sedatives)—हृदयका अवसादन होने पर नाड़ी पतली तथा हलका हो जाता है। संचालन क्रियाका ह्रास है और गति भी कम हो जाती है इस प्रकारकी औषधियोंका वर्णन पहिले नं० ६७ हृद्य गुण विवेचनके अन्तमें किया गया है।

हृदय अवसादक औषधप्रकार—

१ प्राणदा नाड़ीके केन्द्रकी उत्तेजनाद्वारा कार्यकर बच्छनाग, अफीमसत्व (Morphine) आदि।

२ प्राणदानाड़ीके सिरेको उत्तेजनाद्वारा कार्यकर स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाड़ियों पर उत्तेजना पहुँचाने वाली औषधियाँ-एड्रिनलिन, एफिड्रिन, एसिरिन कोलीन आदि।

३ हार्दिक रसाभिसरणके द्वारा कार्यकर-पोषणिका ग्रन्थिसत्व (Pituitrin), लघु मात्रामें एड्रिनलिन।

४ हृदयपेशी पर साक्षात् कार्यकर—बच्छनाग, इमेटिन, क्विनाइन, हाइड्रोस्यनिक एसिड, क्लोरल हाइड्रेट और बड़ी मात्रामें निद्राप्रद औषधियाँ।

मौक्तिक, प्रवाल आदि प्रथम प्रकारकी हृदय अवसादक औषधियाँ हैं।

महाधमनीको पीड़ासे हेतुसे हृदयमें कम्पकी वृद्धि हुई हो, तो शिलाजीत या हवर मूसल आदि और कमजोरी गुणयुक्त औषधि दी जाती है।

अजीर्णजनित हृत्कम्प होने पर प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म आदि औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

गलतुण्डिकाशोथ (Tonsillitis) ज्वरमें हृदय वेगको शिथिल करनेके लिये बारबार अति सूक्ष्म मात्रामें बच्छनागप्रधान औषधिसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

फुफ्फुस अवसादक (Pulmonary Sedatives)—श्वासोच्छ्वासके आधाररूप वातवहा नाड़ियाँ और उनका केन्द्र, दोनोंको उपशमन द्वारा करनेवाली औषधियाँ। इनमें तीन प्रकार होते हैं—

१ श्वासकृच्छ्रता और कासको दमन करनेवाली औषधियाँ। इसमें तीन उपविभाग हैं, जिनका वर्णन आगे किया गया है।

२ प्रसनिका रक्तवाहिनियाँ, हृदय आदि पर क्रिया दर्शाकर परम्परा लाभ पहुँचानेवाली औषधियाँ।

३ श्वासप्रणालिकाके आक्षेपको शमन करनेवाली औषधियाँ—धतूराका धूम्रपान, ईथर, क्लोरोफार्म आदि। श्वास-कासके दमनकारी औषधियोंमें भी तीन उप विभाग होते हैं—

अ कासउद्दीपक कारणको दूर करनेवाली औषधियाँ।

आ वातवाहिनियोंके अन्त भागोंकी उग्रताका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करनेवाली औषधियाँ।

इ फुफ्फुसोंकी सञ्चाही वातवाहिनियोंकी उत्तेजनाका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करनेवाली औषधियाँ।

कितनी ही औषधियाँ प्रसनिका (Pharynx) और स्वरयन्त्रके रक्तावेगजनित कासपर लाभ पहुँचाती हैं। यथा गोंदमिश्रित अफीमप्रधान औषधि, मुलहठी, मिश्री, बच लौंग आदि। इनको मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे कासका दमन हो जाता है। अफीमसे श्वासयन्त्रस्थ वातवाहिनियोंकी उग्रताका शमन होनेके साथ, श्लेष्मस्राव भी कम हो जाता है।

कफघ्न तारक औषधियाँ बहुधा श्वासमार्गके रक्तसंचय (Congestion) का ह्रास कराकर तथा लोह भस्म आदि औषधियाँ हृदय और रक्तवाहिनियोंपर क्रिया दर्शाकर कासरोगमें लाभ पहुँचाती हैं।

तमाखू, धतूरा, मैनसिल, देवदारु आदि औषधियाँ धूम्रपान करने पर फुफ्फुस अवसादक होकर कासका निवारण कराती हैं। ये सब सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाओंके आक्षेपका ह्रास कराती हैं, अतः कफप्रधान तमक श्वासमें लाभदायक हैं। एवं अफीम, ईथर, क्लोरोफार्म, वत्सनाग, कुचिला आदि श्वासोच्छ्वास नियामक वात्यदा केन्द्रपर साक्षात् सम्बन्धसे अवसादन क्रिया करके लाभ पहुँचाती हैं।

आमाशय अवसादक (Gastric Sedatives) का विवेचन पहिले नं० २२ वमन निवारक औषधियोंके साथ किया गया है।

यकृदवसादक (Hepatic Sedatives) औषधियाँ—मौक्तिक, शुक्ति, शंख, वराटिका, प्रवाल, मीठे अनार, आँवला, चूनेका जल आदि पित्त निःस्रवण क्रिया का ह्रास करती हैं।

मूत्राशय अवसादक (Vesial Sedatives)—मूत्राशयकी उग्रताका ह्रास करानेवाली औषधियाँ—निवाये जलमें बैठना, निवाये जलसे कटिस्नान, अफीम, खुरासानी अजवायन, धतूरा, दूधीबूटी, जवाखार, चूनेका जल, गोखरू, कुलथी शिलाजीत आदि। इस प्रकारकी औषधियाँ मूत्राशय और मूत्रप्रसेक नलिकामें शामक असर पहुंचाती हैं जिससे वेदना और बारबार थोड़ा-थोड़ा मूत्र उतरना, ये विकार

दूर होते हैं। मूत्राशयमें अधिक मूत्र संचय होना, अश्मरीकी उत्पत्ति और मूत्राशयकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह इत्यादि विकारोंमें बारबार पेशाब करनेकी इच्छा होती रहती है। ऐसे समय पर अपशामक औषधियाँ व्यवहृत होती हैं।

अश्मरीजन्य विकारमें शिलाजीत, यवक्षार, केलेका क्षार, गोखरू आदि उपकारक हैं।

मूत्राशयकी श्लैष्मिक कलाके प्रदाहमें उष्ण जलसे कटिस्नान, शिलाजीत, गन्धाबिरोजा, शीतलमिर्च, इलायची आदि प्रयोजित होती हैं।

वातवहा नाड़ियोंकी उग्रता हो, तो अफीम, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना, अलसीका क्वाथ, उष्ण जलपान आदि लाभदायक हैं।

मूत्रकी प्रतिक्रिया अत्यधिक अम्ल हो जाने पर श्लैष्मिक कलाका प्रदाह होकर श्लेष्मा (Mucus) निकलता है; और मूत्रत्यागके समय दाह भी होता है। परीक्षा करने पर यदि मूत्रमें यूरिक एसिडका अधिक प्रवेश प्रतीत हो, तो यवक्षार, प्रवाल, मौक्तिक या इतर मूत्रल औषधि देनी चाहिये।

यदि मूत्राशयकी मांसपेशियाँ शिथिल हो जानेसे मूत्रधारण क्षमताका ह्रास (Incontinence of Urine) हो गया हो, तो मूत्राशय पौष्टिक (Vesical Tonics) औषधियाँ लोहभस्म, शिलाजीत और बंगभस्ममिश्रित औषधि तथा कुचिलासत्व आदि दी जाती हैं।

सुजाक आदिके कीटाणुओं द्वारा मूत्रप्रसेक नलिका (Urethra) में प्रदाह होने पर गन्धाबिरोजा, शीतलमिर्च, चन्दन तैल आदि प्रयोजित होते हैं। एवं बाह्य उपचार रूपसे पिचकारी, मुरसिंग, मिश्री क्वाथ आदि संकोचक और प्रदाहशामक औषधियोंकी पिचकारी लगाई जाती है।

गर्भाशय शामक (Uterine Sedatives)—गर्भाशयप्रदाह और संकोचका निवारण करने वाली औषधियाँ—बाह्य उपचार रूपसे नाभीके नीचे उष्ण सेक, तार्पिन तैलकी मालिश, अलसीकी पुल्टिस आदि। आभ्यन्तर उपचार रूपसे पारदमिश्रित विरेचन, मृदु विरेचन, एरण्ड तैल और मूत्रकृच्छ्रनाशक स्निग्ध औषधियाँ। परन्तु तीव्र वेदना होने पर अफीम आदि औषधियाँ उपयोगमें ली जाती हैं।

गर्भाशयकी मांसपेशीके आवरणका प्रदाह, गर्भाशय संकोच करने वाली औषधियोंका अधिक व्यवहार, सुजाकके उपद्रव रूप गर्भाशयप्रदाह या गर्भाशयमें अति उत्तेजना आने पर गर्भाशयशामक औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

रक्तप्रणाली आकुञ्चक औषध—इनमें दो प्रकार हैं। (१) रक्तप्रणालियोंके पैशिक आवरणको कुञ्चित करने वाली औषधियाँ। (२) रक्तप्रणालीके चारों ओर रक्तजल (Plasma) का संयमन करनेवाली, ये औषधियाँ इस संयत रक्तको आकुञ्चित कर रक्तप्रणालियोंका अवरोध करके कार्य करती हैं।

प्रथम प्रकारकी औषधिका यथा प्रयोग करने पर रक्तप्रणालियोंके पैशिक आवरण पर कार्य होता है। शीतलता, सीसाघटित लवण, रौप्यघटित लवण, गन्धकके तेजाबका हलका द्रव, फिटकरी आदि। लोहघटित लवण (कसीस) सामान्य रूपसे आकुञ्चन करता है।

द्वितीय प्रकारकी औषधियां—जामुनके पत्तोंका रस, कहरवा, हीरादोखी गोंद, माजूफल, लोध आदि रक्तरसका निग्रह कर अपना गुण दर्शाती हैं। कसीस और फिटकरीमें रक्तधारिके समन करनेका गुण भी रहता है।

रक्तसंचालक वातवाहिनी केन्द्र पर कार्यकारी—बच्छनाग, सुरावीर्य, सूचीबूटी, क्लोरोफार्म, ईथर, कलवो यादाम, खुरासानी अजवायन, अफीम, तमाखू आदि रक्तप्रणाली संचालक वातवाही केन्द्र (Vaso-motor Centre) पर असर पहुँचा कर रक्तप्रणालियोंको प्रसारित करते हैं।

अभ्रकभस्म, नौसादर, चूनामिश्रण, कुचिला सत्व सीसाघटित लवण आदि वातवाहिनी केन्द्रपर क्रिया दर्शाकर रक्तप्रणालियोंका आकुञ्चन करते हैं। इनके अतिरिक्त सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन, सुरावीर्य, ईथर, क्लोरोफार्म आदि पहिले रक्तप्रणालियोंका प्रसारण करते हैं; फिर थोड़े ही समयमें संकोच करते हैं। सूचीबूटी, खुरासानी अजवायन, गांजा, आदिमें प्रलाप, उत्पादक (Delirifacients—Deliriant) दोष भी रहता है। अतः इनका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

(७५) उत्तेजक।

(स्टिमुलेन्ट्स्—Stimulants)।

देहमें उत्तेजना अथवा तेजी लानेवाली औषधियां—अजवायन, सोंठ, अदरख, लौंग, दालचीनी, कस्तूरी, अम्बर, प्याज, लहसुन, पीपल, पीपलामूल, भिलावा, दशमूल, रास्ना, चित्रकमूल, मिर्च, तिल, कुचिला, संखिया, हरताल, बच्छनाग, तालीसपत्र, तेजबल, चोबचीनी, पाठा आक, हींग, मालकांगनी, अकलकरा, समुद्रफल, जावित्री, कालाजीरी, असगन्ध, कटभी (वायुवा), तुलसी, कायफल, उष्णजल, गुड़, शक्कर, पृष्ठपर्णी, अरनी, गम्भारी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, निगुण्डीके पान, हरमलके बीज, मजीठ, शराब, चाय गांजा, नीलगिरी तैल, रोहिष तैल, रससिंदूर, अभ्रक, ताम्र आदि।

संज्ञास्थापन कषाय—अर्थात् संज्ञा-चेतनाको स्थिर करनेवाली औषधियां—हींग, बचायन, दुर्गन्ध खदिर, वच, चोरक (चोर पुष्पी), ब्राह्मी, गोलोमी, (भूतकेशी), जटामांसी, गूगल और कुटकी ये १० औषधियां। इनका उपयोग, अपतन्त्रक (Hysteria), अपस्मार, बेहोशी आदिमें चेतना लानेके लिये होता है।

स्थानभेदसे वर्गीकरण—

१ मस्तिष्क उत्तेजक—शराब।
२ सुषुम्नाशीर्ष उत्तेजक—कर्पूर आदि।
३ सुषुम्नाकाण्ड उत्तेजक—कुचिला, थॉयरस आदि।
४ रक्ताभिसरण उत्तेजक—कपूर, शराब, गरमपेय आदि।
५ आमाशय उत्तेजक—वमन और दीपन-पाचन औषधियां।
६ यकृदुत्तेजक—प्रयान नं० ८ पित्तनि:सारक में।
७ फुफ्फुसो-उत्तेजक—कफनाशी नं० १० में।
८ मलशोष उत्तेजक—पुल्टिस आदि।

इस तरह शुक्र, गर्भाशय, मूत्राशय, जननयन्त्र, नेत्र, नासिकादि सम्बन्धि उत्तेजक विभाग हो सकते हैं।

इस प्रकारकी औषधियोंमें स्थायी गुणदायक (Permanent) और अस्थायी गुणदायक (Diffusible), ऐसे दो प्रकार होते हैं। इनमेंसे स्थायी उत्तेजक औषधियोंमें कितनीही ग्राही (Astringents) और कितनीही पौष्टिक (Tonics) हैं। इनका विवेचन पहिले नं० ५६ और ६० में किया गया है।

अस्थायी उत्तेजक औषधियोंकी क्रिया सहसा प्रकाशित होती और थोड़ी ही समयमें समाप्त हो जाती है। जितने परिमाणमें उत्तेजना होती है, उतने ही परिमाणमें क्रियाके अन्तमें अवसादकताकी प्राप्ति होती है। जब किसी व्यक्तिकी अकस्मात् जीवनीय शक्ति अवसन्न हो जाती है, तब उसे तत्काल उत्तेजित करनी पड़ती है। ऐसे समय पर इन अस्थायी उत्तेजक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

किसी बृहद् आशय या विस्तीर्ण स्थानमें दाह-शोथका आरम्भ होने पर उस स्थानमें वातशक्ति विशेष मात्रामें संगृहीत हो जाती है, इस हेतुसे इतर आशयोंमेंसे इस शक्तिका ह्रास हो जाता है; परिणाममें जीवनीय शक्ति अकस्मात् अवसन्न हो जाती है। ऐसे समय पर उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है; किन्तु इस बातका भी स्मरण रखना चाहिये कि उत्तेजक औषध प्रयोगसे थोड़े ही समयमें प्रदाहके लक्षणोंकी वृद्धि हो जानेकी संभावना रहती है इसलिये सब उत्तेजक औषधियोंकी क्रिया बहुत कम समयतक ठहरती है; और प्रदाहके लक्षण प्रकाशित होनेके पहिले ही पर्यवसित हो जाती है, अतः नौसादर-चूना का मिश्रण या ईथर आदि औषधियां प्रयोजित होती हैं तथा बाह्य प्रयोगरूपसे राईका प्लास्टर आदि लगाया जाता है।

क्वचित् शरीरके किसी प्रधान अवयव पर अकस्मात् अति चोट लग जानेसे बेहोशी आ जाती है, ऐसी अवस्थामें भी उपर्युक्त अस्थायी उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है, परन्तु आहत स्थानके प्रति जिन उत्तेजक औषधियोंकी विशेष

प्रवृत्ति होती हो, उनका व्यवहार नहीं किया जाता, जैसे मस्तिष्क पर चोट लगनेके समय अफीमका प्रयोग नहीं किया जाता।

मोतीझरा और शीतला आदि उत्कट ज्वरोंमें कभी कभी घातक शैत्यावस्था की प्राप्ति हो जाती है, तब उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त इन रोगोंमें रोगीको दुर्बलता और बेहोशी आ जाने पर जीवन-रक्षाके निमित्त उत्तेजक औषध दी जाती है। यदि कोई स्थानिक प्रदाह (कर्णमूलप्रदाह आदि) उपस्थित हो जाय, तो जलौका आदि प्रयोग द्वारा उसके दमनका तत्काल प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे समय पर आवश्यकता हो, तो उत्तेजक औषध प्रयोग भी करना चाहिये, क्योंकि, इस अवस्थामें जीवन शक्तिके संरक्षणकी पूर्ण आवश्यकता है।

क्वचित् पूर्व रोगके हेतुसे या अत्याचारके हेतुसे किसी दुर्बल व्यक्तिके प्रदाह आदि विकार उपस्थित हो जायं तो उत्तेजक और दोहन, दोनों प्रकारकी औषधियोंका एक साथ प्रयोग करना चाहिये। शराबीके लिये तो इस प्रकारकी चिकित्सा नितान्त आवश्यक है।

रक्तस्राव अथवा अधिक मात्रामें रक्त या पूय निःसरणके हेतुसे कृशता और शिथिलताकी प्राप्ति होने पर बल्य औषधिके साथ कस्तूरी आदि उत्तेजक औषधि मिला देनी चाहिये, या बल्य और उत्तेजक गुणयुक्त अभ्रक और रससिंदूरषड्गुण या इतर औषधि देनी चाहिये।

जब रक्तमें पूय या किसी औषधि विशेषका विषमिश्रित होकर वेदना उत्पन्न हो जाती है, तब उत्तेजक औषध द्वारा जीवनीय शक्तिको सबल रखना चाहिये, जिससे रोगनिरोधक शक्ति विषको नष्ट कर प्रकृतिको स्वस्थ बना सके।

वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलताजनित व्याधिमें इस श्रेणीकी औषधियों द्वारा वातनाड़ियोंके बलको कायम रखना चाहिये।

सार्वाङ्गिक उत्तेजक (General Stimulants)—विद्युत् प्रयोग, उष्णता गर्म चाय, गर्म दूध गर्म जलपान, क्रोध, प्रसन्नता आदि मनोवृत्ति और व्यायाम आदि। इनकी क्रिया देहमें सर्वत्र समभावसे प्रकाशित होती है किसी यन्त्र विशेष या स्थान विशेषका आश्रय नहीं करती।

मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral Stimulants)—मस्तिष्क की क्रियामें वृद्धि करा स्फूर्ति कराने वाली औषधियां—शराब, आसव, अरिष्ट, कपूर, चाय, काफी, गांजा, चरस, कस्तूरी आदि। इनमें शराब उत्कृष्ट है।

इस प्रकारकी औषधियां प्रारम्भमें वातवहा नाड़ी उत्तेजक और धमनी उत्तेजक रूपसे कार्य करती हैं फिर थोड़े ही समयमें मस्तिष्क पर विशेष रूपसे क्रिया दर्शाती हैं। इनका अल्प मात्रामें सेवन करने पर शरीर उष्ण होता है; धमनीके

स्पन्दनोंकी वृद्धि होती है, पाचनमण्डलसे स्थिरता सम्पादित होती है, मस्तिष्कमें रक्तकी कुछ अधिकता होती है तथा मानसिक वृत्ति प्रफुल्लित और उत्तेजित होती है।

यदपि सेवन अपेक्षाकृत अधिक मात्रामें करने पर मस्तिष्कमें रक्तादि अधिक होकर मस्तिष्क क्रियामें विकृति आ जाती है; इसी हेतुसे मद्यपानके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसकी अपेक्षा भी अधिक औषधि सेवन की जाय, तो मस्तिष्कमें अत्यन्त रक्ताधिक्य होकर बेहोशी आ जाती है।

उत्तेजक औषधि सेवनसे यह अवस्था १ से १४ घण्टे रहती है। फिर क्रमशः चेतनाका उदय होता जाता है। चैतन्यता आनेके पश्चात् (जिस परिमाणमें उत्तेजना आई हो उतने परिमाणमें) अवसादन क्रिया होती है और आलस्य, ग्लानि, सिरदर्द, क्षुधामान्द्य, वमन, उदासी, दुर्बलता आदि चिह्न प्रतीत होते हैं।

यदि इससे भी अधिक परिमाणमें औषधि सेवन की हो, तो अचेतनावस्था क्रमशः बढ़ कर मस्तिष्ककी क्रिया लोप हो जाती है, एवं श्वासावरोध (Asphyxia) होकर मृत्यु तक हो जाती है। भाग्यवशात् इस अवस्थासे मुक्त हो जाय, तो भी अपस्मारावस्थाकी संभवता होती है और मृत्युकी भीति रहती है।

मस्तिष्कमें संचालित रक्तके परिमाण और रक्तकी अवस्था पर, मस्तिष्ककी क्रिया अवलम्बित है। अतः सार्वांगिक रक्त संचालनमें उत्तेजना आने पर मस्तिष्कमें रक्तसंचालन वृद्धि होती है और मस्तिष्कक्रियामें उत्तेजना आ जाती है। *मस्तिष्कको नीचा रखने और मुँहसे पान-सुपारी आदि चबाते रहनेसे मस्तिष्कमें* रक्तसंचालन वृद्धि हो कर उत्तेजना आ जाती है तथा व्यायाम करने पर भी मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है।

इस देहके लिये यह नियम है, कि जिस यन्त्रमें उत्तेजना उत्पन्न होती है, उसयन्त्र में उसी हिसाबसे रक्तका अधिक संचालन होता है। *मस्तिष्कके लिए भी* यही नियम लागू होता है। शराब आदि मस्तिष्क उत्तेजक वस्तुके व्यसनीको क्रमशः मात्रा बढ़ानी ही पड़ती है उसकी अन्यथा शराब आदि सेवनके उद्देश्यकी सिद्धि नहीं होती। इस तरह अधिक काल तक सेवन करते रहने पर मस्तिष्क और इतर यन्त्रोंकी *क्रिया बार-बार उत्तेजना शराब आदि मादक द्रव्य* द्वारा होते रहनेसे ह्रास होता रहता है एवं जीवनीय शक्ति अवसन्न होती जाती है। यदि व्यसनी शरीरसे कृश है, तो वह रोगके आक्रमण के अधिक अनुकूल है।

मस्तिष्क उत्तेजक औषधियाँ विविध प्रकारकी व्याधियोंके निवारणार्थ और *जीवनीय शक्ति के उत्तेजनार्थ* प्रयोजित होती हैं। आक्षेप निवारक औषधियोंका विवेचन नं० २ में और वेदनानिवारक (Anodynes) का विवेचन नं० ४५ में किया गया है तथा निद्राकारक (Hypnotics) का विवेचन आगे नं० ७५ में किया जायगा।

सूचना—इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग नूतन ज्वर, नूतनप्रदाह और रक्त विकृत होने पर नहीं करना चाहिये।

सुषुम्णा उत्तेजक (Spinal Stimulants) सुषुम्णाकी प्रत्याहृतक्रिया (Reflax) में वृद्धि कराने वाली औषधियां—कुचिला, कुचिलेका सत्व, अफीम, अफीमसत्व, रससिंदूर, पूर्णचन्द्रोदय रस, अभ्रक भस्म, फॉस्फरस आदि। इनमेंसे कुचिला अफीम आदि औषधियोंको थोड़ी मात्रामें प्रयोजित किया जाय, तो प्रतिफलित क्रियाको वृद्धि करती हैं और अधिक मात्रामें तीव्र आक्षेप उत्पन्न करती हैं। रस सिंदूर, पूर्णचन्द्रोदय, अभ्रक भस्म आदि औषधियां बिलकुल निर्विघ्न हैं, किंचिद् भी आक्षेप या इतर अपाय नहीं करतीं।

स्थानिक पक्षाघात अर्धांगवात, हाथ-पैरका बंध आदि व्याधियोंमें इन औषधियोंको उपयोगमें लिया जाता है। पक्षाघात रोगमें कुचिला, सोमल आदिका प्रयोग करनेपर जब औषधिका असर पहुँचता है तब स्वस्थ अङ्गकी अपेक्षा अवसन्न अङ्गकी मांसपेशियोंमें स्पष्ट रूपसे स्पन्दन, स्फुरण और कम्प होने लगते हैं।

अफीम, कुचिला, कुचिलासत्व, नौसादर चूनाका मिश्रण, क्लोरोफार्म, ईथर आदिसे सुषुम्णाके सन्मुखशृङ्ग (Anterior Horn) में उग्रता उत्पन्न होती है। सुषुम्णाकी विकृतिजनित पक्षाघातमें आवश्यकता पर इन औषधियोंका उपयोग किया जाता है। परन्तु सुषुम्णाकी पीडामें इन औषधियोंसे कोई लाभ नहीं होता।

धमनी उत्तेजक (Arterial Stimulants)—इस प्रकारकी औषधियोंकी क्रिया सब धमनी और हृदयपर प्रकाशित होती है। लाल मिर्च, तार्पिन तैल, मिकद्, फास्फरस, नौसादर आदि औषधियोंके सेवनसे धमनी स्पन्दनमें तेजी आती है, आमाशयमें उष्णता मालूम देती है, एवं शरीर भी उष्ण हो जाता है और बाह्य प्रयोग करने पर त्वचा पर उग्रता आ जाती है।

किसी कारण वश हृदयकी क्रिया निस्तेज होजाने पर इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। यदि आमाशयप्रदाह हो, तो इन औषधियोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। धमनी उत्तेजक औषधियोंसे हृदयोत्तेजना होती है। इनके अतिरिक्त रक्ताभिसरण बढ़ानेवाली सुगन्धयुक्त और उष्ण औषधियां भी हृदयोत्तेजक (Cordial) गुण दर्शाती हैं।

वातनाड़ी उत्तेजक (Nervous Stimulants)—इस श्रेणीमें कस्तूरी हींग, जटामांसी, लहसुन, चाय, काफी आदि औषधियां हैं। ये वातवाहिनियोंकी निर्बलता दूर करती हैं। एवं वाताक्षेपका निवारण करती हैं। इनकी क्रिया समग्र शरीरमें समान रूपसे प्रकाशित होती है। मस्तिष्क या किसी वातनाड़ी केन्द्र पर विशेष रूपसे उत्तेजना नहीं पहुँचाती।

संज्ञावाही नाड़ियोंके सिरेकी उत्तेजक—बच्छनाग, बच्छनागसत्व (Aconitine), कलिहारी, विच्छूबूटी, बीछूको पत्ते, भाङ्ग आदि संज्ञावाही वात-नाड़ियोंके सिरेको उत्तेजित करते हैं। इनमें बच्छनाग या बच्छनागसत्व रक्तमें संचारित होनेपर जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ आदिमें झन झनाहट होने लगती है, एवं मिर्च, अकलकरा आदिसे त्वचास्थ संज्ञावाही नाड़ियोंके अन्तिम सिरेमें उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

राई प्रधान आहारके सेवनसे आमाशयस्थ संज्ञावाहिनियोंके सिरे (अन्त भाग) में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

हृदयोत्तेजक (Cardiac Stimulants) औषधियाँ—पूर्णचन्द्रोदयरस रससिंदूर, मकरध्वज कस्तूरी, शराब, नौसादर, ग्लास्य कपूर, तार्पिन तैल, नीलगिरी तैल, दालचीनी तैल। हृदय पर उत्तार और नं० १०० वस्तुमतासाधक औषधियोंका प्रयोग भी रक्ताभिसरण क्रिया पर लाभदायक है। इस प्रकारकी औषधियोंसे नाड़ीके बल और वेगकी सत्वर वृद्धि होती है।

जब अतिशय मानसिक उद्वेग, भौतिक आघात या हृदय अवसादक औषध सेवन होनेसे धक्का (Shock) या मूर्च्छा (Syncope) आकर सहसा हृदय क्रिया लोप होने लगती हो या सर्पदंश, ज्वर आदि रोगोंसे हृदय अति क्षीण होने लगता है, तब इस प्रकारकी औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

कपूर—मधुरा या कुत्सित प्रकारसे उत्पन्न ज्वरमें प्रलाप होने पर कपूर उत्तम हृदयोत्तेजक है। एवं कपूरके अफीम शक्करके साथ सेवन करानेसे प्रतिश्याय (जुकाम) का भी सत्वर शमन हो जाता है।

उग्र शराब—रक्तमें शोषण होने पर हृदयको उत्तेजित करती है; परन्तु यह प्रारम्भमें मुख, कण्ठ और आमाशयस्थ वातवहा नाड़ियोंको उत्तेजित करती है। फिर वहाँसे उत्तेजना हृदयमें प्रतिफलित होकर क्रिया दर्शाती है। अतः वेदनावस्थामें शराबका प्रयोग करना हो, तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें बार बार करना चाहिये। परन्तु साथ-साथ सम्हालते भी रहना चाहिये कि रक्त-संचालन क्रियामें विकृति तो नहीं होती। यदि रक्तसंचालनमें विकार होने लगे, तो शराब बन्द कर देनी चाहिये।

नौसादर मिश्रण भी उग्र शराब सदृश प्रतिफलित होकर हृदय पर कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह सूक्ष्म धमनी और शिराओंके संचालन विधायक वातनाड़ी केन्द्र (Vaso-motor Centre) को भी उत्तेजित करता है।

मूर्च्छा होने पर नौसादर और चूनेका मिश्रण सुंघाया जाता है। एवं सर्पदंश होनेपर नौसादरके अर्कका इन्जेक्शन दिया जाता है।

ज्वर आदि रोगोंमें हृदयकी निर्बलताको दूर करनेके लिये पूर्णचन्द्रोदय या रससिंदूरका उपयोग अदरखके रसके साथ किया जाता है। जिससे तत्काल नाड़ीकी

गति तेज हो जाती है। इस तरह उष्ण जलपान और उष्ण सेक करनेसे भी हृत्पिण्ड सत्वर उत्तेजित हो जाता है।

रक्तवाहिनी उत्तेजक (Vascular Stimulants) हृदयसे दूरवर्ती रक्तवाहिनीकी दीवार प्रसारित होने पर उनमें रक्तसंचालन क्रिया अधिक वेगपूर्वक करानेवाली औषधियां शराब, अफीम, प्राह्मसव, शोरा, नौसादर मिश्रण, पूर्ण चन्द्रोदय रस, रससिंदूर, अभ्रकभस्म लोहभस्म ताम्रभस्म, उष्णता और उष्ण जलपान आदि।

रक्त संचालनकी समता सम्पादित करने और आभ्यान्तरिक यन्त्रोंमेंसे रक्तके बढ़े हुए वेगका ह्रास करानेके लिये शराब या इतर मानसिक उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है।

शीत लगने या शीतकालमें देरतक गीले वस्त्र पहिननेसे श्वासयन्त्र, आमाशय अन्त्र या मूत्राशयमें रक्तसंग्रह हो जाता है, फिर कम्प या स्थानिक वेदना होने लगती है। यदि तुरन्त रक्ताधिक्यका दमन न हुआ, तो दाह शोथकी उत्पत्ति हो जाती है। ऐसे विकारोंमें मृदु मात्रासे कपूर या अफीम प्रधान औषधियाँ कार्य करती हैं और शराब, अग्निसेवन, सूर्यके तापका सेवन, चाय, काफी आदि तत्काल लाभ पहुँचाती हैं।

शोराको निवाये जलमें मिलाकर प्रयोग करनेसे वह रक्तवाहिनियोंको प्रसारित करके उत्तेजना उत्पन्न करता है।

बाह्य प्रयोग—चिरकारी प्रदाह और अवयवोंको दृढ़ता अर्थात् घनीभवन (Consolidation) के निवारणार्थ स्थानिक लेप, मर्दन आदि रक्तवाहिनी उत्तेजक क्रिया करनी चाहिये।

रक्तप्रणालीप्रसारक—नीलाथोथा, सोमल, सुराबीर्य, ईथर, क्लोरोफॉर्म, तार्पिन तैल, कार्बोलिक तेजाब, जमालगोटेका तैल, कपूर, फास्फरस, उष्णता (पुल्टिस, सेक, स्वेदन क्रिया, अग्निसेवन आदि), लोहभस्म, ताम्रभस्म इत्यादि रक्तप्रणालियोंको प्रसारित करती हैं, अतः इनको शास्त्रोंमें रक्तप्रणालीके लिए क्षोभोत्पादक (Vascular Irritants) कहते हैं।

जब इस प्रकार की औषधियोंका स्थानिक प्रयोग किया जाता है, तब रक्त प्रणालियोंका प्रसारण करके त्वचाको लाल बना देते हैं। ऐसे प्रयोगोंको चर्मदाहक (Rubefacients) संज्ञा दी है। इनसे अधिक प्रयोगोंको स्फोटकारक, मवादजनक, दाहप्रदायक, मत्युमता साधक आदि संज्ञा दी है। इन सबका विवेचन आगे नं० ९९ और १०० में किया जायगा।

(७६) निद्राप्रद ।

स्वप्नजनन—हिप्नॉटिक्स—सोपोरिफिक्स ।

Hypnotics—Soporifics

जो औषधियाँ निद्रा ला देवें, उनको निद्राप्रद कहते हैं । अफीम, अफीमसत्व, भांग, गांजा, खुरासानी, अजवायन, श्राप पीपलामूल, सर्पगन्धा, कस्तूरी, ब्राह्मी, शंखाहूली, सहदेवी, धतूरा, भैंसका दूध, मक्खन, घी आदि ।

निद्राकी उत्पत्ति प्रकार—

१ मस्तिष्कके रक्त संचालनका ह्रास होने पर निद्रा उत्पन्न होती है । यह कार्य हृदयकी क्रियाकी स्थिरता सम्पादन करने अथवा रक्तको अन्यत्र प्रेरित करनेसे होता है ।

२ मस्तिष्ककी क्रियाका ह्रास करानेसे निद्रा आ जाती है ।

अन्यत्र स्थानकी शिरा प्रसारित होने पर मस्तिष्कमेंसे रक्तका परिमाण न्यून हो जाता है । शरीरमें कृशता और रक्त संचालनमें दुर्बलता आने पर तथा अधिक काल तक खड़े रहने या बैठे रहने पर तन्द्रा उपस्थित होती है । परन्तु शय्यामें शयन करने पर मस्तिष्ककी रक्तवाहिनियाँ क्षीण होनेसे, उनमें रक्त अधिक परिमाणमें संचारित हो जाता है इस हेतुसे थोड़े ही समयमें तन्द्रा-निद्रा दूर हो जाती है । ऐसी अवस्थामें यदि मस्तिष्कको ऊँचे सिरहाने (तकिये) पर रखकर शयन कराया जाय तो निद्रा आ जाती है । ऐसे रोगग्रस्त व्यक्तियोंको हृदय और रक्तवाहिनी पौष्टिक लोह घटित औषधि या कुचिला आदि देनेसे शान्त निद्रा आ जाती है ।

अनेक बार उदर पर रबी पुल्टिस (रोटी) बांधनेसे या शीतल जलमें फलालेन भिगो उदर पर रख उस पर दोहरा (दो तह करके) फलालेन बाँध देनेसे भी निद्रा आ जाती है । एवं उष्ण आहार, उष्ण जलपान, उष्ण चाय, उष्ण दूध आदि भी मस्तिष्कमेंसे रक्त नीचे गमन कराकर निद्रा ला देते हैं ।

परन्तु हृद्रोग, हृदयकी निर्बलता और वातवहा नाड़ियोंकी उग्रता होने पर गरम चाय, गरम दूध आदि पदार्थोंसे वे नसे वातवहा नाड़ियोंके केन्द्रस्थानमें उत्तेजना पहुँच कर निद्राका नाश हो जाता है । ऐसे रोगियोंके लिये शीतल जल, धारोष्ण दूध या गरम करके शीतल किया हुआ दूध, सात्विक ताजा भोजन, ये सब हितकारक हैं । तमाखू, चाय, सूर्यके तापसे भ्रमण, अग्नि सेवन, ये सब हानिकर हैं ।

ज्वर रोगमें निद्रानाश होने पर देह पर आर्द्र वस्त्र आच्छादित करनेसे लाभ हो जाता है ।

निद्रानाश होने पर यदि दोनों पैरोंको गरम जलसे सेक कर या सारे शरीरको शीतल जलसे मदन कर फिर अच्छी तरह पोंछकर शयन कराया जाय, तो सत्वर निद्रा आ जाती है।

वेदनाजन्य निद्रानाश होने पर अफीम और अफीमसत्व अमोघ औषधि हैं। इन औषधियोंसे मस्तिष्ककी क्रिया क्षीण होती और वेदना भी निवारित होती है।

इन निद्राप्रद औषधियोंके अतिरिक्त मोहजनक औषधियोंके सेवनसे भी निद्रा आ जाती है। इसका विवेचन आगे नं० ७७ में किया जायगा।

निद्राका सम्बन्ध कन्दाधरिक भाग (Hypothalmu) और स्वतन्त्र नाडी-संस्था (Autonomic nervous system) के साथ गुप्त भावसे सम्बद्ध है। इस हेतुसे मस्तिष्क प्रदाह (Encephalitis Lethargica) में विकृति अनुरूप निद्रा अधिक आती या बिल्कुल नहीं आती है।

शान्तनिद्रा कालमें परिस्पन्दजनकशिराओंकी दृढ़ता बढ़ जाती है। जिससे मन्द नाडी, कनीनिकाका आकुंचन तथा श्वासनलिकाका संकोच होता है। पाचन रस और अन्त्रकुण्डलीकी गति दृढ़ बनती हैं। निद्रा दूर होने पर मस्तिष्क, वातनाडियों, मांसपेशियों आदि की थकावट दूर होती है तथा मन प्रसन्न होता है।

सूचना—(१) यदि अन्त्र आदि अवयवोंमें मल, वायु, आम आदि संग्रहीत होनेसे निद्रानाश हुआ हो, तो उसे दूर करना चाहिए। इस तरह मांस पेशियों, अस्थि, संधिस्थानोंमें दबाव बढ़ा हो तो उसे कम कराना चाहिये।

(२) अनेक रोगी निद्रा लानेके लिए पाश्चात्य तीव्र औषधियाँ—ट्रायोनल (Trional), टेट्रोनल (Tetronal) पेरल्डीहाइड (Paraldehyde), बारबिटोनम (Barbitonum) आदिका बार बार सेवन करते रहते हैं। प्रारम्भमें तो ये औषधियाँ सत्वर लाभ पहुँचाती हैं। फिर अधिक मात्रामें सेवन करने पर भी निद्रा नहीं आती; और हृदय भी निर्बल बन जाता है। अतः ऐसी मादक औषधियोंका उपयोग न किया जाय, तो अच्छा।

(७७) मादक।

मदकारी-मद्य-मलापोत्पादक-डिलिरियण्ट्स-डिलिरिफेशिअण्ट्स।

Deliriants—Delirifacients

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम्॥

जो तमोगुणप्रधान द्रव्य बुद्धि (स्मरण विचार और विवेक शक्ति) का लोप करती है, उसे मादक कहते हैं। जैसे शराब आदि।

चरक संहिताकारने लिखा है कि, मद हृदयमें प्रवेश कर (मस्तिष्कमें पहुंच कर) अपने १० गुणों (लघु, उष्ण तीक्ष्ण, सूक्ष्म अम्ल, व्यवायी, आशुग, रूक्ष, विकाशी और विशद) से हृदयाश्रित (मस्तिष्क स्थित) ओजके १० गुणों (गुरु शीत, मृदु, श्लक्ष्ण बहल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध) को विक्षुब्ध कर ओजाश्रित सत्त्व (अंतःकरणकी बुद्धि वृत्ति) में विकार उत्पन्न कर देती है। फिर थोड़े ही समयमें मत्तता आ जाती है।

मद्यका अल्पाधिक मात्रामें सेवन करने पर प्रारम्भमें आनन्द और प्रसन्नता उपस्थित होती है। कामोत्तेजना होती है तथा मानस संस्कारके अनुरूप नानाप्रकारके विभिन्नविभिन्न विकृत विचार उत्पन्न होते हैं। फिर मानसकेन्द्रमें शिथिलता आकर मोहनिद्रा (Coma) की प्राप्ति होती है। इस मदज मानस विकृतिको मद संज्ञा दी है।

मध्यम मद होनेपर वारंवार स्मृति (विवेक ज्ञान) का ह्रास, वारंवार गानलाप कभी वाणी अस्पष्ट, कभी बोलते बोलते रुक जाना कभी वचन युक्तियुक्त और कभी असम्बद्ध प्रलाप तथा चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें मद होने पर रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्योंके लिये ऐसा कोई अशुभ कार्य नहीं है, जो वह न कर सके अर्थात् निन्द्य और अनुचित कार्योंमेंसे जिन जिनके संस्कार उद्भूत होते हैं, वे कर ही डालते हैं।

फिर जब तृतीयावस्थाकी प्राप्ति होती है तब शराबी टूटे हुए लकड़ीकी तरह निश्चेष्ट होकर गिर पड़ता है और जीवित होते हुए भी मृतके सदृश बन जाता है। उसे संसार-व्यवहार, सुख-दुःख, हित अहित, या अच्छे-बुरेका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस अवस्थाको मोहजननावस्था (Narcosis) कहते हैं। इस अवस्थाकी प्राप्तिके पश्चात् थोड़े ही समयमें निद्रा (Sleep) या बेहोशी (Coma) की प्राप्ति हो जाती है।

इन्द्रियक्रिया विज्ञानकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो जब मादक औषधियोंका सेवन करने पर मस्तिष्कमें रक्तसंचालन अधिक हो जाता है, तब मनको दमन करनेकी शक्तिका ह्रास होता है। मनोवृत्ति बुद्धिकी अधीनता और सामाजिक मर्यादाका त्यागकर स्वेच्छाचारी बन जाती है। अधिक विकृति होने पर विचार शक्ति और स्मरण शक्तिका लोप हो जाता है किसी किसीको मानसिक विकृति होनेके पहिले ऐच्छिक क्रियामें भी विलक्षणता आ जाती है। जिससे वाक्योच्चारणमें अवरोध और चलनेमें भी विचित्रता प्रतीत होती है। क्रमशः सुषुम्णाकी प्रत्यावर्तन क्रियाका ह्रास होता जाता है। और अन्तमें श्वासोच्छ्वास क्रिया करने वाली वातवहा नाड़ियोंके मूल (सुषुम्णाशीर्ष केन्द्र) में पक्षाघात उपस्थित होता है।

मादक औषधियाँ—शराब, ताड़ी, अफीम, भांग, गांजा, चरस, सूचीबूटी खुरासानी अजवायन, धतूरा, ईथर, क्लोरोफार्म आदि।

शराबसे प्रारम्भमें मस्तिष्ककी रक्तसंचालन क्रिया उत्तेजित होती है। फिर मस्तिष्कके भिन्न भिन्न केन्द्र अवसन्न होने लगते हैं। ताड़ीमें भी शराबके सदृश ही गुण प्रतीत होते हैं।

भांग और गांजे द्वारा रक्तसंचालनमें विशेष उत्तेजना नहीं होती। ये केवल मस्तिष्कके भिन्न-भिन्न अंशमें परस्पर क्रियाका परिवर्तन कराकर कार्य करते हैं।

खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी और धतूरा आदिसे प्रबल प्रलाप उपस्थित होता है। रोगीका मन अति अस्थिर हो जाता है, और वह पागल या उन्मत्त-सा बन जाता है।

संज्ञा (चेतना शक्ति) का लोप कराने वाले ईथर और क्लोरोफार्मकी क्रिया भी अनेक अंशमें उग्र शराबके सदृश होती है।

विशेषतः अधिक परिश्रमजनित थकावट दूर करने और तीव्र ज्वरोंमें प्रलाप आदिके दमनके लिये उपर्युक्त मादक औषधियोंका सेवन कराया जाता है, एवं मस्तिष्क, हृदय, वृक्क, फुफ्फुस आदि स्थानोंकी वेदना और मानसिक चिन्ताकी प्रतीति न होनेके लिये भी इन औषधियोंका उपयोग किया जाता है।

(७८) मोहजनन।

नार्कोटिक्स—Narcotics

जो द्रव्य बेहोशी (Unconsciousness) ला देवे, उसे मोहजनन कहते हैं। इस द्रव्यकी क्रियाके प्रारम्भमें कुछ अंशमें मादक असर पहुँचता है। यह मोहजननावस्था एक प्रकारकी इन्द्रियोंकी अवस्था है, जिसमें जीवित सत्त्वाके तन्तु या घटकोंकी सामान्य प्रतिक्रिया अथवा मानसिक दृढ़ताका ह्रास या लोप कुछ कालके लिये होता है। यह बेहोशी सर्वदा कुछ अंशमें प्रतिफलित दमन युक्त होती है।

यद्यपि निद्राजनन औषधिकी मात्रा अधिक होने पर गम्भीर बेहोशी आनेके ढंगसे मोहजननावस्थाके समान असर प्रतीत होता है तथापि इन दोनोंमें अन्तर है। मोहजनन द्रव्यसे प्रारम्भमें जैसा मद आता है, वैसा असर निद्राजनन औषधिसे नहीं होता।

यदि मोहजनन द्रव्यका सेवन सूक्ष्म मात्रामें कराया जाय, तो निस्तब्धता (Quietness) आती है; किन्तु अधिक मात्रामें तन्द्रा (Drowsiness), निद्रा, आंशिक बेहोशी (Stupor) और अन्तमें पूर्ण बेहोशी प्राप्त होती है। इस ढंगसे मोहजनन द्रव्य निद्रा लाने या शस्त्रचिकित्सामें संज्ञालोप करानेके लिये प्रयुक्त होते हैं।

जबतक द्रव्यका पर्याप्त केन्द्रीकरण रक्तके भीतर रहता है, तबतक मोहजनन असर दृढ़ रहता है, कोई भी मोहजनन द्रव्य मस्तिष्क घटकपर सीधा असर नहीं पहुँचा सकता। यदि मोहजनन द्रव्य उड्डयनशील है, तो उसका शोषण त्वरित होता है और फुफ्फुसप्रवरण द्वारा त्याग भी जल्दी होता है। इसका असर अस्थिर होता है। दूसरे प्रकारके मोहजनन द्रव्य, जो उड्डयनशील नहीं है, उसका त्याग केवल वृक्क-मार्गसे मर्यादित विस्तारमें होता है, जिससे उसका असर अधिक समयतक टिकता है।

औषधियां—अफीम, गांजा, शराब आदि। अफीमका गुणधर्म पहिले नं० ४ पावशलनमें लिखा है।

(७६) संज्ञाहर।

संमोहन—चेतनाहर—अनेस्थेटिक्स—Anaesthetics.

जो द्रव्य मस्तिष्क और सुषुम्णाशीर्षमें स्थित वातनाडी केन्द्रों पर अथवा वात-नाडियोंके अन्त्य भागपर क्रिया करके बेहोशी ला देता है, सुख-दुःख और स्पर्शज्ञानका लोप उत्पन्न कराते हैं, उन्हें संज्ञाहर कहते हैं। ये द्रव्य उड्डयनशील होते हैं इस वर्गमें मादक द्रव्य—शराब, अफीम, गांजा आदिका अन्तर्भाव नहीं होता। इस प्रकारकी औषधियोंमें ३ वर्ग हैं। १ सार्वांगिक (General) २. स्थानिक (Local) और ३ प्रान्तीक (Regional) चेतनाहर।

सार्वांगिक चेतनाहर औषधियों द्वारा मस्तिष्क और वातवहानाडियोंके मूलमें अवसन्नता आकर समस्त शरीरकी चेतनाका लोप हो जाता है। समस्त अंग संमोहित होनेपर मस्तिष्कमें बधिरता आ जाती है, फिर हृदयक्रिया, श्वसन आदि मूल क्रियाओंको छोड़ शेष सब संचालन क्रिया और मानस व्यापारको मस्तिष्कसे संचालना नहीं मिलती अथवा ज्ञान, संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचने पर भी उसका परिणाम मस्तिष्क पर नहीं होता।

स्थान विशेषमें औषध प्रयोग करनेपर स्थानिक स्पर्शज्ञानका लोप होता है। इससे बेहोशी नहीं आती। वेदनामात्र और स्पर्श संवेदना मस्तिष्क तक नहीं पहुँचती तथा उनका बोध नहीं होता।

किसी बड़ी नाडीके आसपास बधिरता लानेवाली औषधिका अन्तःक्षेपण द्वारा नाडीके विविधित भागकी वेदनाका लोप कराया जाता है। फिर चेष्टावाही (Motor) नाडियोंका समाचार वहांसे मस्तिष्कमें नहीं पहुँच सकता।

इस संज्ञाहर द्रव्योंके उपयोग, क्रियाविधि आदिका विचार कक्ष्य परिचर्या प्रकरण ५ के अन्तिम भागमें किया है। स्पर्श और वेदनाका अनुभव होनेके लिये मस्तिष्क केन्द्र संज्ञावाही नाडियां और सुषुम्णा, तीनोंकी विशेष अवस्थाकी आवश्यकता है। ये सब यान्य क्रियाशील रहनेपर संज्ञावाही वातवहा नाडियोंकी मूलपर संज्ञाहर और

थियोंकी क्रिया समान भावसे होती है। फिर परिणाममें वेदना, कष्ट, स्पर्शानुभव और प्रत्यावर्तन क्रिया, सबका लोप हो जाता है।

स्थानिक चेतनाहर औषधियाँ (Local Anaesthetics)—अधिक शीतलता, बर्फ, ईथर, कोकीन, हाइड्रोक्लोरेट, तार्पिन तैल, जटामांसी, तगर, कार्बोलिक एसिड और तपाये हुए लोहा-पत्थर आदिका सेकआदि। क्लोरोफार्म भी इसी उद्देश्यसे व्यवहृत होता है।

ईथर द्वारा प्रयोग करनेपर शीतलताकी उत्पत्ति होकर सामान्य चिकित्सा करने पर वेदनाका अनुभव नहीं होता।

इन औषधियोंमें ईथर उत्तेजक चेतनाहर है। जल या वायुकी शीतलता, कोकीन और क्लोरोफार्म आदि अवसादक चेतनाहर हैं।

फोड़े पर कार्बोलिक एसिड लगानेसे शूलजन्य वेदना लोप हो जाती है।

स्थानिक स्पर्शहारक औषधियाँ चर्मसे सम्बन्ध वाली भावग्रहा नाड़ियोंकी अन्त शाखाको अवसन्न करती हैं। एवं कुछ अंशमें रक्तवाहिनियोंके और इतर विधानके ऊपर भी कार्य करके स्पर्श शक्तिका लोप कराती हैं। अत इनका कण्डू निवारणार्थ और वेदनाशमनार्थ व्यवहार किया जाता है। अति प्रबल वेदना और स्पर्शासहत्व अन्यत्रताके निवारणार्थ तथा सामान्य शस्त्रचिकित्साके निमित्त इन औषधियों द्वारा स्पर्शलोप कराया जाता है।

कचित् किसी स्थानमें रक्तका परिमाण अत्यधिक हो जानेपर संज्ञावाही नाड़ियोंके अन्त शिराओंमें उत्तेजना आ जाती है। जिससे उस स्थानमें स्पर्शासहत्व वेदना होती है, अर्थात् अंगुली लगानेसे पीड़ाकी वृद्धि होती है। जैसे दाह-शोथ (प्रदाह) होने पर उष्णताजनक औषधियोंका लेप किया जाय, तो उस स्थान पर स्पर्शासहत्व वेदना हो जाती है।

यदि वत्सनाग, वत्सनाग सत्व (Aconitine) या कलिहारीका रसमें सचार हो जाता है, तो जिह्वा, ओष्ठ, कण्ठ आदिमें झनझनाहट होने लगती है। ऐसे समय पर वेदनाके दमनार्थ स्थानिक स्पर्शहारक औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

अग्नि में लोहे, पत्थर आदिको तपाकर वेदना वाले भाग पर जल्दी-जल्दी फिरानेसे संज्ञावाही नाड़ियोंके अन्त भागमें अवसन्नता आकर कष्ट लोप हो जाता है।

सार्वाङ्गिक चेतनाहर औषधियाँ (General Anaesthetics)—संमोहिनी सुरा, क्लोरोफार्म, ईथर आदि। इनमेंसे सुरा पिलायी जाती है क्लोरोफार्म आदि सुँघाये जाते हैं। इस प्रकारकी औषधियोंके उपयोग द्वारा क्रमश चार अवस्था उत्पन्न की जाती है—१ उत्तेजनावस्था; २ मादक और वेदनानिवारणावस्था, ३ अचेतनावस्था, और ४ अवसन्नावस्था।

(१) उत्तेजनावस्था—प्रारम्भमें सबसे उत्तम बुद्धि–कल्पनाशक्ति उत्तेजित होता है। रोगीको अवर्णनीय विचार उत्पन्न होते हैं; विविध दृश्योंका अवलोकन करता है, एवं अनेक प्रकारके शब्द सुननेमें आते हैं। फिर अनियमित प्रलाप होने लगता है। इसी दशासे मस्तिष्कस्थ पट्ट (Cerebral Cortex) और इतर संचालनविधायक केन्द्र उत्तेजित होते हैं। जिससे रोगीकी मुखाकृति विचित्र हो जाती है; एवं अंगमें विकृति होती है। हाथ-पैर इधर उधर पटकने लगता है। इस समय पर संभवतः उच्चतर बुद्धि वृत्तिमें जो क्षणिक उत्तेजना आई है, वह स्थगित होती है।

इस अवस्थामें रक्तसंचालनकी वृद्धि होती है फिर क्रमशः द्वितीयावस्थामें मत्तता उपस्थित होती है। वातशूल आदि रोगोंमें वेदना और आक्षेपके निवारणार्थ इन सार्वांगिक चेतनाहर औषधियोंका स्वल्पमात्रामें उपयोग किया जाता है। पित्ताश्मरीजन्य शूल, वृक्कशूल, अन्त्रशूल आदिमें जबतक मुख्य औषधिकी उत्तेजक क्रिया समाप्त होकर मादक अवस्थाका आरम्भ न हो; तबतक क्लोरोफार्म आदि औषधियोंके प्रभावकी आवश्यकता है।

(२) मत्तावस्था—उक्त औषधियोंकी उत्तेजनावस्था उत्पन्न होनेकी अपेक्षा अधिक मात्रा देनेसे इस अवस्थाकी प्राप्ति होती है। इस अवस्थामें दर्शन शक्ति, श्रवण शक्ति और स्पर्श शक्तिका लोप हो जाता है; विवेक शक्ति बुद्धिकी अधीनताका त्याग करती है। रोगीको ऐसा भास होता है कि, मस्तिष्क खाली या हलका है। सहज ही बिना विचार हँसता-कूदता है; और स्वच्छन्दी बन कर, मर्यादा रहित बर्ताव करने लगता है तथापि प्रत्यावर्त्तन क्रिया नियमित रूपसे हो सकती है।

औषधसेवनकी अधिकतासे संचालन विधायक केन्द्र उत्तेजित होता है; और इसी हेतुसे हृदय क्रिया और श्वासोच्छ्वास क्रियामें भी वृद्धि हो जाती है। नाड़ीके स्पन्दन, श्वाससंख्या और रक्तका दबाव, ये सब बढ़ जाते हैं तथा मुख लाल हो जाता है। इसके पश्चात् उत्तेजनाके अनुरूप सब इन्द्रियोंकी क्रिया क्रमशः अवसादित होने लगती है।

क्वचित् अतिशय उत्तेजनाके हेतुसे उग्र प्रलाप उपस्थित होता है परन्तु यह अवस्था थोड़े ही समयमें अचेतनावस्थामें परिवर्तित हो जाती है। प्रसवावस्थाकी वेदनाका ह्रास करानेके लिये इस द्वितीयावस्था पर्यन्त इन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

(३) अचेतनावस्था—इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर प्रारम्भमें मस्तिष्कका उच्चतर भाग अवसन्न होता है। तेज प्रकाश, उग्र शब्द और शरीर पर प्रबल आघातका भी रोगीको भान नहीं होता। रोगी बिलकुल निश्चल हो जाता है मांसपेशियां पूर्णांशमें शिथिल हो जाती हैं। श्वसन क्रिया गम्भीर और नियमित होती रहती है; तथा प्रतिफलित क्रिया लोप हो जाती है।

अत: रोगीको किसी भी प्रकारकी वेदनाका अनुभव नहीं हो सकता। नाकमें तृण आने पर छींक आना, कण्ठमें कुछ आने पर खांसी आना, हिक्का आना, इन सबका लोप हो जाता है। पैरोंके तलमें खुजलाने पर भी पैर नहीं सरकाता, अक्षि झिल्लीको स्पर्श करने पर भी नेत्रपलक बन्द नहीं करता। एवं कनीनिका कुञ्चित होती है वह तीव्रप्रकाश पड़नेपर भी वैसीकी वैसी ही रहती है।

सावधानतापूर्वक रोगीको इस अवस्थामें कुछ समय तक रक्खा जाता है। औषध प्रयोग इसकी अपेक्षा भी अधिक मात्रामें होने पर चतुर्थी अवस्था अवसन्नताकी प्राप्ति हो जाती है।

धनुर्वात, श्वानविष प्रकोप आदि रोगोंमें मांसपेशियोंके सङ्कोचको शिथिल करने और वेदनाका ह्रास करानेके लिये इस तृतीयावस्थाकी प्राप्ति करायी जाती है। पित्तनलिकामें अश्मरीजन्य शूल, वृक्कशूल और प्रसवकालमें शस्त्रचिकित्साकी पीड़ाका भान न होनेके लिये इस अवस्थामें रोगीको रक्खा जाता है। एवं उतरी हुई हड्डीको यथास्थान स्थापित करने, टूटी हुई हड्डीको जोड़ने, अन्त्रावरणका दूर करने तथा उदरमें रहे हुए यन्त्र, अन्तरविद्रधि और इतर सशासहस्व स्थानकी परीक्षा करने आदि हेतुओंसे भी इस अवस्थाकी प्राप्ति कराई जाती है।

(४) अवसन्नावस्था—यह अतियोग (Overdose) युक्त अवस्था है। यदि किसी रोगीको इस अवसन्नावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है, तो शरीरको सब अनैच्छिक मांसपेशियोंका बल और प्रतिफलित उत्तेजनाशीलताका लोप हो जाता है। इस हेतुसे लघु अन्त्र और मूत्राशयअवरोधक मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं। मस्तिष्क और सुषुम्नामें रहा हुआ श्वासोच्छ्वास क्रियाका केन्द्र स्थान दोनों पक्षाघात ग्रसित हो जाते हैं। फिर श्वासोच्छ्वास खण्डित और उथला तथा नाड़ी अतिशय क्षीण, मन्दगामी और अनियमित होती है। एवं हृत्स्पन्दन भी अतिक्षीण हो जाता है अथवा क्वचित् बन्द हो जाता है।

सूचना—इन औषधियोंके प्रयोगोंमें निम्नानुसार विपत्तियां उपस्थित हो जाती हैं। अत रोगीकी शारीरिक शक्तिका विचार कर सम्हालपूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

१ मात्रा अधिक हो जानेपर मुखमण्डल नीला होता है। ऐसे समय पर श्वासोच्छ्वास क्रियाका अवलम्बन किया जाता है।

२ क्लोरोफार्मके साथ यथोचित वायु मिश्रित न होनेपर हृदयक्रियाका लोप हो जाता है। ऐसा होनेपर मस्तिष्कसे पैर ऊँचा रहे उस तरह रोगीको शयन करा अमिल नाइट्रेटकी कुछ बूँद वस्त्र या कागज पर डाल श्वास द्वारा फुफ्फुसोंमें प्रवेशित करानी चाहिये।

३ हृदरोग चिकित्सामें क्वचित् क्लोरोफार्म जनित मत्तता या उसके आघात जन्य अवसाद (मूर्च्छा) की प्राप्ति होकर हृदयक्रिया लोप हो जाती है।

४ औषध प्रयोगकालमें वमन न होनेके लिये अस्त्रचिकित्साके कुछ घण्टे पहिलेसे रोगीको कुछ भी भोजन नहीं देना चाहिये और अन्त्रको रिक्त कर लेना चाहिये।

५. सशाहर प्रयोगके रूपसे अस्त्रचिकित्साके पश्चात् उबाक, सामान्यवान्ति, क्लोरोफार्मके विषसे वमन (Delayed Chloroform Poisoning), वेदना व्याकुलता (Restlessness), श्वसनमार्गमें प्रदाह, श्वास संस्थामें दुर्गन्ध, रक्त, पूय आदिका आकर्षण, महाप्राचीराके निम्न भागमें आघात होकर वेदनायुक्त और अगम्भीर श्वसन, अनियमित श्वसन, जमे हुए रक्तका फुफ्फुसभागमें प्रवेश होकर उस स्थानकी रक्ताभिसरणका निरोध होना, हृदयपेशीकी निर्बलताके हेतुसे फुफ्फुस शोथ होना, अफारा, आमाशयका प्रसारण आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इनकी प्राप्ति न होनेके लिये पहिलेसे सम्हाल रखना चाहिये।

(८०) निद्राहर।

निद्रानाशक—एण्टहिप्नाटिक्स—एण्टिलेथार्जिक्स।

Anthypnotics—Antilethargics

जो द्रव्य अस्वाभाविक निद्रा और अति निद्रा (तन्द्रा) का दमन करे, उसे निद्राहर कहते हैं।

औषधियाँ—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिन्दूर आदि पौष्टिक औषधियाँ, बादामका तैल, मक्खन, मृदुविरेचन, कुचिला आदि हृदयोत्तेजक औषधियाँ, चाय, कॉफी, गरम जल, विशुद्ध वायु तथा मानसिक विश्रान्ति आदि।

अति निद्रा तन्द्रा और निद्राकी अस्वाभाविकताके अवरोधार्थ कारणके अनुरूप भिन्न-भिन्न औषधियाँ दी जाती हैं। वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलतामें अभ्रक, लोह और च्यवनप्राशावलेह आदि पौष्टिक औषधियाँ, बादामका तैल, एवं मानसिक विश्रान्ति आदि हितकर हैं।

कोष्ठबद्धताजनित विकारमें मोटे आटेकी रोटी, लघु पथ्य भोजन, व्यायाम, मृदुविरेचन, और विशुद्ध वायुका सेवन करना चाहिये।

हृदयकी निर्बलतामें हृदयपौष्टिक औषधियाँ—सुवर्ण, पूर्णचन्द्रोदय, रससिन्दूर, अभ्रक, कुचिला आदि उपकारक हैं।

अफीम, गाँजा आदिके विषप्रकोप निद्रा या तन्द्रामें विषघ्न औषधियाँ और कॉफी आदि लाभदायक हैं।

(८१) व्यवायी।

पूर्वं व्याप्याखिलं काय ततः पाकञ्च गच्छति
व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनश्चाहिसमुद्भवम् ॥

जो द्रव्य अपक्वावस्थामें ही देहमें व्याप्त होते हैं, फिर धात्वग्नि द्वारा पचन होते हैं, उनको व्यवायी कहते हैं। जैसे भांग, अफीम शराब वत्सनाग आदि विष।

आशुकारी, व्यवायी, विकाशी आदि गुण-द्रव्य सत्वर रक्तमें शोषित होते हैं और रक्ताभिसरण द्वारा समस्त अंगोंमें फैल जाते हैं। शराब विष आदि द्रव्य रक्तमें प्रवेश कर फिर सब यन्त्रोंमें पहुँच जाते हैं और अनेक यन्त्र और इन्द्रियोंपर अपना प्रभाव दर्शाते हैं। विशेषतः इन व्यवायी औषधियोंका चिकित्साप्रयोग वेदनाशमन और उत्तेजनार्थ किया जाता है। इन दोनों गुणोंकी दृष्टिसे विवेचन पहिले वेदना स्थापन नं० ४५ और उत्तेजक नं० ७५ में किया है। अनेक बार दुःख और शोक-चिन्ताकी निवृत्तिके अर्थ मोहजनन असर उत्पन्न करानेके लिये भांग, गांजा, अफीम, शराब आदिका सेवन कराया जाता है। इसका विवेचन न० ७८ में किया है। इनमेंसे अनेक औषधियोंका अधिक मात्रामें सेवन करने पर विषप्रकोपके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसका विवेचन पहिले नं० १८ विषवर्गमें किया है।

भांगको भावप्रकाशकारने कफहर, तिक्त, ग्राही, आमपाचक, लघु तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक, मादक, मोहवर्द्धक, वाग्वीवर्द्धक और अग्निप्रदीपक कहा है। डाक्टरी मतानुसार भांग और गांजा मस्तिष्क उत्तेजक, मादक, निद्राप्रद, वेदनानिवारक, आक्षेपनिवारक कामोद्दीपक और गर्भाशय संकोचक है।

भांगकी अपेक्षा गांजेमें अधिक उग्रता है। ये आक्षेपक वात (पागल कुत्तेके विषजनित आक्षेप और वेदना), संग्रहणी, अतिसार, आमाशयव्रणजन्य पीड़ा, काली खांसी, मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्राव, मासिकधर्ममें वेदना (पीडितार्तव), निद्रानाश, शिरदर्द आशुकारी और चिरकारी शुक्रमेदाह, विषमज्वर, भूतोन्माद (Catalepsy) और वातरक्त आदि रोगोंमें प्रयोजित होते हैं। मदात्यय रोगमें ये विलक्षण उपकार दर्शाते हैं। मस्तिष्क कोमल हो जाना (Softening), इस रोगमें रात्रिको प्रलाप होता है। यह प्रलाप भांग या गांजाके सेवनसे सत्वर शमन हो जाता है। अर्शकी पीड़ा शमन करनेके लिये भांगका धुआं दिया जाता है और भांग की पुल्टिस करके बांधी जाती है।

भांग और गांजेका औषध रूपसे सदुपयोग किया जाय, तो ये दिव्य औषधियां हैं परन्तु दुरुपयोग करने एवं व्यसन करके बद्ध होने पर विविध प्रकारसे शारीरिक और मानसिक हानियां भी पहुँचाते हैं।

(८७) विकाशी।

एण्टिस्पेज्मोडिक्स—Antispasmodics

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत्।
विश्लिष्योजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवा ॥

जो द्रव्य संधिस्थानके बन्धनोंको शिथिल करता है तथा धातुओंमेंसे ओज (धातुसत्व) को पृथक करता है, उसको विकाशी कहते हैं। जैसे सुपारी और, कोदों धान्य।

विकाशीके लिये सुश्रुत संहिताकारने लिखा है कि, "विकाशी विकसन्नेवं धातून् बन्धान् विमोक्षयेत्" जो द्रव्य अपक्वावस्थामें ही सारे शरीरमें फैलकर धातुओं (धातुओं) को शिथिल करता है, उसे विकाशी कहते हैं। व्यवायी द्रव्य भी पचन होनेके पहिले देहमें सर्वत्र फैल जाता है, किन्तु यह सन्धिबन्ध और धातुओंको शिथिल नहीं करता, यह दोनोंमें अन्तर है।

इस वर्गके द्रव्योंकी क्रिया अनेक प्रकारसे होती है। इस दृष्टिसे इसके अनेक विभाग होते हैं। इनका वर्णन नं० २ वातावेष्टम्न प्रकरणमें दर्शाया है।

औषधियाँ—सुपारी, कोदों धान्य, वच्छनाग, तमाखू, पद्मकाष्ठ, कस्तूरी, जटामांसी, ब्राह्मी, प्याज, सोमल, कूठ, गांजा, सोम, सुरीबूटी, धतूरा, खुरासानी अजवायन लौंग, इलायची, तगर, हींग, अफीम, कपूर आदि उदरवातहर औषधियां।

जब आमवात, वातरक्त, उपदंश आदि व्याधिजनित सन्धिवात, अम्लपित्त अधिक प्रवास, व्यायाम, अम्ल विपाकवाले पदार्थोंका अधिक सेवन आदि कारणोंसे सन्धि स्थानोंमें क्षार संचित होकर मांसपेशियां आक्षेप पीड़ित होकर या सन्धि स्थानोंकी नाड़ियां खिंचकर वेदना होती हो, तब सन्धिबन्धनोंमें प्रवेश करनेवाली विकाशी औषधि ही लाभ पहुँचा सकती है।

सूचना—शराब, गांजा, धतूरा आदि विकाशी, उष्णवीर्य और तीक्ष्ण औषधियोंके सेवनसे मस्तिष्क विकृति भी हो जाती है अतः इन वस्तुओंका उपयोग ...में ही करना चाहिये।

(८८) प्रमाथी।

स्रोतांसि दोषलिप्तानि प्रमथ्य विवृणोति यत्।
प्रविश्य सौक्ष्म्यात् तैक्ष्ण्याच्च तत् प्रमाथीति संज्ञितम् ॥
निज वीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात् तद्यथा मरिचं वचा ॥

जो द्रव्य अपने सूक्ष्म, तीक्ष्ण और व्यापक गुणके हेतुसे स्रोतसोंमें प्रवेश कर चिपके हुए मलका मंथन कर पृथक् कर देता है, उसे प्रमाथी संज्ञा दी है।

जो द्रव्य अपने वीर्यसे (प्रभावसे) रस-रक्तादि वाहिनियों द्वारा तथा कर्ण मुख, नासिका, नेत्र आदि मार्गसे संगृहीत मलको निकाल देता है, उसे प्रमाथी कहते हैं, जैसे कालीमिर्च, वच आदि।

औषधियाँ—कालीमिर्च, वच, अकरकरा, पीपल, पीपलामूल, नीलगिरी तैल, सार्पिन तैल, पीपरमेण्टका तैल, शराब, पारद, सोमल, हरताल आदि।

उपदंश आदि रोगजन्य विकृति और दूषित पारद आदि औषधजनित विष प्रक्षेप या कीटाणु-कृमि आदि हेतुसे सूक्ष्म-सूक्ष्म नाड़ियोंमें मल संग्रहीत हो जाता है। तब उसे निकालनेके लिये प्रमाथी गुणयुक्त औषधि दी जाती है।

वच—चिपके हुए कफदोषको उखाड़कर बाहर निकालता है। सोंठ, मिर्च, पीपल आदि दीपन औषधियाँ दोषोंको जलाने वाली हैं, और वे शहद-गुड़ आदिके योगसे दोषको बाहर भी निकालती हैं।

जवाखार, केलेका क्षार आदि औषध दोषोंके जलाने तथा प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालनेमें सहायक होती हैं। इन क्षारोंमें छेदन (कफघ्न) गुण भी रहता है। इस गुणका वर्णन नं० १० में किया है।

(८४) अभिष्यन्दी।

> पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्य रुद्ध्वा रसवहा शिरा।
> धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि॥

जो द्रव्य पिच्छिल और गुरु गुणयुक्त होनेसे (या गुरु पाकी होनेसे) रस वाहिनियोंके मार्गको रोककर शरीरमें भारीपन ला देवे उसको अभिष्यन्दी कहते हैं, जैसे दही।

अभिष्यन्दी द्रव्य बहुधा क्लेदकी प्राप्ति कराता है। अतः इसे कफवर्धक कह सकेंगे। कफ प्रकृतिवालोंको तथा कफ प्रकोपवालोंको इसका सेवन कम करना चाहिये।

औषधियाँ - खट्टा दही, कटहल, केला, मत्स्य, आलू, नये चावलोंकी विलेपी, पिट्ठीके पदार्थ, खोवा, गोंदका प्रवाही, तालमखाने, इसबगोल, बिहदाना आदि चिपचिपी औषधियोंका लुआब, पायस (खीर) आदि स्निग्ध भोजन।

विषप्रकोप, काँच आदिके सेवनसे अन्त्र आदिमें रक्तस्राव, शराब, सिरका या अन्य अन्तर्दाह, पित्तप्रकोप और भस्मकरोग आदि विकारोंमें अभिष्यन्दी गुणयुक्त औषधियोंका सेवन कराया जाता है।

डाक्टरी मतानुसार विषप्रकोपके संरक्षणार्थ जो औषधि सेवन करायी जाती है, उसे यान्त्रिक विषशामक (Mechanical Antidotes) कहते हैं। इस श्रेणीकी औषधियोंका विवेचन पहिले नं० १९ विषशामक प्रकरणमें किया है।

(८४) वर्ण्य।

जो द्रव्य वर्णकर अर्थात् शरीरके रंगको सुधारने वाले हों, उनको वर्ण्य और वर्णप्रसादन कहते हैं। अनेक रोगोंमें देहका रंग बिगड़ जाता है। तब इस वर्गकी ओषधियोंका सेवन कराया जाता है। सुश्रुत संहितामें लोध्रादि गण (वर्णन नं० ५० में) तथा एलादि गण (वर्णन नं० ३७ में) को वर्णप्रसादन लिखा है।

ओषधियाँ—सुवर्ण भस्म, बंग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, राजावर्त पिष्टी, हीरा आदि रत्नोंकी भस्म, रक्तचन्दन, नागकेशर, हल्दी, दमाल, पुन्नाग, खस, मुलहठी, मजीठ, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, दूब, शक्कर, लोध, बट वृक्षके अंकुर, मसूर, मधूक सार, गिलोयसत्व, जायफल, जावित्री, केशर इत्यादि तथा सोमल, हरताल, पारद, गंधक आदि कीटाणुनाशक।

सामान्यतः शीतप्रधान देशवासियोंकी त्वचा रक्ताभ-श्वेत, उष्ण प्रधान देश-वासियोंकी त्वचा कृष्ण तथा मध्यम देशवासियोंकी त्वचा गेहूँके रंग जैसी होती है। शीतल देशवासियोंकी त्वचा शीत अधिक सह सकती है और उष्ण देशवासियोंकी त्वचा उष्णता अधिक सह सकती है। दोनों देशवासियोंकी रक्तरंजनामें रंजन द्रव्यके परिमाणमें अन्तर रहता है। इस हेतुसे भी त्वचा गौर और श्याम भासती है।

त्वचाके रंगका आधार रक्त, रक्तस्थ रंजनद्रव्य पित्त और ओजपर स्थिर है। रक्तकी स्वस्थता या विकृति रंजन द्रव्य या पित्तकी न्यूनाधिकता तथा ओजकी स्थिति अनुरूप त्वचाके रंग और कान्तिमें अन्तर हो जाता है। सामान्यतः मुखमण्डल, नेत्र और नाखूनपरसे स्वाभाविकता और अस्वाभाविकताकी कल्पना हो जाती है। अधिक शीत लगनेपर त्वचा फट जाती और निस्तेज हो जाती है। एवं सूर्यका ताप अधिक लगनेपर त्वचा श्याम हो जाती है।

मधुर रसप्रधान भोजन और ओषधि (शतावरी सारिवा, विदारीकन्द, बालमखाना, मूसली, मुलहठी आदि) रसरक्त आदि धातुओंको पुष्ट करती हैं। इस हेतुसे त्वचाको भी पोषण मिल जाता है तथा ओजकी वृद्धि होती है। परिणाममें त्वचा सुन्दर भासती है। मन चिन्ता और शोक-संतप्त रहने पर मुखमण्डल निस्तेज हो जाता है। इसके विपरीत मन प्रफुल्लित रहनेपर त्वचाकी कान्ति बढ़ती है। कितनेही कषाय रसप्रधान, मधुर विपाकी, शीतवीर्य तथा रक्त और पित्तसंशोधक द्रव्य त्वचाका रंग सुधारते हैं। उदाहरणार्थ-कमलकंद, बड़के अंकुर केशर, जावित्री, लोध, हरीतकी, कपूर, चन्दन, खस आदि।

इस प्रकारकी ओषधियोंमें सार्वाङ्गिक और स्थानिक, ऐसे दो विभाग हैं। सार्वाङ्गिक प्रयोगार्थ ओषधि खाने या पीने और मर्दन करनेको दी जाती हैं; तथा स्थानिक प्रयोग रूपसे तैल, लेप, मलहम, उबटन (उद्वर्तन) आदिका उपभोग किया जाता है।

रक्तविकार, अनेक प्रकारके संक्रामक ज्वर, उपदंश, सुजाक, अम्लपित्त, पित्तप्रकोपजन्य अनेक व्याधियां, चर्मरोग आदि विकारोंमें सारे शरीरकी त्वचा मलिन श्याम हो जाती है। कितनेही रोगोंमें मदन करनेपर बाह्य त्वचाके टुकड़े टूट-टूट कर निकलने लगते हैं। मुखमुद्रा काली निस्तेज हो जाती है। ऐसे समयपर औषधका अन्तर्बाह्य दोनों प्रकारसे उपयोग किया जाता है। अन्तर प्रयोगार्थ बहुधा सुवर्ण भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द आदि शीतल और वर्ण्य कर या सोमल आदि कीटाणुहर औषधि तथा बाह्यप्रयोगार्थ रक्तचन्दन, खस, नेत्र बाला, मजीठ, कूठ, पद्मकाष्ठ आदि-आदि औषधियोंसे बने हुए सिद्ध तैलका उपयोग होता है। रक्तचन्दन, मसूर आदि औषधिका लेप और उद्वर्तन भी लाभदायक हैं। उद्वर्तनका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ ११३ ११४ में देखें।

शराबका अत्यधिक सेवन करने पर त्वचा काली हो गई हो, तो राजावर्त्त पिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक भस्म और प्रवालपिष्टी आदिका सेवन लाभदायक है। कुटकी, पुनर्नवा और गिलोयका क्वाथ अनुपान रूपसे दिया जाता है। एवं मालिश के लिये भी चन्दन आदि तैल साबुन और बेर, चमेली, नीम आदिके पत्तोंके जलका सिंचन (मदात्यय रोगीको), लाभदायक हैं।

शस्त्र आदिके घाव, व्रण, विद्रधि, सेवार, अग्नि आदिसे जल जाना, चर्म-रोग, मसूरिका आदि व्याधियोंके हेतुसे त्वचा विकृति हो जाने पर रक्तचन्दन, लोध आदि औषधियोंका लेप किया जाता है।

मुखकी कान्ति नष्ट हो जाने पर या तारुण्यपिटिका आदि रोग होने पर मुख मस्तक पर लेप, तैलमर्दन आदि प्रयोग किये जाते हैं। मुखलेपका वर्णन चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १२८ में देखें।

तैलाभ्यङ्गसे त्वचाका वर्ण सुन्दर बन जाता है, और त्वचाकी शुष्कता, कण्डू, वातविकार, मैल जमना आदि दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है।

सूचना—आमसह व्याधियां, कफवृद्धि, तरुण ज्वर, अपचन और संतर्पण जनित रोगोंमें तथा वमन, विरेचन और निरूहण बस्ति करने पर तैलमर्दन नहीं करना चाहिये।

प्रति दिन स्नान करनेसे देहका वर्ण उज्ज्वल बन जाता है अग्नि प्रदीप्त होती है मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है, कण्डू, मैल, प्रस्वेद, परिश्रम, आलस्य, तृषा, दाह, चर्मरोग और रक्तविकारका नाश होता है।

परन्तु स्नान कैसे करना चाहिये, कब करना चाहिये, कौन अधिकारी, कौन अनधिकारी, स्नानके पहिले कर्तव्य, स्नानके पश्चात् कर्तव्य, इन सब बातोंको भली-भांति समझ कर स्नान करनेसे पूरा लाभ मिल सकता है। इस विषयका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ ११० से ११२ तक किया गया है।

(८६) कण्ठ्य ।

जो द्रव्य कण्ठस्थ विकृतिको दूर कर उस स्थानको सबल बनावे और स्वरको सुधारे उसे कण्ठ्य कहते हैं । कण्ठ (स्वरयन्त्र) श्वासवाहिनीके ऊपर है। यह श्वसन संस्थाका अवयव होनेसे कफ धातुका स्थान माना जाता है, उस स्थान पर कार्य करनेवाली औषधियां विशेषतः कफघ्न होती हैं। इनके अतिरिक्त स्वर सुधारक कुछ औषधियां शीतवीर्य, पित्तप्रकोपहर और कफधातु रक्षक होती हैं।

कण्ठ्य औषधियाँ—चरक संहितामें कण्ठ्य कषायवर्गमें सारिवा, ईखकी जड़, मुलहठी पीपल, मुनक्का, विदारीकन्द, महानिम्ब, हंसराज, बड़ी कटेली और छोटी कटेली ये १० औषधियां कही हैं।

इनके अतिरिक्त औषधियाँ—अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, प्रवाल पिष्टी, कुलिंजन, अदरख, चमेलीके पत्ते, चिरमीके पत्ते, कत्था, मिश्री, सौंफ, लौंग इलायची, दूध, मक्खन, गोघृत, शहद, यासा, बहेड़ा आदि।

प्रतिश्यायित कफनि स्सारक औषधियां, जिनको मुखमें रखकर रस चूसा जाता है उनमें भी कण्ठ्य गुण रहता है।

आवाज विकृति वातप्रकोप, पित्तप्रकोप, कफप्रकोप आदि अनेक कारणोंसे होती है। यदि अधिक देरतक बोलने या बड़ी आवाजसे बोलनेके हेतुसे उदान वायु प्रकुपित होकर आवाज बैठ गई हो, तो कत्था, मिश्री, मुलहठी, मुनक्का, चिरमीके पत्ते, शतावरी आदि औषधियां प्रयोजित होती हैं।

पित्तप्रकोप, सूर्यके तापमें भ्रमण, गरम गरम पेय या भोजनका सेवन, तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन आदि कारणोंसे स्वरयन्त्रमें उष्णता उत्पन्न हुई हो, तो दूध, मक्खन, अनन्ता सारिवा, मुनक्का, मुलहठी, मिश्री, सौंफ, इलायची, वंशलोचन आदि उपकारक होते हैं।

श्वसन संस्थामें या स्वरयन्त्रमें दूषित कफ संग्रहीत हुआ हो तो वामक या उत्तेजक कफघ्न औषधियोंका प्रयोग होता है। दोनोंका वर्णन पहिले नं० २१ और नं० १० में किया गया है।

कभी कण्ठस्थ मांसपेशीमें शिथिलता आ जाती है, तब उसे सुदृढ़ बनानेके लिये बहेड़ा, लोध्र द्रव, कत्था, वंशलोचन आदि कषायरस प्रधान औषधियोंका उपयोग किया जाता है।

यदि अधिजिह्वा, उपजिह्वा अथवा गलशुण्डिका आदि रोगोंमें शुष्क कास दायक कास हुई हो और आवाज विकृत हो गई हो तो मौक्तिक और प्रवालपिष्टी उपकारक मानी गई हैं।

यदि क्षय, कफप्रकोप या लसिका ग्रन्थियोंकी विकृति होने पर उपद्रव रूपसे स्वरसाद और स्वरभंग आदि लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो वसंत भस्म लाभदायक मानी जाती है।

(८७) अर्शोघ्न।

जो द्रव्य मसाओंके उत्पन्न मस्सेको नष्ट कर और नूतन उत्पत्तिको रोके उसे अर्शोघ्न या अर्शनाशक कहते हैं।

चरक संहिता कथित अर्शोघ्न गण—कुड़ेकी छाल, बेल, चित्रकमूल, सोंठ, अतीस, हरड़, धमासा, दारुहल्दी, बच और चव्य, ये औषधियां कही हैं।

दूसर औषधियाँ - ताम्र भस्म लोह भस्म, शिलाजीत, नागभस्म, पन्ना, पुखराज, जमीकन्द, भिलावा, कुचिला, रसौत, छोटी दूधी, रीठा, नीमके फल, बकायनके फल, उतरणके पत्ते, कनगोनी, काले तिल, थूहरका दूध, पीलूके फल कुकरौंधा, मक्खन मठा आदि।

मलावरोध हो, तो दूर करनेके लिये हरड़, एरण्ड तैल, गुलकन्द, मुनक्का आदि औषधि दी जाती है, पचनक्रिया सबल बनानेके लिये दीपन औषधियां—ताम्र भस्म, चित्रकमूल, भिलावा, जमीकन्द, इन्द्रयव, सोंठ, अतीस, थूहर क्षार, मठा आदि व्यवहृत होती हैं। स्थानिक रक्ताभिसरण क्रिया सुधारने और मस्सेको नष्ट करनेके लिये लोहभस्म, जमीक-, चित्रकमूल, भिलावा, मठा आदि उपकारक हैं। रक्तस्राव होता हो तो रोकनेके लिये मक्खन, मठा, रसौत, कुकरौंधा आदि तथा स्थानिक वेदना दूर करनेके लिये स्थानिक उपचार किया जाता।

सामान्यतः इस रोग की सब औषधियों में मठा श्रेष्ठ माना है। केवल मठेका सेवन (तक्रकल्प) करनेसे अर्श ग्रहणी आदि अनेक रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

इस रोगमें अन्तर-बाह्य दोनों प्रकारोंकी चिकित्साकी आवश्यकता है। तीक्ष्ण पीड़ाके शमनार्थ भाँग, साँप की केंचुली, ऊंटके मेंगनें, मनुष्य केश, भैंसके सींगके अंकुर, देवदाली, लोबान, कुचिला, बड़ी कटेलीके फल आदि औषधियोंमें से एक या अनेक मिलाकर धुँआ दिया जाता है; भाँग, देवदालीके फल, बच आदिकी सुगन्दीसे सेक भी किया जाता है। एवं विविध पुल्टिस लेप, तैल, मरहम आदिका प्रयोग किया जाता है तथा हुक्के के सड़े हुए जलसे आबदस्त लिया जाता है।

इस अर्श रोगके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डमें किया गया है।

(८८) कासहर

जो द्रव्य खांसीके वेगको शमन करे उसे कासहर कहते हैं। सुश्रुत संहितामें विदारी गन्धादि गण (नं० १ वातदोषघ्नमें) और सुरसादि गण (नं० २ कफ दोषघ्नमें), इन दोनों को कासहर कहा है।

अन्य औषधियाँ—अभ्रक भस्म, शृंग भस्म, शङ्ख भस्म, लोह भस्म, मौक्तिक पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, सुवर्ण भस्म, मुनक्का, दरख, आँवला, पीपल, बनास्पा, काकड़ासिंगी, छोटी कटेली, वंशलोचन, सौंफ, इलायची, गोंद, बच, मरोड़ा, कत्था, अफीम, सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, मुइ आंवला, भारंगी, लौंग, कालीमिर्च, पीपलामूल, शहद, मिश्री, गुड आदि।

कासके २ प्रकार हैं। फुफ्फुस, फुफ्फुसवाहिनी या स्वरयन्त्र आदिकी स्थानिक श्लैष्मिक कलामें दाह अथवा शोथ आनेसे शुष्क कास चलती है। दूसरा प्रकार फुफ्फुसादिमेंसे कफ आदि मलको बाहर निकालनेके लिये उत्पन्न कास। इनमें प्रथम प्रकारमें कल्पली, लोहभस्म, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, सुवर्णभस्म, कत्था, गोंद वंशलोचन, इलायची, सौंफ, आदि शामक औषधियाँ व्यवहृत होती हैं। द्वितीय प्रकारमें अभ्रक भस्म, बच, कटेली, लौंग आदि उत्तेजक औषधियों का उपयोग होता है। कभी कभी रात्रि की निद्रामें बाधा न होनेके लिये द्वितीय प्रकारमें भी अफीम जैसी शामक औषधि देनी पड़ती है।

फुफ्फुस कोष, श्वास नलिका, स्वरयन्त्र, नासिका आदिमेंसे किस स्थान पर विकृति हुई है, और क्या विकृति हुई है? इस बातका निर्णय कर विकार अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

अनेक बार ज्वर, राजयक्ष्मा, उरस्तोय, हृदावरण प्रदाह, उदय्याकला-प्रदाह और कण्ठरोग आदि व्याधियोंमें गौणव्याधि (लक्षण) रूपसे कास उत्पन्न होती है। ऐसे समय पर मुख्य रोगकी औषधिके अनुकूल कासकी चिकित्सा करनी चाहिये।

इस कास रोगका विशेष विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है।

(८९) श्वासहर

जो द्रव्य श्वासोच्छ्वासमें होनेवाले अवरोध और श्वास प्रक्षेपको दूर करें, उसे श्वासहर कहते हैं। सुश्रुत संहितामें विदारीगन्धादि गण (नं० १ वात दोषघ्नमें), सुरसादि गण (नं० ९ कफ दोषघ्नमें) तथा दशमूल को श्वासहर कहा है।

चरक संहिता कथित श्वासहर कषाय—शठी, पुष्करमूल, अम्लवेत, छोटी इलायची, हींग, अगर, तुलसी, भुँई आँवला, जीवन्ती और चण्डा (चोरहुली), ये १० औषधियाँ कही हैं।

इतर औषधियाँ—अभ्रक भस्म, शृंग भस्म, मैनसिल, सोमल, सत्यो बूटी, अफीम, भारंगी, काकड़ासिंगी, कटेली धतूराके बीज, आकके फूल, अडूसा, नौसादर, अपामार्गक्षार, कलमी सोरा, बच और शहद आदि।

श्वासकृच्छ्रता (Dyspnea) होने के मुख्य हेतु—

(१) स्वर यन्त्रके विद्रधि,, प्रदाह, आक्षेप या इतर विकार।

(२) स्वर यन्त्र या मुख्य श्वासनलिका पर दबाव।

(३) हृदय और फुफ्फुसोंकी विविध वेदना।

(४) आमाशयादि पचनेन्द्रियकी विकृति।

कभी कभी स्वर यन्त्रमें अत्यधिक अवरोध होने पर श्वासग्रहणमें या श्वासत्याग में कष्ट होता है। क्वचित् यह कष्ट इतना अधिक हो जाता है कि, रोगीकी स्थिति अति दयाजनक हो जाती है। यदि श्वासोच्छ्वास अत्यन्त तेज हो तथा चेतना और ज्ञानमें कुछ भी विलक्षणता न हो, तो फुफ्फुसोंमें वायुका अभाव होनेसे अत्यन्त वेदना हुई है, ऐसा माना जाता है।

क्वचित् वायुके अभावसे श्वासकृच्छ्रता भी उपस्थित होती है।

सहस्रमें से आयुर्वेदमें श्वासरोगके महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास, और क्षुद्रश्वास, ऐसे ५ भेद किये हैं। इनमेंसे महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वासको घातक माना गया है।

अनेक बार वृक्क संन्यास (Uraemia) और हृदयकी मेदापक्रान्ति होने पर श्वासके तालमें विलक्षणता हो जाती है। फिर छिन्न श्वास (Cheyne Stoke Respiration) उपस्थित हो जाता है। इस तरह सुषुम्नाशीर्षकके भीतर रहे हुए श्वासोच्छ्वास केन्द्रको धमनीमें रक्त सचालनका अवरोध होने पर भी इस छिन्न श्वास की प्राप्ति हो जाती है। यह भी असाध्य-सा विकार है।

तमकश्वासकी उत्पत्ति अपचन, अपथ्य आहार-विहार सेवन, त्रिदोष-प्रकोप आदि अनेक कारणोंसे हो जाती है। इस श्वासका दौरा बार-बार अजीर्ण, शीत लगना, बादल आना, इत्यादि कारणोंसे होता रहता है। तब श्वासोच्छ्वास क्रिया अति कष्टसे होती है। यह प्रयत्न करने पर दूर हो जाता है।

क्षुद्रश्वासकी उत्पत्ति निर्बलता, वृद्धावस्था, मेदवृद्धि, और सामान्य अजीर्ण आदि कारणोंसे हो जाती है। वृद्धों और मेद विकारवालोंका रोग सत्वर दूर नहीं होता। सामान्य कारण या किसी रोग विशेषसे निर्बलता आकर क्षुद्रश्वास हुआ हो, तो सत्वर दूर हो सकता है।

सामान्यावस्थामें अभ्रक, लोह आदि फुफ्फुसपौष्टिक और रक्तशोधक औषधियाँ देनी चाहियें और तीव्र प्रकोप कालमें अफीम धतूरा आदि वेदनाशामक और आक्षेप निवारक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये।

श्वासयन्त्र को, परिवेष्टित वायु, देहमें रहा हुआ रक्त, रक्तसंचालन क्रिया, वातनाडी विधान और सुषुम्नामें रहे हुए श्वासोच्छ्वास कराने वाले केन्द्र, इन सबके साथ अति घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इन सबमें कुछ भी विकार होने पर यह श्वास-

यन्त्र पर प्रतिफलित होता है। जैसे अस्वाभाविक संचाप और उष्ण वायु, धूलि आदिके परमाणुमिश्रित वायु अथवा अत्यन्त वायु श्वास द्वारा ग्रहण होने पर श्वासोच्छ्वास क्रियामें व्यतिक्रम हो जाता है। इस तरह रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओं की संख्यामें न्यूनता हो, या रक्ताणु विकारग्रस्त हो जायँ, तो श्वासविकार हो जाता है। रक्ताभिसरण क्रियामें विकृति अथवा श्वासयन्त्र और इतर यन्त्रोंके केन्द्राभिमुखी वातवाहिनियों (Afferent) में क्रिया परिवर्तन हो जाय, तो भी श्वासोच्छ्वास क्रियामें बाधा पहुँच जाती है। इन सब विकृतियोंकी चिकित्सा करनेमें मूलकारणको दूर करना चाहिये।

श्वासाक्षेपके शमनार्थ धतूरा और सूचीबूटीका धूम्रपान रूपसे उपयोग किया जाता है। इस तरह मैनसिल प्रधान औषधिका भी प्रयोग होता है। पूर्णचन्द्रोदय रस, सोमल, अफीम, धतूरा, खुरासानी अजवायन, सूचीबूटी, गाँजा, भांग आदि औषधियाँ खानेके लिये भी दी जाती हैं।

केवल उत्तेजना पहुँचानेके लिये (तमाखूके व्यसनीको) तमाखूका धूम्रपान कराया जाता है। एवं शराब, अफीम, वत्सनाभ, किंचला, क्लोरोफॉर्म, ईथर आदि औषधियाँ दी जाती हैं। परन्तु ये सब सुषुम्नामें रहे हुए श्वासकेन्द्रको पहिले उत्तेजित करती हैं, फिर अवसन्न बनाती हैं।

यदि नासिकासे दुर्गन्ध निकलती हो, तो सेन्द्रिय विषनाशक नीलगिरी तैल, तार्पिन तैल, लोबानसत्व, अफीम, शृङ्गभस्म आदि औषधियोंका सेवन कराया जाता है।

यदि कफ अति चिपचिपा हो जानेसे सरलतासे बाहर नहीं निकल सकता, तो कफको बाहर निकालनेके लिये कटेली, मुलहठी, बहेड़ा, तार्पिन तैल, कपूर, लोबान, तमाखू क्षार आदि प्रयोजित होते हैं। ये सब औषधियाँ श्वासनलिकाओंकी स्रावक क्रियाको बढ़ाती हैं। इस हेतुसे कफ सरलतासे बाहर निकलता रहता है। एवं वंग क्षार, जवाखार, अपामार्ग क्षार, अर्क क्षार, धतूरा, सूचीबूटी, शृङ्गभस्म आदि श्वास नलियोंमें स्राव कम कराती हैं; और कफको गाढ़ा बनाती हैं। फिर कफको बाहर निकालती हैं। इनके अतिरिक्त श्वासनलिकाओंके भीतर रक्तावेग, पैशिक क्रिया और स्रावक क्रिया वृद्धि करानेके लिए बाष्प सुँघानेके प्रयोगोंका उपयोग भी होता है। लोबानका अर्क, कायपुटी तैल, कार्बोलिक एसिड आदि औषधियोंको उबलते हुए जलमें मिलाकर बाष्प सुँघाई जाती है।

श्वासविकारका निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य सम्बन्धी विशेष विचार 'चिकित्सा तत्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया है।

(९०) हिक्काहर।

जो द्रव्य हिचकीका दमन करे उसे हिक्का निग्रहण और हिक्काहर कहते हैं। चरक संहितामें हिक्का निग्रहण रूपसे शठी, पुष्करमूल, बेरकी गुठलीकी गिरी,

छोटी कटेली, बड़ी कटेली, वृन्दरूहा (बान्दा), हरड़, पीपल, धमासा, काकड़ासिंगी, ये १० औषधियाँ कही हैं।

इनके अतिरिक्त सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, मयूरपुच्छके चन्दलोंकी भस्म, रससिंदूर, मैनफल, अजवायन, धतूरा, सुरानीर्य आदि औषधियाँ भी उपकारक हैं।

हिक्का क्वचित् स्वतन्त्र रोग रूपसे और क्वचित् सन्निपात आदि व्याधियोंमें मारक उपद्रव रूपसे प्रकाशित होती है। आमाशय विकृति, फुफ्फुसान्तरालमें विद्रधि, मस्तिष्कमें विद्रधि आदि विकार महाप्राचीरा विकृति, इतर अवयवोंकी विकृतिसे महा प्राचीरापर दबाव आदि कारणोंसे हिक्का रोग उत्पन्न होता है। इन सबका उपचार भिन्न भिन्न होता है।

श्वासग्रहण क्रिया कराने वालोंमें मुख्य महाप्राचीरा पेशी है। इस मांस पेशीमें विकृति होनेपर हिक्का और श्वासकी उत्पत्ति होती है; अतः श्वासरोगहर उपकारक औषधियाँ भी हिक्काको दमन करती हैं।

आयुर्वेद और डाक्टरी, दोनों प्रकारके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है।

(९१) ज्वरहर।

अण्टिपायरेटिक्स—अण्टिफेब्रिल्स—फेब्रिफ्युग्स।

Antipyre ics—Antifebriles—Febrifuges

जो द्रव्य ज्वरको या रोग विशेषमें उत्पन्न शारीरिक उष्णताको शमन करे उसे ज्वरहर, ज्वरघ्न और ज्वरप्रशमन कहते हैं। उक्त ज्वरहर औषधियोंमेंसे जो एकाहिक आदि विषमज्वरोंके कीटाणु और विषको नष्ट करते हैं, उनको नियतकालिक ज्वरहर (अण्टि पिरियोडिक्स—Anti periodics) संज्ञा दी है।

सुश्रुत संहितामें पटोलादि गण, गुडूच्यादिगण, आरग्वधादिगण और सारिवादिगणको ज्वरहर लिखा है। इनमेंसे आरग्वधादिगणका वर्णन नं० ३७ कफघ्नमें तथा सारिवादिगणका वर्णन पहिले नं० ९१ दाहप्रशमनमें किया है।

पटोलादिगण—इस गणमें पटोल, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, मूर्वा, गिलोय, पाठा और कुटकी ये ७ औषधियाँ कही हैं। यह गण पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, छर्दि, कण्डू और विषको नष्ट करता है।

गुडूच्यादिगण—इस गणमें गिलोय, निम्ब, धनियाँ, सफेदचन्दन, रक्त चन्दन और पद्माख ये ६ औषधियाँ हैं। यह गण दीपन और सर्वज्वरोंका नाश करता है। तथा हृल्लास, अरुचि वमन, प्यास और दाहको भी दूर करता है।

चरक संहिता कथित ज्वरहर कषाय—अनन्तमूल, गिलोय, पाठा, मजीठ, मुनिक्का, पीलू, फालसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, ये १० औषधियाँ चरक संहिता और अष्टाङ्ग संग्रहमें लिखी हैं।

इनके अतिरिक्त वत्सनाग, सप्तपर्ण, कालमेघ, धतूरा, चिरायता, कुटकी, पित्तपापड़ा, कुड़ेकी छाल, अतीस, फिटकरी, प्रवाल, मौक्तिक, गोदन्ती, सुरमा, सिरकेके साथ नौसादर, रामुद्रफल, तुलसी, द्रोणपुष्पी, नीमकी अन्तर छाल, मेद-मुरक, सहदेवी, कडुवी नाई, पटोलपत्र, नागरमोथा, पीपल, कालीमिर्च, अर्कमूलत्वक, कनेर मूलत्वक आदि।

नियत कालिक ज्वरहर—किनाइन, सोमल, हरताल, धतूरा, सत्यानाशी, भांग, फिटकरी, द्रोणपुष्पी, सप्तपर्ण, अतीस, करंजबीज, अफीम, सुवर्णचम्पा, पीली-कनेर, बच, दुलदुल, कौआमारी, इन्द्रजौ कालीमिर्च आदि।

इनमेंसे कितनीही उत्ताप उत्पादक केन्द्रकी क्रियाका शमन कराती हैं। कितनीही औषधियां बढ़ी हुई उष्णताका बलात्कारसे ह्रास कराती हैं, कितनीही शनैः शनैः कीटाणुओंको नष्ट करा या दोषपचन करा उत्तापको न्यून कराती हैं; और कितनीही सामान्य स्थितिमें रहनेवाले शारीरिक उत्तापको कम कराती हैं। किन्तु आयुर्वेदमें इन सबका योग्य वर्गीकरण अभी तक नहीं हुआ।

उत्ताप केन्द्रपर कार्यकर औषधियाँ—वत्सनाग, सप्तपर्ण, कपूर, किनाइन, शराब, कडुवी नाई, तुलसी, द्रोणपुष्पी, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, मेदमुरक और गिलोय आदि।

तीव्र उत्तापनाशक औषधियाँ—वत्सनाग, सुरमा और अर्कमूलत्वक, कनेरकी छाल, अतीस, सौंफ, चिरायता, कुटकी, नौसादर आदि प्रस्वेदवर्द्धक औषधियां, उष्णजलसे स्नान, शीत सेक (मस्तिष्क पर शीतल जल या बर्फका सेक), नाभि पर कांसीका पात्र रख उसमें जलधारा डालना, गीला वस्त्र लपेटना आदि।

वत्सनागादिसे रक्तवाहिनियां विकसित होती हैं, जिससे सहज उष्णताका ह्रास हो जाता है। स्नान और प्रस्वेदवर्धक औषधियां त्वचामेंसे उष्णताको बलात्कारसे बाहर ला देते हैं। सोमल, हरताल, किनाइन आदि औषधियां ज्वरोत्पादक विषको नष्ट करती हैं। एवं मेदमुरक आदि औषधियां मस्तिष्क गत उष्णता उत्पादक केन्द्रपर शामक असर पहुँचाकर ज्वरको दूर करती हैं।

मन्द उत्तापनाशक औषधियाँ—जीर्ण ज्वरोंमें वातवहा नाड़ियोंको सबल बनाकर शनैः शनैः उत्तापका ह्रास करानेवाली औषधियां—अभ्रक भस्म, पिप्पली, कुचिला, वराटभस्म, प्रवाल, गिलोय आदि।

ज्वरहर औषधियां यदि अत्यधिक मात्रामें न दी जाय तो उनका असर स्वस्थावस्थामें शारीरिक उत्ताप पर बहुत कम होता है, किन्तु जब शारीरिक उत्ताप बढ़ा हो तब ये उत्तापको शमन करनेके लिये प्रबलक्रिया दर्शाती हैं। सामान्यतः स्वस्थ मनुष्योंका शारीरिक उत्ताप लगभग ९८·४ होता है तथा उत्तापकी उत्पत्ति और व्यय लगभग समान होता रहता है। जिससे साम्यावस्था बनी रहती है;

किन्तु जब आममकोष अथवा मल या कीटाणुजन्य विष संग्रह होता है, तब शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है। फिर जीवनीय शक्ति साम्यावस्था पुनः स्थापित करनेके लिये त्वचा और श्वसनमार्गसे उष्णताको बाहर निकालने लगती है। त्वचामें से संचालन (Conduction) और ताप विकिरण (Radiation) द्वारा तथा स्वेदका वाष्पीकरण (Evaporation) द्वारा उष्णताका त्याग कराया जाता है। एवं निश्वास द्वारा श्वसन मार्गसे भी उष्णता बाहर निकाली जाती है। इनके अतिरिक्त मल-मूत्र मार्गसे भी कुछ अंशमें उष्णता बाहर निकलती है।

सामान्यतः उष्णताके दूरीकरणमें या ह्रास करनेमें दो क्रिया बाधक होती हैं। १ त्वचागत कैशिकाओंका आकुंचन, यह स्वेद स्राव कम कराता है, २ तन्तुओंकी दहनक्रियाकी वृद्धि, या उष्णताकी अधिक उत्पत्ति करती है। इन दोनों प्रतिबन्धवाली स्थितिमें साम्यावस्था लानेका कार्य उष्णता नियमन केन्द्र (Heat regulating Center) करता है, जो लघु मस्तिष्कके मस्तिष्कमूल पिण्डद्वय (Basal ganglia) के भीतर और पोषणक धूसरिका (Tuber Cinerum) के समीपमें रहता है। उनके समीपमें कोई भी क्षति उत्पन्न होती है, तब उसके अनुगमनरूप शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है। जैसे रागिलपिण्ड (Corpus Striatum) को आघात होने पर उत्ताप वृद्धि होती है। फिर उत्तापका ह्रास होनेके साथ ही स्वेद आता है, तथा त्वचापर तेजी आती है। जो प्राणवायुका शोषण होता है और कार्बन डायो क्साइड (Co2) बाहर निकाली जाती है तथा उनके परिमाणमें भी न्यूनता आ जाती है।

डाक्टरी मतमें जो औषधियां ज्वरावस्थामें उत्तापका ह्रास कराती हैं, फिर स्वेद आनेसे त्वचागत कैशिकाओंका प्रसारण होता है। फिर उष्णताके त्याग द्वारा उत्तापका ह्रास होता है। इन ज्वरहर औषधियोंमेंसे अधिकतमके भीतर वेदनाहर गुण भी प्रतीत होता है।

शारीरिक उत्ताप शामक हेतु—

१ रागिल पिण्डमें अवस्थित उत्ताप उत्पादक केन्द्र (Thermogentic Centre) पर क्रिया करके उत्तापका ह्रास करानेवाली औषधियां। उदाहरणार्थ एमिडोपाइरिन, एसिटेनलाइड, फेनासिटिन आदि ये सभी ज्वरहर औषधियां हैं।

२. त्वचागत कैशिकाओंका प्रसारण कर तापका विकरण करानेवाली औषधियां। जैसे अल्कोहाल, नाइट्राइट्स, सेलिसिलेट्स, बाष्प स्नान आदि।

३ स्वेदका परिमाण बढ़ाकर वाष्पीकरण कराकर लाभ पहुँचाने वाली औषधियां। उदाहरणार्थ स्वेदल औषधियां।

४ उत्तापका बाहर आकर्षण कराने वाली क्रिया। उदाहरणार्थ शीतल पट्टी, शीतल जलसे स्नान, गीलाकपड़ा लपेटना, गीली चद्दरसे पोंछना आदि शीतल उपचार।

५. विशेष प्रकारके ज्वरोत्पादक विषको नष्ट करके या निर्विष करके लाभ पहुँचाने वाली औषधियाँ। उदाहरणार्थ विषमज्वरमें क्विनाइन, कण्ठरोहिणीमें कण्ठरोहिणी-विषहर रक्तरस आदि।

तापको बढ़ी हुई किरणोंको कम करने वाली औषधियाँ वे हैं, जो शारीरिक उत्तापको फैलाती हैं। शारीरिक उत्तापकी वृद्धि दो कारणोंसे होती है। या तो उत्तापकी उत्पादनकी वृद्धि या उत्ताप ह्रासमें न्यूनता। जब यह परिवर्त्तन क्षति पूर्तिकी शक्तिसे बढ़ जाय, तब ज्वरावस्था उत्पन्न होती है। यह उष्णावस्थासे भिन्न है, किन्तु चयापचय बढ़ानेवाले पदार्थोंसे भी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो सकती है। इसलिये ग्रैवेयक ग्रन्थिकी क्रिया वृद्धि भी शारीरिक उत्ताप वृद्धिके साथ बहुधा सम्बन्धित होती है।

वर्त्तमानमें कितने ही रोगोंमें चिकित्साके लिये भी उत्ताप वृद्धि करायी जाती है। जैसे फिरंग और पूयमेहमें संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये कुछ घण्टे-तक उत्ताप क्रमश बढ़े उस तरह उपचार किया जाता है। कुछ उन्मादग्रस्त मनुष्योंको पक्षवध होनेपर विषमज्वर, उत्पन्न कराया जाता है।

ज्वरकी उत्पत्ति अनेक कारणोंसे होती है। कारण भेदसे ज्वर रोगमें अनेक जाति हैं। इन सबके हेतु, लक्षण, चिह्न, संप्राप्ति, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके ज्वरप्रकरणमें किया है।

(९२) दन्त संरक्षक।

डेण्टीफ्राइसिस—Dentifrices.

जो द्रव्य दाँत, दाढ़ और मसूढ़ोंके ऊपर जमे हुए मलको दूर करते हैं, कीटाणुओंको नष्ट करते, दाँतोंको उज्ज्वल बनाते तथा मसूढ़ोंको सुदृढ़ बनाते हैं, उनको दन्तसंरक्षक संज्ञा दी है। इनमें तीन प्रकार हैं। १ दंतशुद्धिकर; २. कीटाणुनाशक, तथा ३ दन्तवेष्टोंको दृढ़ बनानेवाली औषधियाँ।

(१) दन्त शुद्धिकर औषधियाँ—चाकमिट्टी, सेलखड़ी, बादामके छिलकेके कोयले या बबूलके कोयलेकी कपड़छान की हुई काली राख, गेरू, पीलीमिट्टी, बबूल आदि वृक्षोंकी दतौन आदि।

(२) कीटाणुनाशक—पचनविकारनिवारक Antiseptics—सोहागा, कपूर, कसीस, कार्बोलिक एसिड, पीपरमेण्ट तैल, नीलगिरी तैल, दालचीनी, लौंग, शीतलमिर्च, अकरकरा, पीपल, नीलाथोथा, हींग, तेजबलकी दतौन, सरसोंका तैल आदि। इन सबमें दन्तशूलघ्न (Antodontalgics) अर्थात् दन्तशूलोत्पादक कीटाणुओंका नाश करनेका गुण न्यूनाधिक अंशमें अवस्थित है।

(१) मसूढ़ोंको सबल बनानेवाली औषधियाँ—सुपारी, लोध, कत्या, हरड़, लालबोल, मायफल, मौलसरीकी छाल, फिटकरीका फूला और बब्बूलकी दतौन आदि। इनमें फिटकरीका उपयोग अति सूक्ष्म परिमाणमें करना चाहिये।

यदि दांतोंपर पावक अम्लता (मल) की तरह आई हो, तो उसे अधिक हानिकर मान, उस पर तैल, घी या मक्खनसे कुछ मर्दन कर फिर सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब) मिश्रित जल या साबुनके जलसे दांतोंको साफ कर लेना या कुल्ले करना चाहिये।

यदि तीव्र शूल (Tooth-ache or Odontalgia) चलता हो, तो अफीमका अर्क, कपूरका अर्क, लौंगका तैल, हींग, नौसादर आदि औषधियां दांतोंके नीचे रखी जाती हैं। एवं नमक आदि मिले हुए निवाये जलके या तैलके कुल्ले किये जाते हैं।

भोजनके परिपाक होनेमें चर्वण क्रिया करनेकी पूर्णांशमें आवश्यकता है। यद्यपि शैशवावस्थामें अचर्वित आहारका परिपाक आमाशय और अन्त्रमें होता है, तथापि वयोवृद्धिके साथ इस क्षमताका ह्रास हो जाता है। फिर चर्वण क्रिया यथोचित न होनेपर अजीर्ण आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। जिससे दांत भी मलिन होने लगते हैं।

मुख और दांतोंके पार्श्व भागमें भुक्त द्रव्यका अंश संचित होता है। फिर इस संचित अन्नमें विक्रिया होकर वह अम्ल बन जाता है। पश्चात् उसमेंसे वनस्पति कोटिके कीटाणुओं (Bacterias) की उत्पत्ति हो जाती है। यही दंतक्षयका प्रधान कारण है। इस हेतुको दूर करनेके लिये प्रतिदिन दंतमंजन, दतौन या सूक्ष्म पीसे हुए सैंधानमक मिश्रित सरसोंके तैलसे दंतमार्जन करना चाहिये। दंतमार्जन करते रहनेसे संचित दोषकी निवृत्ति होती रहती है, और दंतक्षय नहीं होता।

दांत साफ रखनेके लिये प्रतिदिन दो बार दतौन करनेके लिये शास्त्रमें लिखा है और यह दतौन इस तरह सम्हालपूर्वक करना चाहिये, कि मसूढ़ोंको आघात न पहुँचे। एक समय दतौन प्रातःकाल शौचसे निवृत्त होनेपर और स्नान करनेके पहिले तथा दूसरी बार सायंकालको भोजनके पश्चात् करना चाहिये। दतौन करनेके लिये वट, असन (विजयसार), आक, खैर, करञ्ज, करीर, सज, दुर्गन्धवाला खैर, अपामार्ग, मालती, तेजबल, कदम्ब, गूलर, आम, अर्जुन, बबूल आदि वृक्षोंकी शाखा ग्रहण करनेकी लिखा है।

दतौनके लिये कसैले, कड़वे, चरपरे और मधुर रस वाले वृक्षोंकी शाखा या मूल (अपामार्ग आदिकी मूल) का उपयोग किया जाता है।

दतौनके लिये कड़वे वृक्षोंमें नीम कसैले रस वालोंमें खैर, मधुर वृक्षोंमें महुवा और चरपरे वृक्षोंमें करञ्जको श्रेष्ठ माना है। दतौनकी लम्बाई सामान्य रूपसे १२ अंगुल रखी जाती है।

दतौन करनेसे मुखकी दुर्गन्ध, दांतों पर लगा हुआ मल, और कफ, ये सब दूर होते हैं; दांत उज्वल होते हैं, तथा अन्न पर रुचि और मानसिक प्रसन्नता होती है। परन्तु कण्ठ, तालु, ओष्ठ और जिह्वाके रोग, मुखपाक, श्वास, कास, हिक्का आदि व्याधियों और वमन होनेपर दतौनका उपयोग नहीं करना चाहिये। इसी तरह दुर्बल, अजीर्णमें भोजन करने पर, मूर्च्छापीड़ित, मदपीड़ित, शिरदर्द युक्त, तृषायुक्त, थका हुआ, श्रमसे मुख सूखा हुआ, अर्दित वातके रोगी, कर्णशूल युक्त और दांतोंके रोगवाले, इन सबको दतौन करना निषेध है। इन्हें केवल दंतमंजन आदि द्वारा दांतोंको साफ कर लेना चाहिये।

(९३) शिथिलकारक।

मार्दवकर—एमोलिएण्ट्स Emollients त्वचा आदिको शिथिल और मुलायम बनाने वाली औषधियां—विविध औषधि क्वाथकी बाष्प (Inhalations) उष्ण सेक पुल्टिस, घृत, चर्बी, तैल, मोम, वेसलीन शहद, ऊनका तैल (Lanolin), श्वेतसार, मिश्री, सेलखड़ी, ग्लिसरीन, कोकम, अमचूरका तैल, मलहम, साबुन आदि। इन औषधियोंका उपयोग किसी स्थानका आर्द्र, उष्ण, शिथिल और आवृत रखनेके लिये होता है। इन औषधियोंसे प्रदाहयुक्त स्थानकी पीड़ा और खिंचाव (Tension) का उपशमन होता है। ये सब औषधियां संकोचशील घटकोंको शिथिल करती हैं। एवं रक्तप्रणालियोंको प्रसारित कर स्थानिक वातवाहिनियोंका खिंचाव और संचापको दूर करती हैं। इस वर्गकी औषधियां वायुके आघातसे संरक्षण करती हैं। इस हेतुसे इनको संरक्षक (Protectives) भी कहते हैं।

शिथिलकारक औषधियां शिथिलता लानेके साथ त्वचा आदिको कोमल बनाती हैं, एवं स्निग्धकारक औषधियां स्निग्धता लानेके साथ बहुधा मलको शिथिल बनाती हैं। इस तरह इन दोनों श्रेणियोंकी औषधियोंमें विशेष प्रभेद प्रतीत नहीं होता। तथापि विशेष सूक्ष्म विचार किया जाय, तो कहना होगा, कि बाह्य त्वचा पर कार्य करने वाली औषधियोंको शिथिलकारक और श्लैष्मिक कला पर कार्य करने वाली औषधियोंको स्निग्धकारक कहा जाता है।

श्वासयन्त्रकी विविध वेदना—कास, श्वास, प्रतिश्याय, इन्फ्लुएन्ज़ा, क्षय, आदिके निवारणार्थ फुफ्फुसोंमें श्वास द्वारा विविध औषधियोंकी बाष्प (Vapours) पहुँचाई जाती है। इसके कितने ही प्रयोग 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ९४ में दिये हैं।

घृत-तैल मिश्रित शिथिलकारक औषधिसे त्वचा शिथिल और कोमल होती है। आवश्यकता पर इनसे मर्दन भी कराया जाता है। इनका गुण बाह्य त्वचाके नीचे रहनेवाले विधान पर भी हो जाता है। शीत लग जाना, शीत ज्वर, जीर्ण ज्वर

आदि रोग या सम्पर्कतासे ओष्ठ, त्वचा, हाथ-पैर आदि फटने पर इन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

स्थानिक शिथिलकारक औषधियोंमें पुल्टिस और गरम जलके सेकको उत्तम माना है। प्रदाहजनित वेदनाके निवारणार्थ पुल्टिसका उपयोग किया जाता है। पुल्टिस और गरम जलके सेकमें अनेक प्रकार हैं। बनानेकी विधि, उपयोग विधि और फल सम्बन्धी विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ५० से ५६ तक में किया गया है।

(९४) स्निग्धकारक।

स्नेहन—डिमलसेण्ट्स—Demulcents.

> स्नेहन स्नेहविष्यन्दमार्दवक्लेदकारकम्।
> द्रवं सूक्ष्मं सरं स्निग्धं पिच्छिलं गुरु शीतलम्॥
> प्रायो मन्दं मृदु च यद् द्रव्यं तत् स्नेहनं स्मृतम्॥

जो द्रव्य देहमें स्नेह (चर्बी) का विलयन करावे, मृदुता लावे और क्लेद उत्पन्न करावे उसे स्नेहन कहते हैं। जो द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, शीतल, मन्द और मृदुगुण युक्त हो वह प्रायः स्नेहन होता है।

स्नेहन औषधियाँ—तिल मूँगफली, सरसों, काजू, अखरोट, बादाम, नारियल, बिनौला, अलसी, जैतून और कोकम अमचूर आदिके तैल, मक्खन, घृत दूध, दही, अण्डेका श्वेत अंश, शहद, सौंफ, श्लेष्मार आदि। इनके अतिरिक्त मुलहठी आदि कितनीही स्नेहोपग औषधियोंको भी शास्त्रोंमें स्निग्धकारक संज्ञा दी है।

स्नेहोपग—स्नेहन औषधियोंको सहायता पहुँचानेवाली औषधियाँ—मुनक्का, मुलहठी, गिलोय, मेदा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक जीवन्ती और शालपर्णी, ये १० औषधिया चरक संहिता में कही है।

अन्य स्नेहोपग औषधियाँ—वनतुलसीके बीज, सफेदमूसली, इसबगोल, बिहदाना, गूलर, लिसोड़ा, गुलाबमूल, मिश्रीके बीज, तालमखाना, बड़े गोखरू, गोंद, भिण्डी, साबूदाना आरारोट, गेहूँ, जौ और मक्का मायक आदि।

स्निग्ध औषधियोंका प्रयोग श्लैष्मिक कला या त्वचा पर करने पर वहां कोमल आवरण (पर्दा) की तरह बन जाती है। जिससे आवरणके नीचे संस्कार प्रक्रिया निर्विघ्न रूपसे सिद्ध होती जाती है। उपसाजनक चर्म रोगमें त्वचा निकल जाने या फट जानेपर इन औषधियोंका प्रयोग हितकारक माना गया है। उग्रविष या द्रवर पदार्थोंके सेवनसे श्लैष्मिक कलामें उग्रता उत्पन्न हुई हो, तो इन औषधियोंका आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

जब प्रश्वनिका या श्वासनलिकाके ऊर्ध्व भागमें रक्तसंग्रह होकर कास उपस्थित होती है, तब कण्ठनलिकाकी वेदना और उग्रताका निवारण करने तथा कासकी तीक्ष्णताका शमन करनेके लिये मुलहठी आदि उपलेपक अर्थात् स्निग्ध और लसदार (Mucilaginous) गुणवाली स्नेहोपग औषधियां उपयोगमें ली जाती हैं।

क्वचित् तीक्ष्ण दाहक वस्तु खानेमें आ जाती है तब आमाशय या अन्त्रमें व्रत न होनेके लिये अण्डे, बादामका तैल, जैतूनका तैल, दूध, दही, मक्खन या घृत-पान आदि स्निग्ध वस्तुका सत्वर प्रयोग किया जाता है।

(९४) लाला निःसारक

लाला प्रसेकजनन—लालोत्तेजक—सायलोगोग्स-सायलोगोगिक्स।

Sialogogues-Sialogogics.

जो द्रव्य लाला (थूक) स्रावको बढ़ाता है, उसे लालानिःसारक कहते हैं। यह लालास्राव लालास्रोतोत्पादक ग्रन्थियोंमेंसे होता है। इन ग्रन्थियों पर स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाड़ियोंका अधिकार है। इनमें जब स्वतन्त्र नाड़ियां उत्तेजित होती हैं, तब रक्तवाहिनियां आकुंचित होती हैं, जिससे थोड़ा और पिच्छिल लालास्राव होता है तथा परिस्वतन्त्र नाड़ियां जब उत्तेजित होती हैं तब रक्तवाहिनियां प्रसारित होती हैं और प्रचुर लालास्राव होता है। इन नाड़ियोंकी उत्तेजक और लालानिःसारक औषधियोंमें २ विभाग हैं। स्थानिक और विशेष।

जो औषधियां मुँहमें रखनेपर वातवहा नाड़ियोंके अन्तको या लाला ग्रन्थियोंको उत्तेजित करके उनकी क्रियामें वृद्धि करती हैं उनको स्थानिक, जो औषधियां शोषण होने पर वातवहा नाड़ियों द्वारा लाला ग्रन्थियों पर कार्य करती हैं, उनको विशेष कहा गया है।

स्थानिक लाला निःसारक औषधियाँ—अम्ल रसयुक्त पदार्थ, अम्लक्षार, सरसों, सोंठ पीपल, काली मिर्च, लाल मिर्च, शीतल मार्च, छोटी इलायची, सुपारी, नागरबेलका पान, लौंग, दालचीनी, अकरकरा, तेजबल आदि।

विशेष लाला निःसारक औषधियाँ—पारदघटित औषधियां, रसकपूर, तमाखू, नमकका तेजाब, यवक्षार और वमनकारक पदार्थ आदि। इन सब औषधियोंका आमाशयमें शोषण होनेपर मुँहमें अधिक लालास्राव और श्लैष्मिक स्राव होता है। परन्तु ये औषधियां लाला स्रावके हेतुसे उपयोगमें नहीं ली जातीं।

अम्ल पदार्थ, अम्ल मिश्रित लवण सोंठ, सरसों आदि मुँहमें रही हुई जिह्वामूलिका रसग्रन्थियोंकी वात नाड़ियों (Gustatory or Lingual Nerves) और रसना-प्रसनिकासे सम्बन्ध वाली वात नाड़ियों (Glossopharyngeal Nerves) को उत्तेजित करके विशेष लालास्राव कराती हैं। ये नाड़ियां परिस्वतन्त्र नाड़ी मण्डलकी हैं।

डाक्टर घोषने मेटेरिया मेडिकामें विशेष स्पष्टीकरणार्थ निम्नानुसार ४ विभाग किये हैं।

(१) केन्द्राभिमुखी वात नाड़ियोंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकारमें अम्ल (Acids), अम्ल लवण (Acid-salts) तीक्ष्ण (Pungents) उड़्डयनशील सुगन्धयुक्त तैल, कड़ुवी औषधियां, शराब, ईथर, क्लोरोफार्म आदि। ये सब मुखमेंसे प्रतिफलित क्रिया करती हैं। वच, इपिकाक्युहाना आदि उबाक लाने वाली औषधियां आमाशयके भीतर मायदानाडियोंके संवेदन तन्तुके सिरेकी उत्तेजना द्वारा क्रिया दर्शाती हैं।

(२) परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकारकी औषधियां कतिपय अन्य विशेष लालानिःसारक द्रव्य कहलाते हैं। उदाहरणार्थ पाइलोकार्पीन, एसिटीलकोलीन आदि।

(३) स्वसचालित वातगंडकी उत्तेजना द्वारा निकोटिन (तमाखु विष) कलकत्तेके पान आदि। ये पहिले उत्तेजना पहुँचाते हैं फिर अवसादकता ला देते हैं।

(४) स्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस तरह कार्य करने वालोंमें एड्रेनलीन, एफेड्रीन (सोमसत्व) आदि द्रव्य हैं।

इनके अतिरिक्त पारद, पोटास आयोडाइड आदि औषधियां थूकके प्रवाहको बढ़ा, उनके साथ मलरूपसे बाहर निकलती हैं, किन्तु यह क्रिया एट्रोपीन द्वारा निवारित होती है।

इनके अतिरिक्त कतिपय पदार्थोंके सुगन्ध, दर्शन या श्रवण मात्रसे मानसिक आवेग उत्पन्न होता है। फिर वातवाहिनियों पर प्रतिफलित क्रिया होकर लाला निःसरण में वृद्धि होती है।

मुँहमें लाला निकलती रहनेसे मुँहमें आर्द्रता रहती है और हानिकर द्रव्य जो चिपक रहा हो, वह अलग हो जाता है। एवं चर्वण क्रियाके हेतुसे भोजनमें लाला मिश्रित होनेसे वह द्रवीभूत और कोमल होकर निगलनेमें सा चूर्ण बन जाता है। लाला स्रावसे बोलनेमें जिह्वाको विशेष सरलता होती है। एवं तालु, जिह्वा आदि आर्द्र रहनेसे तृषाकी उत्पत्ति भी नहीं होती।

दंतशूल, कर्णशूल, कर्णमदाह नासा दाह, मस्तिष्कमदाह, रक्तवेगवृद्धि और इतर वेदना आदि विकारोंमें लालानिःसारक औषधियां प्रत्युमता सामक होकर लाभ पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त भोजनमें लाला मिल जानेसे भोजनमें रहे हुए श्वेत सारका पचन सत्वर होता है। कारण, लालानिःसरण वृद्धि होने पर आमाशय रसकी भी वृद्धि होती है।

(९६) लाला निःसरणरोधक।

लाला प्रसेकापनयन—एण्टिसायलोगोग्स—एण्टिसायलिक्स।

Antisialogogues—Antisialics.

जो द्रव्य लाला स्रावका ह्रास करता है, उसे लालानिःसरणरोधक कहते हैं।

औषधियाँ—सोहागा, अफीम, सूचीबूटी, धतूरा, हरड़, कत्था बेरके पत्ते, जामुनके पत्ते आदि।

लालास्रावका ह्रास दो प्रकारसे होता है—१ मुखके भीतर क्षोभके शमन द्वारा; २ परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरेके अवसाद या पक्षवध द्वारा।

क्षोभशामक औषधियोंमें सोहागा, कषायरस प्रधान औषधियाँ (बबूल छाल, हरड़, माजूफल, लोध आदि) के क्वाथसे गण्डूष आदि। परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरे पर असर पहुँचानेवाली औषधि—सूचीबूटी, सूचीबूटीसत्व (एट्रोपीन्), खुरासानी अजवायन, धतूरा आदि। इनके अतिरिक्त अफीम, मोरफिया आदि भी थूकका स्राव कम कराते हैं; किन्तु ये संवेदना नाड़ियोंके केन्द्रकी उत्तेजन क्षमताका ह्रास द्वारा कार्य करते हैं।

भांग, गांजा, धतूरा या सूचीबूटीका विषप्रकोप, ज्वर, शुक्रप्रदाह मधुमेह आदि अनेक व्याधियोंमें लालास्राव कम हो जाता है या मुँह सूख जाता है। एवं बार-बार अत्यधिक प्यासका भास होता रहता है।

(९७) श्रमहर

थकावटको हरनेवाली औषधियाँ—अंगूर, पिण्डखजूर, चिरौंजी, बेर, अनार, परूषु (गूलर या अंजीर), फालसे ईख, जौ, साँठी चावल ये १० औषधियाँ चरक संहितामें श्रमहर लिखी हैं।

इनके अतिरिक्त सन्तरा, मौसम्मी, सेब आदि फलोंका रस, शीतल वायु, शीतल जलपान बाराम्बर मोदुग्ध, निवाये जलसे पैर धोना, तैलकी मालिश कर स्नान करना, प्रियजनोंका मिलाप या मधुर गीत अथवा आदिसे मानसिक प्रसन्नता द्वारा तथा चन्द्रकी चाँदनीमें या शीतल स्थानमें विश्रान्ति इत्यादिसे थकानको दूर करनेमें सहायता मिल जाती है।

इनके अतिरिक्त शराब, ताड़ी, अफीम, भांग, गांजा आदि मादक और मोहजनन पदार्थोंके सेवनसे भी निद्रा, तन्द्रा या मद उत्पन्न होकर परिश्रमकी निवृत्ति होती है। इनका विवेचन पहिले नं० ७१, ७७ और ७८ में किया है।

(९८) शीतप्रशामन।

ग्रीष्म अर्थात् शीतको दूर करनेवाली औषधियाँ—तगर, अगर, धनिया, सोंठ, अजवायन, वच, छोटी कटेली, अरणी, अरलू, पीपल, ये १० औषधियाँ

चरक संहितामें लिखी हैं। ये सब शीतको दूर कर उष्णता लाती हैं। सामान्यतः लवण और कटुरसप्रधान तीक्ष्ण और उष्ण गुणयुक्त होती हैं, ये सब कफह्रास तथा पित्तधातुकी वृद्धि कराकर शीतका शमन करती हैं।

इनके अतिरिक्त पहिले नं० ७५ में जो उत्तेजक औषधियोंका विवेचन किया है। वे सब उष्ण होनेसे शीतको दूर करनेके लिये प्रयोजित होती हैं।

(९९) चक्षुष्य।

मनुष्योंको सांसारिक सुखकी सिद्धिके अर्थ ५ ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण) और ५ कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ) मिली हैं। इन सबमें नेत्रेन्द्रिय प्रधान है। बिना नेत्र जीवन दुःखमय बन जाता है। अतः नेत्रके संरक्षण और जीवन सुखकी प्राप्तिके निमित्त चक्षुष्य गुणके बोधकी आवश्यकता है।

परन्तु पाठकोंको इस चक्षुष्य गुण विवेचनका लाभ तभी मिल सकता है, जब चक्षुरचना, चक्षुस्थ विविध अवयवोंकी क्रिया और इनकी विकृति आदिका परिचय हो। अतः इनका वर्णन आवश्यक मान कर और ग्रन्थके कलेवरको लक्ष्यमें रख कर संक्षेपमें विवेचन किया जाता है। विशेष जानना हो तो नेत्ररोग विज्ञान ग्रन्थ देखें।

चक्षुष्य अर्थात् नेत्रहितकारी औषधियाँ—सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, लोह भस्म, जसद भस्म, नाग भस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, कांस्य भस्म मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, वराटिका, शंख, कपूर, नीलाथोथा, सिन्दूर, सुरमा, फिटकरी, सोरा, नौसादर, मैनसिल, कासीस, शिलाजित सत्व, दारुहल्दी, रसांजन, हरड़, आंवला, पीपल, लोध, बिल्वपत्र, एरंड पत्र, छोटी कटेली, सत्यानाशी, मुलहठी, अफीम, गोंद, धतूरा, सूचीबूटी सैंधा नमक, समुद्रफेन, निर्मली, पुनर्नवाकी मूल, छोटी इलायची, काविमी-बादाम, सफेद मिर्च, अगस्तके पुष्प, जीवक, ऋषभक, चाकसू, गुंजिका (ढवरस), पलाशमूल अथवा पुष्पका अर्क, शीतल मिर्च, बबूलकी छाल, खसखसकी छाल, कमल, कमलमधु, करंज, नीमकी अन्तर छाल, वनकुलत्थ (चाकसू) जीवन्ती, तुलसी, स्त्रीदुग्ध, वासाके पत्ते, चमेलीके पत्ते शहद, मूंग, रक्तशालि धनिया, गोघृत, अजाघृत, क्षीर घृत (दूधमेंसे निकला हुआ घी), सर्पिमण्ड (घृतके ऊपरका तरल अंश), मिश्री, खांड, गुलाबजल और धारोष्ण दूध आदि।

इनमेंसे कतिपय औषधियां खानेमें, कितनीही बाहर लगानेमें और कितनीही खाने और लगानेमें, दोनों प्रकारसे उपयोगमें आती हैं।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, जसद, सुवर्णमाक्षिक भस्म, मौक्तिक, प्रवाल कांस्य भस्म, शुक्ति भस्म, शिलाजित्सत्व और त्रिफला आदिका सेवन आभ्यन्तरिक उष्णता शमनार्थ किया जाता है।

इनमेंसे कब्ज होने पर त्रिफला विशेष हितकर है। त्रिफलाका हिम नेत्र प- छिड़कने और शिरके धोनेमें भी उपयोगी है।

सुवर्ण विषको नष्ट करता है, रौप्य धातवाहिनियोंके शूलको शमन करता है; तथा लोह रक्तदोषका निवारण करता है।

सुवर्णमाक्षिक, मौक्तिक, प्रवाल, गिलोयसत्व, पित्तशामक होनेसे नेत्रकी उष्णता शमन करते हैं।

अफीम, वनकुलथी, रसौत, खलसा आदि रक्तावेग होने पर रक्तप्रसादनमें हितकारक हैं।

नौसादर, सोरा, मैनसिल, सिन्दूर, निर्मली, पीपल, सफेद मिर्च आदि फूला, उत्कूणक, पायको, मांसवृद्धि आदिको हटानेमें उपयोगी हैं।

बिल्वपत्रका स्वरस, एरण्डपत्रका स्वरस, तुलसीका स्वरस, चमेलीपत्रका स्वरस, मयूरपत्रका स्वरस, कमलका रस, गुलाबजल आदि स्थानिक उष्णता शमन करते हैं, और रक्तसंग्रहको दूर करते हैं।

पुनर्नवा—सफेद पुनर्नवाको नाना विविध दोषोंके शमनार्थ प्रयोजित होती है। भीतूधमें घिस कर अंजन करने पर कण्डू, शहदमें घिसकर लगानेसे नेत्रस्राव, गोमूत्रमें लगाने पर फूला, तैलमें घिसकर लगानेसे तिमिर और कांजीमें घिस कर अंजन करनेसे नक्तान्ध्यता (रतौंधी) दूर होती है। इस तरह यह औषधि नेत्रके अनेक विकारोंपर आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है।

प्राचीन आचार्योंने पुनर्नवाका उपयोग अनेक व्याधियोंपर किया है। पुनर्नवामें दो जाति हैं—सफेद और लाल। विशेष विभाग किये जायँ, तो इनकी ६ अथवा इनसे भी अधिक जाति हैं। इनमेंसे सफेद पुनर्नवा (सांठी) में उष्ण, तिक्त, रूक्ष, कफघ्न (विषनाशक) गुण हैं। कास, हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तविकार पाण्डु, शोथ और वातविकारको दूर करती है। रक्त पुनर्नवाको तिक्त, सारक, शोफनाशक, पित्त- शामक, रक्तप्रदरहर और पाण्डुनाशक कहा है।

प्राचीन ग्रन्थकारोंने पुनर्नवाका प्रयोग ज्वर, शोथ, मदात्यय, विषदोष, प्लीहोदर, निद्रानाश आमवात, वातव्याधि, योनिशूल, मूढगर्भ, गुल्मशूल, शुक्रविकार, कुष्ठ, अश्मरी, मूषिकविष, विद्रधि आदि अनेक रोगोंपर किया है। इनके अतिरिक्त आचार्योंने स्वेदन, अनुवासन और वयःस्थापन वर्गमें भी इसका उल्लेख किया है।

नव्य चिकित्सकोंके मतमें पुनर्नवा, पाचक, मृदुविरेचक, मूत्रल, कफघ्न और वामक है। जलोदर, शोथ, कामला, आभ्यन्तरिक प्रदाह, प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, चक्षुप्रदाह, हृदिचकर्दश, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और श्वासरोगमें लाभदायक है। इसका मूत्रल गुण विशेष रूपसे प्रकाशित होता है। बिच्छूके विष पर इसकी मूल बाहर लगानेमें और धूम्रपान रूपसे प्रयोजित होती है। इस तरह चिरकारी पूयमय नेत्रपाक

(Opthalmia) पर इसकी मूलका क्वाथ शहद मिलाकर बिन्दु रूपसे प्रयोजित होता है। पुनर्नवा अधिक मात्रामें सेवन करने पर वमन कराती है।

सूचना—अनेक बार पित्तप्रकोप, काष्ठबद्धता, धूम्रपान, शराब आदिके सेवनसे नेत्रको हानि पहुँचती है। ऐसे समयपर मूल कारणको दूर करनेके साथ चिकित्सा करनी चाहिये।

नेत्रशोधन और ज्योतिकी वृद्धिके लिये सेक, आश्च्योतन, पिण्डी, बिडाल, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन आदि अनेक प्रकारके उपचार किये जाते हैं। इन सबका विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ २०२ से २०९ तक नेत्रशोधन क्रिया के अन्तर्गत किया गया है।

डाक्टरोंमें नेत्ररोग सम्बन्धी भिन्न भिन्न विकारोंपर निम्नानुसार औषध योजना की है—

(१) श्लैष्मिक कला पर कार्यकारी—नेत्रको श्लैष्मिक या आर्द्रकला (Conjuntiva) पर लाभदायक औषधियां। इसके विकारोंमें प्रायः संकोचक (ग्राही) और अवसादक औषधियां व्यवहृत होती हैं। इन औषधियोंमें कुचीबूटी और रौप्यभस्मिक लवण (Nitrate of Silver) विशेष महत्वकी औषधि है। आयुर्वेदिक औषधियोंमें अफीम, रसांजन, पुनर्नवा, कासीस, चाकसू आदि निर्दोष और उत्तम हैं।

सूचना—सीसा और फिटकरीके द्रवका संकोचक गुणके लिये व्यवहार नहीं करना चाहिये। कारण, सीसा धातुभस्मिक लवण अद्रवणीय एल्ब्युमिन मिश्रण (Albuminate) रूपसे परिवर्तित हो जाता है जिससे वह स्थान दीर्घकाल तक अस्वच्छ रह जाता है। एवं फिटकरी द्वारा शुक्लमण्डलका विदारण (Perforation) होनेकी संभावना है।

इस तरह कोकीन (Cocain) कनीनिका (Pupil) के चैतन्यका लोप कराती है अतः यह भी श्लैष्मिक कलाके विकारमें प्रयोजित नहीं होती।

(२) अश्रु निःसरण पर कार्यकारी—सोरा, लालमिर्च, पीपल, काली-मिर्च, सरसों, प्याजका रस, नीबूका रस आदि डालने पर नेत्रमें उग्रता उत्पन्न होकर अश्रुस्राव होने लगता है।

कुचीबूटी सत्व (Atropine) डालने पर अश्रुस्रावका ह्रास होता है। एसेरिन (Eserine) डालने पर एट्रोपिनकी क्रिया नष्ट होती है और सत्वर अश्रुपात होने लगता है।

(३) कनीनिका पर कार्यकारी—इसके प्रसारण और संकोचन तारा-मण्डल (Iris) की क्रिया पर अवलम्बित है। अतः तारामण्डल पर असर पहुँचाने वाली औषधियां परम्परागत कनीनिका पर लाभ पहुँचाती हैं। इन औषधियोंमें दा

प्रकार हैं—कनीनिका प्रसारक (Mydriatics) और कनीनिका सङ्कोचक (Miotics)।

कनीनिका प्रसारक औषध—सूचीबूटी (Belladonna) सूचीबूटी सत्व, खुरासानी अजवायन, धतूरा (Stramonium), जेलसिमियमकी चक्का क्षार (Gelseminae) आदि।

कनीनिका सङ्कोचक औषध—अफीम, अफीम सत्व, कालाबारबीन (Calabar Bean) के पक्के बीजका सत्व और जेलसिमियमका क्षार आदि। जेलसिमियम क्षारका आभ्यन्तरिक प्रयोग करने पर भी कनीनिका संकोचित होती है।

कनीनिका प्रसारक और सङ्कोचक, दोनों प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग नेत्रकी श्लैष्मिक कलाकी उग्रताके दमन और वेदनाके निवारणके लिये होता है। अवसादन क्रियाके निमित्त प्रयोग करना हो, तब बेलाडोनाका उपयोग किया जाता है।

नेत्रपरीक्षाके निमित्त कनीनिका प्रसारक औषधका उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त तारामण्डल निर्गमन (Prolapse) होने पर उसके निवारणार्थ कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है। एवं यह तारामण्डलके प्रदाह (Iritis) में भी हितकारक है।

कनीनिका सङ्कोचक औषधियां आलोकासह्य (Photophobia) अर्थात् प्रकाश सहन न होना, इस विकार पर लाभदायक हैं। एवं कनीनिका प्रसारक औषधिकी क्रियाके विरुद्ध असर पहुँचानेके लिये भी व्यवहृत होती है। कण्ठरोहिणी जन्य दृष्टि केन्द्रीकरण (Accommodation) होने पर सन्नुमय पेशी (Ciliary muscle) की क्रियाकी क्षीणता एवं अक्षमता होनेपर और दिवान्धता (Hemeralopia) में भी इसका उपयोग होता है।

तारामण्डलका कोई भाग चिपका हुआ है या नहीं, इसके निश्चयके लिये और संलग्नता (Adhesion) हो, तो उसे दूर करनेके लिये कनीनिका संकोचक और कनीनिका प्रसारक औषधि क्रमशः व्यवहृत होती है।

तारामण्डल आक्षेपग्रस्त होने पर, उसको आक्षेप मुक्त या शिथिल करनेके लिये कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है।

नेत्र पटलोंमें तरलाधिक्यसे दबाववृद्धि अर्थात् अधिमंथ (Glaucoma) रोगमें कनीनिका संकोचक औषधि उपकार दर्शाती है।

दर्शनेन्द्रिय पर कार्यकारी औषध—मिलाया, कुचिला और कुचिला सत्वके सेवनसे दर्शनक्षेत्र (Field of Vision) के आयतनमें वृद्धि होती है, जिससे दूरकी वस्तु स्पष्ट दिखलाई देती है।

किरमानी अजवायन सत्व (Santonin) के सेवनसे पहिले सब वस्तु रंगकी प्रतीत होती हैं फिर हरी-पीली प्रतीत होती हैं।

कालाबारबीनके बीजका उपक्षार (Physostigmine) का प्रयोग करने पर नेत्रकी लाल और हरे पदार्थको देखनेकी शक्ति कम हो जाती है।

शराबके अधिक सेवनसे नेत्रमें लाली आ जाती है। एवं तमाखू और गांजा आदिके धूम्रपानसे नेत्रशक्ति कमजोर हो जाती है परन्तु कभी-कभी गांजाके सेवनसे दृष्टिके सामने विविध सुन्दर दृश्य भासमान होते हैं और मदात्यय रोगसे रोगीको दृष्टिके समक्ष पिशाच आदि भीषण मूर्ति खड़ी होनेका भ्रम होता है।

अधिक गुड़, अधिक मिर्च और कब्ज करनेवाले पदार्थोंके अधिक सेवनसे नेत्रमें दाह होने लगता है। एवं नेत्रमें लाली आ जाती है।

नेत्र रचना—मनुष्योंको ईश्वरने दो नेत्र दिये हैं। दोनों नेत्र नेत्रगुहामें अवस्थित हैं। ये नेत्रगुहा भ्रुवोंके नीचे नासिकाके दोनों ओर एक-एक गढ्ढा रूपसे प्रतीत होती हैं। इनको अक्षिखात (Orbital fossæ) भी कहते हैं। इन गढ्ढोंमें नेत्रगोलक (Eyeballs) रहते हैं। इनकी रक्षा सम्यक् प्रकारसे हो, इसलिये निसर्गने पूर्ण प्रबन्ध किया है। अगले भागकी रक्षाके लिये दोनों नेत्रोंके ऊपर एक और नीचे एक मिलकर दो नेत्रच्छद अर्थात् पलक (Eyelids) बनाये हैं। इन पलकोंके किनारे पर बाल लगे हैं इनको अक्षिपक्ष्म (Eyelashes) संज्ञा दी है। इन बालोंमें धूल, मिट्टी आदिके सूक्ष्म परमाणु और वायुमें घूमने वाले सूक्ष्म कीटाणु बहुधा फँसकर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह दोनों नेत्रगुहाओंके ऊपर जो एक-एक भ्रू—भौं (Eyebrow) बनाई गई है, वे प्रस्वेदको कपालमेंसे नेत्रमें आनेसे रोकती है। इन नेत्रोंकी रचना अति आश्चर्यजनक है। इस छोटेसे यन्त्रके भीतर अनेक पुरजे रहते हैं।

अक्षिगोलक (Eyeballs or The bulbs of the Eyes)—ये नेत्रगोलक बहुधा कपोतके अण्डे या गेंद सदृश गोल होते हैं। इनकी आकृति समझानेके लिये छोटे-बड़े दो गेंद (Spheres) का दृष्टांत दिया जाता है। इनमेंसे छोटे गेंदका ⅙ हिस्सा और बड़ी गेंदका ⅚ हिस्सा काट लेंवे। फिर बड़ी गेंदके ⅚ हिस्से (Segment) पर छोटी गेंदके ⅙ हिस्सेको रखनेसे जैसी आकृति होती है, वैसी आकृति नेत्रगोलकोंकी है। इनमें छोटा अंश, जो सन्मुख मर्यादित प्रतीत होता है, वह शुक्लमण्डल (Cornea) से निर्मित होता है। इन दोनों नेत्रगोलकोंके भीतर एक-एक दृष्टिनाडी रहती है। एवं नेत्रगोलकोंके चारों ओर ६-६ मांसपेशियां लगी हैं।

इस नेत्रगोलकका व्यास (Diameter) उथान (Vertical) अर्थात् खड़ी पंक्तिमें २३॥ मिलीमीटर है, अनुप्रस्थ (Transverse) अर्थात् आड़ी पंक्तिमें नासिकाके कोनसे कर्णकी ओर रहनेवाले दूसरे कोने तक २४ मिलीमीटर है*।

*लगभग २५ मिलीमीटर का एक इंच होता है।

एवं अनुलम्ब (Anteroposterior) अर्थात् मोटाईका नाप भी २४ मिलीमीटर है। सामान्यतः जन्मके समय अनुलम्ब व्यास लगभग १७॥ मिलीमीटर होता है, और युवावस्थामें (१८ वर्षकी आयुमें) यह २० से २१ मिलीमीटर हो जाता है। स्त्रियोंमें ये तीनों व्यास कुछ कम होते हैं। १८ वर्षके पश्चात् भी व्यास बढ़ कर २४ मिलीमीटर हो जाता है।

ये नेत्रगोलक जिन नेत्रगुहाओंमें रहते हैं, वहां पर ये पतली श्लैष्मिक कलासे निर्मित दृढ़ गिलाफ (Sheath) के भीतर रहते हैं, उसे नेत्रबरकला कोष (Fascia bulbi or Capsule of Tenon) संज्ञा दी है। इसके बाह्य और आभ्यन्तर, ऐसे दो स्तर हैं। इन दो स्तरोंके भीतर लसीका रहती है। जिससे नेत्रगोलक अपनी चेष्टा सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

इन अक्षिगोलकोंमें सन्मुख भाग पारदर्शक (Transparent) और पश्चात् भाग अपारदर्शक (Opaque) है। इन नेत्रगोलकोंको निसर्गने इस तरह रखा है कि, चारों ओर गिरने या दबने पर भी सुरक्षित रह सकें।

इन अक्षिगोलकोंमें श्वेत पटल शुक्लमण्डल, मध्यपटल, कनीनिका, छाया-मण्डल, नेत्रदर्पण, दृष्टिमणि, पीतक्षेत्र दृष्टिक्षेत्र, दृष्टिनाडी, नेत्रश्लैष्मिक कला, अग्रिम जलधानी, पश्चिमा जलधानी, तेजोजल, सान्द्रजल, नेत्र चालनी पेशियां, अश्रुग्रन्थि, धमनी, शिराएँ, रसायनियां आदि आदि अवयव अवस्थित हैं, जो विविध जीवनोपयोगी महत्वके व्यापार और संरक्षण कार्य करते हैं।

अक्षिगोलक प्राचीर—दीवारमें ३ पटल या वृत्ति (Tunics) हैं—बाह्य, मध्य और अन्तर। इनके अतिरिक्त त्रिविध स्वच्छ वस्तु हैं—तनुजल (तेजोवारि), दृष्टिमणि और सान्द्र जल।

बाह्यपटल वहिर्वृत्ति—(External Tunic of the Eyeball)—यह दृढ़ स्नायु सूत्रोंमेंसे बना है। इसके दो विभाग हैं। श्वेतपटल और शुक्ल-मण्डल। इनमें श्वेत पटल नेत्रगोलकके पश्चिम ⅚ हिस्सेको आवृत्त करता है, और शुक्लमण्डल अग्रिम ⅙ हिस्से पर आवरण रूपसे रहता है।

शुक्लमण्डल (Cornea) यह कांच सदृश स्वच्छ है। यह श्वेत पटल के आगेकी ओर विभाज्य रूपसे संयोजित है। आपात दृष्टिसे देखने पर यह कृष्ण या गिहुल वर्णका प्रतीत होता है। इसमेंसे पीछेकी ओर रहे हुए कृष्ण वर्णके छाया मण्डलकी प्रतीति होती है। इस हेतुसे सामान्य जनता इसे भ्रमवश काले वर्णका मानती है।

शुक्लमण्डल और श्वेतपटलके तन्तु परस्पर मिले हैं। यथार्थमें श्वेत पटल इस शुक्लमण्डलको परिवेष्टित करता है। जिस तरह घड़ीके ऊपर लगा हुआ कांच नीचेके अंशसे आबद्ध रहता है, उसी तरह शुक्लमण्डल इस पटलमें लगा हुआ है।

यह गोलाकार है, और अति सूक्ष्म ४ स्तरोंसे बना है। यह स्वस्थावस्थामें रक्त-प्रणाली विहीन होता है। अत: परिवेष्टनसे अपना पोषण ग्रहण करता है।

श्वेतपटल—बाह्यपटल (Sclera sclerotic coat)—यह पटल घन स्नायुओंसे बना है और समग्र नेत्रगोलकको वेष्टन करता है। दृष्टि नाड़ी, शिरा और धमनीसे इसका पीछेकी ओर भेदन होता है जो कि, दृष्टि नाड़ी आदि तारामण्डलकी ओर गति करती है। इसके भीतरके अंशमें मांसपेशियां लगी हैं। इसी हेतुसे यह कड़ा रहता है। यह अक्षिगोलकके आभ्यन्तरिक अवयवोंका संरक्षण करता है। यह आगेकी अपेक्षा पीछेकी ओर स्थूलतर है।

मध्यपटल (Middle or Vascular Tunic of the Eyeball) यह पटल बाह्यपटलके अन्तरमें संसक्त है। यह पटल आन्तर पटलको धारण करता है। इसके तीन विभाग हैं—कनीनिका सहित तारामण्डल, सधानमण्डल (तन्तुसमूह) और कर्बुर वृति (मध्यपटल)।

तारामण्डल (Iris)—यह पतलेमण्डलाकार पेशीसूत्रोंसे बना है। यह संकोच विस्तारणशील है। इसके भीतर सूक्ष्म रक्तप्रणालियां अधिक रहती हैं। इसकी कृष्ण वर्णकी या क्वचित् भिन्न वर्णकी प्रतिछाया शुक्लमण्डल पर पड़ती है। जिससे उसका वर्ण श्याम दिखलाई देता है।

नेत्रके पीछेके ⅞ भागमें मध्यपटल और बाह्यपटल बिल्कुल संलग्न हैं। परन्तु आगेके ⅛ भागमें ये दोनों पृथक् हो जाते हैं। बाह्यपटल शुक्लमण्डलके हेतुसे मध्य-पटलसे कुछ दूरी पर रहता है। इस दूरी पर रहने वाले मध्यपटलके भागको ही तारामण्डल संज्ञा दी है।

कनीनिका (Pupil)—तारामण्डलके मध्यमें दैवकृत एक छोटा-सा विवर है, जो फैलता और सिकुड़ता है, उसे कनीनिका (पुतली) कहते हैं। इसमें तेजो रश्मियां और उज्वल वस्तुओंकी किरणें प्रवेश करती हैं। इस विवरका संकोच-विकास तारामण्डलके गोल इन्द्रधनुषके चक्रोंकी तरह पेशी तन्तुओंके संकोच-विकास द्वारा होता है।

इसे ढक देनेवाली पतली कनीनिकाच्छदनी कला (Membrane Pupillaris) जन्म लेनेवाले अनेक शिशु (सद्योजात पशुओंके बच्चोंमें भी) प्रतीत होती है, जो जन्मके पहिले या पश्चात् सत्वमेव विलीन हो जाती है।

इस तारामण्डलके भीतरकी ओर पूर्वमें रहा हुआ हिस्सा तेजोवारिसे पूर्ण है। इसे जलमय रसका पूर्व खण्ड और अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber) संज्ञा दी है। एवं इसके पश्चिमकी ओर दूसरा बड़ा खण्ड रहता है। जो नेत्रगोलकके ⅘ भागमें व्याप्त है उसे जलमय रसका पश्चिम खण्ड और पश्चिमा जलधानी (Posterior Chamber) संज्ञा दी है। दोनों जलधानियोंका सम्बन्ध कनीनिका द्वारा होता है।

इसके ऊपरकी ओर शुक्लमण्डल, नीचेकी ओर अग्रिमा जलधानी, पश्चिम भागमें पश्चिमा जलधानी और दृष्टिमणि तथा चारों ओर सन्धानमण्डल रहते हैं। इस कनीनिकामें दो प्रकारके पेशी सूत्र हैं। एक कनीनिका सङ्कोचक (Sphicter Pupillae) है, जो इसके चारों ओर गोल लगे हुए हैं। दूसरे कनीनिका प्रसारक (Dilator Pupillae) हैं, जो इसके चारों ओर चक्र नाभिमें अराके समान रहते हैं।

तन्तुसमूह—सन्धानमण्डल (Ciliary body—Corpus Cillare) यह मण्डलवाय और कर्बुर वृत्तिके मध्यमें रहता है, अर्थात् इस सन्धानमण्डल द्वारा दोनोंका सन्धान होता है। इसके तीन विभाग हैं—सन्धानवलयिका, सन्धानपेशिका और सन्धानदरिका।

सन्धानवलयिका (Orbiculus Ciliaris)—यह कर्बुर वृत्तिकी अग्रिमधाराका बन्धन करता है।

सन्धानपेशिका (Ciliary Muscles)—यह आगेकी ओर बाहरकी परिधिमें लगा हुआ है। इसके पेशीसूत्र शुक्लमण्डलमेंसे निकलकर कर्बुर वृत्तिमें मिल जाते हैं। दूसरे सूत्रसमूह सन्धानमण्डल और सन्धानदरिकाको जोड़ता है।

सन्धानदरिका तारामवर्द्धन (Ciliary Processes)—इसके तन्तु सन्धानमण्डलके पश्चिमकी ओर नागकेशरके पुष्पके केशराग्रोंके समान कर्बुर वृत्तिकी चारों ओर लगे हुए हैं। इन केशराग्रोंकी संख्या लगभग ७०-८० है। यह तारामण्डलसे पिछले भाग द्वारा पृथक् हो जाता है।

पारदर्शक सान्द्रजल (काचमय रस) नष्ट न हो जाय, इस हेतुसे सन्धानमण्डल और तारामवर्द्धन, ये बाह्य आवरण और मध्य आवरणको पृथक् करते हैं। फिर तारामवर्द्धन सबको सान्द्रजलधराकोष (Hyaloid Membrane) से वियुक्त करता है। इस तरह *सान्द्रजल और दृष्टिमणिको भी मध्यपटलके सन्मुख अंशसे पृथक* करता है।

सन्धानमण्डल और बाह्यपटलकी सन्मुख धारामें एक सूक्ष्म प्रणाली या सुरंग रहती है, यह अक्षिगोलककी समग्र परिधिको वेष्टन करके तारामण्डलमें प्रवेश करती है। इसे तन्तुमय सुरंग (Canal of Fontana or Ciliary canal) संज्ञा दी है।

कर्बुर वृत्ति—मध्यपटल (Choroid Coat) इस वृत्तिका वर्ण कबरा होनेसे इसे कर्बुर वृत्ति कहते हैं। यह नेत्रगोलक के भीतर ⅚ भागको आवृत्त करती है, और शुक्ल वृत्ति में मिल जाती है। इन दोनों के बीच में व्यवधायक (दोनोंको पृथक् करने वाली) और पतली, शिथिल वर्णद्रव्य (Pigment) प्रधान संयोजक-कला अवस्थित है। जिसे श्यामकला (Lamina Fusca) संज्ञा दी है।

इस कर्बुर वृत्तिका निर्माण दो स्तरोंसे होता है। पहिला स्तर बाह्य है, उसका वर्ण कपश है। उसमें ४ शिरायुक्त सिरा गुल्मिका (Venae Vorticosae), इतर शिराएँ और धमनी प्रतान (Arterioles) रहते हैं। द्वितीय स्तर आभ्यन्तर है। इसमें भी शिरा और धमनियोंके प्रतान और जालक (केशिका समूह Capill aries) हैं। इसकी स्थूल शिरा और धमनियां बाह्यपटलके मध्यभागका भेदन कर अन्दर बाहर फैल जाती हैं और उसका पोषण करती हैं।

इस कर्बुर वृत्तिमें तीसरी और पांचवीं शीर्ष नाडीके प्रतान (अनुशाखाएँ) तथा स्वतन्त्र नाडीप्रतान रहते हैं। तृतीय नाडीप्रतान कनीनिकाका सङ्कोच और स्वतन्त्र नाडीप्रतान कनीनिका का विस्तारण करता है, एवं पञ्चम नाडीप्रतान स्पर्श संज्ञाका बोध कराता है।

आन्तरपटल—नेत्रदर्पण (Retina)—यह नेत्रगोलक की अन्तरतम अति पतली वृत्ति है। यह आगेके ⅓ भागको छोडकर शेष समग्र नेत्रगोलकमें व्याप्त है। यह वृत्ति दर्शनेन्द्रियका प्रधान अंग है।

यह आगे की ओर मध्यपटलसे और पीछेकी ओर दृष्टिनाडी (Optic Nerves) के साथ लगा है। इसका विस्तार आगेकी ओर संधानमण्डल तक है। यह आन्तर पटल जीवितावस्थामें स्वच्छ और नीललोहित रङ्गका होता है तथा मृत्युके पश्चात् नेत्रगोलकके दबावका ह्रास हो जानेसे मलिन धूसर रंगका हो जाता है।

इस वृत्ति में दृष्टिनाडियोंके तन्तु फैले हुए हैं। यह दृष्टिनाडी नेत्रगोलककी अक्षरेखा (Axis) अर्थात् शुक्लमण्डल और आन्तरपटल आदिके मध्य बिन्दुको संयोजन करनेवाली रेखाका अनुसरण नहीं करती। दृष्टिनाडीका प्रवेश स्थान दृष्टिनाडी स्राव (सितबिम्ब-Optic Disc) में है। जो अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर शुभ्र और उसके चारों ओरका भाग कालासा दिखाई देता है।

इनके अतिरिक्त अक्षरेखाके स्पर्शस्थानके पार्श्व भागमें कुछ नीचे पीत बिम्ब रहता है, जो पूर्वोक्त परीक्षा कालमें प्रतीत नहीं होता।

इस अन्तर्दृष्टिकी आगेकी ओर फैली हुई धारा जो करपत्राग्र (हथेली) सदृश मोल है, जो कर्बुर वृत्तिकी अग्रधारासे लगी हुई है, उसे दन्तुर धारामण्डल (Ora Serreta) संज्ञा दी है। इसके आगे अनुमन्यसूत्र अति पतली कक्षा, जो तारा प्रवर्तन की पश्चिम आवरणकक्षा है, उसे वितानाग्रकक्षा (Pars Ciliaris Retinae) संज्ञा दी है।

इस पटलमें १० स्तर (पर्त) हैं। इनमेंसे नवमी वह दण्डशङ्कु (Jacob's Membrane or Layer of Roads and cones) की है। इसका सम्बन्ध दृष्टिके साथ अति निकटका है। यह पर्त पीछे से मोटी और जितना आगे बढ़े उतनी पतली होती जाती है। दशमी पर्त विविध वर्णों से बनी हुई होने से उसे रंजितस्तर

(Tapetum Nigrum of Pigmentary Layer) कहते है। इस पर्द पर विविध वर्णके चित्रोंके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं, और क्षण मात्र रह कर विलयको पाते हैं। इस कक्षाको प्राचीन आचार्योंने आलोचक पित्तधरा कला संज्ञा दी है। ये दोनों पर्द इतर आठ पर्दोंसे आच्छादित हैं। परन्तु इनमें स्वच्छता होनेसे प्रतिबिम्ब ग्रहण में प्रतिबन्धक नहीं होती।

पीतक्षेत्र (Macula lutea or yellow spot)—आन्तरपटलके पीछे ठीक बीचमें एक पीला अण्डाकृति स्थान है, उसे पीतक्षेत्र कहते हैं। और स्थानोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रमें देखनेकी शक्ति तीव्रतम है। इसका व्यास लगभग $\frac{1}{20}$ इञ्च है। इस क्षेत्रके बीचमें अधिक गहरे रंगका केन्द्रस्थान है, जो गड्ढे जैसा प्रतीत होता है। इसे दर्शन केन्द्र अथवा दृष्टि-नियन्त्रणगर्त (Fovea centralis) संज्ञा दी है। इस स्थान पर आन्तरपटल अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है।

जब किसी वस्तुकी ओर अपनी दृष्टि डालते हैं, तब गति उत्पन्न होकर, वह स्थान उस पदार्थके सम्मुख आजाता है। दृष्टिनाडीका सिरा (सित बिम्ब) या दृष्टिनाडीस्रात (Optic Disc or porus opticus) इस स्थानसे ३ मिली-मीटर अर्थात् $\frac{1}{8}$ इञ्च दूर नासिकाकी ओर रहता है। इसका व्यास लगभग १॥ मिली-मीटर है। इसे बिम्बाङ्कुरिका (Optic papilla) भी कहते। यह दृष्टिनाडीके मध्यमें रही हुई धमनी और शिराका प्रवेश स्थान है। इस स्थान पर प्रकाशके प्रभावका अभाव है; अर्थात् इस स्थान पर प्रकाशग्राही कोष (Cells) नहीं है। इस हेतुसे इसे अन्ध बिन्दु (Blind spot) संज्ञा भी दी है।

इस नेत्रगोलक गर्भमें त्रिविध स्वच्छ वस्तु रहती है—तनु जल (तेजो जल), दृष्टिमणि और सान्द्र जल। इसके आगे श्वेत चित्ते संयमूत शुक्लमण्डल रहता है। इन चारोंके समुदायको स्वच्छ वस्तु व्यूह (Transparent or Refracting Media) संज्ञा दी है। ये सब रूपवाली वस्तुओंके प्रकाश को किरणोंको ग्रहण करनेमें परस्पर सहायक हैं। शुक्लमण्डलमें संग्रहकी हुई किरणोंका कनीनिका पथसे प्रवेश होता है। फिर दृष्टिमणि द्वारा एकीकरण (Focussing) होता है। पश्चात् ये संग्रहीत रश्मियां ,सान्द्रजलका अतिक्रमण करके अन्तरपटलके अन्तिम (दशम) स्तर पर प्रतिबिम्बकी रचना करती हैं।

नेत्रगोलकमें देखने पर पहिला शुक्लमण्डल (Cornea) है। दूसरा तनुजल, यह पोषण योग्य कर्म करने वाला होने से प्रधान है। तीसरा दृष्टिमणि चौथा, पारदर्शक सान्द्रजल है इससे नेत्रगोलकका अधिकांश पूर्ण है। इसके अभावमें गोलककी आकृति नष्ट हो जाती है, और प्रतिबिम्ब ग्रहण भी नहीं होता।

तनुजल—तेजोजल (Aqueous Humour)—यह एक प्रकार का तरल पदार्थ है। जो दोनों नेत्रोंकी अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber)

और पश्चिमा जलधानी (Posterior Chamber) में रहता है। यह जल कुछ नमकीन-सा है। इसका परिमाण केवल २–३ रत्ती ही है। यह रक्तरस (Plasma) मेंसे बना है। यह तेजोजल दोनों नेत्रोंमें तन्तु प्रवर्द्धन (Ciliary Process) द्वारा पश्चात् कोष्ठमें पहुँचता है। यह अपने स्वरस द्वारा स्वच्छ मसुण्यूहका पोषण करता है। यह प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, और नूतन उत्पन्न भी होता रहता है। यह आमदनी बाह्य पटल और शुक्लमण्डल सन्धिके मध्यमें रही हुई अग्रिमा रसायनीके मार्ग द्वारा लसीकामेंसे होती है। इस जलको प्राचीन आचार्योंने तेजोजल संज्ञा दी है।

दृष्टिमणि (Crystalline Lens)—इसे *ताल संज्ञा* भी दी है। यह दोनों ओरसे उभरा हुआ अर्थात् युगल उन्नतोदर (Biconvex lens) है परन्तु आगेकी ओरकी अपेक्षा पीछेकी ओरका हिस्सा अधिक उभरा हुआ है। यह तारामंडलके पीछे और नेत्रगोलकान्तके मध्यमें रहता है। यह संधानमण्डल द्वारा बद्ध है। इसके आगे कनीनिकासहित तारामण्डल है। इस दृष्टिमणि और तारामण्डलके मध्यमें पश्चिम जलधानी है। पीछेकी ओर सान्द्रजलका पतला कलाकोष है। इसके उदरमें दृष्टिमणिके अनुरूप खात है। जिससे दृष्टिमणिका धारण होता है।

स्वस्थावस्थामें यह पूर्णरूपसे स्वच्छ रहता है। फिर आयुवृद्धि और रोगके हेतुसे धुँधला होता जाता है। इसकी लिङ्गनाश (मोतियाबिन्द Cataract) नामक मुख्य व्याधि है। इस तालके ऊपर एक पतला आवरण चढ़ा हुआ है उस स्तरको दृष्टिमणिकोष (Capsule of Lens) कहते हैं। इससे आगे फैले हुए परिधिवेष्टन कलाचक्र (Zonula Ciliaris or Zonule of Zinn) के स्नायु हैं, जो दो स्तरों द्वारा दृष्टिमणि बन्धनी (Suspensory Ligament of the Lens) की रचना करते हैं।

सान्द्रजल—काचरस (Vitreous Body)—यह दृष्टिमणिके पीछे स्थित है यह कोष्ठनेत्रके ४/५ हिस्सेमें स्थित है। यह नेत्रगोलकमें पश्चिमकी ओरसे नेत्रके वर्तुलाकारका रक्षण करता है। यह पारदर्शक कलासे बना है, जिसे सान्द्रजलधरा कोष (Hyaloid membrane) कहते हैं। इसमें पक्षियोंके अण्डेमें रहनेवाले तरल पदार्थ सदृश चिपचिपा रस-सान्द्रजल रहता है। इस रसमें जल ९८.६ प्रतिशत है। शेष अंशमें कुछ नमक और किंचित् प्रथिन (Protein) रहता है। इस रसके दबावसे नेत्रके तीनों पटल परस्पर मिले रहते हैं।

यह काचरस अन्तर पटलके अङ्कमें स्थित है, और आगेकी ओर अपनी गोदमें रहे हुए छोटेसे खड्डेमें नेत्रदर्पणको धारण करता है। इस खातको दृष्टिमणि खात (Fossa hyaloid or fossa patellar) संज्ञा दी है। इस सान्द्रजलके मध्यमें दृष्टिमणिके पीछेकी ओर दृष्टिनाडी प्रवेशस्थान तक एक पतली प्रणालिका

लसीका पूर्ण रहती है। उसे सान्द्रजलान्तरीया प्रणिका (Canalis Hyaloideus) संज्ञा दी है। यह गर्भस्थ शिशुओंकी कनीनिकाके आच्छादनको पोषण करने वाली धमनीका अवशेष रूप है।

सान्द्रजलधरा कला अन्तरपटलकी सीमा पर रही हुई कलाको चिपका हुआ है। इसका आगेका हिस्सा स्थूल कलाचक्र रूपसे नेत्रदर्पणकी परिधिमें प्रतीत होता है। इस कलाचक्रकी चारों ओर चक्रनाभिमें अराके सदृश सन्धानदर्शिकाके अंश लगे हुए हैं, इस कलाचक्रमेंसे दो स्तर निकले हैं। पहिला दृष्टिमणि-कलाकोषकी उभय ओर संलग्न है; तथा सन्धान-पेशिकाकी सहायतासे दृष्टिमणि बन्धनोंकी रचना करता है। दूसरा स्तर इसके पीछे दृष्टिमणि खातको आवृत्त करता है।

दृष्टि (Sight-Vision)—बाहरकी ओर दृष्टि डालने पर प्रकाशकी किरणें शुक्लमण्डल पर पड़ती हैं। फिर वे नेत्रके भीतर प्रवेशकर तेजोवारि, कनीनिका, दृष्टिमणि और सान्द्रजलमेंसे क्रमशः अन्तर पटलके अन्तस्तर (रंजितस्तर) तक पहुँचती हैं। फिर इसी पर वस्तुओंका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह प्रतिबिम्ब उलटा होता है, अर्थात् खड़े मनुष्यके पैर ऊपर और शिर नीचे होता है। परन्तु यह चित्र मस्तिष्कगत दृष्टिकेन्द्रमें मन द्वारा सीधा ही प्रतीत होता है। कारण मनका इसी तरह ग्रहण करनेका अभ्यास हो गया है। यह चित्र क्षणमात्र रहता है। उस समय प्रतिबिम्ब जितना साफ होता है, उतनी ही वस्तु स्वच्छ दिखाई देती है। इस प्रक्रियाका प्रभाव तत्काल नवम दण्डशङ्कु स्तर द्वारा विलोम क्रमसे होता है। प्रतिबिम्ब परम्परा जब दृष्टिनाड़ी (Optic Nerves) द्वारा मस्तिष्कमें रहे हुए दृष्टिकेन्द्रमें पहुँचता है, तब वस्तुके वर्ण, आकृति, लम्बाई, स्थान आदिका बोध होता है।

दर्शननाड़ी-दृष्टिनाड़ी (Optic Nerves)—दोनों नेत्रोंकी दृष्टि नाड़ी नेत्रके तीनों पटल और सितनिम्नका भेदन कर नेत्रके पीछेकी ओरसे प्रारम्भ होकर बृहद् मस्तिष्कमें गमन करती है। इस नाड़ीमें लगभग ५ लाख सूक्ष्म तार उपस्थित हैं। इस दृष्टिनाड़ीके सामान्यतः स्थान भेदसे तीन विभाग होते हैं १ दृष्टिनाड़ी; २ दृष्टिनाड़ी चतुष्पथ और ३ दृष्टिनाड़ी मूलिका (दर्शनप्रगंध)।

दोनों नेत्रोंकी दृष्टिनाड़ी नेत्रोंमेंसे निकल नासिकाकी ओर होकर पहिले मस्तिष्कके अधोभागमें चक्रास्थि (Sphenoid bone) के ऊपर दृष्टिनाड़ी परिखा (Optic groove) में गमन करती है। इस खाईके दोनों ओर एक-एक छिद्र है। इन छिद्रोंको दृष्टिनाड़ी रन्ध्र (Optic Foramen) संज्ञा दी है। इस खाईमें यहाँ दोनों नाड़ियोंका सम्मिलन होता है, उसे दृष्टिनाड़ी योजनिका और दृष्टिनाड़ी चतुष्पथ (Optic chiasma or commissure) संज्ञा दी है। यह स्थान पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary Body) के पीछेकी ओर अवस्थित है।

फिर यहाँसे यह नाडी दृष्टिनाडी मूलिका (Optic tract) नाम धारण कर दोनों ओर विरुद्ध दिशामें होकर बृहद् मस्तिष्कके पश्चात् खण्ड (Occipital lobe) के भीतर रहे हुए दर्शनकेन्द्रों (Visual centres) में प्रवेश करती है। इन दोनों केन्द्रोंका परस्पर सम्बन्ध रहता है, एवं ये नाडियाँ गतिक्षेत्र और लघु मस्तिष्कसे भी सम्बन्धित रहती हैं।

नेत्रश्लैष्मिक कला (Conjuctiva)—दोनों नेत्रोंके नेत्रच्छदोंके भीतर आवरणभूत पतली श्लैष्मिक कला अवस्थित है। यह प्रतिफलित होकर नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेको अर्थात् भाग्रावरणके सन्मुख अंश और शुक्लमण्डलको आवृत करती है। इसका कुछ भाग नेत्रपुटके भीतर है। शेष हिस्सा चक्षुमें बाहर प्रतीत होता है।

अग्रिमा जलधानी—जलमय रसका पूर्व खण्ड (Anterior chamber)—यह कोष्ठ शुक्लमण्डल और तारामंडलके मध्यमें स्थित है। यह तेजोजलसे भरा है।

पश्चिमा जलधानी—जलमय रसका पश्चिम खण्ड (Posterior chamber)—यह कोष्ठ पूर्व खण्डकी अपेक्षा छोटा है। इसमें तेजोजल रहता है। यदि इसमें से तेजोजल को निकाल दिया जाय, तो इसके अस्तित्वका निर्णय नहीं हो सकता। यह खण्ड तारामण्डल और दृष्टिमणिके आवरणके मध्य स्तरमें स्थित है।

नेत्रचालनी पेशियाँ (Oculo Motor Muscles)—दोनों अक्षिगोलकोंको चारों ओर घुमानेके लिये मुख्य मांसपेशियाँ ६-६ लगी हैं। ये पेशियाँ अक्षिगुहाके पीछेकी ओरसे निकलकर बाह्य पटलमें सम्मिलित हो गई हैं। इनमेंसे एक ऊपर, एक नीचे, एक भीतरके कोणकी ओर तथा एक बाहरके कोणकी ओर लगी हैं। ये चारों ही सरल पेशियाँ हैं। एवं एक ऊपर और एक नीचे मिलकर दो वक्र पेशियाँ हैं। इन पेशियोंके सकोचसे नेत्र चारों ओर घूमता रहता है। इनके अतिरिक्त नेत्रोन्मीलनी और नेत्र निमीलनी, दो गौण पेशियाँ अलग हैं।

इन अवयवोंके अतिरिक्त अश्रु ग्रन्थियाँ अश्रु स्थली, अश्रु वाहिनियाँ सिरा, धमनी, रसायनियाँ, भ्रू, अक्षिपक्ष्म, अपाङ्गियाँ, स्नायुसूत्र, स्पर्श संज्ञा ग्रहण कराने वाली चाक्षुषी नाडी (Ophthalmic Nerves), नेत्रचेष्टनी नाडियाँ (Oculo Motor Nerves) और इतर नाडियाँ आदि अवस्थित हैं।

मुख्य नेत्र व्याधियाँ

(१) दूर दृष्टिमान्द्य (Myopia or Short Sight)—जब नेत्रोंके गोलोंका क्षितिज अक्ष दीर्घ हो जाता है, और भ्रान्तर पटल दृष्टिमणिसे स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा अधिक दूर हो जाता है, तब दूरकी वस्तु ठीक तरह नहीं देखनेमें आती। इस हेतुसे दूर दृष्टिमान्द्य दोषकी सम्प्राप्ति होती है। किसी-किसी व्यक्तिकी दृष्टि जन्मसिद्ध निर्बल होती है। ऐसे रोगियोंको चेनकका उपयोग करना पड़ता है।

(२) निकट दृष्टिमान्द्य (Hypermetropia or Hyperopia)–कचित् दूर दृष्टिमान्द्यसे विरुद्ध विकृति हो जाने पर निकट दृष्टिमान्द्य विकार हो जाता है। यह व्याधि वर्तमानमें अनेकोंको हो जाती है। इसकी प्राप्ति होने पर रोगी छोटे अक्षरकी पुस्तक नहीं पढ़ सकता एवं छोटी-छोटी वस्तुओंको साफ नहीं देख सकता।

(३) जरासन्य दृष्टिमान्द्य (Presbyopia)–जिस तरह छोटी आयुमें दोष विकृतिसे निकट दृष्टिमान्द्यता हो जाती है, उसी तरह वृद्धावस्थामें दृष्टिशक्तिकी विकृतिसे भी दृष्टिमान्द्य हो जाता है।

(४) विषम दृष्टि (Astigmatish)–कचित् दृष्टिमणिके दोनों पृष्ठ बराबर उन्नतोदर नहीं होते। लम्बाक्षकी ओरका पृष्ठ क्षितिजाक्षके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। या इसके विपरीत क्षितिजाक्षकी ओरके पृष्ठ लम्बाक्षकी ओरके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। इस हेतुसे नेत्रदर्पण पर आलोकरश्मि पड़ने पर कोई-कोई अंश अस्पष्ट दिखलाई देता है।

(५) युगल दृष्टि (Spherical Aberration)–कचित् सामनेकी या पार्श्व भागकी प्रकाश किरण दृष्टिपटल पर एकत्रित नहीं हो सकती, तब दो-दो पदार्थ प्रतीत होते हैं।

(६) वर्णव्यभिचारी दृष्टि (Chromatic Aberration)–जिस तरह प्रकाशकी किरण किसी आतशी कांचके भीतरसे आने पर विविध वर्ण दिखाई देते हैं, उस तरह किसी कारणसे नेत्रदर्पणमें विकृति होनेसे पदार्थका रंग दूसरा ही (एक या अनेक) प्रतीत होता है।

(७) अर्द्ध दृष्टि (Half Vision or Hemianopsia)–दृष्टि केवल कुछ अंश नष्ट हो जानेसे दृष्टि दोषवती बन जाती है। इसे चेष्टांशनाशक दृष्टि भी कहते हैं।

अतिरिक्त व्याधियाँ—

१—वक्रदृष्टि (Strabismus)
२—नक्तान्ध्य (Nyctalopia or night blindness)
३—दिवान्ध्य (Hemeralopia or doy blindness)
४—प्रकाशकी असहनता (Photophobia)
५—तारामण्डलका निर्गमन (Prolapse of Iris)
६—अर्म अर्थात् बेल (Pterygium)
७—शुक्लमण्डल प्रदाह (Keratitis)
८—तारामण्डल प्रदाह (Iritis)
९—मध्यपटलप्रदाह (Choroiditis)

१०—लिङ्गनाश अर्थात् मोतियाबिन्द (Cataract)

११—नेत्रमें दबाव वृद्धि अर्थात् अधिमन्थ (Glaucoma)

१२—नेत्र श्लैष्मिककलाप्रदाह (Conjunctivitis)

१३—नेत्र श्लैष्मिककलाका पूयप्रदाह (Purulent Conjunctivitis)

१४—पोथकी, दानेदार श्लैष्मिककलाप्रदाह या रोहे (Granular Conjunctivitis)

१५—जन्मकालमें पूयप्रदाह (Ophthalmia Neonatorum)

१६—अश्रु आशय नाडीव्रण (Lachrymal Fistula)

इनके अतिरिक्त नेत्रके पुट, पक्ष्म आदिमें अञ्जन नामिका (Sty) पक्ष्मकोप (Trichiasis) नेत्रपुटप्रदाह (Blepharitis), नेत्रच्छदका अन्तरावर्त्तन (Entropion), नेत्रच्छदका बहिरावर्त्तन (Ectropion), निमेष अर्थात् नेत्रपुटका आक्षेप (Blepharospasm) आदि आदि, विकारोंकी संप्राप्ति होती है।

जब तक नेत्रमें शुक्लमण्डल, तेजोवारि, कनीनिका, दृष्टिमणि और काचरस आदि स्वच्छ और स्वस्थ रहते हैं, तब तक हमें पदार्थ ज्ञान यथोचित होता है। जब इनमेंसे किसीमें भी विकृति हो जाती है, तब उतने अंशमें दृष्टि विकृत हो जाती है। इन सबका विशेष विचार नेत्ररोगविज्ञान के भीतर किया गया है।

(१००) क्षोभोत्पादक।

उग्रता साधक—इरिटेन्ट्स—Irritants

जो द्रव्य त्वचापर क्षोभ उत्पादन कर तथा रक्ताभिसरणमें उत्तेजना लाकर वेदनाको शमन करें उनको क्षोभोत्पादक संज्ञा दी है, वे सब स्थानिक क्रिया निमित्त प्रयोजित होती हैं, इनमें चार प्रकार हैं।

१ त्वक् प्रदाहक (रुबिफेसीएन्टस Rubefacients)।

२ स्फोटोत्पादक (वेसिकन्ट्स-वेसिक्योरिज-एपिस्पेस्टिक्स Vesicants Vesictories Epispastics)।

३ पूयोत्पादक (पस्च्युलन्ट्स Pustulants)।

४ तीव्रदाहक-एस्कारोटिक्स-कास्टिक्स Escharotics-Caustics)।

उक्त चारों प्रकारकी औषधियां क्षोभोत्पादक होनेसे एक ही प्रकारका कार्य करती हैं। केवल तारतम्य प्रभेद है। सौम्य औषधि भी अधिक देर तक देह पर लगी रहे, तो प्रबलतर क्रिया प्रकाशित करती है। एवं प्रबल औषधि भी स्वल्प काल तक प्रयोजित होनेपर मृदु कार्य करती है।

(१) त्वक् प्रदाहक औषधियाँ—शोणितोत्क्लेशक इन औषधियोंके प्रयोगसे रक्तावेग होकर त्वचा लाल हो जाती है। यह लाली स्वल्प कालस्थायी है, बहुधा कुछ मिनिटोंमें ही शमन हो जाती है, क्वचित् कुछ दिनों तक भी रह जाती है।

नौसादर मिश्रित द्रव, कपूर, शराब, राई, सरसों, सोंठ, तुख्मुख, लालमिर्च, कालीमिर्च, पीपल, लहसुन, अजवायन, लौंग, दालचीनी, चित्रकमूल, नागरवेलका पान, आकका पान, समुद्रशोषका पान, कायफल, पीलू, जायफलका तैल, रोहिष तैल, नीलगिरि तैल, विंटरग्रीन तैल, टार्पिन तैल, पिपरमैण्ट तैल विविध बातहर तैल आदि। इन औषधियोंकी त्वचा पर मालिश या लेप करनेसे प्रदाहकी उत्पत्ति होती है, जिससे खुजली नष्ट होती है।

शोथरोगमें ऊर्ध्वाभिमुख घर्षण करनेसे बहुत अंशमें रस दूर हो जाता है, और त्वचाका खिंचाव कम हो जाता है। इस तरह मालिश और घर्षण से लसिकाके सञ्चालनमें वृद्धि होती है और मांसपेशियोंमें से त्याज्य पदार्थ (मल) सार्वाङ्गिक रक्तसञ्चालनमें प्रवेशित हो जाता है तथा श्रमाधिक्यजन्य थकान भी दूर हो जाती है।

पीठमें मालिश करनेसे वातवहा नाड़ियोंकी उत्तेजनाका शमन होता और निद्रा आजाती है।

संधियोंके तीव्र प्रदाहका उपशमन होनेपर उत्तेजक तैलकी मालिश करनेसे शिथिलता और विकृति दूर होकर स्वस्थावस्थाकी प्राप्ति होती है।

वातशूलयुक्त स्थानमें राईका लेप लगानेसे प्रदाह होकर शूल नष्ट हो जाता है। वातवहा नाड़ियोंकी निर्बलतामें पीठ पर सरसोंके तैलका मर्दन कराया जाता है। यदि वातवहा नाड़ियोंकी उग्रतासे निद्रा न आती हो, तो ग्रीवाके पीछे राईका प्लास्टर लगानेसे यथेष्ट उपकार होजाता है। यह लेप अति उग्र होनेसे अफीम आदिके विषप्रकोपमें मूर्च्छाग्रस्त व्यक्तिको जागरित करनेके लिये भी व्यवहृत होता है।

फुफ्फुसप्रदाह ज्वरकी निवृत्ति होनेपर फुफ्फुसकी दृढ़ता (Consolidation) रह जाय, तो उस भाग पर राईका प्लास्टर लगानेसे प्रदाहजनित द्रव पदार्थका शोषण हो जाता है। फुफ्फुसकी दृढ़ता होनेपर फुफ्फुसावरण या हृदयावरणमें रसोत्पादन होता है, वह भी राईके प्लास्टरसे शोषित हो जाता है। इसी तरह राजयक्ष्माके प्रारम्भिक स्थानों पर इस लेपका प्रयोग करनेसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

सामान्यतः प्रदाहग्रस्त होनेपर रक्तसञ्चालनमें वृद्धि होती है परन्तु प्रदाह और रक्तसञ्चालन वृद्धि, उभयमें पूर्णांशमें भिन्नता है। शरीरके उपादानके किसी भी तन्तु (Tissue) को क्षति पहुँचने पर वहां प्रदाह होती है और इसी प्रदाह रूप क्षतिके पूरणार्थ रक्तसञ्चालनमें वृद्धि होती है।

किसी स्थान या अङ्गमें क्रियाधिक्य होनेपर वहां क्रियाके अनुरूप रक्तसञ्चालनकी भी वृद्धि होती है। ग्रन्थियोंके स्राव या विकृति संस्कार होनेके लिये रक्तसञ्चालनकी अधिकता होती है। इस तरह ग्रन्थियोंकी सम सन्धियोंके चिरकारी प्रदाह या क्षतमें घर्षण, मर्दन, लेप या फाया उत्पादक प्रयोग करने पर वहां सञ्चालित रक्तके परिमाणमें वृद्धि होकर कार्य सफल होता है।

आशुकारी प्रदाहमें रक्तसञ्चालनमें अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, और साथ साथ प्रदाहयुक्त स्थानकी रक्तवाहिनियोंमें अत्यधिक उत्तेजना आ जानेसे अतिशय वेदना उपस्थित होती है। फिर प्रदाहयुक्त स्थानमें रक्तके वेगका ह्रास कराने पर वेदना उपशम हो जाती है। जैसे उँगली पर काँटा या सुईसे बिंध जाने अथवा इतर प्रकार का आघात होनेसे उँगली पर प्रदाह होता है। फिर हाथ नीचा रक्खा जाय, तो रक्तवहा नाड़ियोंके आघात के साथ वातवहा नाड़ियोंमें भी कष्टदायक पीड़ा होने लगती है और हाथको ऊँचा रक्खा जाय, तो रक्तदबावमें कमी होकर पीड़ामें भी न्यूनता होने लगती है। इसके अतिरिक्त प्रदाह युक्त स्थानसे सम्बन्ध वाली बाहुकी धमनी पर दबाव डालने या कपड़ा बाँधनेसे और उँगलीको शीतल जलमें डुबो रखनेसे भी धमनी संकुचित हो जाती है। फिर रक्तका वेग कम होकर लाभ पहुँच जाता है।

इस तरह उष्ण पुल्टिसका प्रयोग करने पर भी वेदना शमन हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रदाहग्रस्त स्थानमें रक्तवाहिनियोंके भीतर रक्तसंचालन स्थगित या मन्द हो जाता है, वहां पर पुल्टिस बांधनेसे उत्ताप द्वारा केशिकाएँ प्रसारित हो जाती हैं, और प्रदाहग्रस्त धमनीमेंसे रक्तस्रोत अन्यत्र संचारित हो जाता है। इस तरह गौण या प्रासंगिक रक्तसञ्चालन (Collateral Circulation) क्रियाका प्रारम्भ हो जानेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है।

त्वचाके किसी स्थान पर क्षोभोत्पादक औषधि प्रयोग करने पर उस स्थानकी रक्तवाहिनियां प्रसारित होती हैं। फिर लाली उपस्थित होती है और अन्य स्थानकी रक्तवाहिनियां आकुञ्चित होती हैं। इस कारणसे आभ्यन्तरिक यन्त्रके प्रदाहमें ब्लिस्टर पुल्टिस, सेक आदि उपकारक होते हैं।

यदि प्रदाहयुक्त स्थानके बिल्कुल निकटमें ब्लिस्टर प्रयोग किया जाय तो रक्तसंग्रहका ह्रास नहीं होता, परन्तु वृद्धि होती है। जिससे इस प्रयोग द्वारा उपकार नहीं होता, बल्कि अपकार होता है। परन्तु हृदयस्थानके लिये यह नियम नहीं है। हृदयावर कलाकोषके विकारमें हृदावरणके ऊपर ब्लिस्टर बहुधा निषिद्ध है किञ्चित् दूरीपर ही प्रयोग किया जाता है।

(२) स्फोटोत्पादक औषधियाँ—जिन प्रबल क्षोभोत्पादक औषधियोंकी क्रिया होने पर रक्त रस (Plasma) उत्पन्न होकर उपत्वक् (Epidermis) के नीचे सञ्चित होता है, और फिर फाला हो जाता है। वे औषधियां स्फोटोत्पादक कहलाती हैं। यथाहि राई का लेप, राईका तैल, जमालगोटेका तैल, जलकी वाष्प, इन्द्रायणके पत्ते, चित्रकमूलकी छाल आदि।

जीर्णसंक्रमणकी सन्धियोंसे निःस्राव रस शोषणार्थ अथवा इसके चारों ओर अधिक कालस्थायी स्थूलता लानेके लिये फाला उत्पादक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

तीव्र वातरोगमें प्रदाहयुक्त सन्धिके चारों ओर यह प्रयोग करनेसे पीड़ा और ज्वर दोनोंकी निवृत्ति हो जाती है।

वातमहानाड़ियोंके शूलजनित वेदनास्थानमें इस प्रयोगसे उपकार होता है। पार्श्वदेश या वक्षःस्थलके वातशूलमें कोई-कोई समय कशेरुकाके किसी स्थान विशेषमें वेदना प्रतीत होती है। उस पर इस औषधिका प्रयोग करनेसे रोगका उपशमन हो जाता है। हृदावरण या फुफ्फुसावरणके प्रदाहमें वक्ष पर ब्लिस्टर लगानेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है। अनेक बार पथरीजन्य शूलमें ब्लिस्टर लगानेसे विशेष फल प्राप्त होनेका अनुभव मिला है। एवं आमाशयकी उग्रता बढ़ जाने पर जब वमनका शमन इतर प्रयोगोंसे नहीं होता, तब राईका प्लास्टर लगानेसे सत्वर लाभ हो जाता है।

मस्तिष्ककी विविध पीड़ा—भयानक शिरदर्द, मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis) और मस्तिष्कमें जलसंचय (Hydrocephalus) आदिमें मस्तिष्कस्थ गोस्तन प्रवर्धनक (Mastoid Process) के निम्न प्रदेश पर फाला उठानेसे उपकार होता है। हिस्टीरिया जन्य किसी अङ्गका पक्षाघात होने पर उसी स्थान पर तथा हिस्टीरियाके हेतुसे होनेवाले स्वरलोपमें स्वरयन्त्रके ऊपर ब्लिस्टर लगानेसे लाभ पहुँच जाता है।

(३) पूयोत्पादक औषधियाँ—ये औषधियाँ प्रयोगस्थानकी सब त्वचापर आक्रमण नहीं करतीं, परन्तु कुछ-कुछ अन्तर पर अथवा उसस कर क्षुद्र-क्षुद्र पूयपिटिकायें उत्पन्न कराती हैं, जैसे—जमालगोटेका तैल, मिलावेका तैल, थूहरका दूध आदि।

इस प्रकारकी औषधियोंके प्रयोगसे केशिकाओं (Capillaries) की दीवारोंमें श्वेताणु (Leukocytes) प्रवेश कर जाते हैं। फिर वे फफोलेमें सञ्चित होकर पूयोत्पत्ति करा देते हैं।

जीर्ण प्रदाहमें दीर्घकाल तक किञ्चित उग्रताको कायम रखनेके लिये पूयोत्पादक प्रयोग किया जाता है। संयोजक कला या श्लैष्मिक कलाका जीर्णप्रदाह, चिरकारी कफ कफकास, अरस्तोम और क्वचित् राजयक्ष्मामें जमालगोटेके तैलका लेप करानेसे पूयोत्पत्ति होकर लाभ पहुँच जाता है।

(४) सीमदाहक (दारुण) औषधियाँ—ये औषधियाँ प्रयोग स्थानके समस्त विधानको जलाकर नष्ट कर देती हैं। अनेक प्रकारके तेजाब, सज्जीखार, चूना, तीव्र क्षार, सोमल, नीलाथोथा आदि। त्वचा और श्लैष्मिक कलामें चर्मकील या मांसवृद्धि (Polypus) आदिको नष्ट करने तथा अधिक अंकुर और पीड़ा वाला व्रण होने पर चूना, यवक्षार, सोमल, तीव्रक्षार, तेजाब और नीलाथोथा आदि दाहक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। अनेक बार विषपीड़ित स्थान और

घातक कीटाणु युक्त स्थानमें विकारकी वृद्धिको रोकनेके लिये तेजाब या तपाये हुए लोहेसे जलाया जाता है।

इस तरह जीर्ण अपस्मार, जीर्ण शिरदर्द, पागल कुत्तेका दंश, आदि रोगोंमें भी इस प्रकारकी जलाने वाली औषधियां (क्षारमिश्रित मरहम आदि) लगायी जाती हैं। स्वेद, पुल्टिस, दम्भ क्रिया (दाग देना), स्फोट (फाला उठाना, ब्लिस्टर प्रयोग और क्षार प्रयोग), ये सब प्रयोग क्षोभोत्पादक हैं। इनका विवेचन 'चिकित्सा तत्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ४८ से ५७ तक और ११७ से १२५ तक किया गया है।

क्षोभोत्पादक प्रयोग हेतु—

(१) समस्त शरीरमें उत्तेजना लाना। ब्लिस्टर लगानेसे प्रयोग स्थानमें प्रदाह होकर सारे शरीरमें उत्तेजना आती है। यथा ज्वर आदि रोगमें जीवनीय शक्ति अवसन्न होनेपर उसे इस प्रयोगसे उत्तेजित की जाती है।

(२) शोषक शिराओंकी क्रिया वृद्धि। ब्लिस्टर लगाने पर शोषक शिरायें उत्तेजित होकर क्रिया सत्वर करने लगती हैं। इसलिए विविध प्रदाहजनित सप्रदोष रसशोषणार्थ और शोथके रसरक्तको फैला देनेके लिये प्रयोग किया जाता है।

(३) प्रतिक्षोभोत्पादक—इस उद्देश्यसे आभ्यन्तरिक विविध स्थानोंके प्रदाहमें इस प्रयोगका आश्रय लिया जाता है।

(४) दोहन—ब्लिस्टर लगाकर स्फोट होने पर उसकी त्वचा निकाल लेनेसे व्रणमेंसे रस निकलने लगते हैं, जिससे दोहन (दोष निवारण) की सिद्धि होती है। अनेक प्रकारके आभ्यन्तरिक जीर्ण प्रदाहमें यह विशेष उपकार दर्शाता है।

(५) अन्तर त्वचा-वेध (Endermic Method) इस प्रकारमें पहिले स्फोट उठाकर फिर उसमें औषधि लगाई जाती है। इस तरह प्रयोग करने पर औषधि सत्वर शोषित होकर क्रिया दर्शाती है। जिन औषधियोंकी क्रिया अति उग्र हो, उनका प्रयोग इस तरह नहीं किया जाता। अफीम आदि उद्भिद् औषधियोंके सत्वोंका इस तरह व्यवहार किया जाता है। औषधका सूक्ष्म चूर्ण व्रण पर लगाया जाता है, या मरहम रूपसे लेप किया जाता है। वमनके निवारणार्थ उदरकी त्वचा पर अफीम सत्वका इस तरह प्रयोग करनेसे तत्काल फल प्रतीत होता है। जीर्ण आमवात और वात शूल (Neuralgia) में वेदनास्थान पर इसी तरह अफीम सत्वका प्रयोग किया जाता है।

(६) विविध काल्पनिक वेदना निवारण—हिस्टीरियामें अनेक स्थानोंमें काल्पनिक वेदना उपस्थित होती है। ब्लिस्टर लगाने पर स्फोट उत्पन्न होनेपर इनका निवारण होता है।

सूचना—(१) प्रदाहका प्रारम्भ होने पर तुरन्त या प्रदाहकी उग्रता ह्रास होनेके पहिले ब्लिस्टरकी औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) स्तन, वृषण आदि कोमल स्थानोंमें और जिस स्थान पर हड्डी ऊँची उठी हो, वहां पर स्फोट नहीं उठाना चाहिये।

(३) क्षोभोत्पादक प्रयोगकी औषधि आठ घण्टे मात्र रखना निष्फल है। बच्चोंके लिए ब्लिस्टर लगानेमें त्वचा लाल हो, तब तक रखना चाहिये। फिर ब्लिस्टर उठा उस स्थान पर गरम पुल्टिस बाँध देनेसे २-३ घण्टेमें फाला हो जाता है। यदि ब्लिस्टर अधिक देर तक रक्खा जायगा, तो त्वचा कोमल होनेके हेतुसे अत्यन्त प्रदाह हो जाता है, फिर कभी-कभी त्वचा भी गलकर पक जाती है।

(४) ब्लिस्टरके व्रणको जल्दी सुखानेके लिये स्फोटको कुचल न देवें। यदि कुचल दिया हो, तो भी त्वचाको न निकाल देवें।

(५) स्वरयन्त्रप्रदाहमें ब्लिस्टर न लगावें।

(६) सगर्भावस्थामें स्तन आदि भाग पर ब्लिस्टरका प्रयोग बिल्कुल निषिद्ध है।

(७) रक्तपित्त (Scurvy-स्कर्वि और इतर प्रकार) होने पर ब्लिस्टर लगानेसे त्वचा पक जानेकी भीति रहती है।

(८) गृध्रसी और कटित्रिकोष्ठ प्रदेशके शूलमें ब्लिस्टर पैरके टखने पर लगानेसे विशेष लाभ होता है।

(१०१) प्रति क्षोभोत्पादक।

प्रत्युग्रतासाधक—प्रतिदाहक-प्रतिक्षोभक-काउन्टर इरिटेन्ट्स।

Counter Irritants.

जिन उग्रतासाधक औषधियोंकी क्रिया प्रतिफलित हो अर्थात् एक स्थान पर प्रयोजित औषधिका परिणाम इतर सम्बन्ध वाले स्थान पर प्रकाशित हो, ऐसे प्रयोगोंको प्रत्युग्रतासाधक कहते हैं। प्रयोग भेदसे इनके ३ प्रकार हैं।

१ त्वक्प्रदाहक (Rubefacients)

२ स्फोटोत्पादक (Vesicants)

३ दोषाकर्ष (Revulsives or Derivatives)—आक्रान्त स्थानसे रक्तको स्थानान्तरित कराने वाली औषधियां।

इन प्रत्युग्रता प्रयोगोंकी क्रिया आभ्यन्तरिक यन्त्रमें वातवहा नाड़ियों द्वारा प्रतिफलित होकर और रक्तसञ्चालनमें परिवर्तन कराकर कार्य करती है।

शरीरमें जो अंश या यन्त्र साक्षात् सम्बन्धसे त्वचासे संयुक्त हों, उनके रक्तसञ्चालनका ह्रास कराने या प्रदाहका शमन करानेके लिये प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोग किया जाता है। यथा फुफ्फुस आवरणप्रदाह, फुफ्फुसावरणप्रदाह, यकृत्प्रदाह आदि रोगोंमें ब्लिस्टर प्रयोग किया जाता है।

जीवित शरीरमें नैसर्गिक नियमानुसार रक्त और वातवहा नाड़ियोंके परिमाण और बल निश्चित मात्रामें रहते हैं। यदि किसी कारणवश किसी स्थान विशेषमें रक्तके परिमाण और वातवहा नाड़ीकी शक्तिका अधिक संचय हो जाय, तो इतर स्थानके वातवहा नाड़ियोंकी शक्तिमें ह्रास हो जाता है। इसलिये इतर सब स्थानोंमें क्रिया मन्द हो जाती है।

इस नियमानुसार यदि किसी स्थानमें वेदनाके हेतुसे रक्त और वातवहा नाड़ियोंकी शक्ति संग्रहीत हो जाय, तो उसके निकटस्थ किसी स्थान पर औषध प्रयोग द्वारा रक्त और वातवहा नाड़ियोंकी शक्तिका आकर्षण कर लेने पर पीड़ित स्थान स्वस्थ हो जाता है। मिर्च आदिका लेप और राई आदिके ब्लिस्टर द्वारा आभ्यन्तरिक प्रदाह और पीड़ाके निवारणमें यही हेतु है।

क्वचित् इसके विपरीत परिणाम भी देहमें प्रतीत होता है। जैसे शीतकालमें देहसे सहन हो सके उतनी शीत लगने पर त्वचामें रहा हुआ रक्त और वातवहा नाड़ियोंकी शक्ति आन्तरिक अन्त्र आदिमें प्रवेश कर रक्ताधिक्य और उष्णताकी वृद्धि कराते हैं।

ऊर्ध्व जत्रुगत विकारोंमें हाथ या कपड़ पर दम्भ क्रिया करनेसे तीक्ष्ण वेदना शमन हो जाती है। वाम वृषण पर शोथ आनेसे दक्षिण पैरके अंगुष्ठकी शिरा पर और दक्षिण वृषण पर शोथ आने पर वाम पैरके अंगुष्ठकी शिरापर तप्त शोहशलाकासे दाग देनेसे लाभ पहुँच जाता है। अर्श रोगमें दहिने हाथकी अनामिका पर गेंडेके चमड़े या अष्ट धातुकी अंगूठी पहननेसे दबाव आकर एवं वस्तुप्रभावसे रोग दमन हो जाता है।

आशुकारी तीव्रप्रदाहमें जब प्रदाहजनित रस आदिका पुनः शोषण रूप उद्देश्य हो, तब यह प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोग व्यवहृत होता है। फुफ्फुसावरणमें संचित तरलका शोषण करनेके लिये बाह्य त्वचा पर किया हुआ लेप इस नियमानुसार कार्य करता है। परन्तु जब रक्त संग्रहीत हो जानेसे रक्तसंग्रहका ह्रास कराके वेदना निवारण कराना इष्ट हो, तब इस प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोगका व्यवहार नहीं होता।

मस्तिष्क और सुषुम्नास्थित यातायातकारी (Traffic) और रक्तप्रणाली संचालक (Vaso Motor) वातवहा नाड़ीकेन्द्र द्वारा प्रतिफलित क्रियाके प्रभावसे प्रयोग स्थानके समीप या चर्मके नीचे विकार वृद्धि (Morboid growth) के शोषण होनेमें सहायता मिले, इस उद्देश्यसे इस प्रतिक्षोभक औषधिका प्रयोग किया जाता है। यथा संधिस्थानोंके गह्वरोंमें चिपचिपे रसस्रावजन्य रसकलाप्रदाह (Synovitis) और फुफ्फुसावरणमें रसोत्सर्जन होने पर यथा स्थान बार-बार छोटे-छोटे ब्लिस्टर (Flying Blister) और ग्रन्थिके प्रसादनार्थ लेप प्रयोजित किया जाता है। मूत्राशयमें अश्मरी या पित्ताशयके निर्ममनसे उत्पन्न या वातवहा नाड़ीशूलसे

उत्पन्न वेदनाके निवारणार्थ तथा हिस्टिरियामें नाड़ी केन्द्रकी क्षमता दमनार्थ प्रयोजित होता है।

इस तरह यह प्रयोग बेहोशी, मादक औषधिसे तथा उत्पन्न और आशुकारी अज्ञातकारणजन्य (Idiopatbio) ज्वर और प्रवाहिक ज्वरकी अचेतनावस्थामें केन्द्रसे सम्बन्ध वाली वाहनाडियोंको उत्तेजित करनेके लिये विशेष फलप्रद है। एवं कटित्रिकोण प्रदेशमें शूल (Lumbago) चलने और विसूचिकामें मांस-पेशियोंका खिंचाव (Cramps) होने पर राईका प्लास्टर लगाया जाता है।

क्वचित् रोगस्थान पर क्षोभोत्पादक प्रयोग करके विकारको स्थानान्तरित कराया जाता है। जैसे आमवातमें पैर या पैरोंके अंगुष्ठ पर राईका लेप लगानेसे विकार इतर स्थान पर चला जाता है। इस तरहके प्रयोगोंको दोषाकर्षण (Revulsives or Derivatives) संज्ञा दी है।

इतर गुणप्रदर्शक विभाग।

उपरोक्त १०१ गुणप्रदर्शक भागोंके अतिरिक्त प्रमेहहर, पूयमेहहर (Antigonorrheics), मूत्रस्रावरोधक (Antidiuretics) अश्मरीनाशक (Antilithics-Lithontriptics), फिरंगहर (Antisyphylitics) क्षयहर (Antituberculars), रक्तपित्तनाशक (Antiscorbutics), भ्रमनाशक (Antidinics), केशरञ्जक, केशरक्षक (Hair dye-Hair blackeners), केशघ्न (Depilatories), गर्भ स्थापक, गर्भपातक (Abortifacients ,) गर्भोत्पादक (Impregnation), संततिनिरोधक (Birth-controllers) आह्लादजनक (Exhilarants), मूर्च्छाहर, कर्णेन्द्रिय पर कार्यकर, घ्राणेन्द्रिय पर कार्यकर तथा परस्पर विरोधी औषधियाँ (Antagonists) आदि-आदि विभाग हो सकते हैं।

ऊपर अश्मरीनाशक औषधियां कही हैं उनमें जो अश्मरीकी उत्पत्तिको रोकती हैं उनको आंटिलिथिक्स और मूत्राशय आदिमें उत्पन्न शर्करा, सिकता या अश्मरीको पिघला कर नष्ट करती हैं, उनको लिथोन्ट्रिप्टिक्स संज्ञा दी है।

मूत्रावरोधकके साथ कितनीही मूत्रअल्पतापूर्ण यूरिन डिमिनिशर–Urine diminisher) औषधियां भी हैं। उदाहरणार्थ, अफीम, जलदमयन्, तगर, जामुनकी छाल, आमकी छाल, पीपलवृक्षकी छाल, पिलखनकी छाल, बेंतकी छाल, गूलरकी छाल, बेलछाल, बेलपत्र, सिंघाड़े, कचनारकी छाल आदि ये सब मूत्रका ह्रास करती है।

विपाक

> जाठरेणाग्निना योगाद् यदुदेति रसान्तरम्।
> रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥

जठराग्निके सम्बन्धसे खाये हुए अन्नके मधुर आदि रसोंका पाक होकर जो रसान्तर (रस विशेष) उत्पन्न होता है, उसे विपाक संज्ञा दी है।

आयुर्वेदके मत अनुसार सेवन किये हुए आहारका पाक द्विविध होता है। १ अवस्थापाक (आहार पाक, २ निष्ठापाक (विपाकधात्वग्नि पाक)। अवस्था पाकको नव्य चिकित्सा शास्त्रकी मर्यादा अनुसार भौतिक और रासायनिक रूपान्तर (Transformation or Physical and Chemical Changes) तथा विपाकको पचनक्रियाके अन्तमें उत्पन्न सत्त्वरूप रसद्रव (Final Product of digestion) नाम दिया है। यह रस सिरामें प्रविष्ट होकर रक्तके साथ मिलकर हृदयमें गमन करता है।

अवस्थापाक—खाया हुआ जो अन्न मुखमेंसे आगे कण्ठ (अन्ननलिका और अन्ननलिका), आमाशय और पक्वाशयमें गति करता है। वह प्राणवायुके बलसे कोष्ठमें पहुँचता है, उसमें क्लेदक कफ सम्मिलित होता है जिससे उसका संघात नष्ट होता है। मंथन क्रिया द्वारा छोटे कण बन जाते हैं, तथा कफकी स्निग्धताके हेतुसे वह मृदु भी बनता है। यदि योग्य मात्रामें पथ्य आहारका सेवन हुआ हो तो आयुकी वृद्धि करने (शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धिको पुष्ट बनाने) के लिये उसका उपयोग होता है। पहिले मधुर रसमेंसे झाग सदृश मलरूप कफकी उत्पत्ति होती है। फिर आमाशयके भीतर पाक कालमें और अन्तमें जानेके समय विदग्धावस्थामें पक्व अपक्व अम्ल होनेवाले रससे मलरू [illegible] की उत्पत्ति होती है, तथा अन्तमें पक्वाशयमें प्रविष्ट आहारमेंसे जठराग्निसे शोष्यमाण और पाक होकर जो पिण्डी भावको प्राप्त होता है, उस आहारमेंसे उद्भूत कटु रससे मलरूप वातकी उत्पत्ति होती है। इस तरह षड्रसमें आहारसे त्रिविध अवस्था (आम, पच्यमान और पक्वावस्था) पाक होते हैं। धातु और मल, इन दोनोंके स्वरूपमें कुछ अन्तर है। खाये हुए अन्नका परिपाक होनेपर किट्ट और सारभाग पृथक् होता है। उनमें जो सारभाग है, वह रसधातु (इस रसधातुमेंसे पुनः धातु पाक होकर रक्त आदि धातुका निर्माण होता है) और शेष रहा हुआ किट्ट, वह मल है।

विपाक अवस्था पाककी अपेक्षा विशिष्ट पाकको विपाक कहा है। यह विपाक अवस्था पाक हो जानेके पश्चात् प्रारम्भ होती है। ये विपाक महर्षि आत्रेय और श्री० वाग्भटाचार्यके मत अनुसार त्रिविध है। चरक संहितामें लिखा है कि:—

> कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः।
> अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा॥

चरपरे, कड़वे और कसेले रसका विपाक प्रायः चरपरा; खट्टे रसका प्रायः खट्टा तथा मधुर और लवण रसका प्रायः मधुर विपाक होता है।

किन्तु कितनीही औषधियोंके लिये इस नियमका भंग होता है। अलावा संयोग, समय, देश और जाति भेदसे भी विपाकमें परिवर्तन हो जाता है। जैसे कुलथी और शरद ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले चावल मधुर हैं परन्तु उनमेंसे विपाक खट्टा हो जाता है। हरड़ कवीठी, आंवले और अनारदाने खट्टे तथा पीपल और पटोल कड़वा अदरख चरपरी है, परन्तु इन सबका विपाक मधुर होता है। धनिया और बहेड़ेमें कसैला रस, चीरायतेमें कड़ुवारस तथा हरी कालीमिर्च, प्याज और लहसुनमें चरपरा रस होनेपर भी इन सबका विपाक मधुर होता है।

लवणका विपाक मधुर होना चाहिये, किन्तु काचलवणका विपाक कटु होता है। इस तरह तैलका विपाक मधुर नहीं होता किन्तु कटु हो जाता है।

मधुर विपाकसे कफ, अम्लसे पित्त और कटुसे वात उत्पन्न होता है, और मधुर विपाकसे वात-पित्तशमन, अम्ल विपाकसे वातकफ शमन, तथा कटु (चरपरे) विपाकसे पित्त-कफ शमन होता है।

कटुविपाक वीर्यनाशक, मलमूत्रको बांधनेवाला और वातवर्द्धक है। मधुर विपाक मल मूत्रका त्याग तथा कफ और शुक्रकी वृद्धि करता है। अम्ल विपाक पित्तकर मल-मूत्रका त्याग करानेवाला और शुक्रनाशक है। इन तीनों विपाकोंमेंसे मधुर विपाक गुरु तथा कटु और अम्ल विपाक लघु होते हैं।

भगवान् धन्वन्तरि और नागार्जुनके मतमें गुरु, लघु भेदसे विपाक २ प्रकारके हैं। यह विपाक मधुर आदि षड्रसोंका नहीं, किन्तु यह महाभूतमय द्रव्यका होता है। पृथ्वी, जलकी अधिकता होनेपर गुरु तथा अग्नि, वायु और आकाशकी अधिकता होने पर लघु। इन गुरु और लघुको मधुर और कटु संज्ञा भी दी है। ये मधुर और कटु शब्द गौण और पारिभाषिक हैं। अर्थात् इनका मुख्यार्थ रूप मधुर और कटु रससे तात्पर्य नहीं है। इस तरह त्रिविध और द्विविध विपाक दोनोंका तात्पर्य समान है, केवल समझानेकी शैलीमें अन्तर है।

इन दो प्रकारके अतिरिक्त प्राचीनकालमें रससदृश विपाक, अनियत विपाक आदि मतान्तर थे। किन्तु ये सब युक्ति और अनुभव दृष्टिसे सदोष होनेसे उनके मतका प्रचार नहीं हो सका।

त्रिविध विपाकवादीके मत अनुसार कटु विपाकसे विशेषतः शुक्रनाश, मल-मूत्रावरोध और वातधातुका निर्माण, ये ३ क्रिया होती हैं। कटु, तिक्त और कषाय, ये तीनों रस उत्तम, मध्यम, अधममात्र होनेसे वायु, मूत्र (शुक्र भी) और मलका त्याग प्रायः दुःखपूर्वक होता है। अम्ल विपाकसे शुक्रनाश, मलमूत्र शुद्धि और पित्त धातुकी उत्पत्ति, ये ३ क्रिया; तथा मधुर विपाकसे शुक्रोत्पत्ति, मलमूत्रकी शुद्धि और कफ धातुका निर्माण ये ३, क्रिया होती हैं। मधुर, लवण और अम्ल,

ये तीनों रस उत्तम, मध्यम और अधमभावसे स्नेह गुण युक्त होनेसे वायु, मूत्र और मलका त्याग सुखपूर्वक कराते हैं। माय: कहनेसे अम्लरस प्रधान कपित्थ ग्राही है।

इस त्रिविध विपाक वादीके मत अनुसार दुग्ध आदि मधुर रसवाले द्रव्यका मधुर विपाक कहा है। उसका यह अर्थ नहीं होता कि, मधुर विपाकवाले द्रव्यसे श्लेष्म धातुकी ही केवल उत्पत्ति होती है तथा पित्त और वातकी नहीं। यथार्थमें तीनों धातुओंकी उत्पत्ति और पुष्टि होती है। सब द्रव्योंमें षड्रस सम्मिलित रहते हैं, इस हेतुसे मधुर विपाकके साथ गौण रूपसे कटु और अम्ल विपाक होते हैं। इस तरह कटु और अम्ल विपाकके साथ मधुर विपाक भी गौण रूपसे रहता है।

विपाक में सम्यक और मिथ्या, दो प्रकार होते हैं। सम्यक विपाक होने पर गुण और मिथ्या विपाक से दोषोत्पत्ति होती है। सम अग्नि से सम्यक् पाक तथा मंद और तीक्ष्ण अग्नि से मिथ्यापाक (हीनपाक और अतिपाक) होता है। हीनपाक से आम विकार तीक्ष्णपाकसे भस्मकविकार तथा समपाकसे धातु साम्यरूप आरोग्य फलकी प्राप्ति होती है। सम्यक् विपाक और मिथ्याविपाकका अर्थ दूसरे प्रकारसे भी टीकाकारोंने किया है। द्रव्यगुणानुरूप निष्ठापाक को सम्यक् विपाक तथा उसके विपरीत होने पर मिथ्याविपाक कहा है। जैसे चित्रक रसमें और पाकमें कटु है यह सम्यक् विपाक, पिप्पली रसमें कटु होते हुये भी विपाकमें मधुर होती है। सामान्यतः सम्यक् विपाक और मिथ्या विपाक उत्पन्न होने पर गुण और दोषकी उत्पत्ति होती है। सम्यक् विपाकवाले चित्रकका पाक होने पर अग्निसंदीपन आदि गुण तथा शुक्र मूत्रावरोध आदि दोष उत्पन्न करता है। मिथ्या विपाकवाली पिप्पलीका विपाक होनेपर शुक्रवर्धन आदि गुण तथा प्रक्लेदजनन आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

द्विविध विपाक वादीके मतमें गुरुपाक वातपित्तघ्न और लघु पाक श्लेष्मघ्न है। विपाक सर्वदा परोक्ष है। अतः गुरु पाकका ज्ञान मल-मूत्र त्याग और कफके उत्क्लेश द्वारा तथा लघु पाकका ज्ञान मल मूत्रावरोध और वातप्रकोप द्वारा होता है।

विपाक परिवर्तन—द्रव्यका परिमाण संस्कार, सात्म्य, अग्निबल, देश, काल, संयोग और पाक विशेष भेदसे विपाकमें विपरीतपन हो जाता है। जैसे दूध गुरु विपाकवाला होनेपर भी थोड़ा होनेपर लघुपाक होता है, चावल लघुविपाक होनेपर भी अति खा लेनेपर गुरुपाक होता है। संस्कार गुरुविपाकवाला द्रव्य दीपन संस्कार से लघुविपाकवाला होता है। सात्म्य—दूध जिसे पथ्य हो उसको दूध का विपाक लघुविपाक वाला बनता है। अग्निबल—तीक्ष्णाग्नि होनेपर गुरुविपाकवाले आहार का भी लघुविपाक होता है। देशविशेष—जांगल देशमें गुरुविपाकवाला आहार प्रायः लघु विपाकवाला अर्थात् शीघ्र पचन होने योग्य बन जाता है। इससे विपरीत अनूप देशमें लघुविपाक,

वाला आहार भी देर से पचता है। काल—ग्रीष्म कालमें गुरु हो वे वर्षा और हेमन्त-में लघु बन जाते हैं। संयोग विशेष—सोंठ मिलाकर गरम किया हुआ दूध लघु विपाकवाला हो जाता है। पाक विशेष—जला हुआ या अर्द्ध पका द्रव्य लघु होनेपर भी देरसे पचन होता है तथा गुरु होनेपर भी सम्यक् पकाया हुआ दूध सत्वर पचता है।

यदि यही विचार नव्य चिकित्साशास्त्र की भाषामें दिया जाय, तो भोजन करनेपर मुखमें लालारस मिल जाता है। फिर पहिले दुग्धाम्ल (Lactic acid) और पश्चात् आमाशयिकरस (Gastric juice) सम्मिलित होकर पचन क्रिया होती है। उस समय सब आहार खट्टा बन जाता है। फिर अर्धपाचित आहार अन्त्रमें जाता है, उसके साथ यकृत्पित्त, (Bile), आग्नेय (Pancreatic juice) और आन्त्ररस (Succusentericus) मिल जाता है। जिससे सब आहार रस रूपान्तरित होकर नमकीनसा बन जाता है। फिर बलाप्रधान द्रव्योंका पचन हो जाता है। इस तरह आहार पर विविध क्रिया होनेसे योग्य परिपाक (Assimilation) होता है। दूधमरस भाग बनता है, यह शिराओं या धमनियोंमें प्रविष्ट होकर हृदयकी ओर गति करता है; तथा मलभाग मल-मूत्रके रूपमें बाहर निकाल दिया जाता है।

नव्यविज्ञानके परीक्षण अनुसार प्रथिनों (Proteins) मेंसे पाक होकर ऍमिनो अम्ल (Amino acid), कर्बोदित (Carbohydrates) या श्वेतसारप्रधान पदार्थोंमेंसे द्राक्षशर्करा (Glucose) तथा स्निग्ध घृततैल आदिमेंसे कटुरसप्रधान वैसाम्ल और ग्लायसेरोल (Fattyacid and glycerol) का निर्माण होता है। इनके ऍमिनो अम्लरूप को सुश्रुतमत अनुसार गुरु तथा शेष शर्करा, वसाम्लरूप विपाकको लघु कह सकेंगे।

आहार का निष्ठापाक होकर रसधातु बनकर रक्तमें प्रविष्ट होनेके पश्चात् भी पांच भूताग्नि और सात धात्वग्नि द्वारा विपाक होनेपर ही रक्तादि धातुरूप परिवर्तन होता है। ये सब अग्नि जठराग्निके आश्रित हैं। नव्य चिकित्साशास्त्रमें उसे रासायनिक परिवर्तन (Metabolism) कहते हैं।

वीर्य

महर्षि आत्रेयने 'येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्' अर्थात् जिस रस, विपाक, प्रभाव या गुणसे तृप्ति, ग्लानि या शमन आदि रूप क्रिया होती है, उस क्रियाके उस रस आदिको वीर्य कहते हैं। इस वचन रस द्रव्यमें रही हुई कार्यकारिणी शक्ति (क्रिया-सामर्थ्य, Potency को वीर्य संज्ञा दी है। संसारमें जो कुछ कार्य होते हैं

वे सब वीर्यसे ही होते हैं। वीर्यके अभावमें कुछ भी क्रिया नहीं हो सकती। इस प्रकारकी व्याख्या करनेवालोंको शक्तिरूप वीर्यवादी या बहुवीर्यवादी कहते हैं।

भगवान् धन्वन्तरिजी, वृद्धवाग्भट्ट आदिने उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न गुरु आदि आदि आठ या शीत-उष्ण, इन दो गुणोंको ही वीर्य संज्ञा दी है। इस मतवालोंको पारिभाषिक वीर्यवादी या गुणवीर्यवादी कहते हैं।

अष्टविध वीर्यवादीके मतमें शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल और विशद, ये ८ गुण चिरस्थायी हैं, अर्थात् जिस तरह मधुर आदि रस-गुण जठराग्नि संयोग (पाचक पित्तका संमिश्रण) होने पर अपने स्वभावको छोड़कर या अन्यथा भावको प्राप्त हो जाते हैं, उस तरह ये ८ गुण स्वभाव त्यागी नहीं होते। ये रस विपाक और इतर गुणोंका पराभव करके अपनी विशेषता दर्शाते हैं। इसलिये इन अष्टगुणोंको ही वीर्य संज्ञा दी है, यह सार्थक है।

इन अष्टवीर्यमेंसे तीक्ष्ण और उष्ण आग्नेय, शीत और पिच्छिल जलप्रधान, स्नेहगुण पृथ्वी और जलकी अधिकतावाला मृदुगुण जल और आकाशकी अधिकतावाला, रूक्षवायुकी अधिकतावाला, विशदगुण पृथ्वी और वायुकी अधिकतावाला है।

उष्णवीर्य के कर्म—दहन (जलाना), पाचन, मूर्च्छा लाना, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वात और कफका शमन करना है। शीत वीर्यके—सुलादेना, जीवन, वृद्धि, चूना (भराना) स्थिर करना, रक्त आदिका प्रसादन (स्वच्छ करना), प्रस्वेद उत्पन्न करना और बेहोश आदिको हटा देना, ये कार्य हैं। स्निग्धवीर्यके—स्नेहन, बृंहण, तर्पण (तृप्ति, पोषण) वाजीकरण, वय स्थापन, और वातशमन ये ६ कार्य हैं। रूक्षवीर्य के—वातवृद्धि, कफनाश, ग्राही, पीडन (व्रण पीडन), रूक्षतालाना और व्रणका रोपण ये ६ कार्य हैं। विशद वीर्यके—क्लेदशोषण, शुष्कतालाना, व्रणरोपण और कफ शमन ये ४ कार्य हैं। पिच्छिलवीर्यसे विपरीत गुणवाला है। पिच्छिल वीर्य जलप्रधान है। प्राणधारक, बलप्रद, भग्नसंधानकारक, छिन्नअङ्गसंयोजक, कफवर्द्धक और गुरु है। एवं चिकनाहट लाना, पूरण (आमाशय आदि का भरना), बृंहण, वाजीकरण और विशमन कर्म करता है। मृदुवीर्यके रक्त-मांसका प्रसादन, स्पर्श करनेमें मुलायम तथा पित्तनाश, ये ३ कर्म हैं। तीक्ष्णवीर्यके ग्राही, शोषण, व्रण विदारण, कफस्रावी और कफनाश, ये ५ कर्म हैं। संक्षेपमें उष्ण और स्निग्ध, वातहर, शीत मृदु और पिच्छिल, पित्तहर तथा तीक्ष्ण, रूक्ष और विशद श्लेष्महर है। मृदु, शीत और उष्ण स्पर्शद्वारा विदित होनेवाले; पिच्छिल और विशद दृष्टि और स्पर्शसे विदित होनेवाले स्निग्ध और रूक्षका बोध नेत्रसे होता है तथा तीक्ष्णवीर्यका बोध मुख और नाकमें सुख-दुःखकी प्राप्ति द्वारा होता है।

द्विविध वीर्यवादियोंके मतमें चेतना चेतन और व्यक्ताव्यक्त-विश्वमें सब द्रव्य अग्निसोमीय (पांचभौतिक) हैं। इन भूतोंमें दूसरोंकी अपेक्षा अग्नि और सोम (जल) चलचर होनेसे सब द्रव्योंपर इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। एवं काल भी उष्ण शीतभेदसे दो प्रकारका है। अतः अग्नि प्रधान उष्णवीर्य और सोमप्रधान शीतवीर्य, ये दो ही वीर्य मानना चाहिये।

मधुर आदि षट्रस द्रव्यों के विपाक और शीतोष्णवीर्यमें क्या भेद है ! इस बातको समझानेके लिये चरकसंहिताकार कहते हैं कि—

रसो निपाते द्रव्याणां विपाकः कर्मनिष्ठया।
वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते॥ (च० स्था० २६।६८)

द्रव्योंके रसोंका बोध निपात (जिह्वापर डालने) से, विपाकका ज्ञान कर्मनिष्ठा (अवस्थापाक और निष्ठापाकका ज्ञान मल-मूत्र डकार, अपचन आदि क्रिया) से, तथा वीर्यका निर्णय अधिवास (शरीरमें अवस्थान पर्यन्त होनेवाली क्रियाओं और निपात द्वारा रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय या त्वगेन्द्रियके सम्बन्धके साथ) होता है। सामान्यतः जब द्रव्यका जिह्वाको स्पर्श होता है, तब उसी समय द्रव्यमें रहनेवाले रस और अनुरसका ज्ञान हो जाता है। फिर द्रव्योंके परिपाक हो जानेके अनन्तर कफ, पित्त, मल-मूत्र आदिकी उत्पत्ति, डकार आना, अपचन होना-न-होना, क्षुधा लगना न लगना, स्फूर्ति या आलस्यकी प्राप्ति होना आदि कर्मोंपरसे अनुमान द्वारा विपाकका बोध हो सकता है तथा पारिभाषिक (गुणप्रधान) वीर्यके बोधमें अधिवास और निपात दो साधन हैं।

जैसे आनूपदेशमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंके मांसमें, मछलियोंके मांसमें उष्णवीर्य होनेका अनुमान अधिवास (धातुओंमें प्रवेश) तक होनेवाली उनकी क्रियाओंपरसे होता है। एवं कितनेक मिर्च, राई, आदि द्रव्योंके वीर्यका बोध निपात और अधिवास, दोनोंसे होता है।

सामान्यतः जो द्रव्य रस और विपाकमें मधुर हो उसे शीतवीर्य रस और विपाकमें अम्ल हो उसे उष्णवीर्य तथा रस और विपाकमें जो कटु हो उसे भी उष्णवीर्य समझना चाहिये। इस तरह रसोंसे वीर्यकी शक्तिका परिचय होता है। किन्तु इस नियममें कितनेक अपवाद भी हैं। ऐसे अपवादात्मक द्रव्योंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

बृहत् पंचमूलमें कषायरस और तिक्त अनुरस होने पर भी उष्णवीर्य होनेसे वातुको शमन करता है।

कुलथीमें कषायरस और प्याजमें कटुरस होनेपर भी स्निग्धवीर्यके हेतुसे ये वात शमन करते हैं। परन्तु ईखमें मधुर रस होनेपर भी शीतवीर्य होनेसे यह वातुको —ाती है।

पीपलमें कटुरस, आँवलेमें अम्लरस और सैंधानमकमें लवण रस होनेपर भी मृदु और शीतवीर्यके हेतुसे पित्तको शमन करते हैं। (कटुरस बहुधा अवृष्य माना गया है, किन्तु पीपल और सोंठ वृष्य हैं)।

काकमाची (मकोय) में तिक्तरस और मछलीमें मधुररस होनेपर भी उष्णवीर्यके हेतुसे पित्तको बढ़ाते हैं। मूली कटुरस प्रधान होने पर भी स्निग्ध वीर्यके हेतुसे कफको बढ़ाती है। कैथ अम्लरस प्रधान और शहद मधुर रसप्रधान होनेपर भी रूक्षवीर्यके हेतुसे कफका शमन करते हैं।

मुलहठी, मधुर और शीतवीर्य होनेसे नेत्रोंको हितावह है; एवं लौंग, सफेद मिर्च और पीपल चरपरे होनेपर भी शीतवीर्य होनेसे नेत्रोंके लिये लाभदायक हैं। परन्तु सोंठ उष्णवीर्य होनेसे नेत्रोंको हितकर नहीं है। सोंठ विशेषतः कफनाशक और आमपाचक है।

कषायरस प्राय स्तम्भन और शीतवीर्य माना गया है किन्तु हरीतकी कषैली होने पर भी उष्णवीर्य और भेदन है।

वीर्यका सामान्य परिचय देनेके लिये प्राचीन शास्त्रकारोंने लिखा है कि, स्नेह और मृदुवीर्य जिस जिस औषधिमें होवे, उसमें प्राय वमन अथवा विरेचन करानेकी शक्ति होती है। परन्तु वृष्यके साथ यदि मधुर रस होवे, तो उसमें शरीरको पुष्ट करनेकी शक्ति होती है। कटु रसप्रधान औषधि प्रायः पित्तशामक होती हैं, परन्तु वह कठोर होवे, तो शरीरको पुष्ट बनाती है। कषैला रसप्रधान औषधि हृदयको प्रायः हानि पहुँचाती है, परन्तु उस गुणयुक्त औषधिमें यदि मधुररस भी होवे, तो वह हृदयको हितकर होती है।

जो रस वातशामक है, उसमें रूक्षता, लघुता और शीतलता हो, तो वह वायुको शान्त नहीं कर सकेगा। पित्तशामक रसमें तीक्ष्णता, उष्णता और लघुता हो, तो वह पित्तशमन नहीं कर सकेगा। कफशामक रसमें स्निग्धता, गुरुता और शीतलता हो, तो वह कफशमन नहीं कर सकेगा बल्कि वह कफकी वृद्धि ही करायेगा। अतः इन सब कार्योंमें वीर्य ही प्रधान माना जाता है।

शक्तिवीर्यवाद और गुणवीर्यवादके अतिरिक्त तीसरा मत नागार्जुन और निमि आदि आचार्योंका है। इनके मतमें कर्मलक्षण (फललक्षण) वीर्य है। इस मतमें अनेक प्रकारके औषध द्रव्य (Active Principles) को वीर्य माना है। छर्दनीय, अनुलोमनीय (विरेचन), उभयतोभाग (वमन-विरेचन करानेवाले), प्रशमन, (बढ़े हुए और प्रकुपित दोषधातु और मलोंके साम्यकर), संग्रहण (ग्राही), दीपन, प्राणघ्न (मारक), मदन (मदकर), विदारण (शोथको फोड़नेवाला), शोथकारक, शोथविलियन, मेधाजनन, आयुवर्द्धक, वृष्य, वयःस्थापन, वर्चस्य (वर्णजनन), रक्षोघ्न (राक्षसोंके नाशक), पुंसवन (पुत्रोत्पत्तिकर), सौभाग्यकर

(दूसरोंके प्रीतिपात्र होनेके लिये रूपवान बननेवाला), विशल्यकर (शरीरमेंसे शल्य निकालनेवाला), विमोक्षकरण (जंजीर आदि बन्धनसे मुक्तिकर), उन्मादकर, क्लैब्यकर (नपुंसकता लानेवाला), वशीकरण, विद्वेषण (द्वेषोत्पत्ति करानेवाला), प्रवासन (स्थानसे निकालनेवाला) आकर्षण, आन्तर्धानिक (अदृश्य करनेवाला), पौष्टिक (धन आदिकी प्राप्त करानेवाला) और राजद्वारिक (राजाको वशीभूत करनेवाला) आदि कार्य उस प्रकारके वीर्य द्वारा होते हैं। यह सब आधुनिक विज्ञानके अधिक अनुकूल है। इन विशिष्ट वीर्योंके अस्तित्वके हेतुसे समान रस, गुण, विपाकवाले द्रव्योंकी औषधक्रिया (Pharmalogical action) में विभिन्नता होती है।

छर्दनीय वीर्य अग्नि और वायुसे उत्पन्न होनेके हेतुसे ऊर्ध्वगमन और गति करानेके स्वभाववाला होता है, यह मधुरादि सब रसोंका आश्रय करके रहता है। अनुलोमनीय वीर्य पृथ्वी और जलसे उत्पन्न होता है, सब रसोंके आश्रित है तथा पृथ्वी प्रधान होनेसे अधोगति कराता है और जलाधिक होनेसे द्रवपना ला देता है। उभयतोभाग वीर्य वायुके कटुतिक्त और कषाय, रस तथा पित्तकी उत्पत्ति करानेवाले तीक्ष्ण, उष्ण और लघु गुण इन सबका आश्रित है। यह वीर्य पृथ्वी, जल (ये गुरु) तथा तैजस और वायु (ये लघु) से उत्पन्न होता है।

प्रशमन वीर्य वात, पित्त और कफके अपने अपने रसों और गुणोंसे विपरीत रस गुणोंके आश्रयसे रहता है। जैसे मधुर, अम्ल, लवण ये रस तथा गुरु, उष्ण, स्निग्ध और पिच्छिल, ये गुण, इनका आश्रित वीर्य वातको शमन करता है। यह वीर्य पृथ्वी, जल, अग्निसे उत्पन्न होता है।

सांग्राहिक वीर्य लवणको छोड़कर शेष ५ रस तथा तीक्ष्ण और उष्णको छोड़कर शेष गुणोंका आश्रित है तथा पृथ्वी और वायुसे उत्पन्न होता है। दीपनीय पित्तोत्पादक कटु, अम्ल और लवणरस तथा तीक्ष्ण, उष्ण और लघुगुणका आश्रित है। यह वीर्य आग्नेय और वायव्य है प्राणघ्न वीर्य शीघ्र, सुषिर, व्यवायी, विकाशी इन गुणों तथा सर्व रसोंके आश्रित है। एवं यह आग्नेय है। उष्ण, सूक्ष्म, तीक्ष्ण और विकाशी, विशद, लघु, व्यवायी, रूक्ष और शीघ्र ये ९ गुण विषके कहे हैं। मदारण (विदारण) वीर्य पित्तवर्धक कटु, अम्ल, लवण, ये रस तथा तीक्ष्ण और उष्ण गुणका आश्रित है। यह पार्थिव और आग्नेय है।

श्वयथुजनन (शोथोत्पादक) वीर्य मधुर और कषायके अतिरिक्त ४ रस तथा तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष, इन गुणोंको आश्रय करके रहता है। यह अग्नि और वायुका विश्लेषणकर उष्मा उठाकर शोथकी उत्पत्ति करता है। विलयन (शोथघ्न) वीर्य सर्व रस तथा शीत, मृदु और पिच्छिल गुण इनका आश्रित है। यह जल और पृथ्वी प्रधान है।

शोधन (वमन, विरेचन, आस्थापन बस्ति) वीर्य किसी एक दोषके लिए व्यवहृत होता है, प्रयुक्त होनेपर इतर दोषोंको भी दूर करता है। उदाहरणार्थ श्लेष्महर कार्य व्यवहृत वमन पित्तको भी हरता है। पित्तहरणार्थ प्रयुक्त विरेचन वात और कफको भी दूर करता है।

सांग्राहिक वीर्य पार्थिव और वायव्य होनेसे पित्त और श्लेष्मका प्रशमन करता है। तीक्ष्ण और उष्णके अतिरिक्त गुण और लवणके अतिरिक्त रस द्वारा पित्तका निग्रह करता है। तथा रौक्ष्य और विशद गुण द्वारा श्लेष्मका निग्रह करता है।

प्राणहनन, मदन और प्रहरण, ये वीर्य सब दोषोंको प्रकुपित करते हैं। स्वयथुजनन वीर्य वातपित्तका प्रकोप करते हैं। विलयन वीर्य सब दोषोंका प्रशमन तथा वातशोफका प्रशमन करता है।

मेध्य आदि अनेक वीर्य किन रसों, गुणों और भूतोंका आश्रय करते हैं यह निश्चित नहीं हो सकेगा। कितनेक मन्त्रमय वीर्य हैं, जो भूत समुदायसे सम्बन्ध रहित होनेसे अचिन्त्य हैं। इन सबके कर्मफलको देखकर अनुमान हो सकता है।

प्रभाव।

(स्पेशिफिक ऍक्शन Specific Action)

रसवीर्य विपाकानां सामान्य यत्र लक्ष्यते।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृतः॥

जिस द्रव्यमें रस, वीर्य और विपाक, इनका सामान्य अर्थात् उसके रसका कार्य, उसके विपाकका कार्य तथा उसके वीर्यका कार्य, इन सबके समान जितना कार्य हो, उसकी अपेक्षा जो विशेष कार्य प्रतीत हो, उसे उस द्रव्यका प्रभाव कहते हैं, अर्थात् द्रव्योंका जो विशिष्ट स्वभाव है, वही प्रभाव है* इस प्रभावको पांच भौतिक संगठन तथा रस, विपाक, वीर्यके कार्योंसे अचिन्त्य, अमीमांस्य माना है। उदाहरणार्थ चित्रक रस और विपाकमें कटु तथा उष्णवीर्य है, उसका कार्य सामान्य है। क्योंकि कटुरस, कटु विपाक तथा उष्णवीर्य, इन तीनोंका कार्य प्रतीत होता है। इससे अधिक कर्म दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह दन्ती भी रस और विपाकमें कटु तथा उष्ण वीर्य है। इन रस, विपाक और वीर्यके कर्म शुक्रहनन, मल मूत्रावरोध, ये सामान्य हैं, किन्तु दन्तीमें उसके प्रभावके हेतुसे विरेचन कर्म प्रतीत होता है।

* द्रव्यकी कार्य कारिणी शक्तिको वीर्य कहा है। इस शक्तिके २ प्रकार हैं। १ चिन्त्य, २ अचिन्त्य। द्रव्योंके पांच भौतिक संगठन, रस, गुण, विपाक द्वारा कर्मके साथ कार्य-कारणरूप सम्बन्ध को दर्शासके, उसे चिन्त्यशक्ति या वीर्यसंज्ञा दी है। जो द्रव्योंके कार्य-कारणरूप को न दर्शा सके, उसे अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव कहा है।

विष विषघ्न (विरोधी विषका नाशक) है, जंगमविष स्थावरविषको और स्थावरविष जंगमविषको दूर करता है। कारण, ये दोनों विरुद्ध गतिवाले हैं। जंगमविष ऊर्ध्वगति करता है और स्थावर अधोगति। यह गति विपर्यय रूप कार्य उनके प्रभावसे होता है।

कितनेक द्रव्य मैनफल आदि ऊर्ध्वभागहर, कितनेक त्रिवृत आदि अधोभागहर और कतिपय द्रव्य वमन विरेचन दोनों क्रिया करानेवाले हैं। ये ऊर्ध्वाधोगति प्रभावके हेतुसे होती है।

कुचिला और अफीम, दोनों तिक्त, रूक्ष और उष्णवीर्य होनेपर भी दोनोंके प्रभाव परस्पर विपरीत है। कुचिला निद्राहर और उत्तेजक तथा अफीम निद्राप्रद और अवसादक है। महुवेका फूल और मुनक्का, दोनोंके रसादि समान होनेपर भी मुनक्का विरेचन कराता है और महुवेका फूल नहीं कराता। घृत और दुग्ध, दोनोंमें समरस रहनेपर भी घृत दीपन है और दूधमें दीपन गुण नहीं है। गेहूँ और जौ, दोनों मधुर और गुरु हैं, किन्तु गेहूँ वातहर और जौ वातकारक है। मछली और दूध, दोनों मधुर और गुरु गुणयुक्त हैं; तथापि मछली उष्णवीर्य और दूध शीतवीर्य है। एवं सुवर्ण आदि धातुओंसे कार्यकारणका सम्बन्ध न मिलने पर भी भिन्न भिन्न परिणाम प्रतीत होते हैं। अतः ये प्रभावके हेतुसे ही होते हैं, ऐसा मानना पड़ेगा।

लहसुन कटुरस और कटुविपाक द्वारा कफको तथा स्निग्धत्व और गुरुत्व द्वारा वातको जीतता है किन्तु अपने गुणों द्वारा वात-कफकी उत्पत्ति नहीं कराता। लहसुनमें कटुरस विपाक कफ छेदनमें पर्याप्त है किन्तु वातकरत्वके लिये नहीं। एवं स्निग्धत्व और गुरुत्व वात जितनेमें द्रव्य प्रभावसे पर्याप्त है किन्तु श्लेष्मकरत्वके लिये नहीं।

रक्तशालि परस्पर विरुद्ध गुणवाले वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषोंको नाश करता है किन्तु यवक इनकी उत्पत्ति कराता है, यह द्रव्यका प्रभावकर्म है।

शिरीष, हरिद्रा आदि विषको नष्ट करते हैं। स्वप्न मेष (महल आना) आदि विषकी वृद्धि कराते हैं, यह प्रभाव कर्म है।

वाजीकर द्रव्योंसे शीघ्र शुक्रोत्पत्ति, मदनफलसे वमन, हरीतकीसे विरेचन, आमलकीसे वात, पित्त, कफ का शमन, शंखपुष्पीसे मेधावृद्धि, रसायनोंसे आयुवृद्धि आदि काम प्रभावसे ही होते हैं।

सुवर्ण क्षयके जन्तुओंका नाशक है। पारद और सोमल उपदंशके जन्तुओंको मारते हैं। गन्धक त्वचामें उत्पन्न होनेवाले जन्तुओंको नष्ट करती है। क्विनाइन मलेरियाके जन्तुओंको नाश करता है। इन सब कार्योंमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं मिल

सकता। इसलिये प्रभावसे ही ये सब कार्य होते हैं। इस तरह प्राचीन आचार्योंने प्रभावको अचिन्त्य कहा है।

औषधियोंमें स्वाभाविक, संयोगजन्य और प्रेरित, इन तीन प्रकारकी प्राभाविक शक्तिका परिचय होता है।

स्वाभाविक शक्ति उसे कहते हैं कि, औषधियोंमें रस सम प्रकारके होनेपर भी एक औषधि दूसरीसे विशेष प्रभाव दिखाती है। एक अथवा अधिक औषधियोंके संयोगसे शानकी वृद्धि होती है, यह संयोगजन्य शक्ति है। जैसे विषके संयोगसे पारद बुभुक्षित (स्वर्णका ग्रास करनेकी शक्ति वाला) होता है। एवं हरिद्रा चूनेके संयोगसे रक्तवर्णकी उत्पत्ति होती है। प्रेरित शक्ति मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, विधि, काल, देश, योग अथवा मनोबल द्वारा उत्पन्न या प्रेरित की जाती है। जैसे गायत्री आदि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जल, दूध, फल, फूल, मिश्री अथवा कोई इतर औषधि अभिमन्त्रित करके खिलानेसे तत्काल रोग दूर हो जाता है।

शास्त्रकथित विधिसे निश्चित समयपर लाई हुई सहदेईकी जड़ शिरपर बांधनेसे ज्वर चला जाता है। सत्यानाशी, अपामार्ग, काकजंघा, ईखकी उत्तर दिशाकी जड़ अथवा ताड़की उत्तर दिशाकी जड़ विधिपूर्वक लाकर स्त्रीकी कमरपर बांधनेसे तत्काल प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है। अपामार्ग (ओंगा) के पत्ते (शाखा सहित) कपड़ेमें बाँधकर गौ आदि पशुओंके पुच्छके साथ स्त्रियोंकी कमरपर डोरीसे इस तरह बांधे कि औषधि योनि पर लटकती रहे, ऐसा करनेपर उसी समय प्रसव हो जाता है। ऊँटकटाराकी जड़ विधिपूर्वक लाकर शिरपर बाँधनेसे भी प्रसव सुखपूर्वक होता है। ये सब विधि द्वारा उत्पन्न प्राभाविक शक्तिके उदाहरण हैं।

काचरा (सेंद) का फल दिवालीके पहिले पककर गिर जाय, तो कोई मीठा और कोई कड़ुवा भी रहता है, परन्तु दिवालीके पीछे जो पकते हैं, वे सब मीठे ही रहते हैं, यह काल प्रभाव है।

हिमालयकी शिलाजीत और मेवाड़के पहाड़ोंमें निकलनेवाली शिलाजीतके गुणमें महद् अन्तर है। बंगाल और ब्रह्मदेशके चावलके गुणमें भी प्रभेद है। ये सब देश प्रभावके उदाहरण हैं। हीरा, माणिक्य, पन्ना, नीलम, पुखराज, मोती, विद्रुम, चन्द्रकान्त आदि मणि, मन्त्र और दिव्य औषधियोंको धारण करने पर नाना प्रकारके कार्य लक्ष्मी और कीर्तिकी प्राप्ति, वशीकरण, दीर्घसुखकी प्राप्ति, ग्रहपीड़ा शान्ति सन्तानोत्पत्ति, राक्षस आदिसे रक्षण, सम्मान प्राप्ति, शस्त्रोंका आकर्षण आदिकी सिद्धी होती है। अगद दर्शन आदिसे विषका नाश होता है।

मन्त्र प्रभाव द्वारा भी कार्यसिद्धि होती है। जैसे योगवासिष्ठ महारामायणमें उत्पत्ति प्रकरणके ७० वें सर्गमें वसिष्ठ भगवान् विसूचिका शमनार्थ विसूचिकाको कर्कटी नामकी राक्षसीकी उपमा देकर कहते हैं कि:—

हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे कर्कटी नाम राक्षसी।
विसूचिकाभिधाना सा नाम्नाप्यन्यायबाधिका॥

इस विसूचिकाके नाशके लिये निम्न प्रयोग दर्शाया है।

'ॐ ह्रां ह्रीं रीं रौं विष्णुशक्त्ये नमः।'

'ॐ नमो भगवती विष्णुशक्तिमेनां ॐ हरहर नयनय पचपच मथ मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा हिमवन्त गच्छ जीव सः सः सः चन्द्रमण्डल-गतोऽसि स्वाहा।'

इस मन्त्रको पत्र पर लिख बांये हाथसे ग्रहण कर उसी हाथसे रोगी पर मार्जन करें। पहिले भावना करें, कि महाशक्तिके स्वाधीन रही हुई रोग शक्ति स्वस्थान हिमालय-की ओर प्रयाण करें। फिर रोगीके प्रति कहे, कि पूर्वकालके दुष्ट कर्मसे उत्पन्न इस विसूचिका रोगसे अभिभूत होकर चाहे मृत्युसे भी ग्रसित हुआ हो, तो भी मेरी भावना द्वारा इस प्रबल मन्त्रकी सामर्थ्यसे जीवन अमृत पूर्ण चन्द्रमण्डलको तू प्राप्त हुआ है। जैसे प्रदीप्त अग्निमें आहुती डाली जाय, इस तरह तुझे (रोगी को) पूर्णचन्द्र-मण्डलमें स्थापित करता हूँ; अर्थात् चन्द्रमण्डलस्थ अमृत द्वारा तेरी जीवनीय शक्ति पूर्ववत सबल भावको प्राप्त हो जावे।

इस तरह मेस्मेरेजम तथा हिप्नाटाइजम करनेवाले अफीम जैसी कडुवी जहरी वस्तु दूसरोंको मिश्री कहकर खिला देते हैं, तब खानेवालोंको स्वाद मिश्रीका ही आता है, और विपाक भी मिश्रीका ही होता है; यह मनोबल अथवा योगबल द्वारा प्रेरित प्रभाव है।

इस तरह और भी सहस्रों उदाहरण दे सकते हैं। संक्षेपमें भगवान् आत्रेय कहते हैं कि 'प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते' अर्थात् प्रभाव अचिन्त्य है। मौनथ बुद्धि और युक्तिसे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे जमालगोटा विरेचक है। यह विरेचक क्रिया क्यों कराता है? यदि नव्यचिकित्सक वर्ग जवाब देवें कि, यह अन्त्रकी पुरःसरण क्रिया और रसस्रावकी वृद्धि कराकर मलको बाहर फैंकनेकी क्रिया करता है, इसलिये यह रेचक है, तो फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि, यह पुरःसरण क्रिया और रसस्रावकी वृद्धि क्यों कराता है? जमालगोटाके समान स्वादवाले दूसरे द्रव्यमें यह गुण क्यों नहीं है? सुवर्ण क्षयके कीटाणुओंको क्यों मारता है? और लोह आदि धातुओंसे यह कार्य क्यों नहीं होता? इन प्रश्नोंका संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलता। इस हेतुसे अन्तमें कहना पड़ता है कि, यह उनका प्रभाव (कर्म विशेष) ही है, रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभावोंमेंसे कार्य करनेका गुण किसमें है। इस सम्बन्धमें भगवान् आत्रेय कहते हैं कि—

किञ्चिद् रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्।
द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किञ्चन॥

कतिपय द्रव्य रस द्वारा कितनेही वीर्य द्वारा, कुछ गुणों द्वारा, कोई विपाक द्वारा और कतिपय प्रभाव द्वारा कार्य करते हैं; अर्थात् द्रव्यभेदसे किसीमें रसका, किसीमें गुणका, किसीमें विपाकका और किसीमें प्रभावका प्राधान्य रहता है।

रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव, इनमें जब बलकी समानता हो, तब रसको विपाक, रस और विपाकको वीर्य तथा रस, विपाक और वीर्यको प्रभाव दबा देता है। जहाँ पर जो बलवान् हो वही कार्य करेगा। परन्तु समबल होने पर उक्त क्रम रहेगा। यथा शहदमें रस मधुर और विपाकमें कटु है, अतः मधुर रसका कार्य कफवृद्धि नहीं होता, बल्कि कटु विपाकके हेतुसे कफका नाश होता है। इस दृष्टान्तमें विपाकने रसको परास्त किया है।

आनूप मांसके रस और विपाक मधुर होनेपर भी वह पित्तको शमन नहीं कर सकते। बल्कि उष्णवीर्यके हेतुसे पित्तकी वृद्धि करते हैं। इस दृष्टान्तमें वीर्यने रस और विपाकको दबा दिया है।

पुरानी अंगूर आदिकी देशी शराब रस और विपाकमें अम्ल है; तथा वीर्यमें उष्ण है। फिर भी स्तन्यवर्द्धक है। यह कार्य प्रभावसे हुआ है। इस उदाहरणमें प्रभावने रस, विपाक और वीर्य, तीनोंको हरा दिया है।

अष्टांगहृदयकारने पदार्थोंकी रचना दृष्टिसे २ विभाग दर्शाये हैं। १ समान प्रत्ययारब्ध; २ विचित्र प्रत्ययारब्ध। जिन पदार्थोंकी रचना करनेवाले पंचभूतात्मक और उनके रस, वीर्य, विपाकके आरम्भके पंचभूतात्मक द्रव्य सम प्रकारके उत्कर्ष और अपकर्षसे सगठित हुए हों, उनको समान प्रत्ययारब्ध तथा जिनकी रचना करनेवाले पंचभूतात्मक द्रव्य और उनके रस, वीर्य, विपाकके आरम्भक पंचभूतात्मक द्रव्य विषम प्रकारके हों, उनको विचित्र प्रत्ययारब्ध संज्ञा दी है।

उदाहरणार्थ दूध, गेहूं, सूअरका मांस आदि रस, वीर्य और विपाक एक दूसरेके अनुकूल हैं। ये समान प्रत्ययारब्ध होनेसे इनके समग्र कर्म केवल रसोपदेशसे दर्शा सकते हैं, इसके विपरीत मत्स्य, जो, सिंहका मास आदिके रस, वीय, विपाक एक दूसरेके प्रतिकूल हैं। ये विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे इनके कर्म, रस, वीर्य और विपाककी अपेक्षा भिन्न प्रकारके होते हैं। अत: उनका केवल रसोपदेश नहीं दर्शाया। शास्त्रमें उनका स्वतन्त्र वर्णन किया है।

गेहूँ और जौ, दोनों मधुररसवाले और गुरु हैं। इनमें गेहूँ समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रस, वीय, विपाकके अनुरूप वातशमन करता है, किन्तु जौ विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे अपने गुणके अनुरूप वातवर्द्धन करता है।

मत्स्य और दूध दोनों मधुर रसवाले हैं, इनमें दूध समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके अनुरूप ही वीर्य और कर्म हैं, किन्तु मत्स्य विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके विपरीत उष्णवीर्य युक्त है एवं कर्म भी इससे भिन्न (पित्तकारक) है।

सिंह और सूअर, दोनोंके मांस मधुर और गुरु हैं। इनमें सूअर-समान प्रत्ययारब्ध होनेसे रसके अनुरूप मधुर विपाकवाला है। अतः इसके कर्म रस विपाकके अनुसार मधुर होते हैं, किन्तु सिंहका मांस विचित्र प्रत्ययारब्ध होनेसे उसका विपाक कटु होता है तथा कर्म भी विपाकके अनुसार पित्तकारक होता है।

घी शीतवीर्य होनेपर भी जठराग्निको प्रदीप्त करता है। वसा उष्णवीर्य होनेपर भी जठराग्निको मंद करती है मूंग कटु विपाकवाला होनेपर भी पित्तशामक और उड़द मधुर विपाकवाला होनेपर भी पित्तवर्धक है। फाणित (गुड़की राब) स्निग्ध, तथा गुरु होनेपर वातकारक है मधुर दही गुरु होने पर अग्निदीपक है; किन्तु कबूतर जठराग्नि का दीपन नहीं करता। कैथ और अनार अम्ल रसवाले होनेपर भी ग्राही हैं, किन्तु आँवले नहीं। चायके फूल कषाय और शीतवीर्य होनेसे ग्राही है, किन्तु हरीतकी नहीं। उक्त उदाहरणोंमें घी, वसा, मूंग, उड़द, फाणित, दही, कैथ, अनार और हरड़, ये सब विचित्र प्रत्ययारब्ध हैं।

रसनेन्द्रिय

यह एक ज्ञानेन्द्रिय है। इस इन्द्रिय द्वारा मधुर, अम्ल आदि रसोंका बोध होता है। इस हेतुसे इसे रसनेन्द्रिय (The Organ of Taste) संज्ञा दी है। इस इन्द्रियका बाह्य अधिष्ठान स्वादांकुरको धारण करनेवाली रसना (जिह्वा) है। आभ्यन्तर अधिष्ठान उपमानपिण्डिका नामक स्वादकेन्द्र (Taste Centre) मस्तिष्कके अन्तर्गत है।

यह रसना (जिह्वा) मांसपेशियोंसे बनी है। इस पर पतली श्लैष्मिक कलाका आच्छादन है। इस कला पर छोटी-छोटी पिटिका सदृश अनेक स्वादांकुर (Taste-buds) अवस्थित हैं। यह मुखके तलप्रदेशमें कण्ठिकास्थि और सेवनीके साथ संलग्न है। पीछेकी ओर मध्य रेखामें अधिजिह्विकाके साथ और सब ओर पूर्वा गलस्तम्भिकाके साथ संयोजित है।

जिह्वा स्थूल दृष्टिसे मांसपेशीमय प्रतीत होती है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण करने पर इसमें दो विभाग प्रतीत होते हैं। दोनों विभागोंका संयोग मध्यरेखामें एक स्नायु सूत्रमयी सेवनी (Fibrous partition) द्वारा होता है। यह जिह्वा छोटी मोटी ९ मांसपेशियां मिलकर बनी हैं। इन मांसपेशियोंके हेतुसे लम्बी छोटी और ऊँची-नीची होती है। उसकी आकृतिमें होने वाले सूक्ष्मतम परिवर्तनोंके हेतुसे विविध उच्चार हो सकते हैं।

यह जिह्वा स्वादग्रहण, चर्वणक्रिया, भाषणक्रिया और भाषणके साधन रूप यन्त्र है। स्वस्थावस्थामें इसका अग्रभाग पतला और नोकीला तथा मूल प्रदेश मोटा और चौड़ा होता है। इसका रंग गुलाबी सा होता है। रक्तहीनता या पाण्डुता आने पर रंग फीका हो जाता है। अपचन होने पर इस पर मैलकी तह आ जाती है। आमाशय रसमें तीव्रता होने पर इस पर घाव हो जाते हैं तथा चरपरे पदार्थ या क्षार आदिके सेवन या स्पर्शसे जिह्वा फट जाता है।

इस जिह्वाके दो तल हैं—ऊर्ध्वतल और अधस्तल। इसमें अनेक स्वादांकुर, लाला ग्रन्थियां, धमनी, शिरा, मांसपेशियां, रसायनियां, लसीका ग्रन्थियां आदि अवस्थित हैं।

ऊर्ध्वतल—यह किञ्चित स्फीतोदर है। इसे रसना पृष्ठ (Dorsum of Tongue) कहते हैं। यह ऊपरसे मुक्त है। इस तलपर अनेक स्वादांकुर लगे हैं। इस हेतुसे यह खुरदुरा भासता है। इन अंकुरोंके मूलमें रसग्राही नाड़ीके सूक्ष्म तन्तु लगे हैं। इस तलके मध्यमें एक विवर-सा खात है उसे अन्धविवर (Foramen Caecum) कहते हैं। इसके पश्चिममें अभिजिह्विकाके साथ संयोग कराने वाली स्नायुमय प्रबन्धिनी स्थित है।

अधस्तल—(Inferior Surface) यह तल चिकना है। इसका वर्ण कुछ बैंगनी-सा है। इसकी मध्यपंक्तिमें पतली त्रिकोण कलामयी सेवनी (Frenulumhlingua) अवस्थित है। जो रसनातलके पश्चिम अर्धभागको तलभागसे संयोजित करती है। इस तलमें स्वादांकुर न होनेसे यह चिकना है। इसके मूलमें दोनों ओर हनुधरिया और जिह्वाधरिया नामक लाला ग्रन्थियां हैं। सेवनीके दोनो पार्श्वमें रासनी धमनी और रासनी शिरा हैं, जो श्लैष्मिक कलाके भीतर सुस्पष्ट प्रतीत होती हैं। इस स्थानमें श्लैष्मिक कलाकी पर्त मंजरी या झालर सदृश बन गई है, उसे कला मंजरिका (Plica Fimbriate) संज्ञा दी है।

स्वादांकुर (Lingual Papillae) मुखमें छोटे बड़े असंख्य स्वादांकुर रहते हैं। ये स्वादांकुर जिह्वाके ऊर्ध्वतलकी श्लैष्मिक कलामें सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कोमल तालु, ओष्ठ और गालमें भी रहे हैं। ये अंकुर सौत्रिक तन्तु, नाड़ी सूत्र और कैशिकाओंके सम्मिलनसे बनते हैं।

सब स्वादांकुरोंके मूलमें सूक्ष्म रसग्राही नाड़ी प्रतानका सम्बन्ध है। जो मस्तिष्कमें रसज्ञानको पहुँचाती है। इनके अतिरिक्त रसनाके अग्रभागमें कुछ स्पर्श कुरिकाएं और श्लैष्मिक कलामें कुछ श्लेष्मस्राव करने वाली ग्रन्थियां भी हैं, जो लस सदृश पतला प्रवाही मोचक कफका सतत स्राव करती रहती हैं। इसी हेतुसे जिह्वा सर्वदा आर्द्र रहती है।

स्वादाङ्कुरोंके मुख्य समूह:—१ द्वीपाकार २ शिलीन्ध्राकार और ३ कूर्च्चाकार।

(१ द्वीपाकार स्वादाङ्कुर Papillae Vallatae or Circumvallate Papillae)—ये दानें स्थूल हैं। इनका व्यास १ से २ मिलीमीटर तक होता है। जिस तरह किलेके चारों ओर खाई रहती है, उस तरह इन दानोंके चारों ओर खात है। इस हेतुसे इनकी आकृति परिखावेष्टित दुर्ग सदृश होनेसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इनको खातवेष्टितांकुर संज्ञा दी है। ये दाने जिह्वाके पीछेकी ओर शेष ⅓ भागमें अवस्थित हैं। इन अंकुरोंकी संख्या ८ से ११ है। ये दाने पीछेकी ओर एक दूसरेसे मिले हैं। इन दानोंके समूहकी पंक्तिकी आकृति 'Λ' सदृश बन गई है।

(शिलीन्ध्राकार स्वादाङ्कुर (Fungiform Papillae)—इन दोनोंकी आकृति लगभग छत्राकके समान गोलाकार, ऊर्ध्व भागमें फैली हुई और नीचे संकुचित होती है। इस हेतुसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इसे छत्रिकांकुर संज्ञा दी है। इसका रंग अत्यन्त लाल (Deep red colour) है। ये बहुधा रसनाग्र और पार्श्व धाराओंमें अवस्थित हैं। इनको डाक्टरीमें पपिल्ला लेण्टिक्युलर्स (Papillae Lenticnlares) भी कहते हैं।

(३) कूर्च्चाकार (Filiform Papillae)—ये दाने अति सूक्ष्म हैं। इनकी आकृति शंकुसदृश (Conical) या बेलनाकार (Cylindrical) स्थिती है। "प्रत्यक्ष शरीरकार" ने सूक्ष्म कूर्चकी समानता दर्शाई है, ये दाने प्रायः जिह्वाके ⅔ भागमें देखनेमें आते हैं। विशेषतः ये समानान्तर पंक्तियोंमें होते हैं। इनको डाक्टरीमें पपिल्ला कोनिकल (Papillae Conical) भी कहते हैं। इनमें स्वादकी परीक्षा शक्ति कम होती है।

इन त्रिविध अंकुरोंके अतिरिक्त सामान्य अंकुर (The Papillae Simplics) भी हैं। जो जिह्वाकी श्लैष्मिक कला पर सर्वत्र फैले हुए हैं, ये सब अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा त्वचाके ऊपर उठे हुए मालूम देते हैं। प्रत्येकके साथ कैशिका छिद्र मिला है और वे सब श्लैष्मिक कला (Epithelium) से आच्छादित हैं।

स्वादकोरक (Taste buds or Taste bulds)—द्वीपाकार स्वादाङ्कुरके खातकी दीवारोंमें छोटे-छोटे कोषसमूह दबे हुए हैं। इनको स्वादकोरक कहते हैं। प्रत्येक स्वादाङ्कुरमें लगभग १०० १५० स्वादकोरक होते हैं। इनकी आकृति प्रोष पुष्पोंकी कली या प्याज सदृश दिखाई देती है। कुछ स्वादकोरक कोमल तालुके नीचेके पृष्ठ और स्वर यन्त्रके आवरणके पीछेकी ओर भी रहते हैं। इन स्वादकोरकोंमें एक छिद्र स्वादरन्ध्र (Gustatory pore) रहा है। इन स्वादकोरकोंमें दो प्रकार

 कोष और सहाय कोष।

स्वादसंरक्षक कोष (Gustatory Cells) बीचमें मोटे और दोनों सिरे पर पतले होते हैं। ऊपरके सिरेसे एक बालके सदृश पतला तन्तु निकलता है, यह स्वादरन्ध्रमें प्रवेश करता है। दूसरे नीचेके सिरेसे जो तार निकलता है, वह रसना नाड़ीके तन्तुमें मिल जाता है। ये कोष विशेषतः स्वादकोरकके केन्द्रमें रहते हैं। इनके चारों ओर तथा कुछ इनके बीचमें भी इतर कोष होते हैं। ये सब इन कोषोंके सहायक कोष हैं।

रसादान प्रकार—परमात्माने जिह्वाकी रसग्रहण क्रियामें एक प्रकारकी विलक्षणता रक्खी है। वह यह है कि, जबतक बोधक श्लेष्मा, लालारस या जल आदि द्वारा रसवत् वस्तु द्रवीभूत न हो जाय, तब तक उस वस्तुके स्वादका बोध नहीं हो सकता। द्रवीभूत होने पर ही वह स्वादकोरकोंके अग्रभागको उत्तेजित करता है। फिर अग्रभागमें रहे हुए नाड़ी प्रतानों द्वारा रसबोधको मस्तिष्क केन्द्रमें पहुँचाया जाता है।

विशेषज्ञोंके मतानुसार रस और गन्ध पृथक होने पर भी अति पृथक भूत नहीं हैं। रस और गन्ध, इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध परस्पर है। रस और गन्धका नियम पूर्वक साहचर्य है। एवं मस्तिष्कमें रसकेन्द्र उपधानशिरस्का (Taste centre) और गन्धकेन्द्र अंकुशकर्णिका (Olfactory centre) उभय सम्मिलित हैं।

यदि जिह्वाको अच्छी तरह पोंछ कर सुखा डालें तो किसी भी वस्तुके स्वादका पता नहीं चल सकता। सन्तरे आदि फलके टुकड़े खाने पर मनमोहक स्वादका जो परिचय मिलता है, वह केवल मधुर अम्ल कह कर नहीं समझाया जा सकता। इसके स्वादके साथ सुगन्ध भी मिश्रित है। जो तालुमें होकर नाकके भीतर जाकर घ्राणेन्द्रियको उत्तेजित करती है और मस्तिष्कमें रहे हुए अंकुशकर्णिकामें पहुँच कर प्रसन्नताका बोध कराती है।

षट्रस—आयुर्वेदकी मान्यतानुसार रस ६ हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। किन्तु नव्य विज्ञानवादने मधुर, अम्ल, लवण और तिक्त, इन चार रसोंको ही स्वादांकुर ग्राही माना है। उनके मत अनुसार कटु (चरपरा) और कषाय रस स्पर्शशः उत्तेजक अर्थात् स्पर्शेन्द्रियके विषय हैं।

रसनामें पृथक्-पृथक् रसकी रसग्राहिका पृथक्-पृथक् स्थान पर हैं। मधुर रसका ग्रहण रसनाग्रमें, तथा तिक्त (कड़वा) रस रसनामूलमें (कण्ठकी ओर) विशेषतः दीपाकार स्वादांकुरोंमें होता है। अम्लरस रसनाके दोनों पार्श्वोंमें और लवण रसकी ग्राहिका रसनाग्रमें मधुर रसके साथ अवस्थित हैं। जिह्वाके किसी-किसी भागमें स्वादप्रेरक नहीं हैं। अतः उन स्थानोंसे स्वादका बोध नहीं हो सकेगा।

जो कटु और कषाय रस हैं, वे स्पर्शग्राह्य हैं। ऐसा नव्य विज्ञानका कथन है वह सम्यक् नहीं है। कटु रसग्राहिका रसनाग्र और रसनाके दोनों पार्श्व भागमें स्पष्टतम रूपसे प्रतीत होती हैं। कषाय रसग्राहिका रसनामूल और पार्श्वमें स्थित है।

यदि इन दोनों रसोंको स्पर्श मात्रत्व मान लें, तो स्थान भेदसे रसमें भेद नहीं होना चाहिये। अतः रस ६ प्रकारके हैं, यह प्राचीन सिद्धान्त ही सम्यक है।

रस ग्रन्थियाँ (Lingual Lymph Glands)—जिह्वाके मूलमें जिह्वाकण्ठिका पेशी (Hyoglossus Muscle) और चिबुककण्ठिका पेशियों (Geneoglossi Muscles) के बीच दो तीन छोटी रस ग्रन्थियाँ अवस्थित हैं। इनमें जिह्वाके मूल भागकी कतिपय रसायनियाँ प्रवेश करती हैं।

जिह्वामूलिनी नाड़ी (Hypoglossal Nerves) इस नाड़ीकी एक नीचे जानेवाली शाखा जिह्वामें प्रवेश करती है। यह नाड़ी शाखा कण्ठकी धमनियोंके एक हिस्से रूप मातृका कंचुक (Carotid Sheath) के आगे होकर निकलती है। इस जिह्वामूलिनी शाखाके पाशपाश (Ansa Hypoglossi) मेंसे प्रत्येकी नाड़ी प्रशाखा रूपसे निकलती है।

जिह्वाधरीया ग्रन्थि (Sublingual glands)—ये ग्रन्थियाँ पिस्तेके फल जितनी बड़ी होती हैं। मुखतलमें जिह्वा सेवनीके पार्श्व भागमें निम्न हनुपर रहे हुए खातमें दोनों ओर एक एक ग्रन्थि रहती है। ये श्लैष्मिक कहलाते आशय हैं। इनमें १० (क्वचित् २० तक) छोटे-छोटे स्रोत होते हैं। इनमेंसे कितनेही हन्वधरीया ग्रन्थिके स्रोतके पासमें संलग्न हैं और कितनेही जिह्वा सेवनीकी दोनों ओर स्वतन्त्र रूपसे खुलते हैं।

अनुजिह्विका धमनी (Lingual Artary)—यह धमनी जिह्वाको रक्त पहुँचाती है। इस धमनीकी उत्पत्ति बहिर्मातृका धमनी (Ext. Carotid Art) मेंसे हुई है। यह टेढ़ी होकर ऊर्ध्व और मध्य रेखाकी ओर कण्ठिकास्थिके निम्न शृंग तक गति करती है। पुन झुककर नीचे आती है, और जिह्वाके नीचेकी ओर बिल्कुल अग्रभाग तक फैल जाती है। यहां पर यह गम्भीर जिह्विका धमनी (Arteria Profunda Lingual) कहलाती है। यथार्थमें इस अनुजिह्विका धमनीकी ४ अनुशाखायें हैं।

डाक्टरी मतानुसार गुण विचार।

डाक्टरी मतमें औषधियोंके रस परसे गुण और परिणाम सम्बन्धी अनुमान और गुणनिर्णय निम्नानुसार नियमोंको लक्ष्यमें रख कर किये जाते हैं:—

(१) सामान्य रूपसे औषधिके गुणका निर्णय—वर्ण, स्वाद, गंध आदि परसे हो सकता है। तीव्र गन्धयुक्त द्रव्य बहुधा आग्नेय, उत्तेजक, वातहर और वमननिवारक होते हैं। मधुर द्रव्य बहुधा स्निग्ध होते हैं। कड़वे द्रव्य बहुधा बल वर्धक आमाशय पोषिक होते हैं तथा दुर्गन्धयुक्त द्रव्य बहुधा आक्षेपनिवारक होते हैं।

(२) रासायनिक तत्वोंकी सादृश्यता परसे औषधियोंकी क्रियाकी समानता हो जाता है। समान गुण धर्म होने पर अभाव कालमें एकके बदले दूसरी

औषधि प्रतिनिधि रूपसे ली जाती है। इसी नियमानुसार खनिज अम्ल और उद्भिद् अम्लका परस्पर एक दूसरेके स्थान पर व्यवहार किया जाता है।

(३) समान जातिकी वनौषधिका फल प्रायः एक समान रहता है, और जातिभेद होनेपर गुणमें अन्तर हो जाता है।

मल्वेसी (Malvaceae) जातिकी मला चतुष्टय, जपाकुसुम, भिण्डीके बीज, पारसपीपलकी छाल, कपासके बीज (बिनौले), सेमलकी मूल आदि औषधियां प्राय स्निग्ध हैं।

जेन्सियेनेसी (Gentianaceae) जातिका चिरायता और नागजिह्वा (कडूनाई-गुजराती) आदि औषधियां प्रायः बलकारक (आमाशय पौष्टिक) हैं।

कन्वलम्युलेसी (Convolvulaceae) जातिकी निशोथ, कालादाना, अमरबेल और मसारकी मूल आदि औषधियां विरेचक हैं।

सॉलेनेसी (Solanaceae) जातिकी औषधियां—धतूरा, खुरासानी अजवायन, कंटकारी, काकमाची, असगंध, (Withania Somnifera) की जड़, रसीभूटी (Belladonna), काकनुज, तमाखू आदि जनन माने गये हैं।

पिपरेसी (Piperaceae) वर्गकी औषधियां—पीपल, ताम्बूल, (नागरवेल), कालीमिर्च, शीतलमिर्च आदि उत्तेजक हैं।

इस तरह समानता होने पर भी कितने ही स्थलोंमें इन जातियोंसे सम्बन्ध होने पर भी फलमें सादृश्यता बहुत कम देखी जाती है, और क्वचित् किसी-किसी औषधिकी क्रिया बिल्कुल विपरीत प्रतीत होती है। इसके विपरीत पृथक जाति की औषधियोंके गुणोंमें भी क्वचित् सादृश्यता हो जाती है।

जैसे कन्वलम्युलेसी जातिकी शंखपुष्पी, वृद्धदारु और आखुपर्णी (मूषाकानी) आदि कितनी ही उपभेदोंकी औषधियोंमें विरेचन गुण प्रारम्भमें दृष्टिगोचर नहीं होता। सॉलेनेसी जातिकी औषधियोंमें लालमिर्च केवल उत्तेजक है, इसमें मोहजनन गुण बिल्कुल नहीं है।

अम्बेलिफेरी (Umbelliferae) जातिके जीरा, अजवायन, अजमोद आदि माइरिस्टिकेई (Myristiceae) जातिके जायफल आदि, सिटामिनेई (Scitamineae) जातिके अदरख, कुलिंजन, इलायची आदि और मार्टेसी (Myrtaceae) वर्गके लौंग, अमरूद, जामुन, समुद्रफल आदि भिन्न-भिन्न जातिकी अनेक औषधियोंकी क्रियाओंके भीतर अनेकांशमें समानता प्रतीत होती है। एवं जेन्सियेनेसी (Gentianaceae) सिमेरुबेई (Simarubeae) वर्गके महानिम्ब आदि, रेनन्क्युलेसी (Renunculaceae) वर्गके कलौंजी, अतीस, ममाय आदि और मेनिस्पर्मेसी (Menispermaceae) वर्गके गिलोय, पाठा

आदि, ये सब विविध जातिकी औषधियां होनेपर भी बहुधा समान गुणवाली अर्थात् कडुवी और बलवर्धक हैं।

(४) अनेक बार पशु आदि जीवोंके ऊपर औषधियोंकी परीक्षा करके गुण निर्णय किया जाता है, परन्तु बहुत सी औषधियोंका गुण इस तरह निर्णीत नहीं हो सकता। जैसे खुरासानी अजवायन (हायोसायमास) का पान गौ, भैंस आदिको किसी भी प्रकारका अपकार नहीं करता; किन्तु सूक्ष्म मात्रामें मानव देह पर मोहजनन और अधिक मात्रामें विष प्रकोप दर्शाती है।

(५) मनुष्य देह पर औषधि द्वारा फल निर्णय करना, यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

औषध परिणाम।

वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करने पर औषधियोंका देह पर जो परिणाम होता है, उसके साक्षात् और परम्परागत भेदसे दो प्रकार हैं। जैसे कोई औषधि देहमें प्रवेश करके तत्काल फल प्रदर्शित करे, उसे साक्षात् परिणाम; और साक्षात् क्रिया प्रकाशित होनेके पश्चात् उसी हेतुसे जो परिवर्तन होता है, उसे परम्परागत परिणाम कहते हैं। जैसे शरीरके किसी भाग पर राईका लेप लगानेसे उस स्थान पर लाली आकर दाह होने लगता है, यह साक्षात् परिणाम, तथा इस लेपके प्रभावसे समस्त देहमें उष्णता और उत्तेजना उपस्थित होती है, यह परम्परागत परिणाम कहलाता है।

इतर प्रकारसे औषधियोंके स्थानिक परिणाम और दूरवर्ती परिणाम, ये दो विभाग होते हैं। औषधिका किसी स्थान पर प्रयोग होनेसे उस स्थान पर क्रिया या फल प्रदर्शित हो, उसे स्थानिक परिणाम, और इतर स्थान पर परिणाम उत्पन्न हो, उसे दूरवर्ती कहते हैं। जैसे गन्धकके द्रावको किसी स्थान पर लगानेसे उस स्थान पर दाह होकर लाली आ जाती है, और छाला भी हो जाता है। एवं गन्धक द्रावको उदरस्थ करने पर आमाशयकी वातवहा नाड़ियोंमें उग्रता आ जाती है, ये दोनों स्थानिक परिणामके उदाहरण हैं। फिर इस उग्रताके हेतुसे हृदय, रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियोंके ऊपर परिणामकी प्राप्ति होती है, अर्थात् हृदय गति स्थगित हो जाती है; रक्तसंचालन क्रिया मन्द होती है और इतर स्थानकी वातवाहिनियोंमें खिंचाव होकर मृत्यु हो जाती है ये सब दूरवर्ती क्रिया कहलाती हैं। इन स्थानिक और दूरवर्ती परिणामोंका अन्तर्भाव भी साक्षात् और परम्परागत परिणामोंमें हो जाता है।

साक्षात् परिणाम।

(डायरेक्ट चेन्जेस—*Direct changes*)

साक्षात् परिणामके ३ विभाग हैं। भौतिक (Physical), रासायनिक (Chemical)—और जीवनीय (Vital)। इन त्रिविध विभागोंके नियमानुसार जीवित शरीर पर अपना परिणाम दर्शाते हैं।

भौतिक परिणाम

(फिजिकल चैञ्जेस Physical Changes)

भौतिक रूपान्तर होनेपर वस्तुकी वर्ण, रूप और अवस्थाका परिवर्तन हो जाता है, तथापि द्रव्यके रचनात्मक पांच भौतिक संगठनों (Composition) के भीतर स्थिर (Permanent) परिवर्तन नहीं होता। जैसे घीको तपानेपर वर्ण, रूप और अवस्था, ये कुछ समयके लिये (Temporary) बदल गये, किन्तु घीपना कायम रहता है। इस भौतिक परिणामके नियमके सम्बन्धमें भगवान् आत्रेयने कहा है कि:—

> सर्वदा सर्वभावाना सामान्य वृद्धिकारणम्।
> ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥
> सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत्।
> तुल्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्ययः॥

समान गुणधर्मयुक्त द्रव्यसे समान गुणधर्मयुक्त द्रव्यकी वृद्धि होती है। इस संसारव्यापी अविचल नियमानुसार औषधियोंमें भी समान जातिके समान गुणोंके द्रव्यसे देहमें स्थित उन जातिके द्रव्यको ही परिपोषण मिलता है। एवं समान द्रव्य समान द्रव्यकी ओर आकर्षित होकर मिश्रित भी हो जाता है। जैसे लोहभस्मके सेवन करनेपर वह रक्तस्थ लोह तत्त्वके साथ मिश्रित हो जाती है। चूना या क्षारका सेवन करने पर वे अस्थियोंकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। चरपरे द्रव्य— चित्रकमूल, पीपल, मिर्च आदि आमाशय या यकृत्को पित्तनिःसरण वृद्धि अथ सहायता पहुँचाते हैं, मांस और इतर मधुर गुणयुक्त गुरु द्रव्य मांस तत्त्वकी ओर आकर्षित होकर बृंहण गुणकी प्राप्ति कराते हैं। उत्तेजक पदार्थ वातवाहिनियाँ, वातनाडियोंकी अन्तिम शिराएँ, वातवहा नाडियोंके केन्द्रस्थान और रक्ताशक यन्त्रमें पहुँचकर उत्तेजनामें वृद्धि कराते हैं। संक्षेपमें द्रव्य, गुण और कर्म तीनों अपने अपने समान स्वभाव वालोंके साथ मिलकर स्वशक्ति अनुसार द्रव्य, गुण, कर्ममें वृद्धि कराते हैं।

विशेष अर्थात् विषम द्रव्य, विषम गुण, विषम कर्मके सम्बन्धसे न्यूनताकी प्राप्ति होती है। विरोधियोंके परस्पर युद्ध या प्रत्याकर्षण होनेसे शक्ति (तत्त्व) का ह्रास या मल दोषकी न्यूनता हो जाती है। इस नियमानुसार चिरायता आदि औषधियाँ शोषित होकर शारीरिक उत्तापका ह्रास कराती हैं। एवं अवसादक पदार्थ वातवाहिनियों द्वारा विविध यन्त्रोंकी उत्तेजनाका ह्रास कराते हैं, अर्थात् शामक असर पहुँचाते हैं। इस तरह सम विषम गुणोंवाली औषधियोंका कार्य चिकित्सा-क्षेत्रमें सर्वथा प्रत्यक्ष होता रहता है।

उपर्युक्त नियमानुसार समस्त सम विषम औषधियाँ रस द्वारा रक्तमें प्रवेशित होकर अपनी-अपनी शक्ति अनुसार परिणाम (क्रिया अथवा फल) की प्राप्ति कराती हैं।

डाक्टरी मतमें औषधि क्रिया देहमें भौतिक नियमके अनुरूप तीन प्रकारसे होती है—१ शोषण, २ अभिसरण, ३ तरलीकरण। इन तीनों प्रकारकी क्रिया द्वारा औषधियोंके गुण-दोषरूप परिणामकी प्राप्ति होती है। जब तक औषधि इन त्रिविध नियमोंमेंसे किसी एकके अनुकूल नहीं बन सकती, तब तक अपना परिणाम नहीं दर्शा सकती।

(१) शोषण क्रिया (Absorbents)—जो औषधि मुख द्वारा सेवनकी जाती हैं, उनमेंसे अनेकोंका शोषण मुखमेंसे, कितनीहीका आमाशयमेंसे तथा अनेकोंका अन्त्रमेंसे होता है। कितनीही औषधियाँ यकृत्, वृक्क आदि अवयवोंमें संग्रहीत होती हैं। व्यवायी, विकासी और विशद द्रव्य पाक होनेके पहिले आमाशयमेंसे शोषण हो जाता है। यह शोषण क्रिया उन औषधियोंकी होती है, जो रक्तमें मिश्रित हो जाती हैं। परन्तु यह शोषण क्रिया औषध द्रव्य और रक्तकी गाढ़ता और तरलताके ऊपर विशेष निर्भर है। जैसे यवक्षार आदि लवण द्रव्यको थोड़े जलमें मिलाकर सेवन करानेसे (वह द्रव रक्तकी अपेक्षा गाढ़ा होनेसे) अन्तर्गमन और बहिर्वहन रूप नियमानुसार रक्तमेंसे जलीय अंशका आकर्षण कर विरेचन करानेका प्रयत्न करता है। परन्तु जलको अधिक परिमाणमें मिश्रित कर सेवन कराने पर (रक्तकी अपेक्षा तरलता अधिक हो जानेसे) यह रक्तमें शोषित होकर मूत्रविरेचन कराता है।

शोषण क्रिया शरीरमें सर्वत्र यथा नियम होती रहती है किन्तु जिस स्थानका आच्छादन अति कोमल और सूक्ष्म होता है, उस स्थानमें शोषण क्रिया इतर स्थानकी अपेक्षा सहज और शीघ्र होती रहती है। इस नियमानुसार फुफ्फुसावरणमें इतर स्थानोंकी अपेक्षा शोषण शक्ति अधिक रहती है। आमाशय और अन्त्रकी श्लैष्मिक कला फुफ्फुसावरणकी कलाकी अपेक्षा स्थूल होनेसे न्यून शोषक है, और बाह्य त्वचा स्थूलतम होनेसे अति न्यून शोषक है।

मुखसे सेवनकी हुई औषधिमें लालास्राव, आमाशय रस पित्त आदि मिल जानेसे उसका शोषण देरसे होता है और सबका रक्तमें शोषण प्रायः नहीं होता। किन्तु शिरामें अन्तःक्षेपण करने पर सब औषधिका तत्काल रक्तमें मिश्रण होजाता है। यदि अन्तःक्षेपण त्वचा या मांसपेशीमें किया जाय, तो शिराकी अपेक्षा किञ्चित् अधिक, फिर भी जल्दी शोषण हो जाता है। इनके अतिरिक्त त्वचा, नासिका, नेत्र, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदि मार्गोंसे प्रयोजित औषधियाँ भी शोषित हो जाती हैं।

इस शोषण क्रियामें अनेक कारणोंसे न्यूनाधिकता भी हो जाती है। जैसे समस्त शिराएँ रक्तसे परिपूर्ण होने पर शोषण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है और विद्युत् शक्ति (Electricity) उत्तेजित होने या प्रबल बनने पर शोषण क्रिया सत्वर हो जाती है। उदर भरा हो, तो मुखसे सेवनकी हुई औषधिका शोषण देरसे होता है, खाली पेट हो तो जल्दी शोषण होता है।

यह शोषण क्रिया अन्तर्वहन और बहिर्वहन (Endosmosis and exosmosis) के नियमाधीन है। यदि किसी कपड़ेके दोनों ओर दो प्रकारके तरल पदार्थ रक्खे जायँ, तो उन दोनोंका मिश्रण करने पर सरलतासे मिश्रण हो जाता है। परन्तु उन दोनों तरल पदार्थोंमें यदि गाढ़त्वका तारतम्य हो, तो जब तक व्यवधायक वस्त्रमेंसे तरल द्रव प्रवाहित होकर समान गाढ़त्वको प्राप्त न हो जाय, तब तक दोनों ओरके द्रव परस्पर आकृष्ट होकर मिश्रित होते रहते हैं। इस स्थान पर पाठकोंको लक्ष्य देना चाहिये कि, दोनोंके आकर्षणमें समानता नहीं है। यह नियम है कि, तरल पदार्थ गाढ़े पदार्थको आकर्षित करे, इसकी अपेक्षा गाढ़ा पदार्थ तरल पदार्थको अधिकतर आकर्षण करता रहता है। इसी नियमानुसार औषधिके शोषणरूप परिणाममें क्रिया होती है। फिर औषधसत्व रक्तस्रोतोंमें संचालित होकर यथास्थान अपना-अपना प्रभाव दर्शाता है।

भौतिक परिणामके नियम—

(अ) जब कोई औषधि शरीरके एक देशमें प्रयोजित होकर स्थानान्तरमें प्रभाव दर्शाती है, तब माना जाता है कि, औषधके परिणामका स्राव हुआ है। शिरा आदि द्वारा दूषित होनेके अतिरिक्त इसका इतर कोई कारण नहीं है।

(आ) अनेक औषधि द्रव्यके गन्ध, स्वाद और वर्ण आदि निःश्वास, प्रस्वेद और मूत्र आदि शरीरस्थ रसोंके भीतर प्रकाशित होते हैं, जैसे शराब, लहसुन और प्याजकी गन्ध निःश्वासमें, रेवन्दचीनीका वर्ण मूत्रमें, और मंजिष्ठाका वर्ण अस्थिमें प्रतीत होता है।

(इ) एक व्यक्तिके औषधि सेवन करने पर उसके शरीरका रसरक्त आदिके प्रवेश द्वारा दूसरोंके प्रति उसी औषधिके फलकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे माता द्वारा उसके स्तनपायी शिशुके शरीरमें औषधिका गुण व्यक्त हो जाता है। मछली साँपको खा जाय, और सर्पके विषका पूर्णांशमें रूपान्तर हो जानेके पहिले उस मछलीका मांस किसी मनुष्यके खानेमें आ जाय, तो सर्पविषका असर मनुष्य पर हो जाता है।

ग्रामशूकर (सूअर) आदि पशु कृमि या कीटाणु मिश्रित विष्ठा खा लेते हैं; फिर उन कीटाणुओंका पूर्णांशमें पचन हो जानेके पहिले उस सूअरका मांस मनुष्यके

खानेमें आ जानेसे अनेक खानेवालोंको उदरकृमि (Taenia Solium) आदि रोगोंकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

बीमार जीवोंके मांसभक्षणसे अनेक लोगोंको व्याधियाँ हो जाती हैं। ग्रन्थिमह (Plague) से पीड़ित चूहोंको खा लेनेसे अनेक बिल्लियोंकी भी मृत्यु हो गई है।

(ई) देहके किसी स्थानमें औषधप्रयोग करने पर उस स्थानसे उद्गत रक्तवहा नाड़ियों (हृदयकी ओर रक्तवहन करानेवाली शिराओं) के समुदाय पर बन्धन बाँध देनेसे दूर स्थान पर औषधिके गुणका प्रतिरोध हो जाता है। इसी नियमानुसार सर्पविष आदिके घातक गुणको रोकनेके लिये रक्तवाहिनियोंको डोरी या वस्त्र आदिसे दृढ़ बाँध दिया जाता है।

(उ) शिराओंमें औषधिका प्रवेश कराने पर उस का परिणाम तत्काल प्रकाशित होता है। जैसे वमन औषधिका इन्जेक्शन द्वारा शिरामें प्रवेश कराने पर वान्ति होने लगती है, और विरेचन औषधिके प्रयोगसे विरेचन होने लगते हैं। इस प्रभावका बोध औषध सेवनके पश्चात् भौतिक परीक्षा या देहस्थ रस और विविध यन्त्रोंकी रासायनिक परीक्षा करने पर हो जाता है।

(२) आवरण क्रिया (Covering)—जिस स्थान पर औषधिका लेप आदि आवरण लगाया जाता है, वह स्थान दूसरे द्रव्योंके घर्षण और इतर रासायनिक परिणामसे सुरक्षित रहता है। इस नियमानुसार व्रण-विद्रधि आदि पर मलहम, लेप आदिकी पट्टी लगायी जाती है।

(३) प्रवाहीकरण (Dilution)—यथेष्ट परिमाणमें जलपान और जलका भोजन करने पर आमाशयस्थ अम्ल और उष्ण रसका प्रवाहीकरण होता है; अर्थात् पतलापन साधित होता है। फिर उग्रताका शमन होता है तथा पिये हुए पानीका रक्तमें शोषण होनेसे पेशाब आदिमें तरलता संपादित होकर विष, क्षार और तीक्ष्णता आदि दूर हो जाते हैं।

आमाशयमें अम्ल और उग्र रसका संचय होने पर आवश्यक जलपान करनेसे उसका शमन हो जाता है। यदि आमाशयमें अत्यधिक उग्रता या विकृति आ गई हो, तो अधिक जलपान करा वमन करानेसे दोष सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है।

रक्तमें अधिक गाढ़ापन और उष्णता हो गई हो, तो वे भी रक्तमें जलका शोषण हो जानेसे दूर हो जाती हैं। इस तरह रसकी न्यूनता भी जलपानसे दूर हो जाती है।

आयुर्वेदने रोगभेदसे जलपान विधिमें भेद करनेको लिखा है। कतिपय रोगोंमें गरम किया हुआ जल पिलाया जाता है, तथा कतिपय रोगोंमें ताजा शीतल जल हितकारी माना गया है। कचित् जलमें शक्कर या इतर औषधि मिलाई जाती है।

कचित् जल कुछ कम परिमाणमें पिलाया जाता है। इस सम्बन्धके नियम 'रसतन्त्र सार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के आवश्यक सूचनाके नं० १४७ से १५४ तक दिये हैं।

जलपान करने पर यह आमाशयमें शोषित होकर रक्तमें प्रवेश करता है। फिर रक्तमें तरलाधिक्य और शीतलताकी प्राप्ति होती है। इस हेतुसे विसूचिका आदि रोगोंमें रक्त घन गाढ़ा हो जाता है या ज्वर प्रदाह आदिमें रक्त जब उष्ण हो जाता है, तब रक्तके तरलाधिक्य होने पर रक्त विकृति कम होती है। फिर रक्तमेंसे प्रस्वेद ग्रन्थियाँ और वृक्कोंको योग्य रक्तरस मिल जानेसे विकृतिको शमन करनेके लिए क्रिया होने लगती है।

रसायनिक परिणाम

(केमिकल चैन्जेज Chemical Changes)

रासायनिक परिवर्तन होने पर वस्तुके गुण, रूप, और स्थिति सब बदल जाती हैं और जिसके रूप, गुण बिल्कुल भिन्न हों, ऐसी वस्तु बन जाती है। उदाहरणार्थ ज़सदको गन्धकके तेज़ाबमें डालने पर गेस निकल जाती है और शेष द्रव्य तेज़ाबमें घुल जाता है। उसे सुखालेने पर जसदके स्थान पर एक श्वेत चूर्ण मिलता है। जो जसदके रूप, गुणसे बिल्कुल भिन्न है। पारद, गन्धक और फिटकरी आदि मिलाकर कूपीपक्व रसायन बनानेपर पारद आदि द्रव्योंसे भिन्न रूप, गुणवाला रसकपूर बन जाता है। हल्दी और क्षारका रासायनिक संयोजन होनेपर लाल रंगका कुंकुम बन जाता है। २ भाग हाइड्रोजन और १ भाग ऑक्सिजन मिलनेपर भिन्न गुण, रूपवाला जल तैयार होता है। पीपरमेण्टके फूल और कपूर मिलनेपर एक प्रकारकी प्रवाही औषधि बन जाती है।

कितनेही द्रव्यके परमाणु शारीरिक तन्तु और घटकोंके जीवनरसके रासायनिक मिश्रण पर क्रिया करते हैं और वे उसके साथ रासायनिक विधि से मिल जाते हैं। परिणाम में उन द्रव्योंके विभिन्न गुणोंका परिचय मिलता है। इन द्रव्योंकी क्रिया किस प्रकारसे प्रकाशित होती है, यह पूर्णांशमें निर्णय करना अति कठिन है। इस शारीरिक व्यापारपर मनका प्रभाव भी पड़ता है। मनकी प्रसन्नता होनेपर या श्रद्धासे औषधिको काम मान लेनेपर लाभ होता जाता है। इसके विपरीत, शोक, अश्रद्धा, क्रोध आदिसे लाभदायक औषधिका सेवन व्यर्थ हो जाता है और विपरीत मानस क्रिया द्वारा हानि पहुँच जाती है, परिणाममें हितकर औषधि भी हानिकर माननेकी भूल हो जाती है।

रासायनिक नियमानुरूप मधुर और लवण रस द्वारा अम्लता का नाश, मधुर रससे दाह शमन, अम्लरस द्वारा क्षारत्व गुणका लोप, और जठराग्नि द्वारा विविध औषधियोंके गुणका संहार होना आदि-आदि परिणाम शरीरमें सर्वदा होता रहता है।

इस रासायनिक परिणामका बोध आयुर्वेदने औषधियोंके गुण, वीर्य, विपाकसे समझाया है।

जीवनीय परिणाम।
(वाइटल चेन्जेस Vital Changes)

औषधिका परिणाम मुख्यतः इसी नियमानुसार मिलता रहता है। कारण, औषधियोंकी क्रिया बहुधा जीवन पर ही निर्भर है। यद्यपि भौतिक नियमानुसार औषधि देहमें शोषित हो जाय, तथापि इसके पश्चात् किस विशेष यन्त्र पर इसकी प्राप्ति होगी? यह बात भौतिक नियमके अधीन नहीं है। जैसे तार्पिन तैलका सेवन करने पर भौतिक नियमानुरूप शोषण होकर रक्तमें मिश्रित हो जाता है, और इतर सब यन्त्रोंका परित्याग कर केवल वृक्क स्थानोंके ऊपर विशेष फल दर्शाता है, यह परिणाम सजीव देह के नियमसे ही साधित होता है। यह क्रिया मृत शरीरमें प्रतीत नहीं होती।

अफीम द्वारा चेतना हरण, राई आदिके प्लिस्टर द्वारा फाला होना, अनन्नास फली रसके सेवनसे गर्भाशयके रक्तस्रावका निरोध, कपासमूलत्वक् द्वारा गर्भाशय संकोच बड़ी फलके सेवनसे शुक्र विरेचन, कुचिलासे वातवहा नाड़ियोंकी उत्तेजना, ताम्र भस्मसे पित्तका अधिक स्राव, वंग भस्मसे शुक्राशयकी दृढ़ता, तृणकान्तमणि (कहेरवा) से किसी स्थानमेंसे होनेवाले रक्तस्रावका रोध, और मस्तिष्कमें उत्पन्न कृमियोंका नासिका द्वारा पतन आदि आदि परिणाम जीवित देहमें ही प्रतीत होते हैं।

विधि भेदसेव्य परिणामभेद—औषध परिणामके सम्बन्धमें विशेष विचार करने पर विदित होता है कि, औषध प्रयोगमें विधिभेद होने पर यान्त्रिक क्रिया और लक्षणमें भेद हो जाता है। जैसे कुचिलाको क्षतके ऊपर लगाया जाय, तो बिना आक्षेप घातक फलकी प्राप्ति कराता है। कुचिलासे सञ्चालन क्रिया करने वाली वातवहा नाड़ियोंका पक्षाघात होता है। फिर इसी हेतुसे शरीरकी सब मांसपेशियोंके बलका हरण होकर वे अवसन्न हो जाती हैं।

कुचिलाका यदि अधिक मात्रामें मुख द्वारा सेवन किया जाय, तो सुषुम्नाकी क्रियाका अवरोध होता है, और मरणके पहिले तीव्र आक्षेप आने लगता है। यह तीव्र आक्षेप कुचिलाका साक्षात् कार्य नहीं है, परन्तु परम्परा परिणाम है। कुचिलाके विषसे प्रारम्भमें चेष्टावहा नाड़ियाँ दूषित होती हैं; तथा श्वासोच्छ्वास क्रिया कराने वाली महाप्राचीरा और उदरच्छदिका आदि मांसपेशियाँ पक्षाघातसे ग्रसित हो जाती हैं; इस हेतुसे श्वासोच्छ्वासमें व्याघात होकर रक्तकी संशोधन क्रिया मन्द या बन्द हो जाती है; फिर शरीरका सब रक्त अशुद्ध हो जाता है और यही रक्त देहमें संचालित होकर वातवहा नाड़ियोंके केन्द्र स्थानमें गमन करता है परिणाममें वहाँ उग्रता की उत्पत्ति होकर द्रुत आक्षेप उपस्थित होता है।

कुक्षिका के बाह्य प्रयोग और आन्तर प्रयोग, उभय प्रकारमें अवसादक गुणकी स्पष्ट प्रतीति होती है। दोनोंमें श्वसोच्छ्वास क्रिया करने वाली पेशियाँ और दोनों शाखाओंकी मांसपेशियोंसे सम्बन्ध वाली चेष्टावहा नाड़ियाँ, सब अवसन्न हो जाती हैं। फिर दोनों प्रकारोंके प्रयोगोंसे श्वासावरोध होकर मृत्यु होजाती है। तथापि मुख द्वारा ग्रहण करने पर शाखाद्वयकी मांसपेशियोंकी चेष्टावहा नाड़ियोंमें अवसन्नता कुछ अंशमें हो जाती है, विशेष रूप से नहीं, और वातवहा नाड़ियोंके केन्द्रस्थानमें मस्तिष्क रक्तसंचालन रूप विशेष हानि होने पर उग्रता आकर तीव्र आक्षेप उपस्थित हो जाता है। बाह्यप्रयोगमें शाखाद्वयकी मांसपेशियाँ पूर्णरूपसे अवसन्न हो जाती हैं किन्तु वात केन्द्रमें उग्रता नहीं आती और तीव्र आक्षेपकी प्राप्ति भी नहीं होती। इस तरह दोनों प्रकारोंमें क्रिया और परिणाममें कुछ-कुछ अन्तर हो जाता है।

यहाँ जो परिणामनिर्णय दर्शाया है, उसका अनुमान या निर्णय कुछ अंशमें ही होता है, पूर्णांशमें नहीं। कारण, कतिपय शारीरिक क्रिया अपर क्रियाका परिवर्त्तन कराती हैं और वह द्वितीय क्रिया प्रथम क्रिया पर प्रतिक्रिया दर्शाती है। इस हेतुसे किसी यन्त्र पर किस औषधिकी क्रिया किस तरह और कितने अंशमें होती है, औषध द्रव्य शायद् सम्बन्धसे यान्त्रिक क्रियाको कहाँ तक परिवर्तित कराती है और कहाँ तक औषध द्रव्यकी क्रिया परम्परा परिणामको प्रकाशित करती है? इत्यादि बातोंका पूर्ण रूपसे निर्णय करना दुःसाध्य माना गया है।

परम्परागत परिणाम।

(इण्डायरेक्ट चेन्जेस Indirect Changes)

परम्परागत परिणाम साक्षात् क्रिया होने पर नैसर्गिक नियमानुसार मिलता रहता है। इस परम्परागत परिणामकी प्राप्ति समय, स्थान, शक्ति, अनुकूलता, प्रतिकूलता, व्यसन, रोगभेद, व्यसनभेद, आयुभेद आदि कारणोंसे पृथक्-पृथक् रूपमें मिलती है। इसके लिये निम्नानुसार अनेक नियम बनाये गये हैं।

(१) उत्तेजना के पश्चात् क्षीणता—किसी भी शारीरिक यन्त्रकी क्रियामें उत्तेजना आ जानेके पश्चात् शक्तिका ह्रास होने पर क्षीणता—निस्तेजताकी प्राप्ति होती है। इस नियमके अनुसार शराबीको शराब पीनेसे उत्तेजना होकर फिर अवसन्नताकी प्राप्ति होती है।

(२) क्षीणताके पश्चात् उत्तेजना—जीवनीय शक्तिको हानि न पहुँचे यदि इस तरह देहस्थ क्रियाको शिथिल किया जाय, तो थोड़े समयमें ही उस क्षीणताका अंत होकर उत्तेजनाकी संप्राप्ति होती है। जैसे बलवान् व्यक्तिको शीतकालमें शीतल जलसे स्नान करनेके किंचित् कालके पश्चात् प्रतिफलित क्रिया (Reaction) रूप शरीरमें उष्णताकी प्राप्ति होती है। एवं इसी नियमानुसार परिश्रमके पश्चात् सुनिद्रा मिल जानेसे शारीरिक स्फूर्ति आ जाती है।

(३) एक यन्त्रका इतर यन्त्र पर परिणाम—शरीर के भीतर किसी एक प्रधान क्रिया द्वारा एक या एकाधिक मुख्य यन्त्रोंकी क्रियामें विलक्षणता आने लगती है। जैसे शराब और अफीम आदिका सेवन अधिक परिमाणमें होने पर मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होता है। फिर उस क्रियाका ह्रास होने पर श्वासोच्छ्वास, रक्तसंचालन और दर्शन, श्रवण आदि शारीरिक क्रियाएँ अवसन्न हो जाती हैं। इस स्थान पर औषधिकी साक्षात् क्रिया (मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य) होकर परम्परासे परिणाम रूप सांघातिक अवसन्नताकी प्राप्ति होती है।

इसके अतिरिक्त किसी औषधि द्वारा वातवहा केन्द्रका अवसादन होने पर भी सारा शरीर अवसन्न हो जाता है। यह भी परम्परागत परिणाम है। शस्त्रचिकित्सक शस्त्रचिकित्सामें रोगीको मूर्च्छा (Shock) की प्राप्ति कराते हैं, यह भी इसी नियमाधीन है।

(४) संवेदनाजन्य परिणाम—अनेक औषधियों द्वारा किसी एक स्थानकी वातवहा नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं। फिर ये स्थानान्तरमें परिणामकी प्राप्ति कराती हैं। जैसे गर्भावस्थामें स्तनों पर ब्लिस्टर लगानेसे उत्तेजना गर्भाशयमें प्रवेश कर गर्भपात करानेका प्रयत्न कराती है।

क्वचित् इसके विरुद्ध प्रक्रिया द्वारा कार्यसिद्धि होती है। यथा संन्यास रोगमें विरेचन देनेसे अन्त्रकी वातवहा नाड़ियाँ उत्तेजित होकर विष और रक्तरसको बाहर निकालती हैं। परिणाममें मस्तिष्कमेंसे रक्तस्राव और रक्तमेंसे विषका नाश हो जाता है।

सूर्यावर्त (Hemicrania) में प्रातःकाल दूध-जलेबी खिला देनेसे आमाशयमें उत्तेजना उत्पन्न होती है। फिर मस्तिष्कस्थ उत्तेजनाकी उत्पत्ति नहीं होती।

(५) प्रतिक्षोभक परिणाम (Counter Irritation) किसी स्थान विशेष पर औषधि प्रयोग द्वारा उग्रता उत्पन्न करा स्थानान्तरके विकारको शमन कराया जाता है। इसका विशेष विचार पहिले प्रतिक्षोभ आयक गुण नं० १०१के विवेचनमें किया गया है।

(६) रोगनिवारण शक्तिजन्य परिणाम—देहमें किसी भी प्रकारकी हानि होने पर उसे रोगनिवारण शक्ति अपने बलानुसार न्यूनाधिक कालमें पूर्ण करती है। क्लिष्ट प्रबल रोगोंमें कभी-कभी औषधि द्वारा नूतन रोग उपस्थित कराने पर रोगनिवारण शक्ति उत्तेजित होकर पूर्व रोगका प्रतिकार करती है। यथा मन्द ज्वर रोगोंमें दाहक औषधि द्वारा प्रदाह कराने पर उन रोगोंका नाश हो जाता है। इसे आयुर्वेदमें व्याधि विपरीतार्थकारी क्रिया कहा है।

(७) कारण नाशसे रोगशमन—अपचन होने पर आमाशयमें दूषित रस संचित होकर शिरदर्द होता है, तब वमन औषधि देनेसे हेतु नष्ट होकर रोग दूर होता है।

जाता है। एवं कोष्ठबद्धताके हेतुसे शिरदर्द होने पर उदरशुद्धि करानेसे मस्तिष्ककी वेदना निवृत्त हो जाती है, इसे आयुर्वेदने हेतुविपरीत चिकित्सा कहा है।

व्याधि प्रतिकार।

जो औषधियाँ सेवन की जाती हैं या अन्तः क्षेपण रूपसे प्रवेश करायी जाती हैं अथवा सहायक क्रिया उपयोगमें ली जाती है, ये सब अपने गुण या शक्ति अनुसार नैसर्गिक नियमानुकूल बनकर रोग प्रतिकार करती हैं। औषधियें गुणभेदानुसार शारीरिक परिणाममें विभिन्नता प्रतीत होती है।

औषधि देहमें प्रविष्ट होने पर सामान्यतः उसे शोषण, प्रसर, संग्रह तथा निःसरण, इन अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है। मुखसे सेवन की हुई औषधि रसवाहिनियों द्वारा शोषित होकर परम्परागत तथा अन्तःक्षेपित औषधि साक्षात् रक्तमें मिल जाती है। फिर देहमें सर्वत्र फैलकर लसीकासे क्लिन्न घटकोंके सम्पर्कमें आती है। अनेक औषधि लसीकामें ही रह जाती हैं, कितनी ही लसीका और घटकोंकी दीवारका भेदनकर भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं। इनमें से सबल औषधियाँ घटकोंके जीवन द्रव (Protoplasm) पर अपनी क्रिया प्रकाशित करती हैं (जैसे-शराब आदि) और बहुतसी घटकों के इतर भागपर कार्य करती है।

अनेक औषधियाँ—मल्ल, कुचिला, डिजिटेलिस आदि यकृत् आदि अवयवोंमें संचित होती हैं, वे इन पर क्रिया करती हैं या कुछ समय तक निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। कितनी ही शराब, लहसुन आदि औषधिका निःसरण त्वचाके छिद्रोंमेंसे स्वेदके साथ और नासिका मार्गसे निःश्वासके साथ होता है। कितनी ही मलमूत्रके साथ निकलती हैं। इनमेंसे कोई जल्दी बाहर निकलती है और कोई देरसे।

शारीरिक यन्त्रोंके प्रभाव और रासायनिक प्रभाव द्वारा अर्थात् रस आदि धातुओंकी औषधि पर विशेष क्रिया होकर विविध परिणामोंकी प्राप्ति होती है। इन परिणामोंमें निम्नानुसार १२ प्रकार होते हैं —

(१) अपतर्पण, (२) संतर्पण, (३) संशोधन, (४) प्रवाहीकरण, (५) उत्तेजना, (६) अवसादन, (७) प्रत्युग्रता, (८) दमन, (९) परिवर्तन (१०) कारणप्रतिकार, (११) रासायनिक प्रभाव, और (१२) यान्त्रिक प्रभाव।

(१) अपतर्पण (Depletion)—अर्थात् देहमेंसे रक्त परिमाणका ह्रास कराना। इसके दो प्रकार हैं—साक्षात् (Direct Depletion) और परम्परागत (Indirect Depletion)। व्यापक अथवा, स्थानिक, रक्तका स्राव कराकर और वमन-विरेचन आदि द्वारा रसको अधिक निकलवाकर रक्त परिमाण कमया जाता है, उसे साक्षात् अपतर्पण कहते हैं। उपवास द्वारा या पौष्टिक

आहारका त्याग करा रक्तोत्पत्ति कम कराई जाती है, उसे परम्परागत अपतर्पण कहते हैं।

इस अपतर्पण प्रभावकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदमें अपतर्पण (लंघन) चिकित्सा कही है। इसके शोधन और शमन दो भेद हैं। इसकी आयुर्वेदिक विधि, अधिकारी, फल आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ १६ से १७ तक किया गया है।

इस अपतर्पण क्रिया द्वारा रक्ताधिक्यका ह्रास, दाहशमन और आम, मेद आदि दोषोंका शोषण होता है। इनमेंसे रक्ताधिक्यका ह्रास और दाहशमन, ये रक्तस्रावरूप साक्षात् अपतर्पण द्वारा सत्वर सफल होते हैं, और आम, मेद आदिके शोषणार्थ स्वेदन, वमन, विरेचन, रक्तस्राव, उपवास, पौष्टिक आहारका त्याग आदि साधन लाभदायक होते हैं।

अपतर्पणसे रक्तकी मात्रा न्यून होने पर शारीरिक समस्त क्रिया आहारपचन, रक्तसंचालन, श्वासोच्छ्वास, रक्तस्राव, परिपोषण और शारीरिक उत्ताप इत्यादिमें न्यूनता हो जाती है; एवं समस्त मांसपेशियोंमें क्षीणता, स्पर्शज्ञानमें न्यूनता, मानसिक भावना और बुद्धिवृत्तिमें हीनता (उत्साह भंग और विचार शक्तिसे यथोचित कार्य न होना) आदि परिणामोंकी प्राप्ति भी होती है। क्वचित् अधिक रक्तस्राव होने पर मूर्च्छा होकर मृत्यु भी हो जाती है। अतः रक्तस्राव विचारपूर्वक कराना चाहिये।

इस तरह अपतर्पण द्वारा उपर्युक्त सब क्रियाओंमें शिथिलता आ जाती है। परन्तु रक्त परिमाणमें न्यूनता होने पर सब शिराओंकी शोषण क्रिया बढ़ जाती है। देहकी समता स्थिर रखनेके लिये शिराएँ देहमेंसे चारों ओरसे जलीय अंशका शोषण बलपूर्वक करने लगती हैं। अतः रक्तका परिमाण सत्वर पूर्ण हो जाता है, परन्तु इतर कार्योंमें जो शिथिलता आगई है, वह शनैः शनैः ही दूर होती है।

(२) संतर्पण—बृंहण (Repletion)—इस बृंहण गुणका प्रभाव, मांस आदिकी वृद्धि कराता है। जब अधिक दुर्बलता या रक्तहीनता आदिकी प्राप्ति हुई हो, तब इस बृंहण साधनका उपयोग होता है। देहमें रक्त, मांस आदिकी वृद्धि करानेके लिये पौष्टिक औषधियाँ, बलवर्धक आहार, विशुद्ध वायुका सेवन, आवश्यक व्यायाम और आवश्यक विश्रान्ति आदि संतर्पण साधन माने जाते हैं।

आयुर्वेदमें बृंहणचिकित्सा कही है। इसके विधि, अधिकारी फल आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके प्रत्याहत्य चिकित्साके अन्तर्गत पृष्ठ ३५ से ३९ तक किया गया है।

(३) सशोधन (Elimination)—देहमें अनेक मल त्याग करने बन जाती हैं; इनमेंसे अनेकोंका रक्तमें शोषण हो जाता है। फिर वे वृक

आदि संशोधक यन्त्रोंकी क्रिया द्वारा मूत्र और प्रस्वेद आदि रूपसे देहमेंसे बाहर निकल जाती हैं। इस तरह नैसर्गिक शक्ति रक्तको शुद्ध रखनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहती है।

जब किसी कारणवश संशोधक यन्त्र अपना अपना कार्य यथोचित न कर सकें, तब त्याज्य वस्तु देहमें संगृहीत होने लगती है। फिर ज्वरोत्पत्ति, चर्मरोग, रक्त-विकार, कुष्ठ आदि अनेक रोगोंकी संप्राप्ति होती है। इस हेतुसे दोषसंचय होने पर संशोधक यन्त्रोंकी क्रियाकी वृद्धि करा दोषको बाहर निकाल दिया जाता है; अथवा रोगोत्पत्ति हो जाने पर संशोधन यन्त्रोंकी क्रिया द्वारा रोगका शमन कराया जाता है।

अनेक बार किसी भी प्रकारके विष—सोमल, रसकपूर, नाग (शीशा), ताम्र आदि धातु, सर्प, वृश्चिक, लूता (मकड़ी), चूहे आदि जीवोंका विष, सूक्ष्म कीटाणु, चाय, तमाखू, गांजा, कोकीन, अफीम, धतूरा आदिका देहमें प्रवेश हो जाने पर संशोधक यन्त्रोंकी क्रियाको बढ़ानेके लिये औषधि दी जाती है। ऐसे प्रसंगों पर पहिले विष द्रवीभूत होकर रक्तमें शोषित हो जाता है। फिर उसे संशोधक यन्त्र बाहर निकाल डालते हैं।

आयुर्वेदने स्वेदन, वमन, विरेचन आदि अनेक कर्म संशोधन निमित्त कहे हैं। इनका संक्षिप्त विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' के उपोद्घात प्रकरण पृष्ठ १८ से ३९ तक में किया है, और विशेष विचार शरीर शुद्धि प्रकरणमें पृष्ठ ४२ से ११४ तक दर्शाया है।

(४) प्रवाहीकरण (Dilution)—अधिक मात्रामें पतला भोजन या जल आदिके सेवन द्वारा इस प्रवाहीकरण (पतलापन) की संप्राप्ति होती है। इसका विशेष विचार पहिले पृष्ठ २१६ में किया गया है।

(५) उत्तेजना (Stimulation)—शरीरस्थ एक या एकाधिक क्रियाके वेगकी वृद्धि होने पर उत्तेजना कहलाती है। इसके स्थिर और अस्थिर भेदसे तथा व्यापक और स्थानिक भेदसे दो-दो प्रकार हैं। जिसका परिणाम स्थिर रहे वह स्थिर उत्तेजना। जिसका फल अल्पक्षण पर्यन्त रहे, वह अस्थिर या अस्थायी उत्तेजना, जो परिणाम सम्पूर्ण देह पर हो, वह व्यापक उत्तेजना, और जो फल किसी यन्त्र विशेष पर प्रतीत हो, वह स्थानिक उत्तेजना कहलाती है। इस उत्तेजनाके प्रभावका विवेचन पहिले औषधगुणविचारके उत्तेजक गुणके साथ किया गया है।

(६) अवसादन (Sedation or Depression)—शारीरिक एक या अधिक जीवन क्रियाके ह्रासको अवसादन कहते हैं। इस अवसादनके दो प्रकार हैं—व्यापक और स्थानिक।

जब समस्त देह अवसादित, शिथिल या शान्त हो जाय, तब व्यापक अवसादन; और जब किसी यन्त्र या स्थान विशेषमें अवसन्नता आ जाय, तब स्थानिक अवसादन

कहलाता है। इस अवसादन गुणकी प्राप्ति क्लोरोफार्म, यवक्षार, अफीम, तार्पिन तैल, बर्फ आदि औषधियों द्वारा होती है। इसका विस्तृत विवेचन औषध गुण विचारके नं० ७४ अवसादक (शामक) गुणके साथ किया गया है।

(७) प्रतिक्षोभ (Counter Irritation)—प्रतिक्षोभोत्पादक औषधि द्वारा एक स्थानमें उग्रता उत्पन्न करा स्थानान्तरकी उग्रताका शमन कराना। जैसे यकृत्में दाह होने पर उदर पर राईका प्लिस्टर लगाना, संन्यास रोगमें तीव्र विरेचन देना इत्यादि। इसका विवेचन इस ग्रन्थमें पहिले औषधगुण विचारके नं० १०१ में किया गया है।

(८) दमन (Supercession)—एक नूतन विकारकी प्राप्ति करा पहिलेके रोगका दूर करना। जैसे गन्धाबिरोजा या शीतलमिर्चके प्रयोग द्वारा मूत्र-प्रसेक नलिकामें उग्रता उत्पन्न करा पूयमेहका निवारण करना।

(९) रसायन (Alteration)—परिवर्तन अर्थात् शारीरिक द्रव्योंका क्रमशः औषधि द्वारा परिवर्तन करा रोगको नष्ट करना। जैसे रसकपूर, सोमल आदि औषधिया द्वारा जीर्ण उपदंशजनित विकृत धातुओंका निवारण कराकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति करायी जाती है। यह परिवर्तन जीर्ण रोगोंमें और निर्बलावस्थामें ही कराया जाता है औषधिगुणधर्मसे विशेष विस्तृत विवेचन पहिले नं० २१ रसायन गुणविवेचनके साथ किया गया है।

(१०) कारण प्रतिकार (Anticausation)—मूल रोगका विनाश कर उससे उत्पन्न उपद्रवात्मक रोगोंको नष्ट करना। जैसे कृमिनाशक औषधि द्वारा कृमिप्रकोपसे उत्पन्न ज्वर, पाण्डु, उदरपीडा, अग्निमान्द्य, अरुचि, कण्डु आदिका नाश कराया जाता है।

(११) रासायनिक प्रभाव (Chemical Influence)—अर्थात् शारीरिक रस आदिके साथ विरोधी पदार्थका संयोग कराकर लाभ पहुँचाना। संयोग करानेमें तीन उद्देश्य हैं १ कीटाणुनाश २ शारीरिक रस आदि धातुके गुणका परिवर्तन ३ रक्तमें या कृमिके इतर उपादानमें रोगशामक क्रिया या रसकी उत्पत्ति कराना।

जैसे, रक्तमें विषम ज्वरके कीटाणुकी वृद्धि होने पर कीटाणु नाशार्थ सप्तपर्णका सत्व या क्विनाइनका सेवन कराया जाता है।

आमाशयमें अम्लता प्रधान रसकी वृद्धि होने पर अम्ल रस विरोधी शंख वराटिका, शुक्ति, सज्जीक्षार आदिका सेवन, क्षारीय रसकी वृद्धि (यकृत्के पित्तस्राव अधिक) होने पर अम्लविपाक युक्त औषधि और भोजनका सेवन तथा अत्यधिक रसवृद्धि हो, तो विरेचन आदिसे संशोधन कराया जाता है। राईके लेप आदि दाहक औषधि द्वारा फफोला उठा या क्षत करा दोषको आकर्षित कर लिया जाता है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे इस रासायनिक प्रभावका वर्णन पहिले षट्‌रस गुण-दोष विचारके साथ किया गया है।

(१२) यान्त्रिक प्रभाव (Mechanical Influence)—अर्थात् देह रूप यन्त्रको किया द्वारा रोगको दूर करना, इसके विकार भेदसे ५ विभाग होते हैं।

(अ) संस्थिति (Position)—जैसे मस्तिष्कमें रक्ताधिक्यजन्य प्रदाह होने पर मस्तिष्कको ऊँचे सिरहाने पर रखवाकर आराम करानेसे मस्तिष्कमें रक्त-सञ्चालनका वेग शान्त हो जाता है। यह मध्याकर्षण किया द्वारा सम्पादित होता है।

(आ) संपीड़न (Compression)—सिरा-धमनी आदिको दबा रक्तसञ्चालन कियाका निग्रह करा रोगको दूर करना। जैसे धमन्यर्बुद (Aneurysm) होने पर उस धमनीके ऊर्ध्व भागमें बन्धन द्वारा दबाव डालकर रक्तस्रावको रोकनेसे रोगका निवारण हो जाता है।

(इ) प्रसारण (Distention)—मल आदि दोषको दूर करनेके लिये औषधि आदिका प्रवेश करा दोषको फैला देना। जैसे अन्त्रके निम्न भागको कियाकी उत्तेजनाके निमित्त वस्ति या पिचकारीका उपयोग करनेसे दोष निकल जाता है। वस्तिमें अनेक प्रकार हैं। इनके विधि, अधिकारी, फल आदिका वर्णन 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ६८ से ८८ तक किया है।

(ई) घर्षण (Friction)—यह घर्षण (मर्दन) किया बहुधा त्वचाकी कियाके उत्तेजनार्थ व्यवहारमें लाई जाती है। इस घर्षणका वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिसे 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ १२६ में तैलाभ्यंग रूपसे तथा पृष्ठ १३१ में उद्वर्तन रूपसे किया गया है।

(उ) आच्छादन (Covering)—जैसे व्रण आदि पर मलहम आदिका प्रयोग।

इनके अतिरिक्त मानसिक प्रसन्नता व्याधिनिग्रहमें सहायक होती है, तथा बिना औषधसेवन केवल मानसिक संकल्प, प्रेरणा अथवा आशीर्वाद द्वारा रोगीको तत्काल या शनै शनै लाभ पहुँचाया जाता है। परन्तु,यह कार्य बलवान् मनोबल वालोंसे ही होता है।

चिकित्सा विधान।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥

मिथ्या आहार-विहारसे शरीरमें रहे हुए वात, पित्त और कफ, इन धातुओंमें उत्पन्न हुई विकृति जिन क्रियाओं द्वारा दूर होकर धातु साम्यकी प्राप्ति हो, वह

पुस्तकें मिलनेके पते।

१—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय — पो० कालेडा बोगला (अजमेर)

२—श्री० प० श्रीगोवर्धनजी शर्मा छांगाणी, — सीताबर्डी—नागपुर

३—श्री० पं० राधाकृष्णजी द्विवेदी — उर्दू बाजार—हैदराबाद (दक्षिण)

४—भारत सेवक औषधालय — नई सड़क, दिल्ली

५—धनवन्तरि कार्यालय — विजयगढ़ (अलीगढ़)

६—प्राणाचार्य भवन — विजयगढ़ (अलीगढ़)

७—देशरक्षक औषधालय — मालेरकोटला (पंजाब)

८—देशरक्षक औषधालय — पो० कनखल (हरद्वार) जि० सहारनपुर

९—श्री० गणेशदासजी भूलचन्दजी चायवाला — सौसर (छिन्दवाड़ा)

१०—वैद्य शांतिलाल एन० शाह, — १३७ शेख मेमनस्ट्रीट बम्बई २

११—श्री० मन्नालालजी शर्मा — चाँदपोल-उदयपुर

१२—श्री० श्यामलालजी शर्मा बुकसेलर — दौलत मार्केट—आगरा

१३—श्री० पं० विश्वनाथजी वाजपेयी — औरैया (इटावा)

१४—श्री० जयकृष्णदासजी हरिदासजी गुप्ता — बनारस संस्कृत सीरीज चौखम्बा

१५—श्री० मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स — कचौड़ी गली, बनारस

१६—श्री० पं० शांतिस्वरूपजी — श्रीरामरोड—लखनऊ

१७—श्री० पं० रामगोपालजी, संस्कृत हितैषी पाठशाला — गंज—अजमेर

१८—धनपालिया ब्रदर्स — अकोला

१९—सरस्वती पुस्तकालय — चौक—कानपुर

२०—मौहता रसायनशाला — कचौरा (अलीगढ़)

२१—मोतीलाल बनारसीदास — चौक—बनारस

२२—गंगवाल आयुर्वेदिक औषधालय — रामानोद गांव (सी० पी०)

२३—श्रीयुत महादत्तजी तिवारी — भरथना (इटावा)